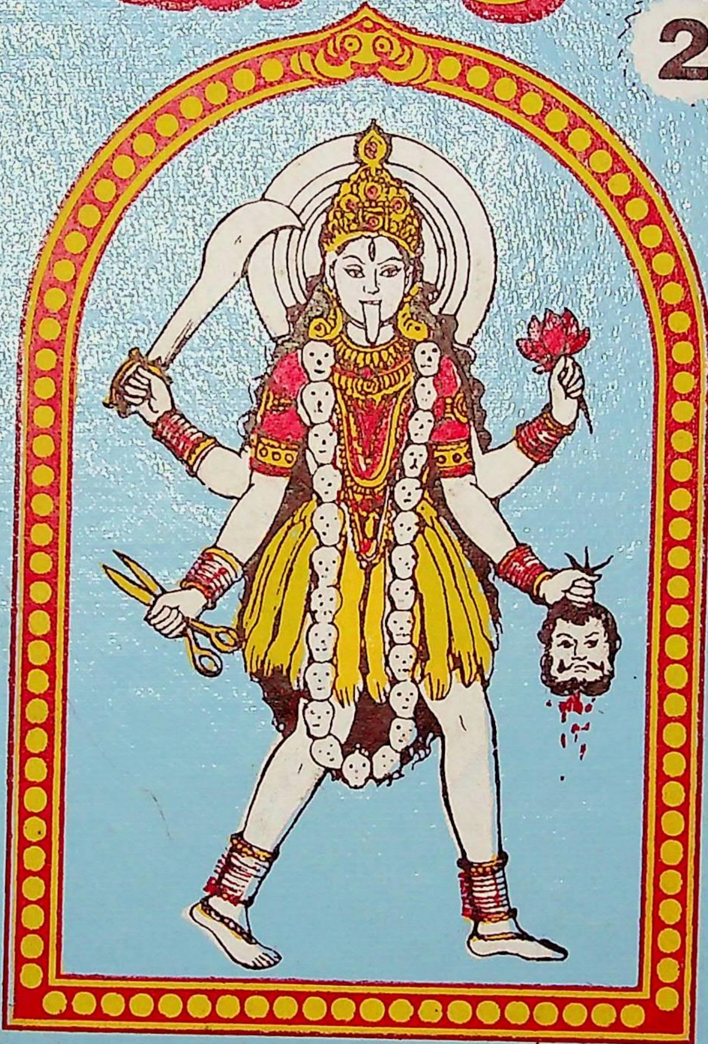
# कालिका पुराण

2



प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान, बरेली

# कालिका पुराण

## (द्वितीय खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)


सम्पादकः

**डॉ० चमन लाल गौतम**

**रचयिता**—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, ओंकार सिद्धि,
मंत्र शक्ति से रोग निवारण, विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि,
श्रीमद्भागवत् सप्ताह कथा, योगासन से रोग निवारण,
तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, मनुस्मृति, सूर्य पुराण,
तंत्र महाविज्ञान, मानसागरी आदि।



**प्रकाशकः**

**संस्कृति संस्थान**

**ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली-२४३००३**

**फोन-४७४२४२**

E-Mail us at:sanskriti_sansthan@rediffmail.com

**प्रकाशक :**

डॉ. चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली—२४३००३. (उ०प्र०)
फोन : ४७४२४२.



**सम्पादक :**

डॉ० चमन लाल गौतम







**संशोधित संस्करण :**

सन् २००१



**मुद्रकः**

**शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी**
**नव ज्योति प्रेस**
**पंचवटी, मसानी**
**मथुरा- २८१००१ (उ०प्र०)**
**फोनः (०५६५) ४०६५५२**



**मूल्य :**

सत्तर रुपये मात्र।

# दो शब्द

कालिका पुराण के द्वितीय खण्ड पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह एक विशेष योजना के अनुसार लिखा गया है। इसके सभी अध्याय काफी बड़े हैं और उनमें जो वर्णन किये हैं उनका सर्वाङ्ग पूर्ण और विशद बनाने की चेष्टा की गई है। शिव-पार्वती का उपाख्यान जो अनेक पुराणों और रामायण आदि में विस्तार पूर्वक किया गया है, वह इस पुराण में काफी परिवर्तित रूप में दिया गया है। इतना ही क्यों वही 'कालिका पुराण' का मुख्य आधार है पार्वती ही 'काली' कहलाती हैं और उसी को केन्द्र स्वरूप बनाकर इस खण्ड का अधिकाँश कथानक पूरा किया गया है।

यद्यपि पार्वती के जन्म, तपस्या और भगवान् शिव के साथ उसके विवाह का वर्णन इस पुराण में भी पाया जाता है, पर उसमें स्थान-स्थान पर कितनी ही भिन्नताएँ भी हैं। इसमें भी तारकासुर के वध के निमित्त शिव-पार्वती के विवाह और उनसे स्कन्द की उत्पत्ति की चर्चा है, पर साथ ही यह भी लिख दिया गया है कि इन दोनों को विवाह का निश्चय पहले ही हो चुका था और पार्वती बहुत पहले से ही शिवजी की सेवा किया करती थीं। जब कामदेव ने शिवजी पर आक्रमण किया तो उस समय भी पार्वती वहाँ उपस्थित थीं और उसी को देखकर शिवजी को काम-वेग उत्पन्न हुआ था। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि जिस समय पार्वती तपस्या कर रही थीं उस समय शिवजी ने स्वयं वेष बदल कर उसकी परीक्षा ली थी, और उसके आन्तरिक प्रेम का परिचय पाकर प्रणय की भिक्षा माँगी थी। पार्वती ने कहा मैं तो आपको पति बना ही चुकी हूँ, पर आप मेरे पिता हिमवान के हाथों से मुझे कन्यादान के रूप में ग्रहण करें, जिससे लौकिक रीति की भी पूर्ति हो जाय। ये सब बातें रामायण में वर्णित शिव-पार्वती विवाह में नहीं मिलती है। "शिव पुराण" में पार्वती की परीक्षा के लिए ब्रह्मचारी के वेष में शिवजी का आना लिखा है, पर उनमें प्रकट रूप से विवाह की कोई बात नहीं हुई।

इस प्रकार इस पुराण में वर्णित शिव-पार्वती चरित अन्य पुराणों की तुलना में बहुत कुछ मौलिक जान पड़ता है और उसमें हमको स्वाभाविकता अधिक जान पड़ती है।

× × × ×

इस पुराण के "राजधर्म" वर्णन में कूटनीति तथा गुप्तचर बिभाग का वर्णन अपने ढंग का निराला ही है। राजा को सभी जिम्मेदार अधिकारियों और परिजनों की जाँच जिस प्रकार करने को लिखा है, वैसा शायद ही और किसी धर्म ग्रन्थ में है। राजा अपने मन्त्रियों की जाँच किस प्रकार करे इस सम्बन्ध में एक उदाहरण इस प्रकार है—

"दासियाँ, शिल्पनी, वृद्धा, मेधा धृति वाली स्त्रियाँ, जो राजमहल के भीतर और बाहर आती-जाती रहती हैं और मन्त्रियों से भी परिचित हैं, उनके साथ गुप्त रूप से मन्त्रणा करके राज्याधिकारियों तथा परिजनों की परीक्षा ली जाय। वे स्त्रियाँ अधिकारियों में से जिसे दूषित समझें उसके पास जाकर कहें कि राजा की प्रमुख रानी आपको चाहती हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो मैं मिलने की व्यवस्था कर दूँ। इस प्रकार महलों में रहने वाली रानियों, राजपुत्र बधू, पुत्र, पुत्री पौत्र आदि के चरित्र की भी जाँच करनी चाहिए। वे जासूस स्त्रियों से गुप्त रूप से चर्चा करें कि अमुक राज्य-मन्त्री आपको चाहता है और वास्तव में आपके योग्य भी है। आप चाहें तो मैं मेल करा सकती हूँ। इस प्रकार की जाँच में जो व्यक्ति दोषी सिद्ध हों उनको मरवा डालना चाहिए। स्त्रियों को भी दण्ड दिया जाय और यदि ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण हो तो उसे देश निकाला दिया जाय"।

ऐसी ही परीक्षा अर्थ (धन) और धर्म (यज्ञ तथा कर्मकाण्ड) आदि के विषय में भी की जानी आवश्यक है और जो व्यक्ति किसी दृष्टि से राजा से प्रतियोगिता का भाव रखता हो अथवा उसको हटाकर स्वयं शासक बन बैठने की अभिलाषा रखता हो उन सबको कंटक स्वरूप समझ कर दूर हटा देना ही बुद्धिमत्ता है। इस अध्याय के अन्त में यह भी प्रकट कर दिया गया है कि राजनीति की ये चालें बृहस्पति और शुक्र के राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थों के आधार पर संग्रह की गई हैं। यद्यपि वर्तमान समय में एकतन्त्र शासकों (राजाओं) का अन्त हो जाने से, ये बातें निरर्थक जान पड़ती है, जिस समय राज्य की बागडोर केवल एक-दो व्यक्तियों के हाथ में रहती थी

और अन्य लोग उनको मारकर स्वयं उस पद को ग्रहण करने के लिए सदैव षड्यन्त्र रचते रहते थे उस समय निस्सन्देह इस प्रकार की जानकारी बड़ी महत्वपूर्ण थी।

× × × ×

यद्यपि यह एक पौराणिक रचना है, जिसमें कालिका (महाशक्ति) की पूजा, उपासना, जप, ध्यान आदि का ही विशेष वर्णन किया गया है और देवी की विभिन्न शक्तियों—दुर्गा, चण्डी, तारा, कौमारी, छिन्नमस्ता, धूमावती आदि की विभिन्न साधना विधियों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। हम जानते हैं कि आधुनिक विद्वान् इस प्रकार के पूजा-पाठ को निरर्थक और काल्पनिक बतलाते हैं और प्राचीन ज्ञान मार्ग वालों ने भी उसे बहुत नीचे दर्जे की उपासना माना है, क्योंकि उनके मतानुसार सबसे उच्चकोटि की उपासना अपनी आत्मा की है। जब मनुष्य अपनी आत्मा को परमात्मा का अंश मानकर उसका ही ध्यान करने लगता है तभी वह ब्रह्म-ज्ञान का अधिकारी बनता है। पाठकों को यह देखकर कुछ आश्चर्य होगा कि दृढ़ साम्प्रदायिक होते हुए भी कालिका-पुराण के रचयिता ने इस तथ्य को सर्वदा भुला नहीं दिया है। उन्होंने गन्ध, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि से देवी की षोडशोपचार पूजा करने का विधान बतलाते हुए भी यह संकेत कर दिया है कि साधक को देवी उपासना करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये सब पदार्थ परमात्मा के अंश है और हम भी इसी में से निकले हैं—

अहं देवोऽयं नैवेद्य पुष्पगन्धादिकं च यत्।
पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते।।
देवाधारोहह्यहं देवो देवं देवाय योजयेत्।
सर्वेषां देवतासृष्टया जायते शुद्धतापि च।।

अर्थात्—"मैं देव (ईश्वर) हूँ—जब यह भावना दृढ़ हो जाती है, तो पुष्प, गन्ध, नैवेद्य आदि पूजा के सभी उपकरण देव-स्वरूप मालूम पड़ने लगते हैं। ईश्वर ही सबका मूल है इसलिए मैं भी ईश्वर हूँ। अतएव ईश्वर ही ईश्वर की पूजा कर रहा है, और सब कुछ ईश्वरमय है तो किसी वस्तु में अशुद्धता का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है अर्थात् सभी पूजा सामग्री शुद्ध है और हम भी शुद्ध हैं।"

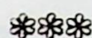
यह वेदान्त-शास्त्र का सर्वोच्च सिद्धान्त है और आधुनिक विज्ञान इसका खण्डन नहीं कर सका है। हम जानते हैं कि अनेक पाखण्डी और बातूनी भी स्वार्थ सिद्ध के लिये ब्रह्मज्ञान और "एकोऽहम्, द्वितीयोनास्ति" का ढिंढोरा पीटा करते हैं, पर हम यहां वास्तविक वेदान्त सिद्धान्त और उस पर आन्तरिक विश्वास रखने वालों की चर्चा कर रहे हैं। इस दृष्टि से 'कालिका पुराण' एक उपपुराण होते हुए भी बौद्धिक दृष्टि से अनेक ऐसी ही अन्य रचनाओं से उत्तम हैं।

× × × ×

जैसा हमारा नियम है हमने इस पुराण के उतने ही भाग को अपने ग्रन्थ में ग्रहण किया है, जिससे पाठक कुछ सत् शिक्षाएं प्राप्त कर सकते हैं। जो बातें सभी पुराणों में बार-बार दुहराई जा चुकी हैं, उनको छोड़ दिया है।

—प्रकाशक

# विषय-सूची



—×—

# कालिका पुराण

## ( द्वितीय खण्ड )

※※

### भौमासुर की तपस्या

स राजा नरकः श्रीमांश्चिरञ्जीवी महाभुजः ।
मानुषेणैव भावेन चिरं राज्यमथाकरोत् ।।१
त्रेतायां च व्यतीतायां द्वापरस्य तु शेषतः ।
अभवच्छोणिपुरे बाणो नाम महासुरः ।।२
तस्याग्निदुर्गं नगरं स च शम्भुसखो बली ।
सहस्रबाहुर्दुर्धर्षः प्रियः पुत्रः स वै बलेः ।।३
नरकेण सन तस्य महामैत्री व्याजयत ।
गमनागमनान्नित्यमन्योन्यानुग्रहेस्तथा ।
तयोरभूद् महाप्रीतिः पवनानलयोर्यथा ।।४
स च बाणः समाराध्य महादेवं जगत्प्रभुम् ।
आसुरेणाथ भावेन व्यचरच्चाकुतोभयः ।।५
तत्संगात् स नरको दृष्ट्वा तस्याद्भुतां कृतिम् ।
तेनैव सह भावेन विहर्तुमुपचक्रमे ।।६
न ब्राह्मणान् पूजयति यथा पूर्वं तथा द्विजाः ।
न च यज्ञेषु दानेपु पूर्ववन्मुदितः स च ।।७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह श्रीमान् राजा नरक जो चिरंजीवी और महान् भुजाओं वाला था। मानुष भाव से हा चिरकाल पर्यन्त उसने राज्य किया था ।१। त्रेता युग के व्यतीत हो जाने पर द्वापर के शेष में

शोणितपुर में वाण नाम वाला महान् असुर हुआ था ।२। उसका अग्नि दुर्ग नगर था और वह बलवान शम्भु का सखा था । उसके एक सहस्र वाहु थीं और वह बहुत दुर्धष था तथा राजा बलि का प्रिय पुत्र था ।३। उसकी राजा नरक के साथ बड़ी मित्रता हो गयी थी । नित्य ही गमन और आगमन से तथा परस्पर अनुग्रह से उन दोनों में पवन और अनल की भाँति हो गयी थी ।४। उस बाण ने जगत के प्रभु भगवान् शम्भु की समाराधना की थी और वह बिना भय वाला होकर असुर भाव से विचरण किया करता था । ।५। उसी के संभर्ग से वह नरक ने भी उसकी इस अत्युद्भुत कृति को देखकर उसी के साथ उसी भाव से विहार आरम्भ कर दिया था ।६। हे द्विजो ! वह फिर ब्राह्मणों का पूजन नहीं करता था जैसे कि पहिले किया करता था और वह यज्ञों और दान देने में भी पूर्व की भाँति प्रसन्न नहीं होता था ।७।

न तथा विष्णुमभ्येति पृथिवी वापि नार्चन्ति ।
कामाख्यायां तथा भक्तिस्तदा तस्याथ नाभवत् ।।८
एतस्मिन्नन्तरे धातुस्तनयो मुनिसत्तमः ।
वसिष्ठो नाम कामाख्यां द्रष्टुं प्राग्ज्योतिषं गतः ।।९
तां दुर्गाभ्यन्तरे नीलकूटदेवीं व्यवस्थिताम् ।
द्रष्टुं गन्तुं वसिष्ठस्य न द्वारं नरको ह्यदात् ।।१०
ततो वसिष्ठः कुपितो वचनं पुरुषं मुनिः ।
जगाद नरकं वीरं गर्हयन्मुनिसत्तमः ।।११
कथं पृथिव्यास्तनयो वराहस्य सुतोऽञ्जसा ।
देवीं द्रष्टुं ब्राह्मणस्य न ददासि तथागतः ।।१२
किं ते कुलोचित कर्म त्वं करोषि धरात्मज ।
देवीं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पूजयिष्ये जगन्मयीम् ।।१३
ततः स नरको राजा प्राप्तकालः क्षितेः सुतः ।
पुरुषेणाथ वाक्येन तमाक्षिप्य निरस्तवान् ।
ततो मुनिः स कुपितः शशाप नरकं नृपम् ।।१४

पूर्व की तरह वह भगवान् विष्णु के समीप गमन नहीं किया करता था और वह पृथिवी का भी अर्चन नहीं करता था । उस अवसर पर

कामाख्या में उस भाँति की भाँति उसकी नहीं हुई थी ।८। इस बीच में विधाता के पुत्र मुनियों में परम श्रेष्ठ वसिष्ठ कामाख्या का दर्शन करने के लिए प्राग्ज्योतिष पुर में गये थे ।९। दुर्ग के अन्दर व्यवस्थित उस नील कूट देवी का दर्शन करने के लिये जाने को वसिष्ठ मुनि को नरक ने द्वार नहीं दिया ।१०। इसके अनन्तर मुनि श्रेष्ठ बहुत कुपित होकर वीर नरक की निन्द करते हुए कठोर वचन वोले ।११। वसिष्ठ मुनि ने कहा—कसे पृथिवी का पुत्र और वराह का सुत अचानक ही ब्राह्मण को देवी के दर्शन करने के लिए स्वागत नहीं करता है ।१२। हे धरा के पुत्र ! तेरे कुल में उचित कर्म क्या है ? जिसको तू कर रहा है । प्राग्ज्योतिष पुर में जाकर मैं देवी का पूजन करूँगा ।१३। मार्कण्डेय मुनि ने कहा इसके अनन्तर वह राजा नरक जो पृथ्वी का पुत्र था काल प्राप्त होकर कठोर वाक्य के द्वारा उस भूमि पर आक्षेप करके उसने उसको निरस्त कर दिया था । इसके उपरान्त उस मुनि ने कुपित होकर राजा नरक को शाप दे दिया था ।१४।

नचिराद् येन जातोऽसि तेन मानुषरूपिणा ।
मरणं भविता पाप वराहकुलपांसन ।।१५

मृते त्वयि महादेवीं कामाख्यां जगतां प्रभुम् ।
पूजयिष्याम्यहं पाप तिष्ठ यास्ये स्वमालयम् ।।१६

तत्रं याउ्वीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभुः ।
सर्वैः परिकरैः सार्धमन्तर्धानाय गच्छतु ।।१७

इत्युक्त्वा ब्रह्मपुत्रः स स्वस्थानं गतवान् मुनिः ।
वसिष्ठस्तेन भौमेन निरस्तः कुपितो भृशम् ।।१८

गते बसिष्ठे नरकः शीघ्रं विस्मयसंयुतः ।
जगात देवीभवनं नीलकूटं महागिरिम् ।।१९

तत्र गत्वा न चापश्यन् कामाख्यां कामरूपिणीम् ।
न योनिमण्डलं तस्या सर्वान् परिकरास्तथा ।।२०

ततः स विमना भूत्वा क्षिति संस्मार मातरम् ।
पितरं च जगन्नाथं नरकः प्रभुमव्ययम् ।।२१

वसिष्ठ मुनि ने कहा—हे वराह के कुल को कलङ्कित करने वाले ! हे पापी ! जिससे अभी उत्पन्न हुआ है उसी मानुष रूप से मरण को प्राप्त

होगा ।१५। तेरे मृत हो जाने पर जगतों की प्रभु महादेवी कामाख्या को मैं पूजित करूँगा । हे पापी ! तुम यहाँ स्थित रहो मैं अपने निवास स्थान को चला जाऊँगा ।१६। हे पापी ! जब तक तू जीवित रहेगा तब तक जगत् की स्वामिनी यह कामाख्या देवी भी सब परिकरों के साथ अन्तर्धान हो जावे ।१७। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह ब्रह्माजी के पुत्र मुनि इतना कहकर अपने स्थान को चले गये थे । उस भूमि के पुत्र के द्वारा निरस्त किये हुए मुनि बसिष्ठ बहुत ही अधिक कुपित हो गये थे।१८। वसिष्ठ मुनि के चले जाने पर नरक शीघ्र ही विस्मय से संयुत होकर नील कूट महान् गिरि पर देवी के भवन में चला गया था।१९। वहाँ पर जाकर उसने कामरूप वाली कामाख्या देवी को नहीं देखा था । उसके योनिमण्डल को और सब परिकरों को भी नहीं देखा था ।२०। इसके उपरान्त वह बहुत ही उदार हो गया था और माता पृथ्वी का उसने स्मरण किया था । नरक ने अविनाशी जगत के नाथ प्रभु पिता का भी स्मरण किया था ।२१।

न तावपि तदा यातौ यस्य प्रत्यक्षतां द्विजाः ।
व्युत्क्रान्तसमयस्येति नीतिहीनस्य शम्भवे ।।२२
चिरं प्रतीक्ष्य तौ तत्र भौमो वज्रध्वजस्तदा ।
अप्राप्तक्षितिविष्णुः स सशोकः स्वं निवेशनम् ।।२३
स गच्छन् स्वगृहं भौमः पुरीं स्वां दृष्टवांस्तु सः ।
पूर्वश्रिया परित्यक्तां मलिनां वनितामिव ।।२४
देव्यामन्तर्हितातां तु वेदवादविवर्जितम् ।
पुण्यस्वल्पदारजनं तत् पुरं समपद्यत ।।२५
न देवास्तत्र गच्छन्ति न विप्रा न महर्षयः ।
वभूव नगरं तस्य स्वल्पयज्ञक्रियोत्सवम् ।।२६
ईतयो बहवो जाता मृताश्च वहवो जनाः ।
सौहित्यनदराजोऽपि हीनतोयस्तदाऽभत् ।।२७
बहूनि विपरीतानि दृष्ट्वा स नरकस्तदा ।
मेने मरणामासन्नतात्मनो ब्रह्मशापतः ।।२८

हे द्विजो ! उस समय वे दोनों ही उसके सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं हुए क्योंकि वह समय का व्युत्क्रमण करने वाला और शम्भु के लिए

नीति से विहीन हो गया था ।२२। उस भूमि के पुत्र के वहाँ पर चिर काल तक उन दोनों की प्रतीक्षा की थी । उस समय वज्रध्वज वह विष्णु भगवान और पृथ्वी को न प्राप्त करने वाला होकर शोक से युक्त हो अपने घर में चला गया था ।२३। अपने घर को जाते हुए उस भूमि के पुत्र ने अपनी पुरी को देखा था जो अपनी पूर्व की श्री से परिव्यक्त थी और मलिन वनिता के ही समान हो रही थी ।२४। उस देवी के अन्तर्धान हो जाने पर उस पुर को उसने वेद वाद से रहित और पवित्र दाराजनों के स्वल्प रह जाने वाला ही पाया था ।२५। वहाँ पर न तो देवगण जाते हैं और न विप्र तथा महर्षिगण ही जाया करते हैं । उसका नगर बहुत ही कम यज्ञों की क्रिया तथा उत्सवों वाला हो गया था ।२६। बहुत सी ईतियाँ उस समय हो गई थीं (विनाश करने वाली ६ प्रकार की ईतियाँ होती हैं) और बहुत से जन मर गये । उस समय में लौहित्य नदों का राजा भी बहुत कम जल वाला हो गया ।२७। उस समय बहुत से विपरीत होने वाले कार्यों को देखकर वह नरके ब्राह्मण के पुत्र के शाप से अपने आप का मरण भी आया हुआ मानने लग गया था ।२८।

ततः प्राग्ज्योतिषाध्यक्षः शोकविह्वलचेतनः ।
चिन्तयन् मनसा मित्र वाणं बलिसुतं ययौ ॥२९
सखा प्राणसमः सोऽस्य सततान्योन्यरक्षणे ।
तत्परौ बाणनरकौ स्वश्वैद्यावश्विनाविव ॥३०
एतस्मिन्नन्तरे बाणो मित्रं शम्भुसखो बली ।
अनुकूलयिता मन्त्रप्रदानेन महाबुधः ॥३१
इति चासीन्मतिस्तस्य वज्रकेतोस्तदाचला ।
दूतं च प्राहिणोद् दीप्तं बाणस्य नगरं प्रति ॥३२
स शोणितपुर गत्वा स्यन्दनेनाशुगामिना ।
ततो भौमस्य वृत्तान्तं वाणायाशु न्यवेदलत् ॥३३
यथा शप्तो वसिष्ठेन यथा चान्तर्हिताम्बिका ।
यथा विघ्नः पुरवरे जातः प्राग्ज्योतिषाह्वये ॥३४
समयस्य व्यतिक्रान्तिर्भू मिमाधवयोर्थथा ।
तथा स दूतो भौमस्य शशंस बलिसूनवे ॥३५

इसके अनन्तर प्राग्ज्योतिष नगर का स्वामी नरक शोक से विह्वल चेतना वाला होकर मन से चिन्तन करता हुआ बलि के पुत्र अपने मित्र बाण के समीप में चला गया था।२६। वह इसका प्राणों के समान सखा था। ये दोनों निरन्तर परस्पर एक दूसरे की रक्षा करने में तत्पर रहा करते थे। ये दोनों बाण और नरक स्वर्ण के वैद्य अश्विनी कुमारों के ही सदृश थे।३०। इसी बीच शम्भु का सखा बलवान् मित्र बाण महान् वृष था और मन्त्र प्रदान के द्वारा अनुकूल रहने वाला था।३१। इस वज्र केतु की उस समय से ऐसी अचल मति हुई थी। उसने बाण के नगर की ओर दीप्त दूत को प्रेषित किया था।३२। वह शीघ्र गमन करने वाले रथ के द्वारा शोभित पुर को जाकर फिर उसने भूमि के पुत्र नरक का वृत्तान्त शीघ्र ही बाण के लिये निवेदन कर दिया था।३३। जिस प्रकार से वसिष्ठ मुनि ने शाप दिया था और जैसे अम्बिका अन्तर्धान हो गई थी और जैसे प्राग्ज्योतिष नाम वाले पुर में विघ्न उत्पन्न हो गया था।३४। भूमि और माधव का समय जिस तरह से व्यति क्रान्त हुआ था अर्थात् समय का अतिक्रमण दिया गया था— यह सब भूमि पुत्र के उस दूत ने बलि के पुत्र बाण से कह दिया था।३५।

स समाकारमित्रस्य सम्यग् दैवपराभवम्।
स्वय जगाम नरक सभाजर्यितुमीश्वरः ॥३६
स कांचनविचित्रांख युक्तमश्वशतैस्त्रिभिः।
लोहचक्रं च वैयाघ्रं मयूरध्वजभूषितम् ॥३७
हेमदण्डसितच्छत्रच्छादितं किंकिणीगणैः।
नानारत्नौचरचितमारुरोह महारथम् ॥३८
स सहस्रभुतः श्रीमांश्चतुरंगबलैर्युतः।
प्राग्ज्योतिषं भौमापुरमचिरादाजगाम ह ॥३९
तमासाद्य महाबाहुर्वाणः प्राग्ज्योतिषेश्वरम्।
हीनं पूर्वश्रिया मित्रमपश्यन्नगरं च तत् ॥४०
स तेन पूजितो वाणी यथायोग्यं सूतेन को।
पप्रच्छ किं निमित्तं ते हीनश्रीकमभूत् पुरम् ॥४१
शरीरं च यथापूर्वं तथा न तव राजते।
मनश्च ते नाति हृष्टं तत्र वदस्व मे ॥४२

उसके समान आकार वाले मित्र का यह पराभाव जो दैव के ही द्वारा हुआ था भली भाँति जानकर वह ईश्वर नरक को समझाने अर्थात् सत्विना देने के लिये वहाँ स्वयं हो गया ।३६। वह सुवर्ण से रचित विचित्र अङ्गों वाले, तीन सौ अश्वों से युक्त, लोहे के पहिया वाले, वयाध्र, मयूर ध्वज से भूषित, सुवर्ण के दण्ड वाले सित छत्र से समाच्छादित, किङ्किणी गणों से समन्वित, अनेक रत्नों से समूह से निर्मित महान् रथ पर समारूढ़ हुआ था। ।३७-३७। वह एक सहस्र भुजाओं वाला—श्रीमान् चतुरङ्गिणी सेनाओं से युक्त होकर भौम (नरक) के पुर प्राग्ज्योतिष में शीघ्र आ पहुँचा ।३९। उसके समीप पहुँच कर महा बाहु-वाण ने प्राग्ज्योतिष नगर के स्वामी को पूर्व श्री से हीन मित्र को और उस नगर को देखा था ।४०। पृथ्वी के सुत द्वारा यथा उचित रीति से वह पूजित किया गया था अर्थात् उसका समुचित सत्कार किया था । और उसने पूछा था कि किस कारण से तुम्हारा यह पुर श्री हीन हो गया था ।४१। वाण ने कहा–आपका यह शरीर भी जैसा पहिले था। वैसा शोभित नहीं हो रहा है । आपका मन भी पहिले के समान प्रसन्न नहीं है—इसमें क्या कारण है, वही मुझे कृपाकर बतलाइये ।४२।

एवमादीनि पृष्टः स नरका क्षितिनन्दनः ।
यथा वसिष्ठश षोऽभृत् तत् सर्व तस्य चाब्रवीत् ।।४३
यच्छ्रु तं रौमवदनात्तदूतावेदितं पुरा ।
ज्ञात्वा तथा तं प्रोवाच वाणी वज्रध्वज पुनः ।।४४
नहि मन्युस्त्वया कार्यः सुखे दुःखे शरीरिणाम् ।
चक्रवात् परिवर्तते नैताभ्यां कोऽपि हीयते ।।४५
परं प्रतीकारः कार्यो धीरैर्विभूतये ।
भवानपि प्रतीकारं कर्तु महांत सम्पति ।।४६
य एष मानुषः पृथ्व्यामसाधारणभूतिभिः ।
वर्धते दानवो वापि दैत्यो वाप्यथवासुरुः ।।४७
राक्षसः किन्नरो वापि शक्रस्तान् सहते नहि ।
स कौटिलप्र देवगणैः सार्धं कुर्वन्नितस्ततः ।
यथा तथा प्रकारेण भ्रंशयत्येव त श्रियः ।।४८
तस्य चेष्टतमो देवो विष्णुर्नित्यं सनातनः ।
स न शक्रस्य कुरुते मनोऽनिष्टं मयागपि ।।४९

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से बहुत से प्रश्न पूछे गये । भूमि के पुत्र उस नरक को जिस तरह से वशिष्ठ मुनि ने शाप दिया था वह सभी उसको कह दिया था ।४३। भूमि के पुत्र से जो भी सुना था वह पहिले ही दूत के द्वारा आवेदित था । उस भाँति से जान करके वाण उस बज्र ध्वज से पुनः बोला ।४४। वाण ने कहा—आपको क्रोध नहीं करना चाहिए । शरीर धारियों को सुख और दुःख चक्र की ही भाँति परिवर्तित हुआ करते हैं अर्थात सुख के बाद दुःख ओर दुःख के पश्चात् सुख लौट फेर कर आया करते हैं । इग सुख दुःख से कोई भी हीन नहीं हुआ करता है ।४५। परन्तु धीर पुरुषों को विभूति के लिए उसमें प्रतीकार करना ही चाहिए । आपको भी अब उसका प्रतीकार करना योग्य है अर्थात आपको भी प्रतीकार करना ही चाहिए ।४६। पृथ्वी मैं यह मनुष्य असाधारण विभूतियों से वर्धित होता है । ऐसा सभी को होता है चाहे कोई दानव हो दैत्य हो अथवा असुर हो ।४७। राक्षस हो अथवा किन्नर हो—इन्द्र उसको सहन नहीं किया करता है । वह इन्द्र देवगणों के साथ इधर-उधर कुटिलता किया करता है । और जिस किसी भी प्रकार से उसकी श्री को भ्रष्ट करके उसे विनष्ट कर दिया करता है ।४८। उसके परम इष्टतम देव सनातन विष्णु भगवान् हैं । वे इन्द्र का थोड़ा सा भी अनिष्ट कभी नहीं किया करते हैं ।४९।

यः समाराधयेद् विष्णु शक्रस्यानिष्टकारकः ।
तस्मै वरं सच्छिद्रं दत्त्वा तं शातयत्वितः ।।५०
चिरामाराधितो विष्णुरिष्टान् कामान् प्रयच्छति ।
महता कायदुःखेन पूजितः सम्प्रसीदति ।।५१
विनेष्टदेवतापूजां विभूतिमतुलां पुमान् ।
कः प्राप्नोतिः श्रुतं पूर्वं न वा पूर्वतरैः क्वचित् ।।५२
त्वयां नारधितः पूर्वं ब्रह्मा वा विष्णुरीश्वरः ।
तेन तेऽद्य महाविघ्ना उत्पन्ता विषये तव ।।५३
यो वा विष्णु पालकस्ते न निसर्गानुकम्पकः ।
किन्तु ते स क्षितेर्वाक्यात्तया चाराधितो मुहुः ।।५४
दत्तं छिद्रं च ते विष्णुर्नापराध्यास्त्वया द्विजाः ।
इतोऽन्या त्वं भविता हरश्रीरिति नः श्रुतम ।।५५

अपराध्यस्त्वया भूप वसिष्ठः परमो मुनिः ।
तेन स्मरणमात्रेण नायातौ क्षितिमाधवौ ।।५६

इन्द्र का अनिष्ट करने वाला जो भी कोई भगवान विष्णु की समाराधना किया करता है उसको सच्छिद्र वरदान देकर उसका विनाश करते हैं ।५०। चिरकाल आराधना किये हुए भगवान् विष्णु अभीष्ट काम प्रदान करते हैं और शरीर से कष्ट सहकर पूजा करने पर वे परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ।५१। इष्ट देवता की पूजा के बिना कौन पुरुष अतुल विभूति को प्राप्त किया करता है अर्थात कोई भी नहीं । पुराने समय में ऐसा कहीं भी कोई पुरुष नहीं सुना गया है ।५२। तुमने पूर्व में ब्रह्मा अथवा भगवान् विष्णु की आराधना नहीं की है । इसी कारण तुमको आप ही विघ्न समुत्पन्न हुए हैं ।५३। भगवान् विष्णु जो स्वभाव से ही अनुकम्पा करने वाले हैं तुम्हारे पालन करने वाले नहीं हो रहे हैं । किन्तु तुमने पृथिवी के कथन से पुनः उनकी आराधना की थी ।५४। विष्णु भगवान् ने तुमको छिद्र दे दिया है । आपको द्विजो का अपराध नहीं करना चाहिए । अन्यथा इससे आप हत श्री हो जायेंगे—ऐसा हमने सुना है ।५५। आपने परम श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि का अपराध किया है हे भूप ! इसीलिए उस स्मरण से पृथिवी और विष्णु नहीं पधारे ।५६।

तस्मात्वं मित्र बुध्यस्व कौटिल्य हरिमेधसः ।
नाधुना युज्यते भौम तत्रोदासीनताकृतिः ।।५७
यत्ते मनसि तातोऽयमिति सम्प्रत्ययस ते ।
वराह एव ते तातः स च लोकान्तरं गतः ।।५८
वराहोऽपि हरेरंश इति यच्छ्रूयते त्वया ।
तस्यांश इत्यनुक्रोशः केन वा क्रियते वद ।।५९
तस्मात्त्व कुरु शम्भोर्वा ब्रह्माणो वाधुनार्च्चनम् ।
स ते प्रसन्नः परममिष्टकामं प्रदास्यत्ति ।।६०
विघ्नो वा मुनिशापो वा महेतिर्वातिपीडकः ।
विधौ प्रसन्न शम्भौ वा नचिरात्क्षयमेष्यति ।।६१
जातसम्प्रत्ययो भौमो बाणस्य वचनात् तदा ।
सुप्रीतः समुवाचेदं धीरस्घघरनिःस्वनः ।।६२

हे मित्र ! इस कारण से आप भगवान् की बुद्धि की कुटिलता को समझ लीजिये । हे भौम ! इस समय आपकी उदासीन आकृति का होना ठीक नहीं ।५७। जो तुम्हारे मन में यह है कि यह मेरे तात हैं ऐसा विश्वास है वह तो दूसरे लोक में चले गये हैं क्योंकि वाराह ही आपके पिता थे । वह चले गये हैं ।५८। वाराह भी हरि भगवान् का ही अंश है जिनका आप सेवन किया करते हैं । उसका अन्श है—यह अनुकम्पा ही है यह किसके द्वारा किया जाता है बतलाइए ।५९। इससे अब तुम भगवान् शम्भु अथवा ब्रह्माजी का अभ्यर्चन करो । वह प्रसन्न होकर आपका परम अभीष्ट काम प्रदान कर देंगे ।६०। विघ्न अथवा मुनि का शाप या पीढ़ा करने वाली महती ईति विधाता अथवा शम्भु भगवान् के प्रसन्न होने पर ये सभी शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायेंगे ।६१। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस समय बाण के वचन से नरक को पूर्ण विश्वास हो गया था । वह बहुत ही प्रसन्न होकर धीरता से घर्घर ध्वनि करता हुआ वचन बोला ।६२।

यत् त्वया गदितं बाण हितं मित्रवत्सल ।
तत् कार्यमचिरादेव तपश्चरणमुत्तमम् ।।६३

विष्णुर्नाराधनीयो मे तत्र हेतुस्त्वयोदितः ।
नेवाराध्यस्तथा शम्भुरन्तर्गुप्तः स मे पुरे ।।६४

तस्माद् ब्रह्मा समाराध्यो बचनात् तव मित्रक ।
तत्पुत्रस्य महावाहो लौहित्यस्याम्बुसन्निधौ ।।६५

भवताध्यापितश्चाहं शिष्याऽथ गुरुणा यथा ।
मित्रं मित्रं यथा धार साम्ना परमवल्गुना ।।६६

इत्युक्त्वा स महावाहुर्वाणं वज्रध्वजस्तदा ।
यथावत् पूजयामांस तन्मित्रं मित्रवत्सलः ।।६७

अर्चयित्वा यथायाम्यं प्रस्थाप्य च बलेः सुतम् ।
ब्रह्माराधनमत्युग्रं कर्तुमिच्छन् क्षिपे सुतः ।।६८

स तीरे नदराजस्य लौहित्यस्य महात्मनः ।
ब्रह्माचलं समारुह्य तपस्तप्तुमुपस्थितः ।।६९

स मानुषेण मानेन क्षितिपुत्रः शतं समाः ।
जलाहारव्रतेनैव समर्चिन्च पितामहम् ।।७०

भौम ने कहा—हे मित्रों पर प्यार करने वाले ! जो भी आपने कहा है वह मेरा हित है अर्थात भलाई करने वाला हूँ। वह मैं तुरन्त ही उत्तम तपश्चर्या करूँगा।६३। मुझे भगवान् विष्णु की आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसमें हेतु बतला दिया है। उसी भाँति शम्भु भगवान की भी आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे मेरे पुर में अन्तर्गुप्त हैं।६४। इस कारण ब्रह्माजी की ही आराधना करनी चाहिए ऐसा ही हे मित्र ! आपका भी कथन है। हे महाबाहो ! उनके पुत्र लौहित्य के जल की सन्निधि में आपके द्वारा मैं अध्यापित किया गया हूँ जिस तरह से गुरु के द्वारा शिष्य को पढ़ाया जाता है। हे धीर ! जैसे मित्र को मित्र परम वाल्गु साम से किया करता है।६५–६६। मार्कण्डेय मुनि ने कहा— इतना बाण से कहकर महाबाहु वज्रध्वज ने यथावत उस मित्र की पूजा की क्योंकि वह मित्रों पर प्यार करने वाला था।६७। क्षिति के पुत्र नरक थे यथोचित रूप से अर्चन करके और बलि के पुत्र को विदा करके अत्यन्त उग्र रूप से ब्रह्माजी की आराधना करने की इच्छा की थी।६८। वह महात्मा लौहित्य के तट पर जो कि नदों का राजा था ब्रह्माचल पर स्थित होकर तपश्चर्या करने के लिये उपस्थित हो गया।६९। उस क्षिति के पुत्र ने मनुष्यों के मान से सौ वर्ष तक जल के आहार के व्रत से पितामह की अर्चना की थी।७०।

संन्तुष्टः शतवर्षान्ते ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रत्यक्षीभूय नरकस्याग्रतः समुपस्थितः॥७१
प्रीतोऽस्मि ते वरं दास्ये वरं वरय सुव्रत।
इति चोवाच नरकं स तदा कमलासनः॥७२
स दृष्ट्वा सर्वलोकेशं प्रत्यक्ष कमलासनम्।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रोचे विनयानतकन्धरः॥७३
देवासुरेभ्यो रक्षोध्यः सर्वेभ्यो देवयोनितः।
अवध्यत्व सुरश्रेष्ठ वरमेकं प्रयच्छ मे॥७४
अविच्छिन्ना सन्ततिर्मे यावच्चन्द्रोरविस्तनपेत्।
तावद्भवत् लोकेश द्वितीयोऽयं वरो मम॥७५
तिलोत्तमाद्या या देव्यः सद्रू सगुणसंयुताः।
ते स्ता मे वयिताः सन्तु सहस्राणि तु षोडश॥७६

अजेयत्वं सदा श्रीर्मा न जहातु कदाचन ।
इति पञ्च वरा मेऽद्य वृतास्त्वत्तः पितामह ।।७७

लोकों के पितामह सौ वर्ष तक तप करने के अन्त में परम सन्तुष्ट हुए थे और प्रत्यक्ष नरक के सातने समुपस्थित हो गये ।७१। हे सुव्रत ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । मैं तुमको वरदान दूँगा । जो भी चाहो वर माँग लो उन भगवान् कमलासन ने यह उस पर नरक से कहा था ।७२। उस नरक ने समस्त लोकों के स्वामी कमलासन प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन करके उसने उनको प्रणाम किया था और फिर दोनों को कर जोड़ विनय से अवनत कन्धरा को करके बोला हे सुरश्रेष्ठ ! आप मुझे एक वरदान यह दीजिए कि मैं देवों-असुरों से-राक्षसों से और सभी देव योनियों में अवध्य होऊँ अर्थात् वध होने के योग्य न रहूँ ।७३-७४। मेरी सन्तति भी विच्छिन्न न होवे और वह तब तक रहे जब तक ये चन्द्र दिवाकर रहें । हे लोकेश्वर ! तभी तक मेरी सन्तति कायम बनी रहे—यही मेरा दूसरा वरदान है ।७५। तिलोत्तमा आदि जो देवियाँ सुन्दर रूप और गुणों से समन्वित हैं वे-वे सब सोलह सहस्र मेरी दयिता हो जावें ।७६। मुझे अजेयत्व की प्राप्ति होवे अर्थात् मैं किसी से विजित न होऊँ । और श्री मुझको कभी भी परित्याग न करें । हे पितामह ! ये मेरे पाँच वर हैं जो आपसे मैंने आज वरण करने की इच्छा प्रकट की हैं ।७७।

मायया मोहितो भौमो मुनिशापं विस्मृत्य च ।
अन्यद्वारारान्तरं वव्रे मुनिशापस्तथा स्थितः ।।७८
एवमस्त्विति तान् सर्वान् वरान् दत्वा पितामहः ।
उवाचेद द्वापरान्ते सन्ध्यायां सुरकन्धकाः ।।७९
तिलवेत्तमाद्यास्ते जाया सम्भविष्यन्ति भूतले ।
न यावन्नारदो याति वज्रध्वज पुरं तव ।
तावन्न मैथुने योज्या भवता ताः क्षिते सुत ।।८०
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।
मुदमासाद्य परमां स्वस्थान नरकोऽभ्यगात् ।।८१
ततो मुदितलोकं तं नगरं श्रीनिषेवितम् ।
सदा सोत्साहसम्पूर्णमीतिविघ्नविवर्जितम् ।।८२

अभवत् पशुसंघैश्च बाजिवारणकुम्भकैः ।
सम्पूर्णं देवराजस्य दयितेवातरावती ।।८३

उत्तीर्णतपसं श्रुत्वा बाणो दत्तवर तथा ।
स्वयं मुनरपातिष्टद् वज्रध्वजं तदा ।।८४

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--वह नरक माया से मोहित हो गया था और मुनि के शाप को विस्मृत कर दिया था। मुनि का शाप उसी भाँति स्थित था। उसने अन्य-अन्य वरदानों की याचना की थी ।७८। पितामह ने ऐसा ही होवे—ऐसी रीति से उन सब वरों को देकर यह कहा था--द्वापर के अन्तर में सन्ध्या में तिलोत्तमा आदि सुर कन्याएँ भूतल में तेरी पत्नियाँ होगी। हे वृषध्वज ! जब तक देवर्षि नारद तेरे पुर में नहीं जाते हैं। हे क्षिति के पुत्र ! तब तक आपको उनके साथ मैथुन कर्म नहीं करना चाहिए ।७९-८०। इतना ही कहकर सब लोकों के ईश एक ही क्षण में अन्तर्धान हो थे। नरक भी परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान को गया ।८१। इसके अनन्तर वह उस प्रसन्न लोगों वाले नगर को चला गया था। वह नगर श्री से निषेवित था और सदा ही उत्साह से परिपूर्ण था तथा इतियों के विघ्नों से रहित था। वह नगर देवराज की दयिता अमरावती ही के समान पशुओं के समुदायों से और अश्व-गज कुम्भकों से परिपूर्ण हो गया था ।८३। बाण के नरक को उत्तीर्ण तप वाला तथा दिये हुये वरों वाला श्रवण करके उस समय में वह वज्रध्वज के समीप में पुनः स्वयं समुपस्थित हो गया था ।८४।

स गत्वा भौमानगरं वाणः प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।
पप्रच्छ नरकः मित्रं तपसः सन्निवेशनम् ।।८५

कुत्र त्वया तपस्तप्तं किं वा चीर्णं त्वया व्रतम् ।
कादृशो वा वरो लब्धस्त्व ममाख्यातुमर्हसि ।।८६

दुष्टं तव पुरं सर्वं प्रहृष्टजनसंकुलम् ।
वाजिबारणरत्नौघः पूरितं मंगलस्वनैः ।।८७

दृश्यतेऽद्य त्वया पाल्यं शस्यपर्णमनामयम् ।
कथ्यतां वा कथं ब्रह्मा वरं तुभ्य प्रदत्तवान् ।।८८

ब्रह्मा स्वयं पर्वतरूपधारी

कामेश्वरीं धर्तु मिहावतीर्णः ।

तत्र स्वयं सम्प्रति घस्रमेमि

पुरा न यावच्छपते वसिष्ठः ।।८६

सोऽयं पुरे मे वलिपुत्र राजते

देवौघसेव्योऽप्यमरोत्तमांशः ।

तत्राहमेको वरतोयभोजनौ

वर्षाण्यकार्षं च तपः शतानि वै ।।६०

लौहित्यतीरे धनवायुसेविते

मनोहरे प्राणभृतां सुखप्रदे ।

तपः प्रवृत्तस्य मुखं समागम–

च्छरद् यथैका शरदां शतानि मे ।।६१

उस बाण ने नरक के प्राग्ज्योतिष नामक नगर में गमन करके फिर आपने मित्र नरक मे तपश्चर्या का हाल पूछा ।८५। आपने तप कहाँ किया था अथवा आपने किन व्रतों को चीर्ण किया था । आपने किस प्रकार का वर प्राप्त किया था यह सभी आप मुझसे कहने के योग्य हैं ।८६। अब मैंने आपके पुर को सम्पूर्ण रूप से प्रसन्न जनों से संकुल देखा है ! अश्व—गज और रत्नों के समूहों से तथा मङ्गल ध्वनियों से भरा—पूरा देखा है ।८७। आज आपके द्वारा पालन के योग्य प्रजा एवं भूमि शस्त्रों से परिपूर्ण और रोग रहित देखी जा रही है । आप बतलाइए ब्रह्माजी ने कैसे आपको वर-दाम दिया था ।८८। नरक ने कहा—पर्वत के रूप को धारण करने वाले ब्रह्माजी स्वयं कामेश्वरी को धारण करने के लिए यहाँ पर अवतीर्ण हुए थे। वहाँ पर अब स्वयं घस्र गमन किया करता है जब तक पहिले वसिष्ठ मुनि शाप नहीं देते हैं ।८९। हे बलि पुत्र ! वह मेरे पुर मैं विराजित होते हैं जो देवों के समुदाय द्वारा सेव्य हैं और अमरों का उत्तम अंश हैं। वहीं मैं अकेला जल के आहार करने वाला सौ वर्ष तक तपस्या करने वाला रहा ।६०। लौहित्य का तट धन वायु से सेवित था वह परम मनोहर था और प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला था । वहीं पर तपस्या करने में प्रवृत्त हुए मुझे सुखपूर्वक सौ वर्ष एक वर्ष की ही भाँति समागत हुए थे ।६१।

ततः स तुष्टश्चतुराननोऽभवत्
प्रत्यक्षतो मां न्यगदच्च मद्धितम्।
तब प्रसन्नोऽस्मि वरय थेप्सितं
दास्ये गृहाणेति पुरोऽथ भूत्वा ॥६२
अवध्यता मे सुरयोनितः सुरा-
दच्छिन्नसन्तानमजेयता तथा ।
सदा विभूतिनं जहातु मामिति
वराश्च नार्यो नवयौवनान्विताः ॥६३
एते वराः पंछ मया ततो वृताः
सोऽपि प्रतिश्रुत्य गतो निजा स्पदम् ।
ततोऽहरभ्येत्य पुरं निजं मुढा
मन्त्रिप्रवीरैः सहितः पुनस्तात् ॥६४
पौरान् सबन्धून् सगण नमोदयम्
दोनेन मानेन च भोजनेन ॥६५
इतारितं तस्य बलेः सुतस्तदा
भौमस्य श्रुत्वा मुमुदे न तत्क्षणात् ।
इदं तदाचे वचन क्षितेः सुतं
तत्कालयुक्तं न च सूनृतोद्भवम् ॥६६
न ते मुनेः शापमतीत्य गन्तुं
भूतो मतिर्मित्र तदा विधेः पुरः ।
कथं तु भद्रंभविता तवेह
भावीत्यवश्यं क्षितिपुत्र नित्यम् ॥६७
कृतस्य करण नास्ति दैवाधिष्ठितकर्मणः ।
भावीत्यवश्यं यद्भाव्यं तत्र ब्रह्माप्यवाधकः ॥६८

इनके उपरान्त ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये थे और प्रत्यक्ष होकर उन्होंने मरे हित के वचन कहे । उन्होंने मेरे सामने होकर मुझसे कहा था—मैं तुझ

पर प्रसन्न हो गया हूँ और जो भी तुझे अभिष्ट होगा वही वर तुझको दूँगा–तुम मुझसे वर ग्रहण करलो ।९२। मैंने उनसे पाँच वरदानों की याचना की थी—सुर योनि से मेरी अवध्यता होवे—मेरी सन्तति भी छिन्न न होवे—अजेयता मुझे प्राप्त रहे—विभूति सदा ही बनी रहे और कभी भी मेरा परित्याग न करे और परम श्रेष्ठ नव यौवन से समन्वित मेरी नारियाँ होवे—वे ही पाँच वरदान मैंने मांगे थे । उनसे भी सभी वरदानों को प्रतिश्रुत किया था और फिर वे अपने स्थान को चले गये थे । इसके उपरान्त मैं प्रसन्नता से अपने नगर में प्राप्त हो गया था । फिर मैंने मन्त्रियों में श्रेष्ठों के सहित पुनः उन नगर निवासियों को गणों के सहित दान-मात्र और भोजन के द्वारा प्रसन्न किया था ।९३-९४-९५। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह उसके वचन श्रवण करके बलि का पुत्र उस क्षण प्रसन्न नहीं हुआ और उस समय उसने भूमि के पुत्र से यह वचन कहा था वह वचन उस काल के युक्त था और सूनृतोद्भव नहीं था ।९६। वाण ने कहा—हे मित्र ! उस समय विधाता के आगे आपकी बुद्धि मुनि के शाप अतिक्रमण करने की नहीं हुई थी । यहाँ पर आपका कल्याण कैसे होगा । हे भूमि पुत्र ! जो होनहार है वह नित्य ही अवश्यम्भावी है ।९७। दैव से अधिष्ठित कर्म का कारण नहीं है । जो होनहार है वह अवश्य ही होगी, उसमें ब्रह्मा भी बाधक नहीं हो सकते ।९८।

तस्मात् त्वं सुमहावीरानसुरान् पावकोपमान् ।
सन्ध्याय च पुरस्कृत्य साचिव्ये विनियोजय ।।९९
द्वारि संस्थाप्य वै वीरान् देवैरपि दुरासदान् ।
अतिक्रमस्व देवेश यदि लब्धवरो भवान् ।।१००
विधिना योवरो दत्तो भवते तत्-परीक्षणम् ।
कर्तुमर्हसि जायायामपुत्रो जनयात्मजम् ।।१०१
इत्युक्त्वा प्रययौ बाणौ यथावत् तेन पूजितः ।
नरको मित्रवचनं कर्तुं समुपचक्रमे ।।१०२

इस कारण आप बहुत महान् वीर असुरों को सन्धि करके उन्हें आगे करो और मन्त्रियों के पदों पर उनको नियुक्त करो ।९९। जो देवों को भी दुरासद हों ऐसे वीरों को द्वार पर संस्थापित करो । आप यदि वरदान प्राप्त किये हुए हैं तो देवेश्वर का भी अतिक्रमण करो ।१००। विधाता ने जो वर

दिया है आपके लिए वह परीक्षण है। अपुत्र आपो जाया में आत्मज को जन्म दो।१०१। इतना कहकर वाण पूजित हो वहाँ से चला गया। नरक ने भी अपने मित्र द्वारा कहे वचनों के अनुसार ही कार्य करना आरम्भ किया।१०२।

—×—

## ।। नरकासुर उपाख्यान ।।

ऋतुमत्यां तु जायायां काले स नरकः क्रमात् ।
भगदत्तं महाशीर्षं मदवन्तं सुमालिनम् ।।१
चतुरो जनयामास पुत्रानेतान क्षितेः सुतः ।
महासत्वान् महावीर्यान् वीरैरन्यैर्दुरासदान् ।।२
ततो वाणस्य वचनाद् हयग्रीवं तथा गुरुम् ।
सन्ध्यायाथ समीनीय सेनापत्येऽभ्यषेयत ।।३
मुरं सन्निहितं श्रुत्वा हयग्रीव च भौमिना ।
ये ये क्षितौ सदा ह्यासन्नसुरास्तेऽपि संगताः ।।४
हयग्रीवं मुरुं श्रुत्वा नरकेण समागतम् ।
निसुन्दसुन्दनामाख्या वसुरौ सनिकैः सह ।।५
विरूपांक्षस्तदा दैत्यः सर्वे तेन समागमन् ।
ततः स पश्चिमद्वारि नरकः सेनया सह ।।६
मुरुं द्वाराधिपं चक्रं हयग्रीवं तथोत्तरे ।
पूर्वद्वारि निसुन्दन्तु विरूपाक्ष तु दक्षिणे ।।७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—काल के सम्प्राप्त होने पर भूमि के पुत्र भगदत्त, महाशीर्ष मदवन्त और सुमाली इन चार पुत्रों को समुत्पन्न किया था जो कि महान सत्व वाले, महान् वीर्य, पराक्रम वाले और अन्य वीरों के द्वारा दुरासद थे।१-२। इसके अनन्तर वाण के वचन के अनुसार हयग्रीव तथा मुरु को बुला कर उनके साथ सन्धि करके अपने सेना के अधिपत्य पदों पर अभिषिक्त कर दिया था।३। भोम के द्वारा नियुक्त किये हुए मुरु और हयग्रीव को सुनकर उस समय में जो-जो भी भूमि पर असुर थे वे भी

सब संगत हो गये ।४। नरक के द्वारा समागत मुरु और हयग्रीव को सुनकर सेना के सहित निसुन्द और नाम वाले तथा दैत्य विरुपाक्ष उस समय में ये सभी समागत हो गये थे इसके अनन्तर उस नरक ने सेना के साथ पश्चिम द्वार पर मुरु को द्वार का अधिष्ठाता बना दिया था तथा हयग्रीव को उत्तर द्वार पर नियुक्त किया । पूर्व द्वार पर निसुन्द को और विरूपाक्ष को दक्षिण द्वार पर नियुक्त किया ।५-६-७।

मध्ये पंघजन सुन्दं सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ।
मुरुं क्षुरान्तान् पाशांश्च षट्सहस्राण्योजयत् ।।८
द्वारि तत पुररक्षार्थ सत्कृतः क्षितिसूनुना ।
एवं पूर्वान् पूर्वतरानवमत्य सुमन्त्रिणः ।।६
असुररेव सततं सोऽसुरो मुदिमोऽभवत् ।
पूर्वं गृहीतं भावं स परित्यज्य क्षितेः सुतः ।।१०
आसुरं भावमासाद्य वाधते फ्रिदिवौकसः ।
न देवान् न मुनीम् सर्वान् न च जानाति कांश्चन ।।११
सुरेश्वरं जिगायाशु हयग्रीव सहायवान् ।
एवं स चासुरं भावं तन्वानो विचरन्न क्षितौ ।।१२
वाणस्य वचनाच्छक्रं बाधयत्येव वै मुनीन् ।
देवेश्वरं त्रिधा जित्वा हयग्रीवसहायवान् ।।१३
आदित्याः कुण्डलयुगं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
सर्वरत्नामृतस्रावि दुःखविघ्नहरं परम् ।।१४

मध्य में पंचजन सुन्द को सेनापति के आधिपत्य पद पर नियुक्त किया किया था । मुरु क्षुरान्त और पाशों को छः सहस्रों को योजित किया था ।८। द्वार पर भूमि पुत्र के द्वारा पुर की रक्षा के लिए इनका सत्कार किया गया । इस प्रकार से जो पूर्व में थे तथा उससे भी पहिले थे उन अच्छे मन्त्रियों को हटा दिया था ।६। वह असुर निरन्तर असुरों के ही साथ से परम प्रसन्न हुआ था इस भूमि के पुत्र ने पूर्व में ग्रहण किये हुए भाव का परित्याग कर दिया था ।१०। वह असुर भाव प्राप्त कर देवों को बाधा दिया करता था । वह न तो देवों को न मुनियों को और न किन्हीं अन्य को

मानता था अर्थात् अन्य किसी का भी आदर नहीं किया करता था ।११। सुरेश्वर को शीघ्र ही उसने हयग्रीव की सहायता से जीत लिया । इस प्रकार से वह आसुर भाव को बढ़ाता हुआ ही पृथ्वी पर विचरण किया था ।१२। वाण के वचन से यह हयग्रीव की सहायता से देवों के स्वामी इन्द्र को बाधा दिया करता है । देवेश को तीन हैं । देवेश को तीन प्रकार से जीत कर अदिति के दो कुण्डलों को जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं जो सर्वरत्नामृत का श्रवण वाले थे और दुःख तथा विघ्नों का हरण करने वाले परम श्रेष्ठ थे ।१३-१४।

जहार नरको भौमो निर्भीतो मुनिशापतः ।
एवं देवान् वाधमानो मुनीन् विप्रान् क्षिते सुतः ।
पंचवर्षसहस्राणि राज्यं प्राग्ज्योतिषेऽकरोत् ।।१५
एतस्मिन्नन्तरे देवी महाभारार्दिता क्षितिः ।
ब्रह्माविष्णुमुखान् देवान् रक्षार्थं शरणं गता ।
इद चोवच धातारं प्रणम्योर्वी समाधवम् ।।१६
दानवा राक्षसा दैत्या हरिणा ये च सूदिताः ।
ते राज्ञाँ मन्दिर जाता अधुना बलगर्विताः ।।१७
तेषा भारमहं साढु न शक्नोमि महत्तरम् ।
असख्याताश्च ते सर्वे सख्यातु च नोत्सहे ।।१८
अष्टौ शतसहस्राणि तेषा मुख्याः महाबलः ।
तेष्वप्यलिबलान् बीढु न ताञ्छक्नोमि चाधुना ।।१९
वाण बलेः सुतं वीर कंसं धेनुकमेव च ।
अरिष्टं च प्रतम्वं च सुनाम न मुरु शलम् ।।२०
चारणमुष्टिकौ मल्लौ जरासन्धं महाबलम् ।
नरकं च हयग्रीवं निसुन्दं सुन्दमेव च ।।२१

भूमि के पुत्र नरक ने मुनि के शाप से निर्भीत होकर उन कुण्डलों का हरण कर लिया था । इस तरह से देवी को—मुनियों को और विप्रों को बाधा करता हुआ उस भूमि के पुत्र ने पाँच सहस्र वर्ष तक प्राग्ज्योतिष में राज्य का शासन किया था ।१५। इसी बीच में महान् भार से पीड़ित हुई

पृथ्वी देवी ब्रह्मा-विष्णु प्रमुख देवों की शरणागति में अपनी रक्षा के लिये गयी थी। वहाँ पृथ्वी ने ब्रह्माजी और विष्णुजी को प्रणाम करके यह कहा ।१६। दानव—राक्षस और दैत्य जो हरि के द्वारा सूदित कर दिये गये थे वे सब राजाओं के मन्दिर में इस समय में बल से गर्वित होकर समुत्पन्न हो गये। उनका अधिक भार है कि उसको सहन और वहन करने में समर्थ नहीं हूँ उनकी संख्या इतनी अधिक है कि मैं उन सबकी संख्या बतलाने में भी असमर्थ हूँ और मुझे उत्साह नहीं होता है कि मैं बतलाऊँ ।१७-१८। उनमें मुख्य महान् बल वाले आठ सौ सहस्र हैं। उनमें भी अत्यधिक बल है। मैं इस समय में उनका भार वहन करने में असमर्थ हूँ ।१९। बाण—बलि का पुत्र वीर कंस, धेनुक अरिष्ट—प्रलम्ब, सुनामा, मुरु, शल, मल्ल चारण निसुन्द और सुन्द हैं ।२०-२१।

विरूपाक्ष पंचजनं हिडिम्ब च बकं बलम् ।
जटासुर ज किर्मीरमनायुधमलम्बुषम् ॥२२
सौभाख्यं च जरासन्ध द्विविद चापि वानरम् ।
श्रुतायुध महादैत्यं शतायुधमथापरम् ॥२३
ऋष्यश्रृंगसुतं चैव सुदाहुमतिवाहुकम् ।
कालकस्जांस्तथा दैत्यान् हिरण्यपुरवासिनः ॥२४
एतेषां तु पदक्षोभेर्विशीर्णाह दिने दिने ।
लोकान् वोढुं न शक्नोमि तान्निघ्नन्तु सुरोत्तमाः ॥२५
नचेद्रक्षां प्रकुर्वन्ति भवनः सुरसत्तमाः ।
तदा विशीर्णा यास्यामि पातालमवशाऽधुना ॥२६
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा ब्रह्माविष्णु महेश्वराः ।
इत्युचुस्ते करिष्यामः क्षितेः भारविमोक्षणम् ॥२७
विसृज्य पृथिवीं देवीं सर्वे देवाः सनतनम् ।
माधवा तोषयामासुर्भारावतरण प्रति ॥२८

विरूपाक्ष, पञ्चजन्य, हिडम्ब, बक, बल, जटासुर, किर्मीर, मनायुध—अलम्बुष—सौभाख्या—जरासन्ध-बानर द्विविद—श्रुतायुध—महादैत्य शतायुध—ऋष्य श्रृङ्ग सुत—सुबाहु—अति वाहुक—कालकस्ज हिरण्य पुरवासी दैत्य इन

सबके पदों के क्षोभों से मैं दिनों दिनों दिन विशीर्ण हो रही हूँ। हे सुरोत्तमो ! मैं लोकों का वहर करने में असमर्थ हो रही हूँ। आप इनका विहनन करिये।२२-२५। यदि सुरश्रेष्ठ मेरा रक्षा नहीं करोगे तो मैं परमाधिक विशीर्ण होकर इस समय अवश होकर पाताल चली जाऊँगी।२६। इसके अनन्तर ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और महेश्वर ने उनके वचन का श्रवण करके यह कहा कि पृथ्वी के भार के विभोचन हम करेंगे।२७। पृथ्वी देवी को विदा करके सभी देवगणा सनातन माधव को भूमि के भार के उतारने के विषय में प्रसन्न करने लगे।२८।

स तु तुष्टः सुरान् सर्वान् स्वांशरवतरन्तु व ।
क्षितौ भारावतारायेत्युक्त्वा स्वतमिह प्रभुः ।।२६
अवतीर्णोऽथं देवक्या गर्भे भारवतातारणः ।
विष्णु चावतरिष्यन्तं ज्ञात्वा देवाः सनातनम् ।।३०
रम्भतिलोत्तमाद्यश्च देव्यो रूपगुणान्विताः ।
क्षिताबुत्पादयामासुः सहस्राणि तु षोडश ।।३१
तः सर्वा हिमवत्पृष्ठ क्रीडमाना वरस्त्रियः ।
अपश्यन्नरकों भौमस्ता जहार तदा हठात् ।।३२
ते ता धर्षिता देव्यो नीताः प्रागज्योतिषं प्रति ।
नरक प्रार्थयाहासुः समयं मैथुनं प्रति ।।३३
नारदो यावदायाति नररं प्रति भौम ते ।
अस्माकं कुरुं रक्षां च तावन्नो मुंचमैथुने ।।३४
स समष्यति वीर त्वां न चिरान्नो ह्यनुग्रहात् ।
तेन दष्टा वयं सार्धमेष्यामः संगमं त्वया ।।३५

परम प्रसन्न होकर समस्त सुरों से उन्होंने कहा कि वे सब भूमि भार को उतारने के लिये अपने-अपने अंशों से अवतरित होवें—इतना कहकर प्रभु स्वयं भी यहाँ पर भार के अवतारण में देवकी के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे। स्वयं भगवान् विष्णु को अवतीर्ण जानकर, जो कि सनातन है, उन देवगणों ने रम्भा और तिलोत्तमा आदि देवियों को जो रूप लावण्य और गुणों से समन्वित थी उन सोलह सहस्रों को उत्पादित कर दिया।२६-३०-

३१। ते सब परम श्रेष्ठ नारियाँ हिमालय के पृष्ठ भाग पर क्रीड़ा करने वाली थी। उनको भूमि के पुत्र नरक ने देखा था और बल पूर्वक उसने हरण कर लिया। उस नरक ने उत सबको घर्षित किया था और अपने प्राग्ज्योतिष नरक में उन सबको ले आया था। नरक ने मैथुन के प्रति समय उनसे प्रार्थना की थी। उन्होंने कहा हे भौम! जब तक देवर्षि नारद तेरे नगर की ओर आते हैं तब तक आप हमारी रक्षा करें और मैथुन के प्रति हमको छोड़ देवें।३२-३३-३४। वे शीघ्र ही हमारे प्रति अनुग्रह करके हे वीर! आपके समीप में आयेंगे। उनके द्वारा देखी गयीं हम सब तुम्हारे साथ संगम करने के लिये आजायेंगी।३५।

इति सम्प्रार्थिताभिर्नरको भूमिनन्दनः।
ब्रह्मावाक्यं तदा स्मृत्वा एवमस्तूचिवान् मुहुः ॥३६
एतस्मिन्नन्तरे देवी भगवान् लोकभावनः।
देवक्या जठराज्जातो वृद्धो नन्दगृहेऽभवत् ॥३७
कंसकेशिप्रलंवादीन् हत्वा दैत्याननेकशः।
अकरोद् द्वारकावासं सागरे सलिलान्तरे ॥३८
तत्राष्टौ कन्यकास्तेन स्वधर्मेण च स्वीकृताः।
कालिन्दी मानुषीरूपा रुक्मिणी रमणी ततः ॥३९
नग्नजित्तनया सत्या लक्ष्मणा चारुहासिनी।
सुशीला शीलसम्पन्ना तथा जाम्बत्ती सती ॥४०
एतासु स्त्रीषु च ततो ह्यनुरक्तस्य तस्य वै।
षट्त्रिंशद्वत्सरा जाता बलदेवसहायिनः ॥४१
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः पुत्रास्तस्य महाबलाः।
जातास्तत्र द्विजश्रेष्ठाः शास्त्रे शास्त्रे च कोविदाः ॥४२

उनके द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किये जाने पर नरक ने उस अवसर पर ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण करके 'ऐसा ही होवे'—यह उसने कहा था।३६। इसी बीच में लोकों की रक्षा करने वाले भगवान् देवकी के गर्भ से समुत्पन्न हुये थे और नन्द के घर में पालित होकर बड़े हुए।३७। उन प्रभु ने कंश, कैशी और प्रलम्ब आदि अनेक दैत्यों को मारकर जल के

अन्दर सागर में बसी हुई द्वारका पुरी में निवास किया।३८। वहाँ पर उन्होंने अपने धर्म से आठ कन्याओं को स्वीकार किया था। उनमें मानवी के रूप वाली कालिन्दी थी—रमणी—नग्नजित् की पुत्री—सत्या—चारुहास वाली लक्ष्मणा, परम सुशील और शील से सम्पन्न सती जाम्बवती थी।३९-४०। बलदेव के मित्र इन नारियों में अनुराग करते छत्तीस वर्ष व्यतीत हो गये।४१। हे द्विज श्रेष्ठो! उसके महान् बल वाले इस प्रकार से प्रद्युम्न—साम्ब जिनमें प्रमुख थे ऐसे पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो शास्त्र में और शस्त्र विद्या में परम पण्डित थे।४२।

अनेके निहता दैत्या भरभूतास्तदा क्षितेः।
प्रहृष्टः क्रीडमानश्च द्वारकायामुवासस॥४३
अथ शक्रस्तदायातो नरकेणार्तिदो भृशम्।
द्वारकां प्रति कृष्णस्य दर्शनाय गणैः सह॥४४
तत्र गत्वा परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम्।
पूजितस्तेन बहुशः आसने कांचने स्थितः॥४५
कथयामास हरये नरकस्य विचेष्टितम्।
शक्रो यथा पूर्ववृत्तं यथा वा वर्ततेऽधुना॥४६
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदर्थमहमागतः।
कथयिष्यामि तत् सर्वं तत्र शंकां न संकुरु॥४७
भूमिपुत्रोऽसुरो नाम्ना नरकः सुरमर्दनः।
चिरंजीवी पुरा विष्णुक्षितिभ्यां परिपालितः॥४८
अधुना स क्षितिं विष्णुमवज्ञाय दुरासदः।
वाणस्य वचनाद् भौमो ब्रह्माणं परितोषयत्॥४९

उस समय जो भूमि के भार स्वरूप थे ऐसे अनेक दैत्यों को निहत कर दिया। फिर परम प्रसन्न होकर क्रीड़ा करते हुए उन्होंने द्वारका में निवास किया था।४३। इसके अनन्तर इन्द्रदेव अपने गणों के सहित नरक द्वारा अत्यन्त उत्पीडित होकर वहाँ पर आये और द्वारका में भगवान् के दर्शन के लिए ही उपस्थित हुये।४४। वहाँ लोकों के द्वारा वन्दित प्रभु कृष्ण का परिष्वजन करके उनके द्वारा पूजित होते हुए वह सुवर्ण के आसन पर

विराजमान हो गये ।४५। इन्द्रदेव ने भगवान् हरि के लिए नरक का जो विचेष्टित था वह सब कह दिया था । जो पूर्व में हुआ था और इस समय में हो रहा है वह सभी इन्द्र ने निवेदन कर दिया था ।४६। हे महाबाहो ! हे श्रीकृष्ण ! जिस प्रयोजन के लिये मैं यहाँ आया हूँ उसका आप श्रवण कीजिये । मैं वह सभी कुछ निवेदन करूँगा । इसमें आप कुछ भी शंका न करिये ।४७। एक भूमि का पुत्र नरक नाम वाला असुर है जो सुरों का मर्दन करने वाला है । वह चिरंजीवी है और पहिले भगवान् विष्णु और क्षिति के द्वारा पालित हुआ है ।४८। इस समय के क्षिति और भगवान विष्णु की अवज्ञा करके वाण के वचन से उसने तप के द्वारा ब्रह्माजी को परितुष्ट कर लिया है ।४९।

ब्रह्मत: स वरान् लब्ध्वा ह्यतीवाभूत् प्रदर्पित: ।
माधवं पृथिवीं वापि सस्मार न कदाचन: ।।५०

पूर्वमासीत् स धर्मात्मा ह्याराधितसुरो व्रती ।
अधुना वाधते सर्वानासुर भावमाश्रित: ।।५१

अदिते: कुण्डले मोहाज्जहारामृतसम्भवे ।
देवानृषीन् बाधमानो विप्राणामप्रिये रत: ।।५२

मां चापि बाधते नित्यं कामगामी दुरासद: ।
जेतां तु सुरदैत्यानामवध्य: सर्वदेहिनाम् ।।५३

तव चाप्यन्तरप्रक्षी त पापं जहि भूतये ।
त्वदर्थं सर्वदेवर्या देवगन्धर्वकन्यका: ।।५४

पुरा पर्वतमुख्ये तु हिमवत्य वतारिता: ।
चतुर्दश सहस्राणि सहस्रे द्वे शताधिके ।।५५

ता: सर्वा: कन्यका: पाप: प्रसह्य वरदर्पित: ।
जहार स दुराधर्षो हयग्रीवसहायवान् ।।५६

ब्रह्माजी से वरदानों को प्राप्त करके वह अत्यन्त ही घमण्डी हो गया है । वह इस समय ऐसा दर्पित हो गया है कि न तो उसने माधव का और न पृथ्वी का कभी भी स्मरण किया है ।५०। पूर्व में वह धर्मात्मा था, सुरों की आराधना की थी और वह व्रतधारी था किन्तु इस समय वह असुर भाव का आश्रय लेकर सबको बाधा दिया करता है ।५१। अदिति के अमृत से समुद्भूत दोनों कुण्डलों को मोह से उसने हरण कर लिया और देवगणों

और ऋषियों को बाधा देता है हुआ विप्रों के अप्रिय कर्म में वह रत रहता है ।५२। कामगामी दुरासद वह मुझको भी नित्य बाधा देता है । वह सुरों और दैत्यों का जीतने वाला है तथा कोई भी देहधारी उसका वध करने में समर्थ नहीं है ।५३। आपका भी वह अन्तर प्रेक्षी है, उस पापी की भूति के लिये वध कीजिये । सब देवगणों ने आपके लिये देवों और गन्धर्वों का कन्यकाऐं पहिले मुख्य पर्वत पर हिमालय में अवतारित की थीं । ये सोलह सहस्र हैं। वरदान के घमण्ड से भरे हुये पापी उसने वे सभी कन्यकाऐं बलपूर्वक हरण करली हैं । वह दुराधर्ष हैं और हयग्रीव की सहायता वाला है ।५४-५६।

सागरे यानि रत्नानि पृथिव्यां च त्रिविष्टपे ।
तानि सर्वाणि संहृत्य प्रमथ्य सुरामानुषान् ।।५७
तीरे लौहित्यतीर्थस्य सोऽकरोन्मणिपर्वतम् ।
तस्मिन् गिरौ पुरी रम्यां कारयित्वाऽलकाह्वयाम् ।।५८
ताः सर्वा वासयामास देवगन्धर्वयोषितः ।
एकवेणीधराः सर्वाः सम्भोगपरिवर्जिताः ।।५९
त्वामेव ताः प्रतीक्षन्ते सनाथा कुरु कृष्ण ताः ।
यावदागच्छति पुरं भवतो नारदो मुनिः ।।६०
तावन्न मैथुने यत्नं भौम त्वं संकरिष्यसि ।
इति याः समयं चक्रुर्नरकस्य दुरात्मनः ।।६१
नारदश्च तदायातः प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ।
यदा त्वं नरकं हन्तुं गन्ता तत्पुरमुत्तमम् ।।६२
तस्मात् त्वं पापकर्माणं नरकं नरकोपमम् ।
जहि देवमनुष्याणां कण्टकं तं दुरासदम् ।।६३

सागर मैं जो भी रत्न हैं—पृथ्वी और स्वर्ग में जो हैं उन सबको संहृत करके और सुरों तथा मनुष्यों का प्रमथन करके उसने लौहित्य तीर्थ के तट पर मणि पर्वत बनाया है। उस पर्वत में अलका नाम वाली रम्यपुरी की रचना कर देवों और गन्धर्वों की नारियों को उसने बसा दिया है । वे सब एक वेणी को धारण करने वाली हैं और सम्भोग से वर्जित हैं ।५७-५९।

वे सब आपकी ही प्रतीक्षा कर रहीं हैं । हे कृष्ण ! आप उन सबको सनाथ करिए । जब तक आपके पुर में नारद मुनि आगमन करें हे भौम ! तब तक उनके साथ मैथुन करने का तुम प्रयत्न नही करोगे । यही दुरात्मा नरक के साथ उनकी शर्त थी । जिस समय नारद मुनि प्राग्ज्योतिष पुर पहुँचे उसी समय आप नरक के हनन करने के लिये गमन करेंगे ।६०-६२। इस कारण से उस पाप कर्म करने वाले नरक के ही सदृश नरक को मार दीजिये क्योंकि वह बहुत दुरासद है और देवों तथा मनुष्यों का कण्टक है ।६३।

वधात् तस्य क्षितिर्देवी पुत्रशोकं न चाप्स्यति ।
स्वयमेव वधं तस्य देवभ्यो यदयाचत ।।६४
तस्मात् तं जहि पापिष्ठं नरकं पापपूरुषम् ।
स्त्रीरत्नान्यपि रत्नानि तं निहत्य समुद्धर ।।६५
इत्युक्तो जगतां नाथः शक्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिजज्ञे क्षितिसूतं हन्तुं प्रति तदैव हि ।।६६
प्रतिज्ञाय वधं तस्य शक्रेण सह केशवः ।
तदैव यात्रामकरोत् प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ।।६७
आरुह्य गरुड़ं कृष्णः सत्यभामाद्वितीयकः ।
प्राग्ज्योतिषमुखोऽगच्छद्वासवन्त्रिदिवं ययौ ।।६८
दिवमाक्रम्य गच्छन्तौ कृष्णशक्रौ महाद्युती ।
यादवा ददृशुस्तत्र सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।।६९
सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्देवैरप्सरसां गणैः ।
कृष्णः शक्रः क्षणादेव गतौ खे तावदृश्यताम् ।।७०

उसके वध कर देने से देवी पृथिवी पुत्र के शोक को नहीं प्राप्त होगी क्योंकि उसने स्वयं ही उसके वध करने के लिए देवताओं से प्रार्थना की थी ।६४। इस कारण से उस महान् पापी पाप पुरुष नरक का वध करिये । उसका हनन करके स्त्री रत्नों को तथा अन्य रत्नों उद्धार कीजिये ।६५। महान् आत्मा वाले इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से जगतों के नाथ से कहा गया तो उन्होंने पृथ्वी के पुत्र नरक के हनन करने के लिये प्रतिज्ञा की और उसी समय मार देने का वचन दिया था ।६६। इन्द्र के साथ भगवान् केशव ने

उसके वध करने की प्रतिज्ञा कर उसी समय प्राग्ज्योतिष पुर की ओर यात्रा करदी थी ।६७। भगवान् कृष्ण ने गरुड़ पर समारोहण किया था और उनके साथ दूसरी सत्यभामा भी थी वे प्राग्ज्योतिष की ओर मुख करके चले गये थे और इन्द्रदेव स्वर्ग में गमन कर गये थे ।६८। दिवलोक का आक्रमण करके गमन करते हुए इन्द्र और श्रीकृष्ण को जो महती द्युति से सम्पन्न थे यादवों ने वहाँ पर सूर्य और चन्द्र के समान ही देखा ।६९। वे दोनों गन्धर्व—देव और अप्सराओं के गणों के द्वारा सस्तवन किये हुए थे । श्रीकृष्ण और इन्द्र क्षण भर में ही आकाश में अदृश्य हो गये थे ।७०।

ततः क्षणेन गरुडेनाससाद जगत्पतिः ।
पुरं प्राग्ज्योतिषं रम्यं नरकेण वशीकृतम् ।।७१
स दुर्गमौरवैः पाशैः षट्सहस्रै भयंकरैः ।
क्षुरान्तैर्वेष्टितं पार्श्वे मृत्युपाशैरिवोच्छ्रितम् ।।७२
निर्गच्छन्तं पुरात् तस्मान् नारदं च ददर्श सः ।
स तु देवमुनिः श्रीमाम् यदागान्नरकं प्रति ।।७३
तदा प्राग्ज्योतिषं गत्वा सत्कृतस्मेन नारदः ।
संगमे समयं प्रोचे नरकाय स योषिताम् ।।७४
प्रवर्ततेऽद्य चैत्रस्य शुक्लपक्षस्य पंचमी ।
नवन्यां तु धरापुत्र प्राप्नोति महदापदम् ।।७५
तदा यदि चतुर्दश्यां सुस्नाता योषितस्त्विमः ।
सुरतेषु त्वयां तत्र प्रयोक्तव्या यथासुखम् ।।७६
नारदस्य वचः श्रुत्वा नरको भयमोहितः ।
आसारं च प्रसारं च नगरे सन्यवेदयत् ।।७७

फिर क्षण भर में ही जगत् के स्वामी गरुड़ के द्वारा नरक से वशीकृत परम रम्य प्राग्ज्योतिष पुर में पहुँच गये थे ।७१। वह दुर्ग छह सहस्र भयङ्कर मौरव पाशों से और क्षुरान्तों से वेष्टित था और पार्श्व में मृत्यु पाशों के समान उच्छ्रित था ।७२। उन्होंने उस पुर से उसी समय में निकलते हुए नारद को देखा था । वह देव मुनि श्रीमान् जब नरक के प्रति गये थे ।७३। उस समय प्राग्ज्योतिष में गमन करके वे नारद मुनि उसके द्वारा

सत्कार को प्राप्त हुये थे। उन्होंने नरक से योषितों के साथ संगम करने में उस समय कह दिया।७४। आज चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी प्रवृत्त है। हे धरा पुत्र! नवमी तिथि में तुम महान् आपदाओं को प्राप्त करते हो।७५। उस समय में चतुर्दशी में यदि ये योषितें सुस्नात हों उसी समय में तुमको सुख पूर्वक सुरतों में प्रयुक्त करनी चाहिए।७३। देवर्षि नारदजी के इस वचन का श्रवण करके नरक भय से मोहित हो गया था। उसने आसार और प्रसार नगर में निवेदित कर दिया था।७७।

रक्षिमी रक्षितं राज्यं रक्षितं च समन्ततः।
भयहर्षयुतो भोमः समयं समवैक्षत ॥७८
तस्मिन्नवसरे प्राप कृष्णः प्राग्ज्योतिषं पुरम्।
प्रथमं पश्चिमं द्वारमासाद्य गरुडध्वजः ॥७९
पाशानां षट्सहस्राणि क्षुरान् सञ्छिद्य नैकधा।
जघान मुरुं दैत्यं सानुग च सवन्धिवम् ॥८०
षट्सहस्रा महावीरा दानवा द्वारि संस्थिताः।
हताश्चक्रेण हरिणा तदैव गुरुणा सह ॥८१
मुरुं हत्वा सहस्राणि पुत्रांस्तस्यापरांश्च षट्।
जंधान चक्रेण तथा खण्डशोऽन्यांश्च दानवान् ॥८२
ततोऽनेकशिलासंधानतिक्रम्य जनार्दनः।
सगण सानुग चव निसुन्दं समपोथयत् ॥८३
एको यो योधथेद्देवान् सहस्रं वत्सरान्पुरा।
शक्रं च समतिक्रम्य महावीरपराक्रमः ॥८४

भौम (नरक) ने राक्षसों से सुरक्षित नगर की सभी ओर से राज्य को रक्षित कर दिया था। और भय तथा हर्ष से युक्त नरक ने समय की प्रतीक्षा की थी। उस अवसर में भगवान् श्री कृष्ण प्राग्ज्योतिष नगर में प्राप्त हो गये थे। प्रथम गरुड़ ध्वज भगवान् पश्चिम द्वार पर प्राप्त हुये थे।७९। छैः सहस्र पाशों के क्षुरों को अनेक प्रकार से भली भाँति छेदन करके उन्होंने गणों के साथ और बान्धवों के सहित मुरु दैत्य का हनन कर दिया था।८०। जो सहस्र महान् वीर दानव द्वार पर संस्थित थे भगवान् हरि ने उसी समय

मुरु के साथ ही चक्र से निहत कर दिये थे ।८१। मुरु को मार कर दूसरे को द्धः सहस्र उसके पुत्र थे उस समय उनको चक्र से मार गिराया था और अन्य दानवों को भी खण्ड-खण्ड कर दिया था ।८२। इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक जो शिलाओं के संघ थे उन सबका अतिक्रमण करके भगवान् जनार्दन ने गणों के सहित और अनुचरों से संयुत निसुन्द को मार गिराया था ।८३। जिसने अकेले सहस्र वर्ष तक देवों से युद्ध किया था और महान् पराक्रम वाला वीर था उसने इन्द्र पर आक्रमण किया था ।८४।

त जघान हयग्रीव समतिक्रम्य केशवः ।
मध्ये लौहित्यसंज्ञस्य भगवान् देवकीसुतः ।।८५
औदकायां विरूपाक्षं सुन्दं हत्वा महाबलः ।
ततः पंचजनं वीरं जघान परमेश्वरः ।।८६
एतान् हत्वा महाकायान् महावीर्यान् दुरासदान् ।
आससाद जगन्नाथः पुरं प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।।८७
वियत्स्थैवतैः सर्वैर्नारदेन महात्मना ।
जयशब्दैः स्तूयमानः प्रविवेश यथेश्वरः ।।८८
श्रिया युक्तां दीप्यमानां प्रकाशाट्टालभूषिताम् ।
स मेने नगरीं विष्णुः किमिन्द्रस्यामरावतीं ।।८९
तत्र युद्धं महद्भूतं नानाप्रहरणोद्यतम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ।
यथा देवासुरं युद्धं तथैत समपद्यत ।।९०
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्वाणस्तान् बहून् ।
निजघान महाबाहुर्गरुडस्थो जनार्दनः ।।९१
अष्टौ शतसहस्राणि अष्टौ शतशतानि च ।
हत्वासुरान् महावाहुर्नरकं तं समासदत् ।।९२

भगवान् केशव ने आक्रमण करके उस हयग्रीव का हनन किया था। महान् बलवान् भगवान् देवकी के पुत्र ने मध्य में लौहित्य नामक की औदका में विरूपाक्ष और सुन्द का हनन किया था। इसके अनन्तर फिर परमेश्वर ने वीर पञ्चजन को मारा था ।८५-८६। इन महान् शरीरों वाले तथा महान्

वीर्य वाले दुरासदों का वध करके फिर जगत् के नाथ प्राग्ज्योतिष पुर में गये थे ।८७। आकाश स्थित देवों तथा महात्मा नारद के द्वारा जय—जय-कार की ध्वनि से संस्तवन किये गये ईश्वर ने प्रवेश किया था ।८८। उन भगवान् विष्णु ने श्री से समन्वित-देदीप्यमान—प्रकाश अट्टालिकाओं से विभूषित उस नगरी को ऐसा ही समझा था कि क्या यह इन्द्र की अमरावती है ।८९। वहाँ पर महान् युद्ध हुआ था जिनमें अनेक प्रकार के शास्त्रास्त्र थे। वह युद्ध ऐसा भयंकर हुआ था। जो डरपोकों को भय देने वाला था और शूरों के हर्ष को बढ़ाने वाला था। जैसा कि देवासुर युद्ध हुआ था ठीक उसी प्रकार का यह युद्ध हुआ था ।९०। फिर गरड़ पर विराजमान् महान् बाहुओं वाले जनार्दन प्रभु ने अपने शार्ङ्ग नामक धनुष से छोड़े गये वाणों के द्वारा उन बहुत—से दानवों का हनन कर दिया था ।९१। महान् बाहुओं से सम-न्वित प्रभु आठ सौ सहस्र आठ सौ असुरों को मारकर नरक के समीप में पहुँच गये थे ।९२।

ततः श्रुत्वा स नरकः पतितानसुरान् बहून् ।
दृष्ट्वा कृष्ण महाबाहुँ गरुडस्थं महाबलम् ।।९३
बसिष्ठशापं सस्मार समयं माधवस्य च ।
नारदस्य वचश्चापि वरच्छिद्रं तथा विधेः ।।९४
स प्राप्तकाश्च तदा केशवेन समागतः ।
युद्धमेव परं मेने स्मरन् बाणवचस्तदा ।।९५
स कांचन समारुह्य रथ वज्रध्वजं वरम् ।
लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वप्रमितं रथम् ।।९६
युक्तमश्वसहस्रैस्तु वज्रध्वजविराजितम् ।
नानप्रहरणोपेत बहुतूणीरसंयुतम् ।
अगच्छन् समरायाशु नरकः पृथिवीसुतः ।।९७
स गच्छन् समरोयाशु मानुषं भावमर्चितम् ।
निन्द्यं तथासुरं मेने स्मरन् पूर्ववचो हरोः ।।९८

इसके अनन्तर उस नरक ने बहुत से असुरों को घृत सुनकर गरुड़ पर स्थित महा बलवान् महाबाहु भगवान कृष्ण का दर्शन किया था ।९३।

उसने वसिष्ठ मुनि के शाप का तथा माधव के समय का स्मरण किया था। उसने देवर्षि नारद जी के वचन और विधाता के वर के छेदन का भी स्मरण किया।९४। काल के प्राप्त हो जाने वाले ने भगवान् के सामने समागमन किया था। उन समय वाण के वचन का स्मरण करते हुए उसने युद्ध करना ही परम कर्त्तव्य मान लिया था।९५। वह सुवर्ण के रथ पर समारूढ़ हुआ था जो वज्र की ध्वजा वाला और श्रेष्ठ था। वह रथ लोहे के आठ चक्रों (पहियों) से युक्त था तथा त्रिनत्व प्रमित था। उस रथ में एक हजार अश्व थे और वज्र की ध्वजा से सुशोभित था उस रथ में अनेक प्रकार शस्त्रास्त्र विद्यमान थे तथा बहुत तूवीर भी रक्खे हुए थे। ऐसे रथ में बैठकर पृथिवी का पुत्र नरक समर करने के लिये शीघ्र ही चला।९६-९७। वह जब युद्ध के लिए जा रहा था तो उसने शीघ्र ही मानुष भाव को अर्चित किया था और हरि के पूर्व वचन का स्मरण करते हुए उसने असुर भाव को निन्दा अर्थात् बुरा मान लिया था।९८।

क्षणात् कृष्णं स द्रदर्श गरुडोपरि संस्थितम् ।।९९
किरीटकुण्डलयुतं श्रीवत्सवक्षसं हरिम् ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं पीताम्बरधरं परम् ।।१००
स तेन युयुधे वीरो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
प्राग्ज्योतिषाधिप्रो भोमो नरकः पृथिवीसुतः ।।१०१
स युध्यत् कृष्णनिकटे कालिकां कालिकोपमाम् ।
रक्तास्यनयनां दीर्घां खड्शक्तिधरां तदा ।।१०२
अपश्यज्जगतां धात्रीं कामाख्यामपि मोहिनीम् ।।१०३
स विस्मितस्तदा भीतस्तां दृष्ट्या जगतां प्रसूम् ।
योद्धव्यमित्येव तदा युयुधे नरकोऽसुरः ।।१०४
तेन सार्धं तद्रा कृष्णः कृत्वा सुमहदद्भुतम् ।
एद्धं यादृदक् पुरा भूतं न देवे न च मानुषे ।।१०५

क्षण भर में ही उसने भगवान् कृष्ण का गरुड़ पर विराजमान हुए हुए का दर्शन प्राप्त किया था। भगवान् कृष्ण शंख—चक्र—गदा—शार्ङ्ग धनुष—वर और असि (खड्ग) को धारण किये हुए थे। अच्युत थे।९९। वे किरीट और कुण्डलों को धारण करने वाले थे और उन के वक्षःस्थल में भी

वत्स का चिह्न था। कौस्तुभ मणि से समुद्भासित वक्ष स्थल से युत—पीताम्बर धारी हरि का उसने दर्शन किया था।१००। उस भगवान् विष्णु के साथ उस वीर ने युद्ध किया था। उसने श्रीकृष्ण के निकट युद्ध करते हुए कलिका के समान कालिका को देखा था जिसके लाल नेत्र मुख था—विशाल कार्य थी—वह उस समय में खड्ग और शक्ति को धारण किये हुये थी।१०१-१०२। उसने धात्री और मोहिनी कामाख्या के भी वहाँ दशन किया था।३०३। उस समय में जगत् को प्रसून करने वाली उस देवी का दर्शन करके वह भय से भीत होकर बहुत ही विस्मित हो गया था। युद्ध तो करना ही है अतएव उस समय में नरकासुर ने युद्ध किया था।१०४। उस अवसर पर भगवान् कृष्ण ने उसके साथ ऐसा अद्भुत युद्ध किया जैसा युद्ध पहिले देवों में और मनुष्यों में कभी भी नहीं हुआ था।१०५।

ततस्ते भौमेन युद्धकेलि स माधवः ।
चिरं कृत्वा जघानाथ देवेन्द्रं प्रतिहर्षयन् ॥१०६
सुदर्शनेन चक्रेण मध्यदेशे तदा हरिः ।
द्विधा चिच्छेद नरकं खण्डितोऽभ्यपतद् भुवि ॥१०७
विभक्ततच्छरीरं तु भूमौ निपतितं तदा ।
विराजन्ते वज्रभिन्नो यथा गैरिकपर्वतः ॥१०८
पतिते तनये देवी पृथ्वी दृष्ट्वा शरीरकम् ।
शोकवेगं तदा सेहे ज्ञात्वा कालं तदागतम् ॥१०९
अदितेः कुण्डलयुगं स्वयमादाय काश्यपी ।
उपातिष्ठत गोविन्दं वचन चेदमब्रवीत् ॥११०
त्वया वराहरूपेण यदाहं चोद्धृता पुरा ।
तदा त्वद्गात्रसस्पर्शात् पुत्रो मे नरकः स्थितः ।
सोऽयं त्वया पालितश्च पातितश्चाधुना सुतः ॥१११
गृहाण कुण्डले चेमे अदितेः सर्वकामदे ।
सन्ततिं चास्य गोविन्द प्रतिपालय नित्यदा ॥११२

इसके अनन्तर उस भौम के साथ भगवान् माधव ने युद्ध क्रीड़ा चिरकाल करके देवेन्द्र को हर्षित करते हुए उसका हनन कर दिया।१०६। उस

समय भगवान हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा मध्य देश में दो भागों में छेद कर मार गिराया था। वह नरक खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर गिर गया था। वह खण्ड ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे वज्र से भिन्न हुआ गैरिज पर्वत होवे ।१०८। तनय के गिर जाने पर देवी पृथिवी ने उसके पतित शरीर का अवलोकन करके शोक के वेग को सहन कर लिया क्योंकि उसने समागत काल का ज्ञान प्राप्त कर लिया था ।१०९। काश्यपी अर्थात् पृथ्वी अदिति के दोनों कुण्डलों को लेकर स्वयं उपस्थित हुई थी और भगवान गोविन्द से यह वचन कहा था—।११०। आपने वराह के रूप से पहिले मेरा उद्धार किया था। उसी समय आपके गात्र के स्पर्श से यह नरक मेरा पुश गर्भ में स्थित हुआ था। वह आपके ही द्वारा प्रतिपालित हुआ था और अब वह सुत आपने ही मार गिराया है ।१११। अब आप अदिति के इन दोनों कुण्डलों को ग्रहण कीजिए जो कि सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं और अब आप इसकी सन्तति का हे गोविन्द ! नित्य ही प्रतिपालन कीजिये ।११२।

भारावतरणे देवि नरकस्य वधः पुरा ।
त्वयैव प्रार्थितो तस्मात् तेनासौ निहतो मया ।।११३
पालयिष्येऽस्य सन्तानं देवि त्वद्वचनादहम् ।
प्राग्ज्योतिषऽभषेक्ष्यामि नप्तारं भगदत्तकम् ।।११४
एवमुक्त्वा महाबाहुभगवान् मधुसूदनः ।
अन्तःपरं विवेशाथ नरकस्य धनालयम ।।११५
स तत्र ददृशे वीरो रत्नानि विविधानि च ।
राशीभूतानि शुद्धानि पर्वतानिव राजतः ।।११६
मुक्तामणिप्रवालानां वैदूर्यस्य च पर्वतम् ।
तथा रजतकूटानि वज्रकूटानि माधवः ।।११७
सुवर्णसंचयान् रुक्मदंडान् रत्नमयध्वजान् ।
वाहनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ।।११८
खचितानि स्वर्णरत्नैर्महार्हाणि महान्ति च ।
यद् यद् दृष्टं च यावच्च धन रत्नं मणिस्तथा ।।११९

श्री भगवान् ने कहा—हे देवी ! पहिले भार के अवतरण करने के लिये आपने ही नरक के वध की प्रार्थना की थी। इसीलिये मैंने इसका वध

किया है ।११३। हे देवि ! आपके वचन से मैं इसकी सन्तान का प्रतिपालन करूँगा इसके नाती भगदत्तक का मैं प्राग्ज्योतिष में अभिषेक कर दूँगा। ।११४। इस तरह कहकर भगवान् ने अन्तःपुर में प्रवेश किया था जो कि नरक के धन का आलय था ।११५। वहाँ पर उन वीर ने अनेक प्रकार के रत्न देखे थे । वे सब शुद्ध रत्न समुदाय में एकत्रित हो रहे थे जैसे कोई पर्वत शोभायमान होवे ।११६। वहाँ पर मुक्तामणि और प्रवालों द्वारा वैदूर्यमणि का एक पर्वत—सा ही लग रहा था तथा रत्नकूट और वज्र कूट भी माधव प्रभु ने देखे थे ।११७। सुवण के सञ्चित ढेरों को—रुक्मदण्डों को और परिपूर्ण ध्वजों, विचित्र वाहनों, यानों और शयनों को देखा था ।११८। ये सभी स्वर्ण और रत्नों से संचित थे—ये महान् मूल्य वाले और बहुत बड़े थे । जो-जो भी देखा और जितना धन—रत्न और मणियाँ थी उस प्रकार की उतनी नरक आलय के अतिरिक्त अन्य स्थान में कहीं भी नहीं देखे गये थे ।११९।

भुवि तादृक् च नो दृष्टमन्यत्र नरकालयात् ।
न कुवेरस्य नेन्द्रस्य न यमस्याप्यपां पतेः ।।१२०
तावन्ति धनरत्नानि यावन्ति नरकालये ।
केशवोऽप्यथ तत्रैव नारदेन च सङ्गतः ।।१२१
अवेक्ष्यान्तःपुरधनं सार सारतर ततः ।
तेषां समाददे ग्राह्यं प्रभूतं परवीरहा ।।१२२
या दत्ता वैष्णवाशक्तिर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
हत्वा भौमं तु तां शक्ति जगृहे देवकीसुतः ।।१२३
पृथिव्या नारदेनैव सहितः केशवस्तदा ।
भगदत्तं भौमसुतं प्राग्ज्योतिषपुरोत्तमे ।।१२४
अभिषिच्य तदा भूत पुरमध्ये न्यवेशयत् ।
अभिषिक्तं तु तं भूतं दृष्ट्वा भगवन्त तदा क्षितिः ।।१२५
नप्तुरर्थेऽथ तां शक्ति केशव समयाचत ।
केशवोऽपि क्षितेर्वाक्यान्नारदानुमतेन च ।
तां शक्तिं भगदत्ताय सुप्रीतमनसा ददौ ।।१२६

जितना धन और जितने रत्न नरक के आलय में थे वैसे और उतने कुवेर—इन्द्र—यम और वरुण के यहाँ पर भी नहीं थे । भगवान् केशव वहाँ

पर ही देवर्षि नारद के साथ सङ्गत हुये थे। उस अन्तःपुर के धन का अवेक्षण करके जो सार तथा सारतर था पर वीरों के हनन करने वाले ने ग्रहण करने योग्य बहुत उनमें से ले लिया था ।१२०-१२२। भगवान् विष्णु ने जो वैष्णवी शक्ति दी थी उनको भौम का हनन करके देवकी सुत ने वापिस ग्रहण कर लिया ।१२३। पृथिवी देवी और देवर्षि नारद के सहित उस अवसर पर भगवान् केशव ने भगदत्त भौम के सुत को प्राग्ज्योतिष पुर थे अभिषिक्त करके उस पुर के मध्य में निवेशित कर दिया था। पृथ्वी ने उस भगदत्त को अभिषिक्त देखकर अपने नप्ता (नाती) के लिये भगवान केशव से उसी शक्ति की याचना की थी। भगवान केशव ने भी नारदजी की अनुमति प्राप्त करके क्षिति के कहने से सुप्रसन्न मन ये उस शक्ति को भगदत्त के लिये दे दिया था ।१२४-१२६।

यच्छत्रं वरुणं जित्वा कांचनस्राविसंज्ञकम् ।
समानयत् पुरा भौमस्तच्छत्रं हरिराददे ।।१२७
अष्टभारसुवर्णापि यत्संस्रवति चान्वहम् ।
यत् क्रोशमात्रविस्तीर्णमर्धयोजनमुच्छ्रितम् ।।१२८
रत्नोत्तमानि सर्वाणि चतुर्दन्तांस्तथा गजान् ।
चतुर्दशसहस्राणि पूजिताः प्रमदास्तथा ।।१२६
द्वारकां प्रति दत्यौधैर्वाहयामास केशवः ।।१३०
या देवकन्यकाः पूर्व नरकेण हृता बलात् ।
तासां कृत्वा हृषीकेशो वेणीबन्धविमोक्षणम् ।।१३१
वासोभिर्मूपणैर्दिव्यंस्ताः सत्कृत्य मुहुर्मुहुः ।
आरोप्य च विमाने तु रक्षिभिर्बलिभिर्दृढः ।।१३२
नारदाधिष्ठिताः सर्वा द्वारकां प्रत्यवाहयत् ।
यः कृतः सुरकन्यार्थं भोमेन मणिपर्वतः ।।१३३

जिस छत्र को वरुण को पराजित करके भोम पहिले ले आया था जो कि काञ्चन का श्रवण करने वाले नाम से संयुक्त था उस छत्र को भगवान हरि ने ले लिया था ।१२७। जो आठ भार सुवर्ण को प्रतिदिन स्रवित किया करता था, एक कोस तक विस्तीर्ण और आधे योजन तक ऊँचा था ।१२८। केशव भगवान ने समस्त उत्तम रत्नों, तथा चार दाँतों वाले गजों और—

चौदह हजार पूजित प्रमदाओं को दैत्यों के समुदायों के द्वारा द्वारका के प्रति भेज दिया था ।१२९-१३०। पूर्व में जो देव कन्याएं नरक के द्वारा लायी गयी थीं और बलपूर्वक उनका हरण किया गया था उनके लिये हृषीकेश भगवान ने वेणीवन्ध विमोक्षण किया था । उनको अनेक वस्त्र और दिव्य-भूषणों से सत्कृत किया था । उनको विमान में बिठाकर सुदृढ़ और बली रक्षकों से रक्षित करके वे सब मुनि से अधिष्ठित द्वारका की ओर भेजदी गयी थीं । जो सुर कन्याओं के लिए भूमि सुत ने मणियों का पर्वत बनाया था । ।१३१-१३३।

मणिरत्नौघसम्पूर्णो दिवाकरसमप्रभः ।
उत्पाट्य तं जगन्नाथस्ताक्ष पृष्ठे निधापयत् ।।१३४
तथैव वारुण छत्रं गरुडोपरि माधवः ।
आरोप्य सत्यया सार्धमासीनः सुमना हरिः ।।१३५
भगदत्तं समाभाष्य पृथिवीं च जगत्पतिः ।
प्रतस्थे द्वारकां वीरो वियन्मार्गेण वै द्रुतम् ।।१३६
सुपर्णः कांचनस्राविच्छत्रं समणिपर्वतम् ।
केशवं सत्यया सार्थं हेलया खे बहन् ययौ ।।१३७
क्षणेन द्वारकां प्राप्य केशवः परवीरहा ।
मुदं च लेभे सकलैर्वान्धवैश्च तथा गणैः ।।१३८

वह पर्वत मणियों और रत्नों के समूह से परिपूर्ण था और सूर्य के ही समान प्रभा से समन्वित था । जगन्नाथ प्रभु ने उसको उखाड़ कर गरुड़ की पीठ पर निधापित कर लिया था ।१३४। उसी भाँति वरुण के छत्र को माधव प्रभु ने गरुड के ऊपर रख दिया था । सबको समारोपित करके सत्यभामा के साथ ही सुप्रसन्न हरि समासीन होकर जगत्पति भगदत्त और पृथ्वी से सम्भाषण करके वीर आकाश के मार्ग से शीघ्र ही द्वारका की ओर प्रस्थान कर गये ।१३५-१३६। गरुड़ काञ्जन स्रविछत्र को—मणि पर्वत को और सत्यभामा के सहित भगवान केशव को लेकर आकाश में हेलया ही से बहन हुआ चला गया था ।१३७। शत्रुओं के हवन करने वाले केशव भगवान् क्षण भर में द्वारका पहुँच कर सब बान्धवों और गणों के साथ परमानन्द को प्राप्त हुये थे ।१३८।

एवं कालीं महामाया कालिकाख्या जगन्मयी ।
विष्णु च जगतां नाथं परावरपति हरिम् ।।१३९
जगत्कारणकर्तारं ज्ञानगम्यं जगन्मयम् ।
सन्मोहयत्येव तथा ह्यनुरागविरागवान् ।।१४०
अनुगृह्णाति मित्राणि ह्यमित्राणि निहन्ति च ।
नारीषु गूढ़ो रतते द्वन्द्वेनापि च मुह्यते ।।१४१
इति वः कथितं विद्रा यथामून्नरकोऽसुरः ।
यथा च बरलाभोऽभूद् यथा चास्य विचेष्टितम् ।।१४२
आराधितो यथा ब्रह्मा वाणबुद्धय्याथ भौमिना ।
किमन्यदुचितं नास्ति यद्ब्रुवन्तु द्विजोत्तमाः ।।१४३

इसी रीति से महामाया—जगन्मयी कासिका नाम वाली काली जगतों के नाथ—परावर के पति हरि भगवान् विष्णु को जो जगत के कारणों के करने वाले हैं—ज्ञान के ही द्वारा जानने योग्य हैं और जगत् के परिपूर्ण है उसी भाँति सम्योहित किया करती है जो अनुराग और विराग दोनों से ही समन्वित है ।१३९-१४०। जो मित्र हैं उन पर अनुग्रह किया करते हैं और जो शत्रु हैं उनको हनन किया करते हैं। वे नारियों में गूढ़ होकर रमण किया करते और द्वन्दों से भी मोहित होते हैं ।१४१। हे विप्रो ! यह आपके सामने मैंने कह दिया है जैसे नरक असुर हुआ था। और जिस सतह से वरदानों का लाभ उसको हुआ था। और जैसा भी कुछ उसका विचेष्टित अर्थात् कृत्य था ।१४२। कण की बुद्धि से भौमी ने जिस तरह से ब्रह्माजी की आराधना की थी। हे द्विजोत्तमो ! अब अन्य कथन करने के लिये क्या उचित है, हे द्विजोत्तमो ! वह अव आप लोग मुझे बतलायें ।१४३।

—×—

## ।। नारद-आगमन वर्णन ।।

कथं गिरिसुता काली बभूव जगतां प्रसूः ।
दाक्षायणी व्यक्ततनु, कथमाप हरं पतिम् ।।१
कथमर्धशरीरं सा जहार च पिनाकिनः ।
एतन्नः पुच्छतां सम्यक् कथयस्व महामते ।।२

श्रृणुध्वं मुनिशार्दूला यथा दाक्षायणी सती ।
भूता गिरिसुता पूर्वं यथाधमहरत्तनुम् ।।३
यदाऽत्यजत्तनुं देवा पूर्वं दाक्षायणा सती ।
तदैव मनसागच्छन् मेनका हिमवद्गिरिम् ।।४
यदा हरेण सहिता दक्षकन्या हिमाचले ।
चिक्रीड च तथा तस्या मेनकाऽभुद् हितैषिणा ।।५
तस्याः सुता स्यामिति च आधाय मनसि द्विजाः ।
त्यक्तप्राणा तदा देवा भूता हिमवतः सुता ।।६
यदा दाक्षायणी प्राणान् दक्षकाण पाज्जहा पुरा ।
तथैव मेनका दवा आरराधायिष शिवाम् ।।७

ऋषियों ने कहा--गिरि की पुत्री काली कैसे जगतों को प्रसूत करने वाली हुई थी । दक्ष की पुत्री ने तनु का त्याग करके हर को फिर अपना पति किस प्रकार से प्राप्त कर लिया था ? उसने पिता की प्रभु का आधा शरीर कैसे हरण किया था—यह सब हम पूछने वाले हैं । हे महामते ! आप भली भाँति यह सब वर्णन कीजिये ।१-२। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे मुनि शार्दूल तो ! आप लोग अब श्रवण कीजिये कि जिस तरह से दाक्षायणी सती हुई और फिर गिरि की पुत्री ने जैसे पूर्व में आधा शरीर किया था ।३। पूर्व में दाक्षायणी सती ने शरीर का त्याग किया था । उसी समय में हिमवान् गिरि को मेनका मन से गई थी ।४। जिस समय हिमालय पर दक्ष कन्या हर के साथ खेलती थीं उस समय में मेनका उसकी हितैषिणी हुई ।५। हे द्विजो ! मैं उसकी सुता होऊँ—यह मन में धारण करके उसी समय देवी ने प्राण त्याग दिये और वह हिमवान् की पुत्री हुई ।६। जिस समय पहले दक्ष के ऊपर क्रोध करके दाक्षायणी ने प्राणों का त्याग किया था, उसी समय मेनका देवी शिवा की आराधना करने की इच्छा वाली हुई थी ।७।

महामाया जगद्धात्रीं योगनिद्रां सनातनीम् ।
मोहिनीं सर्वभूतानां शरणं सर्वकामिनाम् ।।८
अष्टम्मामुपवासं तु कृत्वा सा नवमीतिथौ ।

मोदकैर्बलिभिः पिष्टैः पायसैर्गन्धपुष्पकैः ।।९
चैत्रे मासि समारभ्य सप्तविंशतिवासरान् ।
यावत् सम्पज्यामास पुत्रार्थिन्यन्वहं शुचिः ।।१०
गङ्गायामोषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्ति महीमयीम् ।
कदाचित् सा निराहारा कदाचित् सा घृतव्रता ।।११
शिवाविन्यस्तमनसा सप्तविंशतिवत्सरान् ।
निनाय मेनका देवी परमां भूतिमिच्छती ।।१२
सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयीं ।
सुप्रीताऽभवदत्यर्थं प्राह प्रत्यक्षतां गता ।।१३

उसने महामाया, जगत् की धात्री, सनातनी, योगनिद्रा, मोहिनी जो सब प्राणियों को मोहन करने वाली है और सब स्वर्गवासियों को रक्षिका है उसी शिवा का आराधना किया था ।८। उसने अष्टमी में उपवास करके नवमी तिथि में मोदकों, बलियों, पिष्टों, और पायसों तथा गन्ध और पुष्पों से चैत्र मास से आरम्भ करके सत्ताईस वर्ष तक प्रतिदिन शुचि होकर पुत्र की इच्छा से भली भाँति पूजा की थी ।९-१०। गंगा में औषधियों के प्रस्थ में मृतिका से परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण करके पूजा करती थी । किसी समय तो बिना ही आहार के रह जाती थी और किसी समय व्रत धारण करने वाली होती थी ।११। शिवा में अपने मन को विन्यस्त कर देने वाली उस मेनका देवी ने जो परम भूति की इच्छा रखने वाली थी सत्ताईस वर्ष व्यतीत किये थे ।१२। सत्ताईस वर्षों के अन्त से जगत् की माता जगन्मयी परम प्रसन्न हो गई थी और प्रत्यक्ष में प्राप्त होकर बोली ।१३।

यत् प्रार्थितं त्वया देवि मत्तस्तत्प्रार्थयाधुना ।
दास्ये तवाहं तत्सर्वं वाञ्छितं यद् हृदा भवेत् ।।१४
ततः सा मेनका देवी प्रत्यक्षं कालिकां गताम् ।
दृष्ट्यैव प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत् ।।१५
देवी प्रत्यक्षतो रूपं तव दृष्टं मयाऽधुना ।
त्वामहं स्तुोमिच्छामि प्रसन्ना यदि मे शिवे ।।१६
ततः स मातरित्युक्त्वा कालिका सर्वमोहिनी ।

बाहुभ्यां चारुवृत्ताभ्यां मेनकां परिषस्वजे ।।१७

ततः सा मेनका देवी कालिका परमेश्वरीम् ।

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शिवां प्रत्यक्षतः स्थिताम् ।।१८

[illegible]रयन्ती जगद्धाम चण्डिका लोकधारिणीम् ।

प्रणमामि जगद्धात्री सर्वकामार्थसाधिनीम् ।।१९

नित्यानन्दां ज्ञानमयीं ज्ञानमयीं योगनिद्रां जगत्यसूम ।

प्रणमापि शिवां शुद्धां विधिशौरिशिवात्मिकाम् ।।२०

मायामयी महामाया भक्तशोकविनाशिनीम् ।

कामस्य वनितां भद्रां नमाभि त्वां चितिं शिवाम् ।।२१

देवी ने कहा--हे देवी ! आपने जो प्रार्थना की थी वह अब मुझसे याचना करो। मैं तुमको सभी कुछ दे दूँगी जो भी तुम्हारे हृदयमें वाञ्छित मनोरथ होवे ।१४। इसके अनन्तर मेनका देवी के प्रत्यक्ष में समागत हुई कालिका का दर्शन करके उसने देवी को प्रणाम किया था। इसके अनन्तर वह बोली ।१५। देवी, मैंने इस समय आपके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया है। हे शिवे ! यदि आप मुझ पर सुप्रसन्न है तो मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ ।१६। इसके अनन्तर सबको मोहित करने वाली कालिका 'माता'—यह कहकर फैली हुई बाहुओं से मेनका का उसने अलिंगन किया था ।१७। इसके उपरान्त उस मेनका देवी ने अभीष्ट वाणियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में विराजमान शिवा का स्तवन किया था ।१८। मेनका ने कहा—जगत् के धाम को प्रेरणा करने वाली चण्डिका जगत् की धात्री और सब कामों और अर्थ को साधन करने वाली को मैं प्रणाम करती हूँ ।१९। नित्य आनन्द वाली, ज्ञान से परिपूर्ण योग निद्रा, जगत् को प्रसूत करने वाली—शुद्धा—शिवा—विधाता, शौरि और शिव के स्वरूप वाली को मैं प्रणाम करती हूँ ।२०। मायामती, महामाया, भक्तों के शोक का विनाश करने वाली, काम की वनिता, चिति शिवा आपको मैं नमस्कार करती हूँ ।११।

सत्त्वोद्रेकाद् या भववित्रीह
नित्या चापि प्राणिनां बुद्धिरूपा ।
सा त्वं बन्धच्छेदहेतूर्यतीनां
कस्ते कद्यो मादृशीभिः प्रभावः ।।२२

ता त्वं सादनां सिद्धरुक्तिस्तथार्चा
या वृत्तियाँ यजुषां दीर्घरूपा ।
हिंसा या वाऽथर्ववेदस्त सा त्वं
नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ॥२३
नित्यानित्यैर्भागहीनैः पुरस्थै-
स्तन्मात्रैर्यैर्यत्यते भूतवर्गः ।
तेतां शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा
का ते योषा योग्यं वक्तुं समर्था ॥२४
क्षितिर्धारित्री जगतां त्वमेव
त्वमेव नित्या प्रकृतिस्वरूपा ।
यया वशः क्रियते ब्रह्मरूपः
सा त्वं नित्वा ते प्रसीदास्तु मातः ॥२५
त्वं जातवेदोगतशक्तिरूपा
त्वं दाहिका सूर्य करस्य शक्तिः ।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिकायाः
स्तां तामहं स्तौभि नमामि चाम्बिकाम् ॥२६
योषा योषित्प्रियाणां त्वं विद्या त्वं चोर्ध्व रेतसाम् ।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं तथा हरेः ॥२७
याऽनेकरूपाणि विधाय नित्यं
सृष्टि स्थितिं हानिमपीह कर्त्री ।
ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतुः
सा त्वं प्रसादद्य पुनर्नमस्ते ॥२८

सत्व के उद्रेक से मिथ्या जो यहाँ पर होने वाली है और जो नित्या प्राणियों की बुद्धि के स्वरूप वाली है वही आप यतियों के बन्धन का छेदन करने का हेतु हैं ऐसा कौन है जो तुझ जैसी के द्वारा आपका प्रभाव कहने के योग्य होवे। अर्थात् आपके प्रभाव को कोई भी मुझ सारीखा नहीं कह सकता।२२। जो आप सामों की सिद्धि की शक्ति है तथा जो आप यजुर्वेद

की ऋचाओं की दीर्घ रूप वाली वृत्ति हैं—जो आप अथर्व वेद की हिंसा हैं वह आप नित्य काम है और मेरे इष्ट को करें ।२३। नित्यानित्य भागहीन—पुरस्थ जिन तन्मात्राओं से भूतों का वर्ग पतित होता है उनकी सदा नित्य रूपा शक्ति आप ही हैं । कौन सी स्त्री है जो आपके योग्य कथन करने से समर्थ हो ।२४। जगत् को धारण करने वाली क्षिति आप ही नित्या प्रकृति के स्वरूप वाली हैं जिनके द्वारा ब्रह्म वश में किया जाता है वह आप नित्या है मुझ पर हे माता ! प्रसन्न होवें ।२५। आप जात वेद में रहने वाली शक्ति के स्वरूप वाली हैं—सूर्य के किरणों की दाह करने वाली शक्ति आप ही हैं—आप चन्द्रिका की आह्लाद करने वाली शक्ति हैं—आपका मैं स्तवन करती हूँ और अम्बिका को प्रणाम करती हूँ ।२६। योषित्‌के प्रेमियों की आप योषा हैं—आप ऊर्ध्व रेताओं की विद्या हैं—आप समस्त जगतों की वाञ्छा हैं और आप ही भगवान् हरि की माया हैं—।२७। जो नित्य ही अनेक स्वरूपों को धारण करके सृष्टि—स्थिति और प्रलय करने वाली हैं । आप ही ब्रह्मा, अच्युत और शिव के शरीरों के हेतु हैं । आज मुझ पर प्रसन्न हो जाइए । मैं आपको पुनः प्रणाम करती हूँ ।२८।

ततः सा जगतां माता कालिका पुनरेव हि ।
उवाच मेनकां देवी वाञ्छितं वरयेत्युतः ।।२९
ततः सा प्रथमं पुत्रशंते वव्रे यशस्विनी ।
वीर्यवर्च्चायुषा युक्तमृद्धिसमन्वितम् ।।३०
पश्चात् तथैकां तनयां सुरूपां गुणशालिनीम् ।
कुलद्वयानन्दकरीं भुवनत्रयदुर्लभाम् ।।३१
ततो भगवती प्राह मेनकां मुनिसन्निभाम् ।
स्मितपूर्व तदा तस्याः पूरयन्ती मनोरथम् ।।३१
शत पुत्राः सम्भवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः ।
तत्र को बलवान्मुख्यः प्रथमं सम्भविष्यति ।।३३
सुता च तव देवानां मानुषाणां च रक्षसाम् ।
हिताय सर्वजगतां भविष्याम्यहमेव ते ।।३४
त्वं सुखप्रसवा नित्यं तथा नित्यं पतिव्रता ।
अम्लानां रूपसम्पन्ना सुभगा च भविष्यसि ।।३५

इसके अनन्तर वह जगतों की माता कालिका पुनः मेनका देवी से बोली थी कि जो भी आपका अभीष्ट वर हो उसका वरण करलो ।२९। इसके अनन्तर यशस्विनी मेनका ने सबसे प्रथम तो सौ पुत्रों के उत्पन्न होने का वरदान माँगा था जो पुत्र वीर्य, पराक्रम और आयु से संयुत होवें और ऋषि—सिद्धि से भी युक्त होंगे ।३०। इसके अनन्तर एक कन्या के उत्पन्न होने का वरदान चाहा था जो सुन्दर रूप वाली गुण गणों से शोभायमान, दोनों कुलों का आनन्द करने वाली और तीनों भुवनों में दुर्लभ होवे । इसके पश्चात् मुनियों के समान मेनका से भगवती ने कहा था जो मन्द मुस्कान पूर्वक उसके मनोरथ को पूर्ण करती हुई थीं ।३१-३२। देवी ने कहा—आपके एक सौ पुत्र होंगे जो बल वीर्य से समन्वित होंगे । उनमें मुख्य एक बलवान सबसे प्रथम होगा ।३३। और आपकी पुत्री देवों—मनुष्यों और राक्षसों के हित के लिये तथा सम्पूर्ण जगतों की भलाई के लिए मैं होऊँगी ।३४। आप सुख पूर्वक प्रसव करने वाली तथा नित्य ही पतिव्रता—अम्लान—रूप से सम्पन्न और सुभगा होंगी ।३५।

एवमुक्त्वा जगद्धात्री तत्रैवान्तरधीयत ।
मेनका च मुदं लब्ध्वा स्वस्थानं प्रविवेश ह ।।३६
ततः काले सम्प्राप्ते मेनकामचलोत्तमम् ।
पक्षेण सह योऽद्यापि सिन्धुमध्ये प्रवर्तते ।।३७
मैनका सुसुवे देवी देवेन्द्रं स्पर्धयागतम् ।
अन्यानूनशतं पुत्रान् क्रमात् सा सुषुवे सती ।।३८
महावीर्यान् महासत्त्वान् सम्प्रन्नान् सर्वतो गुणैः ।
ततः सा कालिका देवी योगनिद्रा जगन्मयी ।।३९
पूर्वत्यक्तसतीरूपा जन्मार्थं मेनका ययौ ।
समयस्यानुरूपेण मेनका जठरे शिवा ।।४०
समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात् ।
वसन्तसमये देवी नवभ्यामृक्षयोगतः ।।४१
अर्धरात्रे समुत्पन्ना गंगेव शशिमण्डलात् ।
ततस्तस्यां तु जातायां प्रसन्ना अभवन् दिशः ।।४२

इस रीति मे इतना कहकर जगत् की धात्री वहीं पर अन्तर्धान हो गई थी। मेनका परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान में प्रवेश कर गयी थी।३६। इसके उपरान्त काल के सम्प्राप्त होने पर मेनका ने अचलों में अत्युत्तम मैनाक पर्वत का प्रसूत किया था जो आज तक पंखों के सहित सागर के मध्य निवास किया करता है।३७। मेनका ने स्पर्धा से आगत देवेन्द्र का प्रसव किया था। उस सती ने अन्य एक कम सो पुत्रों को क्रम से समुत्पन्न किया था।३८। ये सभी पुत्र महान् वीर्य वाले महान् सत्व से समन्वित और सभी गुण—गणों से समुत्पन्न थे। इसके उपरान्त वह जगन्मयी योग निद्रा कालिका देवी जिसने पूर्व में सती के रूप का त्याग कर दिया था जन्म ग्रहण करने के लिये मेनका के समीप में गयी थी। भय के अनुसार मेनका के उदर से शिवा ने समुद्भूत होकर सागर से लक्ष्मी की भाँति समुत्पत्ति ग्रहण की थी। वसन्त के समय नक्षत्र के योग से नवमी तिथि में देवी आधी रात्रि में शशि के मण्डल से गंगा के ही समान समुत्पन्न हुई उसके समुत्पन्न होने पर सभी दिशाएँ प्रसन्न हो गयी थीं।३९-४२।

अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गन्धवाञ्छुभः।
वभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिस्तथापरा ।।४३
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च घनाघमम्।
तस्यां तु जातमात्रायां सर्वं स्वास्थ्यमपद्यत् ।।४४
तां तु दृष्ट्वा तथा जाता नीलोत्पलदलानुगाम्।
श्यामां सा मेनका देवी मुदमापातिहर्षिता ।।४५
देवाश्च हर्षमतुलं प्रापुस्तत्र मुहुर्मुहुः।
तुष्टुवुश्चान्तरिक्षस्था गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।।४६
तां तु नीलोत्पलश्यामां हिमवतः सुताम्।
कालीति नाम्ना हिमवानाजुहाव कृतोदने ।।४७
वान्धवैस्तु समस्तैस्तन्नाम्ना सा पार्वतीति च।
कालीति च तथा नाम्ना कीर्तिता गिरिनन्दिनी ।।४८
ततः सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शुभा।
गंगेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ।।४९

उस अवसर पर परम शुभ सुगन्धित और गम्भीर वायु बहने लगी। उस समय पुष्पों की वर्षा हुई थी और जल की वृष्टि भी हुई। जो अग्नियाँ शान्त थी वे प्रज्वलित ही गई थीं और धन गम्भीर गर्जन करने लगे थे। उस देवी के समुत्पन्न होने मात्र से सबने स्वास्थ्य की प्राप्ति की थी ।४३-४४। नील कमलों के दलों के समान समुत्पन्न जो श्यामा थी, देवी मेनका अतीव हर्षित होकर परम आनन्द को प्राप्त हुई थी ।४५। और देवों ने भी उस समय बारम्बार अतुल हर्ष की प्राप्ति की। गन्धर्व और अप्सराओं के समुदाय आकाश में स्थिर होकर स्तवन कर रहे थे ।४६। हिमवान् ने उस नील उत्पन्न दल के समान श्यामा हिमवान् की सुता की 'काली' नाम से बुलाया था ।४७। समस्त बान्धवों के द्वारा उस नाम से वह पार्वती—कही गयी थी। तथा काली नाम से गिरिनन्दनी कीर्त्तित की गयी थी ।४८। इसके इसके उपरान्त वह वर्षा के समय गङ्गा तथा शरत्काल चांदनी के समान बड़ी होने लगी ।४९।

एधमानानुदिवसं चार्वंगी चारुतां मुहुः ।
दध्रे सानुदिनं काली चन्द्रबिम्बं कलामिव ।।५०
सा बालभावमापन्ना क्रीड़न्ती कालिका मुदम् ।
सखीभिः प्राप विपुलां कालिन्द्रीव सरिद्व्रजैः ।।५१
षड्गुणास्तां स्वयं देवीं पूर्वजन्मवशीकृताः ।
स्वयमीयुर्दिजश्रेष्ठाः प्रावृष कालिका यथा ।।५२
अतिचक्राम स्वगुणैः सा देवी देवकन्यकाः ।
रूपरप्सरसः सर्वा गीतर्गन्धर्वकन्यकाः ।।५३
सा बाल्य एवं सततं बन्धुवर्गप्रिया शुभा ।
गुणैः स्वबन्धून् पितरं मातरं चाप्यतोषयत् ।।५४
मातुः स्तुतिकरी नित्यं पितृपूजनतत्परा ।
सर्वदा भ्रातृसहिता जगन्माताऽभवेत्तदा ।।५५
सर्वदा सा जगन्माता कन्या सा समुपस्थिता ।
पितुः समापे वसति कालिन्दीव विभावसोः ।।५६

प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुई वह सुन्दरी चन्द्र बिम्ब की कला ही की भाँति शोभा धारण करने लगी अर्थात् वह दिनों दिन विशेष सुन्दरी होती

चली गयी थी ।५०। वह बालिका भाव को प्राप्त हुई क्रीड़ा करती सखियों के साथ परम प्रसन्नता को प्राप्त होती थी जिस प्रकार से सरिताओं के समुदायों से कालिन्दी विपुलता का प्राप्त किया करती है ।५१। षड् गुणों ने स्वयं ही उस देवी के पूर्व जन्म के वशीकृतता को प्राप्त कर लिया था। हे द्विज श्रेष्ठो ! वे षड्गुण वर्षा को कालिका के ही समान स्वय ही उसके समीप आकर उपस्थित हो गये थे ।५२। उस देवी ने अपने गुणों से देवी की कन्याओं का भी अति क्रमण कर दिया था अर्थात् देव कन्याओं से भी अधिक गुणों वाली हो गयी थी। अपने रूप लावण्य से अब अप्सराओं से भी आगे बड़ी हुई थी और गीतों से वह गन्धर्व कन्याओं से भी अधिक गायन करने वाली थी ।५३। वह बाल्यकाल में ही निरन्तर बन्धु वर्ग की प्रिय और शुभ थी। उसने अपने सद्गुणों के द्वारा अपने बन्धुओं को—माता और पिता को भी सन्तुष्ट कर दिया था ।५४। वह जगन्माता नित्य ही अपनी माता का स्तवन करने वालो थी और अने पिता के यजन करने में तत्पर रहा करती थी वह सर्वदा अपने भाइयों के साथ रहने वाली थी ।५५। वह सम्पूर्ण जगतो की माता सर्वदा कन्या के स्वरूप में समुपस्थित हुई थी। जिस तरह से त्रिभावसु के समीप में कालिन्दी निवास करती है उसी भाँति वह भी सदा अपने पिता के समीप निवास किया करती है ।५६।

अथकदा तां निकटे निधाय हिमवद्गिरिः ।
तनथैः सह सगभ्य स्थितः परमकौतुकात् ।।५७
अथागतस्तत्र मुनिर्नारदो देवलोकतः ।
हिमवन्तं सुखासीनं सुतैः सार्धं ददर्श सः ।।५८
अपश्यन्निकटे कालीं कालिकामिव सूर्यतः ।
ज्योत्स्नामिवं सुधांशोस्तु सम्यग्वृद्धा शरन्निशि ।।५९
पूजितस्तेन गिरिणा कृतासनः परिग्रहः ।
नारदः प्रथम शैलं वृत्तान्त पर्यपृच्छत ।।६०
ततो विदितवृत्तान्तो नारदो मेनका प्रति ।
उवाच हर्षयन् वाक्यं मुनिर्वाक्यविशारदः ।।६१
एषा ते तनया रुच्या सुधाशीरिववर्धिता ।
आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी ।।६२

शम्भोर्भवित्री दयिता सानुकूला सदा हरे ।
तस्य चित्तं वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी ।।६३

इसके अनन्तर एक बार हिमवान् गिरि उसे अपने पास रखकर अपने पुत्रों के साथ सङ्गत होकर परम कौतुक से स्थित हुए थे ।५७। इसके उपरान्त देवलोक से नारद मुनि वहाँ पर पधारे । उन्होंने हिमवान् को सुतों के साथ सुख पूर्वक आसीन देखा था ।५८। उनके निकट उन्होंने सूर्य से कालिका के समान ही काली का भी अवलोकन किया था जैसे चन्द्रमा की चाँदनी हो जो कि शरत्काल की रात्रि में भली भाँति बढ़ी हुई हुआ करती है ।५९। उस गिरिराज के द्वारा उन नारद मुनि का अभ्यर्चन किया गया था और उनको आसन आसीन होने के लिए दिया गया । उस आसन पर बैठे हुए देवर्षि नारदजी ने सबसे प्रथम उस पर्वत राज से कुशल प्रश्न और वृत्तान्त पूछा ।६०। बोलने में महान् कुशल देवर्षि नारदजी ने जब सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लिया तो बहुत ही हर्षित ही मेनका से बोले—यह आपकी पुत्री बहुत सुन्दर है और चन्द्रमा की आद्य कला के ही समान वर्धित हो गई है । हे शैलराज ! यह आपकी कन्या समस्त सुलक्षणों से शोभायमान है ।६१-६२। यह सदा हर के अनुकूल हो भगवान् शम्भु की दयिता होने वाली है । यह तपस्विनी उनके चित्त को अपने वश में कर लेगी ।६३।

स चाप्येनामृते जायां नान्यांमुद्वाहयिष्यति ।
एतयोर्यादृश प्रेमा कयोश्चिष्नव तादृशः ।।६४
भूतो वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते ।
अनया सुरकार्याणि कर्तव्यापि बहूनि च ।।६५
अनयैव गिरिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो हरः ।
भविष्यति च सौहार्दाज्योत्स्नयैवामृतात्मनः ।।६६
शरीरार्धं हरस्यैषा करिष्यचि निजास्पदे ।
स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोषिते हरे ।।३७
विद्युद्गौरी त्वियं काली तव पुत्री भविष्यति ।
गौरीति नाम्ना पश्चात्तु ख्यातिमेषा गमिष्यति ।।६८

नान्यस्मै त्वमिमां दातुं मनः कर्तुमिहार्हसि ।

इदं रहस्यं चोपांशु न प्रकाशं करिष्यसि ।।६९

और वे भगवान शम्भू भी इसके अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ विवाह नहीं करेंगे । इन दोनों का जैसा प्रेम है वैसा दूसरे किसी का नहीं है ।६४। न तो ऐसा प्रेम कभी हुआ है और न इस समय है तथा भविष्य में भी नहीं होगा । इसके द्वारा बहुत से सुरों के कार्य होंगे ।६५। हे गिरिजों में परम श्रेष्ठ ! इसी के द्वारा भगवान् हर अर्ध नारीश्वर हैं । और इसी को चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के ही तुल्य परम सौहार्द्र होगा ।६६। यह भगवान शिव के आधे शरीर को अपने आस्पद में करेगी । तप के द्वारा भगवान हर के प्रसन्न होने पर यह विद्युत के समान तुम्हारी पुत्री काली हो जायगी । इसके पीछे यह गोरी इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त करेगी ।६७-६८। शिव के अतिरिक्त अन्य किसी के भी लिये इसके प्रदान करने को आप अपना मन करने के योग्य नहीं है । और यह उपांशु देवों को प्रकाश नहीं करेंगे ।६९।

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षेर्नारदस्य च ।

उवाच हिमवान् वाक्यं मुनिं प्रति विशारदः ।।७०

श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महादेवो यतात्मवान् ।

तपश्चोपांशु तपति देवानामप्यगोचरः ।।७१

स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पित मनः ।

भ्रंशयिष्यति देवर्षे तत्र मे संशयो महान् ।।७२

अक्षरं परमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ।

सोऽन्तः पश्यति सर्वत्र न तु वाह्यं निरीक्षते ।।७३

इति स्म श्रूयते नित्यं किन्नराणां मुखाद्द्विज ।

स कथं तादृशं स्वान्तं शक्तो भ्रंशयितुं हरः ।।७४

विशेषतः श्रूयते स्म दाक्षायण्या समं हरः ।

समयं ज्ञातवान् पूर्वं तन्मे निगदतः शृणु ।।७५

त्वामृतेऽन्यां न वनितां दाक्षायणि सति प्रिये ।

भार्यायं संग्रहीष्यामि सत्यमेतत् ब्रवीमि ते ।।७६

इति सत्या समं तेन पुरैव समयः कृतः ।
तस्यां मृतायां स कथं स्त्रियमन्यां ग्रहीष्यति ।।७७

देवर्षि नारदजी के इस वचन का श्रवण कर विशारद हिमवान् ने मुनि से कहा ।७०। वे महादेवजी संग को त्याग किए हुए हैं और संयत आत्मा वाले हैं । वे तो देवों के अगोचर उपाँशु तप का समाचरण कर रहे हैं ।७१। हे देवर्षि ! वे ध्यान के मार्ग में समास्थित हैं और अपना मन पर-ब्रह्म में अर्पित कर रक्खा है । वे उससे किस प्रकार भ्रष्ट होंगे—इसमें मुझे बड़ा भारी संशय हो रहा है ।७२। वह परब्रह्म अक्षर है और प्रदीप की कालिका के ही समान हैं । वे सर्वत्र अन्दर ही देखा करते हैं और बाहिर के पदार्थों को कभी भी नहीं देखते हैं ।७३। हे द्विज ! यह बात नित्य ही किन्नरों के मुख से सुनी जाती थी । जिनका अन्तःकरण इस प्रकार का है वे हर कैसे ध्यान से भ्रष्ट किये जा सकते हैं ।७४। विशेष रूप से यह सुना गया है कि भगवान् शम्भु ने दाक्षायणी के साथ पूर्व में प्रण किया था । उसे मैं कहता हूँ मुझसे आप श्रवण कीजिए ।७५। शिव ने दक्षायणी से कहा था—हे दाक्षायणि ! हे प्रिये ! हे सति ! तुम्हारे बिना मैं अन्य किसी भी वनिता को अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण नहीं करूँगा—यह सर्वथा सत्य है जिसे मैं आपको बोल रहा हूँ ।७६। अब उस सती के मृत हो जाने पर वे कैसे अन्य स्त्री का ग्रहण करेंगे ।७७।

नात्र कार्या त्वचा चिन्ता गिरिराज भवेत्सुता ।
एषा सती समुत्पन्ना हरायैव न संशयः ।।७८
इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदस्तु यथा सती ।
मेनकायां समुत्पन्ना सर्व तत् प्रोक्तवान् गिरौ ।।७९
तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं नारदस्य मुखाद् गिरिः ।
श्रुत्वासपुत्रदारः स तदा निःसंशयाऽभवत् ।।८०
ततः काली कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात् तदा ।
लज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानना ।।८१
करेण तां तु सगृह्या प्रान्नमथ्य मुखं गिरिः ।
मूर्ध्नि सम्यगुपाघ्रान स्वासने सन्यवेशयत् ।।८२
ततस्तां पुनरेवाह नारदः शैलपुत्रकाम् ।

हर्षयन् गिरिराजं तु मेनकां तनयः सह ॥८३
सिंहासनेन किं स्वस्याः शैलराज भवेत् तव ।
शम्भोरूरुः सदवास्या आसनं तु भविष्यति ॥८४
हरोरुमासन प्राप्य तनया तव सततम् ।
नान्यत्र कुत्रचित्तुष्टिमासने प्राप्यते गिरे ॥८५
इति वचनमुदार नारदः शैलराज
त्रिदिवमगमदुक्त्वा तत्क्षणाद् देवयानैः ।
गिरिपतिरपि चिन्ताहर्षसन्मोहयुक्तः
प्रविशदचलयासौ स्वान्तरं पद्यागर्भम् ॥८३

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे गिरिराज ! इस विषय में आपको चिंता नहीं करनी चाहिए। आपकी पुत्री सती हो उत्पन्न हुई है और यह हर के ही लिए जन्म धारण करने वाली हुई है—इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है ।७८। इतना कहकर ही देवर्षि नारदजी ने गिरिराज से यह सभी कहकर सुना दिया था जिस तरह से सती मेनका के उदर से समुत्पन्न हुई थी ।७९। गिरिराज ने वह सब पूर्व में घटित वृत्तान्त नारदजी के मुख से श्रवण किया तो वह अपने पुत्रों और दारा के सहित संशय से हीन हो गये थे ।८०। उस अवसर पर काली ने नारदजी के मुख से यह सब कथा का श्रवण किया था और वह लज्जा से नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी और मन्द मुस्कान में विस्तृत मुख वाली हो गई थी ।८१। गिरि हिमवान् ने उस मती को हाथ से पकड़कर और मुख को ऊपर की ओर उठाकर उसके मस्तक पर आघ्राण करके उसको अपने ही आसन पर बिठा लिया था ।८२। इसके अनन्तर नारदजी ने पुनः शैलराज की पुत्री से कहा था जिससे गिरिराज और तनयों के सहित मेनका को बड़ा हर्ष हो रहा था ।८३। हे शैलराज ! आपके इस सिहासन से इनको क्या होगा । इसका आसन तो सदा ही भगवान् शम्भु के ऊरु होगा । अर्थात् आपके द्वारा दिया आ सिंहासन का आसन इसके लिए की महत्व की बात नहीं है क्योंकि यह तो शम्भु के ऊरुओं पर बैठने वाली होगी ।८४। हे गिरि ! हर के ऊरुओं का आसन प्राप्त करके इसे अन्य किसी भी आसन पर तुष्टि की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।८५। देवर्षि नारदजी ने परम उदार वचन शैलराज से कहा था और देवयानों के द्वारा वे उसी क्षण

स्वर्ग चले गये। गिरिपति भी चिन्ता, हर्ष और सम्मोह से संयुत होकर अपनी अचला भार्या के सहित अपने पद्म गर्भ अन्तःपुर में प्रवेश कर गये।८६।

—×—

**।। भगवान् शिव का हिमवान में निवास ।।**

एतस्मिन्नतरे शम्भुः क्षिप्रं त्यक्त्वा तदा सरः।
गङ्गावतारमगमद् हिमवत्-प्रस्थमुत्तमम् ।।१
यत्र गङ्गा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात् सृता।
औषधीप्रस्थनगरस्यादूरे सानुरुत्तम ।।२
तत्र भर्गः स्वमात्मानमक्षर परमात्परम्।
चेतो ज्ञानमयं नित्यं ज्योतीरूपं निराकुलम् ।।३
जगन्मयं प्रदीपाभं द्वैतहीनाविशेषकम्।
एकाग्र चिन्तयामास भगवान् वृषभध्वजः ।।४
हरे ध्यानपरे तस्सिन् प्रथमा ध्यानतत्पराः।
अभवन् केचिद्परे नन्दिभृंग्यादयो गणाः ।।५
द्वाःस्था भूता महाभागा ये पूर्वद्वारि योजिताः।
तावन्तोऽपि गणास्तत्रः नैत्रः किंचन कूजितम् ।।६
तेषां संश्रूयते सर्वे निःशब्दाः संस्थितास्ततः।
अन्ये तु तत्र क्रीडन्ति गणा दूरान्तरस्थिताः ।।७

इसी बीच भगवान् शम्भु ने उस समय सरोवर का त्याग कर दिया था और वे हिमवान् के उत्तम प्रस्थ गङ्गावतार को चले गये थे।१। जहाँ पर पहिले ब्रह्मपुर से सृत होकर गंगा निपातित हुई थी। औषधिप्रस्थ नामक नगर के समीप में ही एक उत्तम शिखर था।२। वहीं पर परम से भी पर अक्षर अपने आत्मा को तथा नित्य ही ज्ञानमय चित्त एवं निरामय और निराकुल ज्योति रूप, प्रदीप की आभा वाले—जगन्मय, द्वैत से हीन, विशेष को एकाग्र होकर भर्ग भगवान् शिव चिन्तन करने लगे।३-४। भगवान् हर के ध्यान में तत्पर होने पर प्रथम भी ध्यान में परायण हो गये थे। कुछ दूसरे नन्दी—भृंगी आदि जो गण थे वे महाभाग द्वारों पर स्थिति थे जो

पूर्व द्वार पर नियोजित किये गये थे। वहाँ पर इतने गण थे किन्तु ध्वनि नहीं होती थी।५-६। सभी शब्दहीन होते हुए संस्थित थे अन्य गण वहाँ से सुदूर अन्तर पर स्थिति होकर क्रीड़ा कर रहे थे।७।

कुसुमश्च दलैर्भक्तैर्गिरप्रस्रवणोदकैः।
रत्नानि च विचिन्वन्तो भूषिता गैरिकैन्तथा ॥८
सवणं तु तथा दृष्ट्वा गिरिराजो गतं हरम्।
स्वस्थानमोषधिप्रस्थान्निः सृत्य सहितो गणैः ॥९
पूजार्थमुपतस्थे स यथायोग्यं तथार्च्चयत्।
स चापि शम्भुस्तस्यार्चा परता श्रद्धया युतः।
प्रतिजग्राह कूटस्थो गंगाशीर्षे यथा पुरा ॥१०
पूजितस्तेन सहसा गिरिराजं वृषध्वजः।
उवाच ध्यानयोगस्थः स्मयन्निवः जगत्पत्तिः ॥११
तव प्रस्थे तपस्तप्तुं रहस्यमहमागतः।
न यथा कोऽपि निकटं समायाति तथा कुरु ॥१२
त्वं महातमा जगद्धाम मुनीनां च सदाश्रयः।
देवानां राक्षसानां च यक्षाणा किन्नरस्य च ॥१३
सदावासो द्विजातीनां गंगापूतश्च नित्यदा।
त्वत्पुरस्यास्य निकटे द्रस्थं गंगावतारणम् ॥१४

कुसुमों, दलों, भक्तों और गिरि के झरनों के जलों से रत्नों को खोजते हुए गैरिकों से भूषित वे गण थे।८। गिरिराज गणों के सहित गये हुए भगवान् हर का बिलोकन करके गणों के सहित अपने स्थान औषधि प्रस्थ से निर्गत होकर पूजा के लिए उपस्थित हुए थे और यथोचित रूप से उनका अभ्यर्चन किया था। भगवान् शम्भु ने भी परा श्रद्धा से संयुत होकर उसकी अर्चा ग्रहण की जिस तरह से पहिले गंगा शीर्ष में कूट पर संस्थित थे।९-१०। सहसा उसके द्वारा पूजित हुए वृषध्वज ध्यान योग में स्थिति मुस्कराते हुए से उस गिरिराज से बोले।११। ईश्वर ने कहा—मैं आपके इस प्रस्थ पर तप का समाचरण करने के लिए ही इस एकान्त स्थल में हूँ। मेरे समीप में कोई भी न आये ऐसी व्यवस्था कर दीजिए।१। आप

महान् आत्मा वाले हैं आप जगत् के धाम हैं और मुनियों के सदाश्रय हैं देवों, के राक्षसों, यक्षों, और किन्नरों तथा द्विजातीयों के सद् आवास हैं तथा नित्य ही गंगा से पूत रहते हैं। आपके इस नगर के निकट में एक गंगावतरण प्रस्थ है।१४।

आश्रितोऽहं गिरिश्रेष्ठ तद्योग्यं कुरु साम्प्रतम् ।।१५
इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तूष्णीमास वृषध्वजः ।
गिरिराजस्तना शम्भुं प्रणयादिदमब्रवीत् ।।१६
पूतोऽस्मि जगतां नाथ त्वयाऽहं परमेश्वर ।
आगतेनाद्य विषयमितः कृत्य किमस्ति मे ।।१७
तपसा महता त्वं हि देवैर्यत्नपरस्थितः ।
न प्राप्यसे जगन्नाथ स त्वं स्वयमुपस्थितः ।।१८
मत्तो धन्यतरो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् ।
यद्भवान् हिमवत्-प्रस्थे तपसे समुपस्थितः ।।१९
देवेन्द्रादधिकं मन्ये आत्मानं परमेश्वर ।
सगणेन त्वया प्राप्तो यदाऽहं कामचारतः ।।२०
इत्युक्त्वा गिरिराजोऽथ स्ववेश्म पुनरागमत् ।
नियमाय परिवारान् गणानत्यवदत् स्वकान् ।।२१

हे गिरि श्रेष्ठ ! मैंने वहाँ पर आश्रय ग्रहण किया है मो अब योग्य हो वह करिये ।१५। इतना कहकर जगतों के स्वामी वृषभध्वज चुप हो गये थे । उसी समय गिरिराज ने भगवान् शम्भू से प्रणय पूर्वक यह कहा था ।१६। हे परमेश्वर ! आप तो जगतों के स्वामी हैं । आपने मुझे पवित्र कर दिया है कि आपने इस मेरे देश में समागमन किया है । इससे आगे जो भी मेरा कर्तव्य हो वह मुझे उपदेश कीजिए ।१७। आप तो महान् तप के द्वारा यत्नों में परायण देवों के द्वारा भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं । हे जगन्नाथ ! मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप स्वयं ही यहाँ पर पदार्पण कर उपस्थित हो गये हैं ।१८। मैं तो यही समझता हूँ कि मुझसे अधिक धन्य कोई भी नही है । और न मुझसे अधिक कोई पुण्यशाली ही है । जो कि आप तपश्चर्या करने के लिए हिमवान् के प्रस्थ पर स्वयं ही समुपस्थित हो गये हैं ।१९। हे

परमेश्वर ! मैं तो अपने आपको देवेन्द्र से भी अधिक मानता हूँ कि गणों के सहित आपके द्वारा स्वेच्छा से ही जिस समय में मैं प्राप्त हो गया हूँ । इतना कहकर गिरिराज पुनः अपने घर में आ गये थे । ओर उनने नियम के लिए अपने परिवारों की तथा गणों को आदेश दिया था ।२०-२१।

अद्य प्रभृति नो गन्ता कोऽपि गंगावतारणम् ।
मच्छासन न हि विना यो गन्ता दण्डये ह्यहम् ।।२२
इति स्वान् स नियमशु तिलपुष्कुशान् फलम् ।
समादायाशु तनयासहितोऽगाद् हरान्तिकम् ।।२३
अथ गत्वा जगन्नाथं हर ध्यानपरं तदा ।
नमयामास तनयां कालीं सर्वगुणान्विताम् ।।२४
तिलपुष्पादिकं यद् यत्तत्तदग्रे निधाय सः ।
अग्रे कृत्वा सुतां शम्भुमिदमाह स शैलराट् ।।२५
भगवंस्तनयेयं मे त्वामराधयितु ं प्रति ।
समादिष्टा समानीता त्वदाराधनकांक्षिणी ।।२६
सखिभ्यां सह नित्यं त्वां सेवतामीश शंकर ।
अनुजनीहि सेवार्य मयि ते यद्यतुग्रहः ।।२७
अथ तां शकपोऽपश्यत् प्रथमारूढयौवनाम् ।
फुल्लेन्दीवरपात्राभां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।२८

आज से कोई भी गंगावतरण पर नहीं जायेगा । मेरे शासन के बिना जो कोई भी वहाँ पर गमन करेगा उसको मैं दण्डित करूँगा ।२२। उस गिरिराज हिमवान् ने इस रीति से अपने लोगों को नियमित करके तिल, पुष्प, कुशा और फल लेकर शीघ्र ही अपनी पुत्रों के साथ भगवान् शम्भु के समीप गमन किया था ।२३। इसके अनन्तर ध्यान में परायण जगन्नाथ शम्भु के समीप उस समय में गमन करके सब गणों से समन्विता काली अपनी पुत्री प्रणाम करवाया ।२४। जो तिल पुष्प आदि थे वह सभी उससे उनके आगे रख दिया था । फिर अपनी पुत्री को आगे करके उस शैलों के राजा ने भगवान् शम्भु से यह कहा था ।२५। हे भगवान् ! मेरी पुत्री आपकी आराधना करने के लिये समादिष्ट है और आपकी आराधना

की इच्छा से यहाँ पर लाई गई है ।२६। हे शङ्कर ! यह अपनी सखियों के साथ नित्य ही अपनी सेवा करती है । यदि आपका मेरे ऊपर अनुग्रह है तो आप इसको सेवा करने के लिए अनुज्ञा प्रदान कीजिये ।२७। इसके अनन्तर शङ्कर ने उसका अवलोकन किया था कि वह प्रथम यौवन में आरूढ़ थी और उसके विकसित कमलों के दलों के तुल्य नेत्र थे तथा उसका चेहरा एक खिले कमल के सदृश एवं उसका मुख पूर्ण चन्द्र के समान था ।२८।

समग्रनीचकेशौघ-प्राप्तवेश-विजृम्भिकाम् ।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं चारुकर्णयुगोज्वलाम् ।।२९
मृणालायतपर्यन्त-बाहुयुग्ममनोरमाम् ।
राजीवकुण्डलप्रख्य-घनपीनोन्नतस्तनौ ।।३०
विभ्रतीं क्षीणसन्मध्यां रक्तपाणितलद्वयाम् ।
स्थलपद्मप्रतीकाश-नादयुग्ममनोरमाम् ।।३१
मध्यक्षीणां महासत्त्वां वृत्तस्थूलघनोज्ज्वलाम् ।
सुजंघा नागनासोरु निम्नाभिविभूषिताम् ।।३२
सुवृत्तचारुजंघाग्रां त्रिगम्भीरां षडुन्नताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ।।३३
ध्यानपंजरनिर्बन्ध-मुनिमानसमप्यरम् ।
दर्शानाद् भ्रंशितुं शक्तां योषिद्-गणशिरोमणिम् ।।३४
तां दृष्ट्वा तपसे नित्यं ध्यायिनां च मनोहरम् ।
विघ्नहेतुं चानरागवर्धिनी कामरूपिणीम् ।।३५

वह समग्र केशों के समूह से वेश विजृम्भिका को प्राप्त हुई थी। उसकी ग्रीवा कम्बु के ही समान थी । उसके नेत्र विशाल थे और उसके दोनों कानों का जोड़ा परम सुन्दर एवं उज्ज्वल था ।२९। मृणाल के सदृश आयत पर्यन्त बाहुओं के युग्म से वह परम मनोहर थीं । उसके कुण्डलों के स्थान में कमल थे तथा वह धन और पीन एवं उन्नत स्तनों से शोभित थी । ।३०। सुन्दर और क्षीण मध्य भाग के धारण करने वाली थी और उसके दोनों के करो के तल भाग रक्त वर्ण के थे। स्थल पद्म के सदृश दोनों पादों से वह परम मनोरम थी ।३१। मध्य भाग से क्षीण—महान् सत्व वाली स्थूल

और धन वृत्त से उज्ज्वल थी। उसकी जघायें सुन्दर थी—नाग के समान उनकी नासिका थी तथा वह निम्न नाभिके भूषित थी।३२। उसकी जंघाओं के अग्रभाग सुवृत और सुन्दर थे। तीन स्थानों में गम्भीर और छै स्थानों में समुन्नत थी। सभी सुलक्षणों से सम्पन्न थी तथा वह तीनों लोकों में दुर्लभ थी।३३। ध्यान के पिंजर में बँधे हुये मुनियों के मन को भी दर्शन करने ही से भ्रष्ट करने में समर्थ वह योषितों के समूह की शिरोमणी थी।३४। उस मनोहर को देखकर तपश्चर्या के लिए नित्य ध्यान करने वालों को विघ्नों का हेतु और अनुराग को बढ़ाने वाली तथा कामरूप वाली थी।३५।

गिरिराजस्य वचनात्तनयी तस्य शंकरः।
पर्येसणायै जगृहे गौरवादपि गौरवः ॥३६
उवाचेदं तव सुता सखिभ्यां सह शैलराट्।
नित्य मे सेवया यत्ता निर्भीता ह्यात्र तिष्ठतु ॥३७
एवमुक्त्वा तु तता देवीं सेवायै जगृहे हरेः।
इदमेव महद् धैर्य यद् विघ्नो न हि विनियेत्।
निर्विघ्नं स्थानमासाद्य यत्तपः क्रियते द्विजैः ॥३८
सनिघ्नो विघ्नहेतुं यः परिभूय प्रवर्तते।
तन्महत्त्वं च तपसां धीरता च तपस्विनाम् ॥३९
ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकैः।
हरश्च ध्यानयोगेन परं चिन्त्ययितुं स्थितः ॥४०
काली सखिभ्यां सहिता प्रत्यह चन्द्रशेखरम्।
सेवमाना महादेव गमनागमनैः स्थिता ॥४१
कदाचित् सहिता कालों सखिभ्यां शंकराग्रतः।
वितन्वती शम्भु गीतं पंचमञ्चातनोत्तदा ॥४२

उन गिरिराज के वचन से—उसकी पुत्री को भगवान् शङ्कर ने जो गौरव से भी गौरव थे सेवा करने के लिए स्वीकार कर लिया था।३६। भगवान् शम्भु ने कहा था कि हे शैलराज ! यह आपकी पुत्री अपनी सखियों के साथ नित्य ही मेरी सेवा करने के लिये निर्भीक होकर स्थित रहे।३७।

यह कहकर भगवान् हर ने उस देवी को सेवा के लिए ग्रहण कर लिया था। यही महान् धैर्य है कि विघ्न बाधा न डालें। विघ्न रहित स्थान को प्राप्त करके तप द्विजों के द्वारा किया जाता है।३८। विघ्नों के रहित विघ्न के हेतु को पराभूत करके जो प्रवृत्त होता है, वह तपों का महत्व है और तपस्वियों की धीरता है।३९। इसके अनन्तर गिरिराज अपने परिचारकों के सहित अपने पुर में आ गया था और भगवान् शम्भु ध्यान के योग से परेश का चिन्तन करने के लिए स्थित हो गये।४०। काली अपनी सखियों के साथ प्रतिदिन महादेव चन्द्र शेखर की सेवा करती हुई गमन और आगमनों के द्वारा स्थित हो गयी थी।४१। किसी समय वह सखियों के सहित भगवान् शङ्कर के आगे शुभगीत का विस्तार करती हुई पञ्चम स्वर में गान किया करती थी।४२।

कदाचित् कुशपुष्पादिसमिद्वारि हराय सा।
सखिभ्यां स्नानसत्कारं कुर्वन्ती न्यवसत्तदा ॥४३
कदाच्चिदग्रे नियता स्थिता चन्द्रभृतो मुखम्।
वीक्षन्ती चिन्तयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ॥४४
यदा कार्येषु सा व्यग्रा तदा तत्कर्म चेष्टते।
कृत्यहीना यदा सा तु तदैवाचिन्तयद्धरम् ॥४५
कदा मामेष भूतेशः कर्ता पाणिगृहीतिकाम्।
कदा मया समं रन्ता नानासद्भावभावनैः ॥४६
इति चिन्तापरा काली स्वप्नेऽपि परमेश्वरम्।
अर्चयत्येव परमं सदाचिन्तनतत्परा ॥४७
अग्रगता यदा काली प्रध्यायति महेश्वरम्।
तदा तद् वेदभूतेशस्तां निसर्गपरिस्थिताम् ॥४८
किन्तु गर्भगतबीजैर्ध तदेहेति तां तदा।
नाग्रहीद्गिरिशः काली भार्यार्थे ह्यधृतव्रताम् ॥४९

किसी समय वह भगवान् हर के लिए कुश, पुष्प आदि समिधा और जल से सखियों के सहित स्नान का सत्कार करती हुई उस समय वहाँ पर निवास करती थी।४३। किसी समय नियत रूप से शिव के मुख का वीक्षण

करनी हुई सकाम होकर उनके विषय में चिन्तन थी ।४४। जिस समय कार्यों में व्यग्र होती हुई वह उस कर्म की चेष्टा किया करती थी । अब वह कृत्य से रहित होती थी तब ही वह हर के मुख का चिन्तन किया करती थी ।४५। किस समय यह भूतेश्वर मेरा पाणिग्रहण करेंगे । और अनेक सद्भावों की भावनाओं से मेरे साथ रमण करेंगे ।४६। इसी चिन्ता में परायण होती हुई काली स्वप्न में भी परमेश्वर का अर्चन करती हुई सदा उन्हीं परम प्रभु की चिन्ता में तत्पर रहा करती थीं ।४७। आगे काली जब महेश्वर का ध्यान करती थी तब भगवान् भूतेश ने उसको स्वभाव में परिस्थित हुये जाना था ।४८। किन्तु उस समय में गर्भवत बीजों से युत देह वाली है—इससे उस समय में उसको गिरिश ने अधृत व्रत वाली को भार्या बनाने के लिए ग्रहण नहीं किया था ।४६।

महादवोऽपि तां दृष्ट्वा तदैवेदमचिन्तयत् ।
कथमेवा तपश्चर्याव्रतं कुर्याद् गिरेः सुता ।।५०
कृतव्रतां ग्रहीष्यामि गर्भबीजविवर्जिताम् ।
कालीं भार्या स्वदयितां योनिजामतिदूषिताम् ।।५१
व्रतेनचाथ संस्कारैर्गर्भबीजं विमुच्यते ।
तस्माद् व्रतं यथा काली कुर्यात् तद् युज्यते कथम् ।।५२
इति संचिन्त्य भूतेशस्तदा ध्यानमनाः स्थितः ।
ध्यानासक्तस्य तस्याथ नान्यचिन्ता व्यजायत ।।५३
काली त्वनुदिन शंम्भुं भक्त्या भृशमस्सेवत ।
विचिन्यन्ती सततं रूपं महात्मनः ।।५४
हरो ध्यानपरः काली नित्यं प्रत्यक्षतः स्थिताम् ।
विस्मृत्य पूर्ववृत्तान्तं पश्यन्नपि न पश्यति ।।५५
एतस्मिन्नन्तरे देवांस्तारको नाम दैत्यराट् ।
बबाधे सर्वलोकांश्च ब्रह्मणो बरदर्पितः ।।५६

महादेवजो ने भी उस समय उसे देखकर यही सोचा कि यह गिरि की पुत्री किस अकार से तपश्चर्या के व्रत को करेगी ।५०। किये हुये व्रत वाली और गर्भ बीज से वर्जित काली को जो यो निजा और अति दूषिता है

अपनी प्यारी भार्या के रूप में ग्रहण करूँगा व्रत से और संस्कारों से गर्भ के बीज की विमुक्ति होती है । इससे जैसे भी यह काली व्रत करे—यह कैसे युक्त होवे ।५१-५२। भूतेश शम्भु यह चिन्तन करते हुए उस समय में ध्यान में मन लगाने वाले होकर संस्थति हो गये थे । ध्यान में समासक्त होने से अन्य कोई भी चिन्ता न हुई थीं ।५३। काली प्रतिदिन भक्ति भाव से शम्भू की अत्यधिक सेवा किया करती थी उस महात्मा के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन किया करती थी ।५४। ध्यान में परायण हर नित्य ही प्रत्यक्ष हुई काली को भूलकर पूर्व वृत्तान्त को देखते हुए भी नहीं देखते थे । इसी बीच में दैत्यों का राजा तारक ब्रह्माजी के वरदान से बहुत ही घमण्डी होकर देवों और सभी लोकों को बाधा दे रहा था ।५५-५६।

वशीकृत्य स लोकांस्त्रीन् स्वयमिन्द्रो बभूव ह ।
विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वांस्तद्-पदेषु च ।
स्वयं नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ ।।५७
न यमः स्वेच्छया लोकांस्तस्मिन् राज्ञि नियच्छति ।
न स्वेच्छया तथा सूर्या लोका स्तपति तद्भयात् ।।५८
चन्द्रस्तु नर्मसाचिव्यं तस्य कुर्वन् स रश्मिभिः ।
वायुना सह सागभ्य तत्-सेवा विदधेऽनिशम् ।।५९
सदा सौगन्ध्यगाम्भीर्य-शैत्यस्निग्धत्वसयुतः ।
न वीजयन् ववौ वायुः शासनात्तस्य भूभृतः ।।६०
धनदोऽपि यथासार धनमादाय यत्नतः ।
सावधानस्तस्य सेवामकरोत्तारकेच्छया ।।६१
अग्निस्तयाभवत् सूदः शासनात्तारकस्य तु ।
व्यंजनान्यथ भोज्यानि चक्रे तस्येच्छया तदा ।।६२
निर्ऋतिस्तस्य सतत सहितः सर्वराक्षसै ।
आश्वान् गजान् वाहनानि कारयामास साध्वसात् ।।६३

तीनों लोकों को अपने वश में करके वह स्वयं ही इन्द्र बन गया था । उसने सब देवों को भगा कर उनके पदों पर अपने दैत्यों का नियोजन कर दिया था । और वह देव मुनियों ने भी नियुक्ति करने वाला बन गया था

।५७। उसके राज्य में यम अपनी इच्छा के लोकों का नियोजन नहीं किया करता। उसके भय से सूर्य भी लोक को ताप नहीं दिया करता था ।५७। चन्द्रदेव तो अपनी किरणों के द्वारा उनका नर्म साचिव्य किया करता था अर्थात् होकर वह रात-दिन उसकी सेवा में ही निरत रहता था ।५९। वायु सदा ही सुगन्ध—गम्भीरता और शीतलता से एवं स्निग्धता से समन्वित होकर उस नृप के शासन से उसको वीजित करता हुआ ही वहन किया करता ।६०। कुबेर भी तारक की इच्छा से तथा सार धन यत्न पूर्वक लेकर सावधान होकर उसकी सेवा किया करता था ।६१। तारक के शासन से अग्नि रसोइया हो गया था उस समय उसकी इच्छा से ही सदा भोज्य व्यञ्जनों को किया करता था ।६२। निर्ऋति समस्त राक्षसों के सहित निरन्तर भय से अश्व—गज और वाहनों को कराता था ।६३।

नृत्यद्भिरप्सरीभिश्च स्तुवद्भिः सूतमागधैः ।
गायमानैश्च गन्धर्वै संचिक्रीड सुरान् द्विषन् ।।६४
एव स सर्वलकांस्तु त्रिष्वप्यथ विलोढयन् ।
लोकेषु सारान् सारांश्च देवानामप्यथाग्रहीत् ।।६५
तेनाभिवाधिताः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्राह्मण शरणं जग्मुरनाथा नाथमुत्तमम् ।।६६
ते प्रणम्य सुराः सर्वे पुरुहूतपुरोगमाः ।
इदमूचुर्महात्मानं सर्वलोक-पितामहम् ।।६७
लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पितः ।
निरस्यास्मान् हठादस्मद्विषयान् स्वयमग्रहीत् ।।६८
रात्रिंदिवं बाधतेऽस्मान् यत्र स्थिता वयम् ।
पलायिताश्च पश्यामः सर्वकुष्ठासु तारकम् ।।६९
अग्निर्यमाथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च ।
तथा मनुष्यधर्मा च सर्वैः परिकरैर्युतः ।।७०

बहुतारक सुरों से द्वेष रखता था और नृत्य करती अप्सराओं, के स्तवन करने वाले सूत और मागधों तथा गान करने वाले गन्धर्वों के साथ भली भाँति क्रीड़ा किया करता था ।६४। इस रीति से तीन लोकों में

विलोढन करता हुआ लोकों में देवों के जो भी सार-सार थे। उनका सबका उसने ग्रहण कर लिया था।६५। उसने सभी देवों को जिनमें इन्द्र प्रमुख थे अभिवाधित कर दिया था। तब सब देवगण अनाथ होते हुए उत्तम नाथ ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हुए थे।६६। उन देवों ने प्रमाण करके जिन सबमें पुरुहूत अगुआ थे महान् आत्मा वाले सब लोकों के पितामह से यह बोले।६७। देवों ने कहा—हे लोकों के स्वामिन्! दैत्य तारक आपके दिये हुए वरदान से बहुत ही घमण्डी हो गया है। बलपूर्वक उसने हम सबको निरस्त करके हमारे देशों को स्वयं ही ग्रहण कर लिया है।६८। हम लोग जहाँ तहाँ पर स्थित हैं वह हमको दिन-रात बाधा दिया करता है। हम लोग भागे हुए हैं और सभी दिशाओं में तारक को ही देखा करते हैं।६९। अग्नि, यम, वरुण, 'निर्ऋति', वायु और मनुष्य धर्म वाला सब परिकरों से युक्त है।७०।

एते तेनार्दिता ब्रह्मन् देवास्यस्यैव शासनात्।
अनिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविताः ॥७१
या देववनिताः स्वर्गे ये चाप्यसरसां गणाः।
तान् सर्वानग्रहीद् दैत्यः सार लोकेषु यच्च यत् ॥७२
न यज्ञाः सप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः।
दानधर्मा दिकं किंचिद् न लोकेषु प्रवर्तते ॥७३
तस्य सेनापतिः पापः क्रौचो नामास्ति दानवः।
स पातालतलं गत्वा बाधतेऽहर्निशं प्रजाः ॥७४
तस्मात् तु तारकेणेदं सकल भुवनत्रयम्।
हृतं सर्वं जगत् त्राहि पापात्तस्मात् पितामह ॥७५
वयं च यत्र स्थास्यामस्तत्स्थात् विनिदेशय।
स्वस्थानाच्यावितास्तेन लोकनाथ जगद्गुरु ॥७६
त्वं नो गतिश्च शास्ता च त्व यस्त्राता पिता प्रसूः।
त्वमेव भुवानां च स्थापकः पालकः कृती ॥७७
तस्माद् यावत्तारकाख्ये वह्नौ दग्धाः प्रजापते।
न भवामस्तथा कर्तुं भवता युच्यतेऽधुना ॥७८

हे ब्रह्मन् ! ये सब देवगण उसके द्वारा पीड़ित हैं और उसके ही शासन से उसके ही अनुजीवी होकर उसके कार्यों में इच्छा न होने पर भी निरत रहा करते हैं ।७१। जो स्वर्ग में देवों की वनितायें अप्सराओं के समुदाय तथा लोकों में सार पदार्थ हैं इन सबको तारक दैत्य ने ग्रहण कर लिया है ।७२। इस समय न तो यज्ञ ही हो रहे हैं और न तापसगण तपश्चर्या ही किया करते हैं। तथा दान धर्म आदि कुछ भी लोकों में प्रवृत्त हो रहे हैं ।७३। उसका सेनापति पापी कौञ्च दानव है ।७४। हे पितामह ! उस तारक ने यह सम्पूर्ण त्रिभुवन को हृत कर लिया है। वह सम्पूर्ण जगत् उसी के हरण किया हुआ है। इस पापी से आप हमारा परित्राण करिये ।७५। हम लोग जहाँ पर जाकर स्थित रहेंगे उस स्थान को बतलाइए हे लोकनाथ ! तो जगत् के गुरु हैं उनके द्वारा हम सब स्थान से भ्रष्ट कर दिये गये हैं ।७६। आप ही हम लोगों की गति हैं—शास्ता हैं आप ही हमारे रक्षक पिता और प्रसूत करने वाले हैं। आप ही भुवनों के स्थापक, पालन करने वाले और हैं ।७६। हे प्रजापते ! जब तक हम लोग तारक नाम वाली अग्नि में भस्म होकर दग्ध न होवें अब आपको वैसा ही करना समुचित वैसा ही करने के लिये आप योग्य हैं ।७७।

सुराणां वचन श्रुत्वा ब्रह्मलोके पितामहः ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वांस्तत्कालसदृशं वचः ।।७९
ममैव वरदानेन तारकाख्यः सयेधितः ।
न मत्तस्यास्य मरण युज्यते त्रिदिवौकसः ।।८०
युष्माकञ्च प्रतीकारा कर्त्तव्यः प्रतिकर्मणि ।
किन्तु सम्यक् न शक्नोमि प्रतिकर्तुं प्रचोदितः ।।८१
तस्माद् यथा तारकाख्यः स्वयमेष्यति संक्षयम् ।
तथा यूय संविददध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ।।८२
न मया तारको वध्यो न तथा वरमालिना ।
न हरेण तथा वध्यो नान्यैरपि सुरैनरैः ।।८३
एष एव वरो दत्तो मया तस्मै तपस्यते ।
नपायश्चिन्तितश्चास्ति तत्कुर्वन्तु सुगोत्तमाः ।।८४

ब्रह्मलोक में पितामह ने सुरों के इस वचन का श्रवण कर उन समस्त सुरों से कहा ।७९। ब्रह्माजी ने कहा—मेरे ही वरदान से तारक समृद्ध हुआ है । हे देवगणों ! अब ही वरदान मरण मुझ से होता युक्त नहीं होता है ।८०। आपका भी प्रतीकार करना ही चाहिए क्योंकि उसका कर्म जैसा है वैसा ही प्रतीकार होना ही चाहिए किन्तु मैं आपके द्वारा प्रेरित होकर भी भली भाँति कुछ भी प्रतिकार कर नहीं सकता हूँ ।८१। इस कारण से जैसे भी तारक स्वयं ही विनाश को प्राप्त हो वैसा आप लोग मुझसे समझ लेवें मैं तो उपदेश ही कर देने वाला हूँ ।८२। मेरे द्वारा तारक वध नहीं होगा और वनमाली प्रभु के द्वारा भी वह वध के योग्य नहीं होगा । न हर के द्वारा तथा अन्य सुरों और मनुष्यों के द्वारा वह मारा जा सकता है ।८३। उसको तपश्चर्या करते हुए यह ही वरदान मैंने दे दिया था । हे सुरोत्तमो ! इसका एक उपाय सोच लिया गया है उसे ही आप करिए ।८४।

सती दाक्षायणी पूर्व त्यक्तदेहा स्वजन्मनि ।
अगच्छन्मेनकां देवी शैलराजस्य योषितम् ।।८५
तां समुत्पादयामास मेनकाजठरे गिरिः ।
लक्ष्मीमिव पुरा ख्यातां भृगुः स्वतनयो मम ।।८६
तामवश्यं महादेवः कुर्यात् पाणिगृहीतिकाम् ।
यथा स नचिरात्तस्यामनुरक्तो भवेत् सुराः ।।८७
तथा विदध्वं सुतरां तत्तेजः प्रतिकर्तृ वः ।
तमूर्ध्व रेतस शम्भुं सैव प्रच्युतरेतसम् ।।८८
कर्तुं समर्था नास्यास्ति काचिदप्यवलापरा ।
तस्य तेजश्च्युतं यच्च तस्माद् यो जायते सुतः ।।८९
स एवं तारकाख्यस्य हन्ता नान्यस्तु विद्यते ।
सा सुता गिरिराजस्य साम्प्रतं रूढयौवना ।।९०
तपस्यन्त गिरिप्रस्थे नित्यं पर्येषते हरम् ।
वाक्याद् हिमवतः सा तु काली नाम्ना निषवते ।
सखिभ्यां सह सर्वज्ञं ध्यानस्थं परमेश्वरम् ।।९१

पूर्व समय में सती दाक्षायणी ने देह का त्याग कर दिया था और अपने जन्म धारण करने के लिये मैलराज की योषित मेनका देवी के यहाँ गयी थी ।८५। गिरिराज ने उसको मेनका के उदर में समुत्पादित किया था। वह पहले साक्षात् लक्ष्मी की ही भाँति प्रसिद्ध हुई थी—भृगु मेरा ही अपना पुत्र था ।८६। महादेव अवश्य उसका पाणिग्रहण कर लेंगे । हे सुरो ! जिस प्रकार से वह शीघ्र ही उसमें अनुराग करने वाले हो जावें ।८७। उसी भाँति आप करें । उनका तेज ही आप सबका प्रतीकार करने वाला है । वे शम्भु भगवान उर्ध्व रेता है उनके वीर्य को प्रच्युत वहीं करने वाली है । उसी की ऐसी सामर्थ्य है दूसरी कोई भी अन्य अवला ऐसी शक्ति शालिनी नहीं है । उसका च्युत हुआ जो तेज हैं जो भी पुत्र उत्पन्न होगा ।८८-८९। वह ही इस तारक नामक का हनन करने वाला है अन्य कोई भी नहीं है । वह गिरिराज की पुत्री इस समय में समारूढ़ यौवन वाली अर्थात् पूर्ण युवती है ।९०। गिरि के प्रस्थ पर तपश्चर्या नित्य ही करने वाले उन भगवान शम्भु की वह सेवा कर रही है । काली नाम वाली वह हिमवान् के वाक्य से ही अपनी सखियों के साथ ध्यान में स्थित परमेश्वर सर्वज्ञ की वह सेवा कर रही है ।९१।

तामग्रतो वर्तमानां चिलोकवरवर्णिनीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवी मनसापि न चेच्छति ॥९२

यथा समीहते भार्या कालीं च चन्द्रशेखरः ।
तथा कुरुध्वं विदशा नचिरादेव यत्नतः ॥९३

स्वस्थानं भवतां स्वर्गस्तस्मात् तारकमध्यहम् ।
निवर्त्तयिष्ये सगम्य गच्छध्वं विगयजराः ॥९४

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तारकाख्यमुपस्थितः ।
उपसंगम्य वचनं समाभाष्येदमब्रवीत् ॥९५

भो भो तारत मा स्वर्गराज्यं त्वं परिशाधि भोः ।
तदर्थ न नपस्तप्तं समये भवता पुरा ॥९६

वरो नापि मथा दत्तो न मया स्वर्गराजता ।
तस्मात् स्वर्ग परित्यज्य क्षितौ राज्य समाचरः ॥९७

देवभोग्यानि तत्रैव सम्भविष्यन्ति तेऽसुर ।
इत्युक्तव सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥९८

अपने आगे विद्यमान रहने वाली तीनों लोकों में वर वर्णिनी को ध्यान में समासक्त महादेव मन से भी नहीं चाहते हैं ।९२। चन्द्रशेखर जिस रीति से भी उस काली को अपनी भार्या बनाना चाहें हे देवगणों ! आप लोग वैसा ही यत्नपूर्वक शीघ्र ही करें ।९३। आप लोगों को स्वर्ण अपना स्थान है । उससे मैं तारक को भी निवृत कर दूँगा । मैं उसके साथ सङ्गत होऊँगा । आप लोग दुःखों से रहित होकर ही यहाँ गमन कीजिए ।९४। इतना कहकर सब लोकों के स्वामी तारक नामक दैत्य के पास उपस्थित हुए थे उसके समीप जाकर यह वचन उन्होंने कहा ।९५। हे तारक ! आप स्वर्ग के राज्य को शासन न करें । उसके लिए आपने पहिले तपस्या नहीं नहीं की थी ।९६। मैंने भी ऐसा वरदान नहीं दिया था कि मेरे द्वारा आप स्वर्ग के राजा होवें । इस कारण स्वर्ग का परित्याग करके भूमि पर ही राज्य के शासन को करें ।९७। हे असुर ! देवों के योग्य भोगों का उपभोग करने के लिये आपको वहीं पर भूमि में सब पदार्थ प्राप्त होंगे । इतना कहकर सब लोकों के स्वामी ब्रह्मा जो वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ।९८।

स तारकः परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्ययात् ।
तत्रैव संस्थितो देवान् बाधते स्म स नित्यशः ।
इन्द्रं करप्रद चक्रे निदेशस्थं महाबलम् ।।९९

तमिन्द्रः सततं देवभोग्यानि वितरन् मुहुः ।
सेसेवानः क्षमो नाभूत् सन्तोषयितुमीश्वरम् ।।१००

एवं तेनार्दिता देवा मन्युना परिपाडिताः ।
विधातुरुपदेशेन यत्न चक्रुर्हरान्वये ।।१०१

तत इन्द्रोऽथ गुरुणा सगभ्य कृतनिश्चयः ।
कुसुमेषुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ।।१०२

त्वयेदं पाल्यते विश्व त्वया विश्वं प्रसूयते ।
त्वं ब्रह्मविष्णुरुद्राणां प्रीतिहेतुः पुरा भवः ।।१०३

ब्रह्मा प्रीत्या यथा पूर्वमगृह्णाच्चरितव्रताम् ।
सावित्री माधवी लक्ष्मीं सतीं दाक्षायणी हरः ।।१०४

ताः प्रोतये पुरा तेषां देवेशानां यथा कृता ।
तथैव कुरु मे प्रीति काम प्राथभूतां सदाः ।।१०५

वह तारक भी स्वर्ग का परित्याग करके इसके उपरान्त भूमि पर समागत हो गया था। वहाँ पर ही संस्थित होकर वह नित्य ही देवों को बाधित किया करता था। उसने इन्द्र को कर देने वाला बना दिया था और उस महान् बलवान को अपने निर्देश में स्थित कर दिया।९९। इन्द्रदेव उसको निरन्तर देवों के भोगने के योग्य पदार्थों को समर्पित करते हुए भी सेवा करके उस ईश्वर को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हुआ था।१००। इस रीति से उसके द्वारा उत्पीड़ित हुए और क्रोध से परिपीड़ित होते हुए देवों ने विधाता उपदेश से भगवान शम्भु के वंश में यत्न किया था। शम्भु को सुतोत्पत्ति हो जावे—इस कार्य के सम्पादन करने में प्रयत्नशील देवगण हो गये थे।१०१। इसके अनन्तर इन्द्रदेव के साथ सङ्गत होकर ऐसा निश्चय कर लिया था कि शम्भु को सुतोत्पत्ति के लिए उद्यत किया जावे। इन्द्र ने कामदेव को बुला कर उससे यह वचन कहा था।१०२। इन्द्र देव ने कहा—आपके द्वारा इस विश्व की प्रसूति की जाती है और आपके ही द्वारा विश्व का पालन किया जाता है। पहिले आप ही ब्रह्मा—विष्णु और रुद्र की प्रीति का हेतु हुए थे।१०३। ब्रह्माजी ने पहिले समय में प्रीति से जिस प्रकार से चरित व्रत वाली सावित्री का ग्रहण कर लिया था। भगवान माधव ने लक्ष्मी का ग्रहण किया था और भगवान हर ने दाक्षायणी का ग्रहण कर लिया था।१०४। पहिले समय में देवेशों की प्रीति के लिये जैसे उनको कर दिया था उसी भाँति मेरी भी प्रीति अब करिए। आप तो सदा ही प्राण धारियों की प्रीति के करने वाले रहे हैं।१०५।

न त्वं न कस्यचित् स्वर्गे पाताले वाथ भूतले।
प्रियः प्राणभृतां काम सततं जयतां मतः ।।१०६
देवदानवयक्षाणां रक्षसां मानुषस्य च।
त्वं पालकश्च कर्ता च हृदते प्रवर्तते ।।१०७
तस्मात् त्वं सर्वजगतां हिताय कुरु चेष्टितम्।
देवदानवयक्षाणां मानुषाणां महात्मनाम् ।।१०८
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शुक्रस्य मकरध्वजः।
देवराजमुवाचेदं सुप्रीतस्तद्वचोऽमृतैः ।।१०९
यत्राहमोशिता चक्र तत्कर्म विदितं त्वया।
तस्मान्ममोचितं शक्यं करिष्ये तन्निदेशय ।।११०

वचैव वाणा मृदवस्ते च पुष्पमया मम् ।
चापस्तथा पुष्पमय: शिञ्जिन भ्रमरात्मिका ॥१११
रतिर्मे दयिता जाया वसन्तः सचिवो मम ।
यन्ता मतयजो वायुर्मित्रं मम सुधानिधिः ॥११२

हे काम—आप स्वर्ग—पाताल और भू मण्डल में किसके प्रिय नहीं है। आप जंगल के प्राणधारियों का सभी का अभिमत हैं।१०६। देव—दानव—यक्ष—राक्षस और मनुष्यों के आप पालक तथा कर्त्ता हैं और आप सभी के हृदय में प्रवृत रहा करते हैं।१०७। इसी कारण से अब सम्पूर्ण जगतों के हित के सम्पादन करने के लिए विशेष चेष्टित कीजिये। इससे देव—दानव—यक्ष और महात्मा तथा मनुष्यों का हित हो वही करिये।१०८। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—मकर ध्वज ने यह इन्द्र का वचन श्रवण करके उसके वचन रूपी अमृतों से बहुत ही प्रसन्न होकर देव राज से कहा।१०९। जहाँ मेरी ईशता है। हे शक्र! वह कर्म आपको ज्ञात ही है इस कारण जो मैं कर सकता हूँ उसे मैं करूँगा। आप इसका निर्देश कीजिये।११०। मेरे पाँच ही वाण हैं जो बहुत ही कोमल पुष्पमय हैं। मेरा चाप भी पुष्पों से परिपूर्ण हैं और उस चाप की डोरी भ्रमरों के स्वरूप वाली ही है।१११। रति मेरी प्यारी जाया है। बसन्त मेरा सचिव है। मलय से सम्भूत वायु यन्ता है और मेरा मित्र सुधानिधि चन्द्रमा है।११२।

सेनाधिपो मे श्रृंगारो हावा भावाश्च सैनिकाः ।
सर्वे मे मृदवोऽक्रूरा अहं चापि तथाविधः ॥११३
यद् येन युज्यते कार्य धीमांस्तत्ते न योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत् कर्म तस्मात्तिस्मिन् नियोजय ॥११४
यत् क्रारयितुमिच्छामि भवता तन्मनोभव ।
तत्ते समुचित कर्म तस्मिन् परिवृतो भवान् ॥११५
कृतिकर्मापि तत्र त्वं कृती ज्ञापि गनोभव ।
त्वदन्वैः किन्तु दुःसाध्यं तत्त्वां तत्र निजोजये ॥११६
श्रूयते हि तपस्यतं ध्यानस्य वृषभध्वजम् ।
गिरेर्हिमवतः प्रस्थे निराकांक्षं वधुकृती ॥११७

त पितुर्वचनात् काली तपस्यन्तः निषेवते ।
सखिभ्यां सहिता नित्यं हरस्यानुमतेऽधुना ।।११८
आरूढयौवनां यां तु स्त्रीरत्नमपि सुन्दरीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवी नेहते मनसापि ज ।।११९
सानुरागो तथा तस्या जायते बृषभध्वजः ।
तथा विधत्स्व देवानां हिताय जगतामपि ।।१२०

मेरी सेना का अधिप शृङ्गार हैं और हाव तथा भाव मेरे सैनिक हैं। ये सभी मेरे सहयोगी क्रूरता से रहित और कोमल हैं और मैं भी वैसा ही मृदु हूँ।११३। जिमके द्वारा जो भी कार्य युक्त होता है आप तो धी मान् है उसा को उससे योजित कर दीजिये। मेरे करने का जो भी समुचित कार्य हो उसका भी नियोजित कीजिये।११४। इन्द्र देव ने कहा—जिसके कराने की मैं इच्छा कर रहा हूँ हे मनोभव ! आपसे जो भी कराना चाहता हूँ। वह आपका समुचित कर्म है। उसमें आप परिवृत हैं।११५। आप उसमें कृत कर्मा हैं अर्थात् आपको उस कर्म का अनुभव हैं। हे मनोभव आप कृती हैं। आपको छोड़कर अन्यों से वह कर्म दुस्साध्य है। इसी से मैं आपका नियोजन करता हूँ।११६। यह सुना जा रहा कि हिमालय के प्रस्थ में वृषभध्वज तपश्चर्या करने बोले—ध्यान में स्थित हैं और वधू के लिये वे काङ्क्षा से रहित हैं।११७। पिता के वचन से काली सखियों के सहित नित्य ही हर की अनुमति में होकर अब सेवा किया करती है। वे शम्भु तपश्चर्या कर रहे हैं।११८। यद्यपि वह समारूढ़ यौवन वाली युवती है—स्त्रियों में रत्न के समान परम दिव्य हैं और अत्यधिक सुन्दरो भी हैं किन्तु महादेव ध्यान में ऐसे आसक्त हैं कि उसको मन से भी नहीं जानते हैं।११९। जिस रीति से भी भगवान वृषभध्वज उसमें अनुराग करने वाले हो जावें वैसा ही आप कार्य करिये। इनमैं देवों का और जगतों का परम हित हैं यही जानकर आप ऐसा करें।१२०।

सह सत्या यथा रेमे सानुरागा वृषध्वजः ।
तथतया गिरिजया रमतां तत्कृतेन वै ।।१२१
तस्याः कृते तुय तेजः प्रच्युर्त यद हरस्य वै ।
ततो यो जायते सोऽमांरस्तारकादुद्धरिष्यति ।।१२२

ततः स देवराजस्य वचः श्रुत्वा मनोभवः ।
प्राप्तकालं च सम्सार शापं ब्रह्मकृतं पुरा ।।१२३
सन्ध्यां प्रतिविधातारं यदा शस्त्रं परीक्षितम् ।
कामोऽहनत् पुष्पवांणैस्तदा तमशपद्विधिः ।।१२४
शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्वं भविष्यसि द्विजोत्तमाः ।
यदा कुर्याद् गिरिसुतां हरः पाणिगृहीतिकाम् ।।१२५
तदा भवान् शरीरेणागमिष्यति समग्रताम् ।
इति स्मृत्वा विधेः शापं भीतोऽपि मकरध्वजः ।।१२६

वृषभ ध्वज जिस प्रकार से भी उस सती के साथ अनुराग वाले होकर रमण करे', वैसा ही करें ।१२०। उसके रमण करने पर हर का जो तेज प्रच्युत होगा और उससे जो भी पुत्र समुत्पन्न होगा वही हमारा इस तारक से उद्धार करेगा ।१२१। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर कामदेव ने देवराज के वचन का श्रवण करके पहिले ब्रह्माजी के दिये हुये शाप का काल प्राप्त हो गया है—यह स्मरण किया था ।१२२। सन्ध्या करने वाले विधाता पर जिस समय अपने शस्त्र की परीक्षा की थी उस समय कामदेव ने पुष्प के वाणों से प्रहार किया था और उसी अवसर पर विधाता ने उसको शाप दे दिया था ।१२३। हे द्विजोत्तमो विधाता ने कहा कि तू शम्भु के नेत्र की अग्नि से दग्ध हो जायगा । जिस समय भगवान हर गिरि की पुत्री को पाणि प्रणीता भार्या करेंगे उसी समय आप शरीर के द्वारा सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेंगे । इस विधाता के शाप का स्मरण करके भयभीत कामदेव ने शुक्र के वचन से हर को काली के साथ योजित कर देने के कार्य को स्वीकार कर लिया था । और फिर उस काल के सदृश कामदेव से यह वचन कहा था ।१२६।

अंगीचक्र शक्रवाक्यात् काल्या योजियतुं हरम् ।
इदं च वचनं प्रोचे तत्कालसदृशं पुनः ।।१२७
करिष्ये तद्वचः क्रच हरं सांगमयाम्यहम् ।
काल्या गिरिजया सार्धं दाक्षायण्या तथा पुरा ।।१२८
किन्त्वेकं मम याहाय्यं कर्ता त्वं हरमींहने ।
यदा सम्मोहनेनाहं सम्मोह्यामि च ।।१२९

तदा कुरु सहायं त्वं स्वः स्थमाप्यायस्व ताम् ।
प्रविश्याह सुरभिणा न चिराच्छंकराश्रमम् ॥१३०
विधाय पूर्वं मनसो विकार हर्षणेन तु ।
संमोहनेन सुदृढं मोसयिष्ये वृषध्वजम् ॥१३१
स्मरिष्यसि त्वं सम्प्राप्ते काले मां मम पालने ।
अहं गच्छामि सहित तत्कतु बलसूदन ॥१३२
इत्युक्त्वा स जगामाथ मदनः शंकरांश्रमम् ।
शक्रोऽपि त्रिदशान् सर्वानिदमाह वचस्तदा ॥१३३
यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र याति मनोभवः ।
तत्र तत्रानुगम्यैव समये मां च बोधतः ॥१३४

मदन ने कहा—हे इन्द्र देव ! मैं आपके वचन को पूर्ण करूँगा और गिरिजा के साथ भगवान शम्भु को सङ्गत कर दूँगा जैसा कि पहले दाक्षायणी के साथ किया था ।१२७। किन्तु शम्भु के मोहन करने में आप मेरी एक सहायता करें । जिस समय में सम्मोहन के द्वारा हर का सम्मोहन करूँ उस अवसर पर आप मेरी सहायता करें । मैं सुरभि के द्वारा प्रवेश करके अर्थात् शंकर के आश्रम में शीघ्र ही प्रविष्ट होकर सर्व प्रथम दर्पण के द्वारा मन से विकार समुत्पन्न करके फिर सम्मोहन के द्वारा दृढ़ता से वृषध्वज को मोहित कर दूँगा ।१२८-१३०। आप काल के प्राप्त होने पर मेरा स्मरण करोगे और पालन का ध्यान रक्खोगे । हे बलसूदन ! वह कार्य करने के लिये मैं सहित आता हूँ ।१३१। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इतना कहकर वह कामदेव शंकर के आश्रम में गया । इन्द्र ने भी उस अवसर पर सब देवों से यह कहा था कि जहाँ पर कामदेव जाता है वहाँ पर आप लोग इसकी सहायता करें । वहाँ-वहाँ पर अनुगमन करके समय पर मुझको बताओगे ।१३४।

यदा संमोहनेनायं संमोहयति शंकरम् ।
तदाहमहि यास्यादि तत्र बोधत मां सुराः ॥१३५
इत्युक्तांस्तेन शक्रेण देवा जग्मुर्मनोभवम् ।
सोऽपि गत्वा यत्र हरो गङ्गावतरणे गिरेः ।

हिमभारभृतः सानौ सुरभिं च न्ययोजयत् ॥१३६

ततस्तत्र गते सम्यक्सुरभौ तस्य लक्षणम् ।

अभवन्नचिरादेव तरुगुल्मलतासु च ॥१३७

पुष्पिताः किंशुकास्त्र मंजुलाः केतकास्तथा ।

सरांसि च पद्मानि सविकाराश्च जन्तवः ॥१३८

ववौ वायुश्च गम्भीरो गंधिलः पुष्परेणुभिः ।

शनैः शनैः सुखकरः कर्षयन् स हि मानसम् ॥१३९

पक्षिणश्च मृगाश्चैव ये चान्ये प्राणधारिणः ।

सिद्धाश्च किन्नराश्चैव द्वन्द्वभाव वितेनिरे ॥१४०

चूताः कुसुमितास्तत्र नवस्तवकभूषिताः ।

अशोकाः पाटलाश्चैव नागकेशरकारुणाः ॥१४१

जिस समय सम्मोहन के द्वारा यह कामदेव भगवान् शंकर का सम्मोहन करेगा हे सुरगणो ! उस समय में मैं भी वहाँ पर जाऊँगा—ऐसा मुझको जान लो ।१३४। इस प्रकार इन्द्रदेव द्वारा कहे गये देवगण कामदेव के पास चले गये थे । वह कामदेव भी गमन कर गया था जहाँ पर शम्भु गिरि के गङ्गावतरण स्थल में हिमाचल के शिखर पर थे उसने सुरभि को नियोजित कर दिया था ।१३५। इसके अनन्तर सुरभि के वहाँ पर पहुँचने पर जिसका कि वह लक्षण था कि शीघ्र ही भाँति तरु-लता और गुल्मों में पुष्प खिल गये थे । वहाँ पर किंशुक विकसित थे और मञ्जुल के तरु भी पुष्पित हो गये थे । सभी सरोवर खिले हुए पद्मों से शोभायमान हो गये थे तथा सभी जन्तुओं को विकार हो गया था ।१३६-१३७। उस समय सुगन्धित वायु बहने लगी थी जिसमें पुष्पों के रेणु सम्मित थे । जो धीरे-धीरे सुखकर होकर मन को कर्षित कर रहा था ।१३८। सभी पक्षीगण-मृगवर्ग और जो भी प्राथ धारी जीव थे और सिद्ध एवं किन्नरगण ने द्वन्द्व भाव को विस्तृत किया था अर्थात् सभी प्राणी अपनी प्रियाओं के साथ रहने लगे थे ।१३९। आम्रों में वीर आ गये थे और वे नूतन वीरों के गुच्छों से भूषित हो गये थे । अशोक, पाटल और आग केशर कारण सभी विकार से समन्वित थे । ।१४१।

सविकारा गणाश्चासन् शंकरस्यं तदा दिजाः ।

प्रत्यक्षतो ययुस्तेऽपि विकरं शम्भुसाध्वसात् ।।१४२
भ्रमन्ति स्त तदा तत्र भ्रमराः कुसुमोद् भवम् ।
पिवन्तो बहुशश्च्युतं गुञ्जन्तः सह जायया ।।१४३
एवं प्रवृत्ते सुरभौ श्रृंगारोऽपि गणैः सहा ।
हावभावयुयस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ।।१४४
मदनः सगणस्तत्र निवसंश्चिरमेव हि ।
न दृष्ठवांस्तदा शम्भोश्छिद्रं येन प्रवेक्ष्यति ।।१४५
यदा च प्राप्तवितरस्तदा मयविमोहितः ।
नाग्रेसरोऽभवत् तस्य मदनो रतिवारितः ।।१४६
एवं यातस्तस्य कालः प्रभूतो द्विजसत्तमाः ।
निरूपयन् न वा चाप छिद्रं तस्य यतेस्तदा ।।१४७
ज्वलत्कालाग्नियकाशं भानुलक्षसमप्रभम् ।
ध्यानस्थं शंकरं को वा सयासादयितुं क्षमः ।।१४८

हे द्विजो ! भगवान् शम्भु के गण भी प्रत्यक्ष में विकार वाले हो गये थे किन्तु शम्भु के भय से इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे। उस अवसर पर वहाँ भ्रमर कुसुमों से उद्भूत रस का पान करते हुये जो अत्यधिक च्युत हो रहा था अपनी जाया के साथ गुञ्जार करने वाले थे।१४२-१४३। इस प्रकार से सुरभि के प्रवृत्त हो जाने पर श्रृंङ्गार ने भी अपने गणों के साथ हाव—भावों से संयुत होकर हर के समीप प्रवेश किया था।१४४। वहाँ पर कामदेव तो अपने गणों के सहित चिरकाल तक निवास करने वाला हो गया था। उस समय उसने कोई भी ऐसा छिद्र शम्भु में नहीं देखा था जिसके द्वारा यह प्रवेश करें।१४५। जिस समय उसने छिद्र प्राप्त किया था उस समय में वह भय से विमोहित हो गया था मदन आये गमन करने वाला नहीं हुआ था क्योंकि रति के द्वारा वह वारित कर दिया गया था।१४६। हे द्विज सत्तमो ! इस प्रकार उसको बहुत सा समय व्यतीत हो गया था। उस समय उस यति शम्भु को उसने कोई भी छिद्र नहीं प्राप्त किया।१४७। प्रज्वलित कालग्नि सदृश और लाखों सूर्यों के समान प्रभा वाले ध्यान में स्थित भगवान् शंकर के पास पहुँचने के लिये कौन समर्थ था अर्थात् किसी की भी ऐसी शक्ति नहीं थी।१४८।

अथैकदा गिरिसुता काली तस्याभवत्पुरः ।
कृत्वा परीष्टिं कर्तव्यां सखिभ्यां प्रणता स्थिता ।।१४६
शंकरोऽपि तदा ध्यानं त्यक्त्वा तत् क्षणमास्थितः ।
योजयन् स्वगणान् कृत्ये ज्योतिश्चिन्ताविवर्जितः ।।१५०
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु ।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्व चन्द्रशेखरम् ।।१५१
श्रृंगारश्च तदा भावैर्हावैश्च सहिता हरम् ।
जगाम कामसहाय्य कुर्वन् मूरभिणा सह ।।१५२
हर्षणेनातिहृषितः शृङ्गाराद्यैर्निषेवितः ।
शंकरो वदन कल्याः साकूत सव्यलोकयत् ।।१५३
तत् प्राप्य विवरं कामः पुष्पं चापे न्ययंाजयत् ।
समोहन पुष्पवृतं पुष्प मालाविवर्धितम् ।।१५४
तदाभूद् दक्षिणे पार्श्वे रतिः प्रीतिस्तु वामतः ।
पृष्ठे वसन्ततूणीरं पौष्पमादाय सुन्दरः ।।१५५

इसके अनन्तर एक बार गिरि की पुत्री काली उनके सामने हुई थी जो करने के योग्य सेवा थी उसे करके वह सखियों के साथ प्रणत होकर स्थित हो गई थी ।१४६। भगवान् शंकर भी अपने ध्यान का त्याग करके उसी क्षण समास्थित हुए थे । कृत्य में अपने गणों को योजित करते हुए वे ज्योतिस्वरूप चिन्ता से रहित थे ।१५०। कामदेव ने वहीं छिद्र प्राप्त करके सबसे प्रथम हर्षण वाण के द्वारा पार्श्व शम्भु को हर्षित किया था ।१५१। और शृङ्गार भी हाव-भावों के सहित होकर वह शंकर के समीप गया था । यह शृंगार सुरभि के साथ में कामदेव को सहायता कर रहा था ।१५२। हर्षिण वाण के द्वारा वे अति हर्षित होते हुए शृंगार आदि के द्वारा निषेवित हुये थे भगवान शंकर ने विशेष अभिप्राय के सहित काली के मुख को अच्छी तरह से अवलोकित किया था ।१५३। कामदेव ने उसी छिद्र को प्राप्त करके पुष्प को चाप में निवोजित किया था । पुष्प से वृत तथा पुष्प माला से रहित सम्मोहन को छोड़ा था ।१५४। उस समय उसके दक्षिण पार्श्व में रति थी और वाम में प्रीति थी । पीछे की ओर सुन्दर बसन्त तूणीर और पौष्य का समादान करके स्थित था ।१५५।

आकर्णपूरितं पुष्प चापमाकृष्य संयतः ।
यदा मनोभवो वायुस्तदा त समुपेयिवान् ।।१५६
संहृते पुष्पवाणे तु गिरिजां चन्द्रशेखरः ।
जातेन्द्रिविकारः सन् जिघृक्षुः संगमेऽभवत् ।।१५७
अमराः शक्रसहितास्तदा सर्वे वियद्गताः ।
सभ्यं मनोभवं मेने सुरकृत्ये निवेशितम् ।।१५८
अथ संस्मृत्य संयम्य निगृह्य विकृतिं तदा ।
इन्द्रियस्य महादेवः सहसेद व्यचिन्तयन् ।।१५९
योनिजां गिरिजां कालीं तपोव्रतविवर्जिताम् ।
कथं संगमकामोऽहं धर्तुमिच्छामि वै हठात् ।।१६०
तपोव्रतपवित्रांगो तपश्चरणसत्कृताम् ।
स्वयमेव ग्रहीष्यायामि सती दाक्षायणीमिव ।।१६१
कथं विकृतकामोऽहमनिच्छन्निव साम्प्रतम् ।
केनापि चाकृष्ट इव चिकीर्षुः सगमोद्भवम् ।।१६२

जिस समय कामदेव ने संयत होकर पुष्प चाप को कानों तक खींचकर प्रस्तुत था उसी समय उसके समीप में वायु समुपस्थित हो गया था। पुष्प वाण के सहित होने पर चन्द्रशेखर प्रभु ने गिरिजा का अवलोकन किया था और इन्द्रिय के विकार समुत्पन्न होने वाले होकर संगम के लिए ग्रहण करने की इच्छा वाले वे हो गये थे ।१५७। इन्द्र के सहित सब देवगण उस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने कामदेव को परम सभ्य माना था क्योंकि वह देवों के कृत्य में निवेषित हो रहा था ।१५८। इसके अनन्त महादेव जी ने संस्मरण करके और उस अवसर पर मानसिक विचार को रोककर जो कि इन्द्रिय का हुआ था उन्होंने तुरन्त ही यह चिन्तन किया था ।१५९। योनिजा और तपोव्रत से रहित हैं। मैं बल पूर्वक इसको पकड़ने की कैसी इच्छा कर रहा हूँ और क्यों संगम की कामना वाला हो गया हूँ ।१६०। तप के व्रत से पवित्र अङ्गों वाली और तप के ससाचरण से संस्कृत सती को दाक्षायणी की ही भांति मैं स्वयं ही ग्रहण कर लूँगा ।१६१। मैं इस समय में इच्छा न करते हुये भी विकार युक्त काम वासना वाला हो गया हूँ। मैं किसी के द्वारा संगमोद्भव करने की इच्छा वाले से समाकृष्ट हो गया ।१६२।

एव विकारहेतुं स निश्चितन्वन्निद्विथस्यतु ।
पुरोवलोकयामास सहितेतु मनोभवम् ॥१६३
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विज्ञातसमयः सुरान् ।
दृष्ट्वा स्थानादाजगामः तत्समाजमनुग्रहात् ॥१६४
ततः स कुपितो दुष्ट्वा सन्धितेषुं मनोभवम् ।
जज्वाल ज्वलनप्रख्यस्त दिदृक्षुः प्रसह्य तु ॥१६५
कामोऽयं समयं ज्ञात्वा मां मोहयितुमिच्छिति ।
मनो मे स्ववशं कर्तुं तन्नयामि यमक्षयम् ॥१६६
एवं विचिन्तमा स्य नेत्रोद्भावितेतेजसा ।
वर्धतो ज्वलनौ भूत्वा क्रोधं नेत्रात् ससर्ज ह ॥१६७
त क्रोधाग्निः सरिष्यन्तं जातवेदः स्वरूपिणम् ।
ज्ञात्वा कामस्य तान् बाणान् पौष्पचापनिषण्णकान ॥१६८
शक्ति प्राणांस्तथात्मानमाकृष्यापालद्विधिः ।
उत्साहयामास तदा वसन्तं स पितामहः ॥१६९

इस प्रकार से इन्द्रिय के विकार के हेतु की खोज करते हुए उन्होंने अपने बाण को संहित किये हुए कामदेव को देखा था ।१६३। इसी बीच में ब्रह्मा जी समय को विज्ञात करके सुरों को देखकर अनुग्रह से अपने स्थान से उस बाण समागत हो गये ।१६४। इसके अनन्तर का सन्धान किये हुए कामदेव को देखकर वे शम्भु अधिक कुपित हो गये थे । वे अग्नि के समान ही प्रज्वलित हो गये थे और सबको बल पूर्वक दग्ध कर देंने की इच्छा वाले हो गये थे ।१६५। वह काम समय का ज्ञान करने की इच्छा करता है—मेरे मन को अपने वश में करना चाहता है इसलिए इसको यम के धाम को पहुँ-चाता हूँ ।१६६। इस प्रकार चिन्तन करते हुये भगवान् शम्भु के नेत्र से उद्‌भातेज से जो कि बढ़ रहा था अग्नि होकर नत्र से क्रोध की उत्पत्ति की थी ।१६७। क्रोध से निकलने वाली जात वेदा के स्वरूप वाली का ज्ञान प्राप्त करके कामदेव पुरुषों के भाग को निष्मण कामदेव के बाणों को जान कर शक्ति को प्राणों को तथा आत्मा का आकर्षण करके विधाता ने पालन किया था और उन पितामह ने उस समय में बसन्त को उत्साहित किया था ।१६९।

निजशक्त्या तदा शम्भुः क्रोधाद्रक्षन्मनोभवम् ।
अथाकाशगता देवाः क्रुद्धं दृष्टः महेश्वरम् ।।१७०
प्रसीद जगतां नाथ कामे क्रोधं परित्तज ।
त्वया पुरा सृष्टः शम्भुरूपेण कमणा ।।१७१
येन चायोजितं कर्म तत्करोति मनोभवः ।
तस्मात् त्वं मदने शम्भो क्रोधाग्निमुपसंहार ।।१७२
प्रसीद सर्वभूतेश भक्त्या त्वां प्रणता वयम् ।
इति स्म वदतां तेपाममराणां तदानलः ।।१७३
ललाट चक्षुः सम्भूता भस्माकार्षीन्मनोभवम् ।
दग्ध्वा कामं तदा वह्निर्ज्वालामालातिदीपितः ।।१७४
संस्ताम्भितोऽथं विधिना हरं गन्तु शशाक न ।
महादेवोऽपि तद्भस्म मनोभवशरीरजम् ।।१७५
आदाय सर्वगात्रेषु भूतिलेप तदाकरोत् ।
लेपलेपाणि भस्मानि समादाय तदा हरः ।।१७६

उस समय अपनी शक्ति के द्वारा कामदेव को शम्भु के क्रोध से रक्षित करते हुए महेश्वर को क्रोधित देखकर देवगण जो आकाश में स्थित थे उन्होंने प्रार्थना की थी कि हे जगतों के नाथ ! प्रसन्न होगए और कामदेव पर क्रोध का त्याग कर दीजिए । जिस प्रकार से पहिले आपने शम्भु रूप कर्म के द्वारा सृजन किया था और जिसने कर्म को आयोजित किया था उसी को कामदेव कर रहा है । इस कारण से हे शम्भो ! कामदेव पर जो आपकी क्रोधाग्नि है उसका उपसंहार करिए ।१७०-१७१। हे समस्त भूतों के स्वामिन् ! आप प्रसन्न हो जाइये ! हम लोग बड़े ही भक्ति के भाव से आपके चरणों में प्रणत हुए हैं । इस भाँति वे देवगण कह रहे थे कि उनके कहते हुओं के सामने ही शम्भु के ललाट जी चक्षु से समुद्भूत अनल ने कामदेव को भस्म कर दिया था ।१७३। ज्वालाओं की मालाओं से अत्यन्त दीप्त उस वह्नि ने काम देव को दग्ध कर दिया था और वह फिर हर के समीप नहीं जा सका था । कामदेव जी ने भी कामदेव के शरीर से सनुत्पन्न उस भस्म को लेकर अपने समस्त अङ्गों में उसी समय में भस्म का लेप कर लिया था।

।१७३-१७४। जो लेपन करने से बची हुई भस्म थी उसका हर ने आदान कर लिया था ।१७६।

सगणोऽन्तर्दधे कालीं विहाय विधिसम्मते ।
ब्रह्मा क्रोधानल ज्ञम्भोर्दहन्तं सकलान् सुरान् ।।१७७
वडवारूपिणं चक्र देवानां पुरतः यदा ।
वडवां तां तदा देवाः साम्नां ज्वालामुखी शुभाम् ।।१७८
दृष्ट्वा निर्विघ्नमनसो वभूवुः पूर्वपीडिताः ।
वडवां तां समादाय तदा ज्वालामुखी विधिः ।।१७९
सागरं प्रययौ लोक-हिताय जगतांपतिः ।
गत्वाथ सागरं ब्रह्मा प्रोवाच परिपूजितः ।।१८०
यथावत्त न वि न्द्राः समय च निवेदयन् ।
अयं क्रोधो महेशस्य वडवारूपधृक् त्वया ।।१८१
ज्वालामुखः सदा धार्यो यावन्न विनयाम्यहम् ।
यदा त्वामहमागस्य वदामि सरिदां पते ।।१८२
तदा त्वया परित्याज्यः क्रोद्योऽयं वडवामुखः ।
भोजनं भवतस्तोयमतस्य तु भविष्यति ।।१८३

विधाता के द्वारा सम्मत होने पर शम्भु काली को त्याग कर गणों के सहित अन्तर्धान हो गये थे और ब्रह्मा जी ने समस्त देवों को दहन करने वाली शम्भु को क्रोध की अग्नि को बड़वा का रूप वाली देवों के आगे ही उस-समय में कर दिया था। उस अवसर पर सौम्य—शुभ ज्वालामुखी बड़वा को देखकर पूर्व पीड़ित देवगण निर्विघ्न मन वाले हो गये थे। उसी समय विधाता उस ज्वालामुखी बड़वा को ग्रहण करके जगतों के स्वामी लोकों के हित के लिये सागर में चले गये थे। ब्रह्माजी सागर पर गमन कर वहाँ परिपूजित होते हुये बोले ।१७७-१७८। हे विप्रेन्द्रो ! महेश का क्रोध बड़वा का स्वरूप धारण करने वाला होवे और तुमको जब तक मैं विनय न करूँ तब तक ज्वालामुखी होकर सदा कार्य करना चाहिए। हे सरिताओ के स्वामिन् ! जिस समय मैं समागत होकर कहूँ उस समय इस बड़वा मुख क्रोध को आपको परित्याग करना चाहिए। आपना जल ही इसका भोजन होगा ।१८१-१८३।

यत्नादेवं विधार्योऽयं यथा नो याति चान्तरम् ।
इत्युक्तो ब्रह्मणा सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा क्रुधम् ॥१८४
ग्रहीतुं वडवावक्त्रे शम्भोश्चाशक्यमाप्यरम् ।
ततः प्रविष्टो जलधौ पावको वडवामुखः ॥१८५
वार्योघान्निर्दहन् सम्यग् ज्वालामालातिदीपिव ।
यदाभवच्छशभुनेत्राद् ददाह मदनं तदा ॥१८६
अभवत् सुमहाशब्दो येनाकाशः प्रपूरितः ।
तेन शब्देन महता कामदाहेक्षणेन च ॥१८७
सखीभ्यां सह भीताभूत् काली शोकयुता तदा ।
तेन शब्देन हिमवांश्चकितो विस्मितस्तदा ॥१८८
सुतामेव जगामाशु गतां काली हराश्रमम् ।
तां तत्र कालीं तनयां भयशोकाकुलां शुभाम् ।
रुदन्ती शम्भुविरहादाससादाचलेश्वर ॥१८९

कि इसको यत्न पूर्वक नापके द्वारा धारण करना चाहिए कि यह किसी अन्तर को प्राप्त न होवे । इस तरह से ब्रह्मा के द्वारा कहे हुये सिन्धु ने उस समय उस क्रोध को अङ्गीकार कर लिया था ।१८४। भगवान् शम्भु का अशक्य भी क्रोध को बड़वा के मुख में ग्रहण करने के लिए बड़वा का मुख पात्रक जलधि में प्रविष्ट हो गया था ।१८५। ज्वाला की मालाओं से अत्यन्त दीपित उस अग्नि ने जल के समूहों का भली भाँति दाह करते हुये जिस समय में वह शम्भु के नेत्र से उद्भूत हुआ था उसी समय में उसने कामदेव को दग्ध कर दिया था ।१८६। उस महान् शब्द से काम के दाह क्षण भर से करने वाले से समस्त आकाश पूरित हो गया था । वह ऐसा ही महान् शब्द उस समय में हुआ था ।१८७। उस समय काली अपनी सखियों सहित शोक से संयुत होकर बहुत ही अधिक भय भीत हो गयी थी । उस शब्द से हिमवान् भी अतीत विस्मित और चकित हो गया था ।१८८। वह हिमवान् शीघ्र ही भगवान् शम्भु के आश्रम में गई हुई अपनी पुत्री काली के समीप गया । वहां पर पुत्री को भय और शोक से व्याकुल—रुदन करती हुई अचलराज ने देखा शम्भु के विरह से बहुत ही आकुल हो रही थी ।१८९।

आसाद्य पाणिना तस्या भाजन्नयनद्वयम् ।
या भषीः कालि मा रोदीरित्या तां तदाग्रहीत् ।।१६०
क्रोडोकृत्य सुतां तां तु हिमवानचलेश्वरः ।
स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयामास चादिताम् ।।१६१
अन्तर्हिते हरे काला विरहात् तस्य संततम् ।
निवसन्ती पितुर्गेहे शुशीह च मुमोह च ।।१६२
शलाधिरजोऽप्यथ मेनकापि मेनाकमुख्याऽषि सखीद्वय च ।
तां सान्त्वयांचक्ररदीनसत्वां हरं विसस्मार तथापि नोमा ।।१६३

उस शोकाकुल दशा में अपनी पुत्री के समीप पहुँच कर हिमाचल ने अपने हाथ से उसके दोनों नेत्रों का मार्जन करते हुए कहा था—हे काल ! डरो मत और रुदन भी मत करो—यह कहकर उसका ग्रहण कर लिया था ।१६०। अचलों के राजा हिमवान् ने उस अपनी पुत्री को अपनी गोद में बिठाकर अपने घर ले आये और उस को सान्त्वना दी ।१६१। भगवान शम्भु के अन्तर्धान हो जाने पर उनके विरह से युक्त होती हुई निरन्तर पिता के घर में निवास करती हुई भी बहुत चिन्तित हुई और मोह को प्राप्त हो गई ।१६२। शैलों के राजा, मेनका, मैंनाक और दोनों सखियों ने उस अदीनसत्व वाली को सान्त्वना दी थी तो भी उमा ने भगवान शम्भु का विस्मरण नहीं किया था ।१६३।

—×—

## ।। गौरी परीक्षा वर्णन ।।

अथ देवमुनिर्यातो हिमवन्मन्दिरं तदा ।
नियोजियो वलभिदा नारदः कामगः परम् ।।१
स गतः पूजिभितस्तेन धरेशेन महात्मना ।
त समुत्सृज्य रहसि कालीं तामाससाद ह ।।२
आसाद्य कालीं स मुनिः सम्बोध्य ज्ञानशालिनीम् ।
उवाचेद वचस्तथ्य सर्वेषां जगतां हितम् ।।३
श्रृणु कालि बचो मह्यं सत्यं तदवधारय ।
सेवितः स महादेवस्त्व तपसा बिना ।।४

अनुरक्तोऽपि तन त्वां महादेवो विसृष्टवान् ।
त्वामृते शकरो नान्यां द्वितीया संग्रहीष्यति ।।५
त्वं चापि नान्य दयित ग्रहीष्यसि विनेश्वरम् ।
तस्मात् त्वं तपसा युक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ।।६
तपसां संस्कृतां त्वां तु स द्वितीयां करिष्यति ।
मन्त्रोऽयं तस्य सुभगे श्रृणु त्वं येन सोऽचितरात् ।।७

इसके अनन्तर देवर्षि नारदजी जो अपनी इच्छा से ही परम गमन करने वाले थे इन्द्र के द्वारा नियोजित होते हुए उस अवसर पर हिमवान के मन्दिर में समागत हुए थे ।१। वे वहाँ पर अचल राज द्वारा पूजित हुए थे जो हिमवान महान आतमा वाले थे । उस हिमवान को छोड़कर वे देवर्षि एकान्त में उस काली के समीप गए ।१। उस मुनिवर ने काली के समीप पहुँच कर उस ज्ञाव शालिनी को सम्बोधित करके समस्त जगतों का हित करने वाला परम तथ्य वचन कहा था ।३। देवर्षि ने कहा—हे कालि ! मेरे इस वचन का श्रवण करो और उसको परम सत्य समझो । तुमने तपश्चर्या के बिना ही उन भगवान शम्भु की सेवा की हैं ।४। वे महादेव उससे अनुराग करने वाले भी हैं किन्तु महादेव ने तुमको त्याग दिया था । तुम्हारे बिना वे शिव दूसरी किसी को भी ग्रहण नहीं करेंगे ।५। और तुम भी ईश्वर के बिना अन्य किसी पति को ग्रहण नहीं करोगी । इस कारण से आप तपश्चर्या से संयुत होकर चिरकाल पर्यन्त महादेव जी की आराधना करो ।६। जब तुम तप से संस्कार वाली हो जाओगी तो वे तुमको अपनी पत्नी के रूप ग्रहण करेंगे । हे सुभ ! उसका यह मन्त्र है, आप श्रवण करिये जिसके द्वारा वह शीघ्र ही प्राप्त होंगे ।७।

आराधितस्ते प्रत्यक्षौ भविष्यति महेश्वरः ।
ॐ नमः शिवायेति च सर्वदा शंकरप्रियः ।।८
चिन्तयन्ती तु तद्रूपं नियमस्था षडक्षरम् ।
मन्त्रं जप त्वं गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धरः ।।९
एवमुक्ता तदा काली नारदेन महात्मना ।
कर्तव्यमनुमेये सा हित तथ्यञ्च तद्वचः ।।१०
अनुमान्य तपस्तप्तुं तथा कालीञ्च नारदः ।

स्वर्गं जगाम तस्याश्च निश्चिताभून्मतिर्व्रते ॥११

अथ याते देवमुनौ काली सासाद्य मेनकाम् ।

तपः श्रद्धां समाचख्ये चात्मनो हरसंगमे ॥१२

तपस्तप्तुं गमिष्यामि मात प्राप्तुं महेश्वरम् ।

अनुज्ञानीहि मां गन्तुं तपसेऽद्य तपोवनम् ॥१३

तपः करणयत्नं मे पितुरावेदय द्रुतम् ।

यावन्न दह्ये जननि भूतेशविरहाग्निना ॥१४

आराधना किये हुए वे महेश्वर आपको प्रत्यक्ष होकर दर्शन देंगे। 'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र सर्वदा भगवान् शङ्कर का प्रिय है ।८। आप उनके स्वरूप का चिन्तन करती हुई नियम में स्थित रहकर छह अक्षरों वाला जाने मन्त्र का आप जप करिए। हे गिरिजे ! इससे शिव सन्तुष्ट हो जायेंगे ।९। महात्मा नारदजी द्वारा यह कहे पर काली ने उस समय अपना कर्तव्य जान लिया था क्योंकि उनका वचन सर्वथा तथ्य और हितकर था ।१०। उस समय नारदजी काली को तपश्चर्या हेतु समुद्यत अनुमान कर स्वर्ग गमन निश्चय कर गये थे और उसकी बुद्धि व्रत करने में निश्चित हो गयी ।११। इसके अनन्तर देवर्षि के गमन करने पर काली मेनका के समीप पहुँची थी और मेनका के तप करने बतलाया था ।१२। काली ने कहा—हे माता ! मैं महेश्वर की प्राप्ति के लिए तप करने के लिए गमन करूँगी। आज तप के लिये तपोवन का गमन करने के लिए आप मुझे आज्ञा करिये ।१३। मेरे तप करने का निश्चय आप पिताजी से शीघ्र ही निवेदन कर दीजिए। हे जननि ! जब तक मैं भूतेश्वर के विरह की अग्नि से दग्ध न होऊँ इससे पूर्व ही मैं तप करना चाहती हूँ ।१४।

इति तस्या वचः श्रुत्वा मेनका शोककर्शिता ।

आलिंग्य स्वसुतामूचे मा तपः कुरु वल्लभे ॥१५

मृदुदेहासिपुत्रि त्वं मा तपो याहि कर्कशम् ।

तपः सोढुं मुनेगात्रि शक्तं ते न कलेवरम् ॥१६

वनवासश्च ते पुत्रि नेष्टः शत्रुगणैरपि ।

तस्मात् त्वं सम्परित्यज्य वनवासोद्भवं तपः ।

आत्मनो ह्यनुरूपेण तपस्तत् कुरु यद्धितम् ।।१७
मातुः स वचनं श्रुत्वा गिरिजा दीनमानसा ।
इत्यूचे च तदा वाक्यं तपोयत्नपरा प्रसूम् ।।१८
मा निषेध्य मां यास्ये तपसेऽद्य तपोवनम् ।
प्रच्चन्नमपि यास्यामि नानुज्ञाताप्यह त्वया ।।१९
गृहेषु देवाः सततं ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
तस्माद् गृहे पुत्रि देवानचय त्वं यथेप्सितान् ।।२०
स्त्रीणां तपोवनगतिर्नं श्रुता स्वामिना विना ।
तस्मान्न युज्यते पुत्रि तपोयात्रा वन प्रति ।।२१

काली के इस वचन का श्रवण करके मेनका शोक से कर्शित हो गयी थी। उसने अपनी पुत्री का आलिगन करके उससे कहा था—हे वल्लभे ! तपस्या मत करो ।१५। हे बेटी ! तुम्हारा शरीर बहुत ही कोमल है तपश्चर्या जैसे कठोर कर्म के लिए गमन मत करो तपस्या के कष्ट को सहन करने के लिए मुनियों का शरीर ही समर्थ होता है तुम्हारा शरीर क्लेश को सहन करने में क्षमता नहीं रखता है ।१६। हे पुत्रि ! आपका वन में निवास करना तो शत्रु गणों को कभी अभीष्ट नहीं है। इसी कारण से वन के तप का विचार का परित्याग कर दो। तुम्हारे शरीर के जो अनुरूप हो वही तप करो जो हित के सम्पादन करने वाला होवे ।१७। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस गिरिजा ने माता के वचन का श्रवण किया और वह हीन वाली गई थी । और वह तपस्या के यत्न में परायण हुई उस समय उसने माता से यह वचन कहा था ।१८। मुझे निषेध मत करो। मैं आज तप के लिए तपोवन गमन करूँगी । यदि आपके द्वारा मुझे आज्ञा नहीं दी गयी तो मैं छिपकर चली जाऊँगी ।१९। मेनका ने कहा—हे पुत्रि ! गृहों में ब्रह्मा—विष्णु और शिव आदि देवगण निरन्तर ही निवास किया करते हैं। इस कारण से तुम जो भी देव अभीष्ट हो उनका घर में ही अभ्यर्चन करो ।२०। अपने स्वामी से रहित होकर स्त्रियों की तपोवन में गति का होना कभी भी नहीं सुना गया है। इस कारण से है पुत्रि ! वन की ओर गमन करके तपश्चर्या का यात्रा करना उचित नही प्रतीत होता है ।२१।

यतो निरस्ता तपसे वनं गन्तुं च मेनया ।

उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती ॥२२

अवज्ञाय तदा मातुर्वचनं हिमवत्सुता ।

सखीभ्याँ ज्ञापयामास पितरं तपसोद्यमम् ॥२३

स तु ज्ञात्वा गिरिपतिस्तपसे चरितोद्यमम् ।

दुहितुश्चानुमेने च नातिहृष्टमना इव ॥२४

सानुज्ञाप्य तदा तातं यत्र दग्धो मनोभवः ।

शम्भुना प्रययौ तत्र गंगावतरण प्रति

गंगावतरण नाम प्रस्थो हिमवतः स च ।

हरशून्योऽथ ददृशे काल्या तच्चिन्तया तदा ॥२७

यत्र स्थित्वा पुरा शम्भुर्ध्यानवानभवद् भृशम् ।

तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ॥२८

हा हरेति क्षण तत्र रोदमाना गिरेः सुता ।

विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ॥२९

क्योंकि मेनका के द्वारा तपस्या के लिए वन में जाना निरस्त कर कर दिया था अर्थात् निषेध कर दिया गया था उस समय में सती उमा ने सोमा—यह नाम प्राप्त कर लिया था ।२२। उस अवसर पर हिमाचल की पुत्री ने माता के वचन की अवज्ञा करष्ट सखियों के द्वारा तप करने का उद्यम पिता को ज्ञापित किया था ।२३। उस गिरियों के स्वामी ने तप के लिए समाचरित उद्यम का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न मन वाला न होते हुए ही अपनी पुत्री को अनुति दे दी थी ।२४। उसी समय सती ने पिता को अनुज्ञापित करके जहाँ पर कामदेव शम्भु के द्वारा दग्ध किया गया था उसी गङ्गावतरण की ओर वह चली गयी ।२५। गङ्गावतरण काली ने भगवान् हर के रहित ही देखा था। उस समय में उसकी चिन्ता से संयुत हो गयी थी ।२५। पहिले जहाँ स्थित होकर शम्भु बहुत ध्यान वाले हुए थे। उस क्षण वह काली स्थित होकर वहाँ पर विरह से पीड़ित हो रही थी ।२७। गिरि की पुत्री वहाँ पर 'हाहा—कहती हुई चिन्ता और शोक से समन्वित तथा अत्यन्त दुःख से पीड़ित हो विलाप करने लगी थी ।२८।

क्षणं बिलप्य सा काली स्मृत्वा पूर्वोद्भवं तदा ।

हार्दं हरस्य सा मोहमवाप कमलेक्षणा ।।२६
ततेश्चिरेण सा मोहं धैर्यात् संस्तभ्य भामिनी ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत् सुता ।।३०
प्रथमं नियमस्तस्या बभूव फलभोजनम् ।
चर्या पंचायता चिन्ता शाम्भवो शाम्भवो जपः ।।३१
यज्ञियैर्दारुभिः शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कृतम् ।
वह्निसंस्थापनं ग्रीष्मे तीव्रांशुस्तव पंचगः ।।३२
हस्तान्तरे चतुर्वह्नीन् कृत्वा वैश्वानरेष्टिना ।
तन्मध्यस्था सूर्यविम्बं वीक्षन्ती वल्कलांशुका ।।३३
ग्रीष्मं निन्ये वह्निमध्ये शिशिरे तोयवासिनी ।
प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं तोयभोजनम् ।।३४
तृतीयं तु स्वयम्पाति-वृक्षपल्लव-भोजनम् ।
क्रमेण तु तदा पूर्णं निरस्य हिमवत् सुता ।।३५

क्षण भर तक काली ने विलाप किया था फिर उसी समय में उसको पूर्व उद्भव का स्मरण हो गया था । कमलों के समान नेत्रों वाली उमा ने हर के हार्द को और मोह को प्राप्त किया था ।२६। इसके पश्चात् चिरकाल उस भामिनी ने धीरतासे मोह का संस्तम्भन किया था और वहीं पर नियम के लिए वह हो गयी थीं और हिमवान् की सुता नियम के लिए दीक्षित हो गई थी ।३०। उसका प्रथम नियम फलों का ही भोजन करके रहना था। पञ्च अग्नियों की तपस्या ही उसकी चर्या थी—शम्भवी अर्थात् शम्भु से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ता थी तथा सम्बन्धित जप था ।३१। यज्ञिय अर्थात् यज्ञ में काम आने वाले सूखे हुए काष्ठों से चारों दिशाओं में चार जगह वह्नि की स्थापना ग्रीष्म में की थी और वहाँ पर पाँचवाँ सूर्य थे ।३२। एक हाथ के अन्तर पर चारों वह्नियों की स्थापना करके जो कि वैश्वानर की दृष्टि के द्वारा की गई थी । उनके मध्य में स्थित होती हुई वल्कलों के वस्त्रों वाली सूर्य के विम्ब का वीक्षण करती थी ।३३। ग्रीष्म ऋतु को अग्नि के मध्य में और शिविर में वह जल से वास करने वाली हुई थी । प्रथम समय फलों के द्वारा और द्वितीय समय केवल जल से व्यतीत किया था।

तीसरा समय वृक्षों के गिरे पत्तों का भोजन करके व्यतीत किया था। उस समय हिमवान् की पुत्री ने क्रम से पत्रों को भी छोड़ दिया।३४-३५।

निराहारव्रता भूत्वा तपश्चरणखिन्नका।
आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ॥३६
तेन देवैरपर्णेति कथिता पृथिवीतले।
पंचातपव्रतैनव तोयानाञ्च प्रवेशनैः ॥३७
एकापादस्थिता स तु वसन्ते हिमवत्सुता।
षडक्षरं जपन्ती सा चिरं तेपे तपो महत् ॥३८
चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी।
कृशागी चिन्तने शक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥३९
तां तपश्चरणे शक्तां ररक्ष शंकरः स्वयम्।
आप्यायति स्म स तदा भयाद्रक्षति हर्शितः ॥४०
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम्।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ॥४१
षटत्रिवर्षसहस्राणि संस्कृता वीक्षणात् स्वयम्।
दैवेन विधिना देवी हरयोग्या तथाभवत् ॥४२

बिना आहार के व्रत वाली होकर वह तपश्चरण से क्षीण हो गई क्योंकि हिमवान् की पुत्री ने आहार में पर्णों का भी त्याग कर दिया था।३६। इसी से देवी ने पृथिवी तल में उसको अपर्णा कहा था। पाँच अग्नियों के ताप व्रत से और जल में प्रवेशों के द्वारा— उसने तप किया था।३७। वह हिमाचल की पुत्री वसन्त से एक ही पाद से स्थित हुई थी। छह अक्षरों वाले मन्त्र का जप करती हुई उसने चिरकाल महान् तप का समाचरण किया था।३८। वह चीरों और वल्कलों से शरीर को ढांपने वाली थी। वह जटा-जूटों के समूह रखने वाली थीं उसके सब अंग कृश हो गये थे वह चिन्तन करने में शक्त थी। उसने ऐसा तप किया था कि मुनियों को भी भीत लिया।३९। उस तपस्या के समाचरण में उसकी रक्षा स्वयं भगवान् शम्भु ने की थी। वे भगवान् शम्भु उसको सदा ही आप्यायित करते थे और हर्षित होकर उसकी भय से भी रक्षा किया करते थे।४०। इस प्रकार से

काली को तपोवन से तीन सहस्र वर्ष हो गये थे ।४१। तिरेषठ सहस्र वर्ष हुए तब वह स्वयं वीक्षण से संस्कृत हो गई थी । दैव विधि के द्वारा वह देवी हर के योग्य हो गई थीं ।४२।

षट्त्रिवर्षसहस्रान्ते यत्र तेपे तपो हरः ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिन्तयामास भामिनी ।।४३
नियमस्थां महादेवः मां किं जानाति नधुना ।
येनाह सुचिरं तेन नानुज्ञाता तपोरता ।।४४
लोके नास्त्यत्र गिरिशः कि तत्र मुनिभिः स्तुतः ।
सर्वज्ञः सर्वगो देवो हरो देवैर्निगद्यते ।।४५
स सर्वगस्तु सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वहृद्गतः ।
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावनभावनः ।।४६
सती च मेनका माता यदि चाहं वृषध्वजः ।
सानुरक्ता नचान्यस्मिन् स प्रसीदतु शंकरः ।।४७
यदि नारदवक्त्रोस्थो मन्त्रोऽयं स्यात्षडक्षरः ।
यदि भक्त्या मया जप्तं हरस्तेन प्रसीदतु ।।४८
सत्यं यदि तपस्तप्तं सत्यं चाराधितो हरः ।
सत्यं भवेद् यदि तपो हरस्तेन प्रसीदतु ।।४९

तिरेषठ सहस्र वर्षों के अन्त में जहाँ पर भगवान् शम्भु से तपस्या की थी, वहाँ पर क्षण भर स्थित होकर भामिनी ने चिन्तन किया था ।४३। महादेव क्या इस समय नियमों में संस्थित मुझको नहीं जानते हैं जिस कारण से बहुत अधिक काल पर्यन्त तप में रत हुई मुझे अनुज्ञान नहीं किया है ।४४। क्या मुनियों के द्वारा स्तवन किये गये गिरिश लोक में यहाँ पर नहीं है । देवी के द्वारा तो हर सब कुछ के ज्ञान रखने वाले—सर्वत्र गमन करने वाले देव कहे जाया करते हैं ।४५। वह सर्वत्र गामी, सर्वज्ञाता सबकी आत्मा, सबके हृदय में रहने वाले, सबसे विभूति प्रदाता और सर्व भावनों के भी भावन देव हैं मैं सती और मेरी माता मेनका है । यदि मैं वृषभध्वज में अनुराग से युक्त हूँ और अन्य में मेरा अनुराग नहीं है तो वे शंकर मुझ पर प्रसन्न हो जावें ।४६-४७। यदि नारद के मुख से निकला हुआ छह

अक्षरों वाला मन्त्र वाला मन्त्र भक्ति भाव से मैंने जप किया है तो इससे हर मुझ पर प्रसन्न हो जावें ।४८। यदि वास्तव में मैंने सत्य तप किया है और सत्यतापूर्वक मैंने हर की आराधना की है, यदि तप सत्य है तो इससे भगवान् हर मुझ पर प्रसन्न हो जावें ।४९।

एवं विचिन्तयन्ती सा यदातिष्ठद्धराश्रमे ।
अधोमुखी दीनवेशा जटावल्कलमण्डिता ।।५०
तदैव ब्राह्मण: कश्चिद् ब्रह्मचारी धृतव्रत: ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण धृतदण्डकमण्डलु: ।।५१
ब्राह्मचाश्रिया दीप्यमान: स्वगौश्च सुशोभन: ।
जटाभि: परिवीताभिरुद्रिक्तस्तनुदेहभृत् ।।५२
उपस्थितस्तदा काली शम्भुर्ब्राह्मणरूपधक् ।
आसाद्य प्रथम कालीं समाभाष्य तदा द्विज: ।।५३
ज्ञातु प्रत्यक्षतो राग श्रोतुमिच्छश्च तद्वच: ।
वाग्मी विचित्रवाक्येन पप्रच्छ गिरिजां तदा ।।५४
का त्व कस्यासि कल्याणि किमर्थं विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धष मुनिभि: प्रयतात्ममि: ।।५५
न बाला त्वं नापि वृद्धा तरुणी चातिशोभिना ।
कथ पतिं विनाभीक्षण तपश्चरसि साम्प्रतम् ।।५६

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह काली इस प्रकार से विशेष चिन्तन करती हुई जब भगवान् के आश्रय में संस्थित हुई थी जिसका मुख नीचे की ओर था दीन वेश था और वह जटा तथा वल्लकों से मण्डित थी ।५०। उस समय में कृष्ण मृग की छाला के उत्तरीय से शोभित, कमण्डलु और दण्ड धारण किये हुए, ब्रह्मी श्री से देदीप्यमान स्वगौ और परम शोभन ब्रह्मचारी परिवीत जटाओं से उद्रिक तनु को धारण करने वाले शम्भु उसी समय काली के समीप उपस्थित हो गये थे । काली के पास पहुँच कर उस द्विज ने उससे सम्भाषण किया था ।५१-५२। उस समय प्रत्यक्ष रूप से अनुराग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए और उसके मुख से वचन का श्रवण करने के लिए इच्छा करते हुए उस वाग्मी ने विचित्र वाक्य के द्वारा गिरिजा से

पूछा था ।५३-५४। ब्राह्मण ने कहा—हे कल्याणि ! आप कौन हैं और किसकी पुत्री हैं ? इस विजन वन में किसलिए प्रयतात्मा मुनियों के साथ यह दुर्धर्ष तप कर रही है ? ।५५। आप न तो बाला हैं और न वृद्धा ही है। आप तो अत्यन्त शोभन तरुणी हैं। बिना पति के निरन्तर क्यों यह इस समय में तपस्या कर रही हैं ।५६।

किंवा तपस्विनी भद्रे कस्यचित् सहचारिणी ।
तपस्विनः स पुष्पादि समाहर्तुं गतोऽन्यतः ।।५७
एतन्मम समाचक्ष्य यदि गुह्यं भवेन्न ते ।
यदि ते हृदये मन्युः कच्चिद्वसति सम्प्रति ।
तदाचक्ष्य समर्थोऽस्मि तमहं चापि वारितुम् ।।५८
इत्युक्त्वा तेन वि ण गिरिजाथ निजां सखीम् ।
तस्योत्तरप्रदानाय कटाक्षेण न्ययाजयत् ।।५९
सा सखी विजया तस्या वचनाद् ब्राह्मणं तदा ।
प्रावाचेदं यथातथ्यं बाक्षन्ती गिरिराजमुखम् ।।६०
एतस्त गिरिराजस्य तनयेयं द्विजोत्तम् ।
ख्याता च पार्वतीनाम्ना कालीति च सुशोभना ।।६१
ऊचे यन्न च केनापि शकरं वृषभध्वजम् ।
वाञ्छन्ती दयित तीव्रं तपश्चरति वै पतिम् ।।५२
त्रीणि वर्षसहस्राणि तपश्तपति भामिनी ।
न शंकरो गिरिसुतामद्याप्यभ्युपद्यते ।।६३

हे भद्रे ! अथवा क्या किसी तपस्वी की पत्नी हैं वह यपस्वी पुष्पादि का समाहरण करने के लिए जहाँ से अन्य स्थल में चले गये हैं ? यदि आपकी कोई गोपनीयता न हो तो यह मुझे आप सब बतलाइए। यदि आपके हृदय में उस समय में कोई क्रोध हो तो यह सब मुझे बतलाइये। मैं उसको भी हटाने के लिए समर्थ हूँ ।५७-५८। उस विप्र के द्वारा इस रीति से कही हुई गिरिजा ने अपनी सखी को उसको उत्तर ,देने के लिए कटाक्ष द्वारा नियोजित कर दिया था ।५९। विजया सखी उस समय उसके वचन से गिरिजा के मुख को देखती हुई यथा तथ्य बोली ।६०। हे द्विजोत्तम ! यह

इसी गिरिराज की पुत्री है और यह पार्वती—नाम से प्रख्यात है और काली के नाम से भी प्रसिद्ध है।३१। यह किसी भी द्वारा कहीं नहीं गयी है। यह वृषभध्वज शङ्कर को अपना दयित पति चाहती हुई तीव्र तप का समाचरण कर रही है ।६२। तीन सहस्र वर्ष हुए यह भामिनी तपस्या कर रही है किन्तु भगवान् शङ्कर इस गिरिराज की पुत्री को प्राप्त नहीं हो रहे हैं।६३।

शंकरा गिरिशो देवः सर्वगः परमेश्वरः।
इति स्म गद्यते देवैर्मुनिभिश्च तपोधनैः ॥६४
किमेनां स न जानाति कि सानौ नास्ति वा गिरेः।
इति चिन्ताविषण्णेयमद्य नो लभते सुखम् ॥६५
अप्राथितस्त्वमनया दयसे यदि वा सुखम्।
तदना शकतेणाद्य त्वं संगमय सुव्रत् ॥६६
इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मचारी तदा द्विजः।
समयमान इद वाक्यं हेलयोवाच पार्वतीम् ॥६७
अमोघदर्शनश्चास्मि हरं चानुयितुं क्षमः।
किन्त्वेकं निगदाम्यद्य निश्चित मन्मतं ॥६८
जानाम्यहं महादेव तं वदामि शृणुष्व मे।
वृषध्वजो महादेवी भूतिलेपी जटाधरः ॥६९
व्याघ्रचर्मांशुकश्चकः संवीतो गणकृत्तिना।
कपालधारी सर्पौघैः सर्वगात्रेषु वेष्टितः ॥७०

भगवान् शङ्कर सर्वत्र गमन करने वाले परमेश्वर देवों—मुनिगणों और तपस्वियों के द्वारा कहे जाया करते हैं।६४। क्या वे इसको नहीं जानते हैं क्या वे पर्वत के शिखर पर विराजमान नहीं हैं ? यह आज इसी चिन्ता में दुःखित है और इसको सुख प्राप्त नहीं हो रहा है।६५। इसमें आपसे प्रार्थना नहीं की है। यदि आप दया करते हैं अथवा इसको सुख देने की कृपा करते हैं हे सुव्रत ! आप भगवान शङ्कर से इसका संगम कर दीजिए।६६। उस समय में द्विज ब्रह्मचारी ने उस समय उसके इस वचन का श्रवण करके मुस्कराते हुए ही हेला से उस पार्वती को यह वचन बोला था।६७।

ब्राह्मण ने कहा—मैं अमोघ दर्शन वाला हूँ और मैं भगवान् हर को लाने के लिए भी समर्थ हूँ। किन्तु मैं आज एक बात कहता हूँ—मेरा निश्चित मत का श्रवण करिये।६८। मैं महादेवजी को जानता हूँ मैं उनको बोल भी दूँगा किन्तु मुझसे सुन लो वृषभध्वज महादेव विभूति के वेष वाले हैं और जटाधारी हैं।६६। वे बाघम्बर के वस्त्र धारण करने वाले, एकाकी और गज के चर्म से ढके हुए रहते हैं। वे कपालों को धारण करते हैं तथा सर्पों के समुदायों से वेष्टित रहा करते हैं।७०।

विषदग्धगलस्त्र्यक्षो विरूपाक्षो विभीषणः ।
अव्यक्तजन्मा सततं गृयभोगविवर्जितः ।।७१
ज्ञातिभिर्बान्धवैर्हीनो भक्ष्यभोज्यविवर्जितः ।
श्मशानवासी सततं तत्संगपरिवर्जितः ।।७२
गर्जद्भिर्विकटैस्तीक्ष्णैर्भूतौघैः परिवारितः ।
शृंगाररसहीनश्च भार्यापुत्रविवर्जितः ।।७३
केन वा कारणेन त्व भर्तार तं समीहसे ।
पूर्व श्रुतं मया चैव तस्यापरमिदं कृतम् ।।७४
शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते गृह्ण रोचते ।
दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ।।७५
वव्रे पति पुरा दैवात् सम्भोगपरिवर्जितम् ।
कपालिजायेति सती दक्षेत्र परिवर्जिता ।।७६
यज्ञभागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जितः ।
साथ तेनापमानेन भृश शोकाकुला सती ।।७७

उन शम्भु का गला विष से दग्ध हो रहा है उनके तीन नेत्र हैं—वे विरुपाक्ष है और विभीषण हैं अर्थात् विशेष रूप से भयंकर हैं। उनका जन्म भी अव्यक्त है अर्थात् उनके जन्म से विषय में कुछ भी किसी को ज्ञान नहीं हैं वे निरन्तर गृहस्थाश्रम के भोग्य से रहित हैं।७१। शंकर ज्ञातिजन तथा बन्धुजनों से हीन हैं और भक्ष्य भोज्य से भी वर्जित हैं। शम्भु निरन्तर श्मशान में निवास करने वाले हैं और संग से परिवर्जित रहा करते हैं।७२। गर्जन करने वाले, विकृत स्वरूपधारी और तीक्ष्ण भूत गणों से सदा घिरे

हुए रहा करते हैं । शंकर शृंगार रस से रहित हैं तथा उनके न कोई भार्या है और न पुत्रादि ही हैं ।७३। अथवा किस कारण से आप उनको अपना भर्ता बनाना चाहती हैं । मैंने पूर्व में होने वाला भी उनका एक दूसरा कृत्य सुना है ।७४। आप उसका श्रवण करिए मैं आज आपको बतलाता हूँ। यदि आपको अच्छे लगे तो ग्रहण कीजिए। प्रजापति दक्ष की पुत्री सती परम साध्वी थी उसने पहिले वृषभ वाहन को अपना पति वरण किया था। यह भाग्य की ही बात थी वह पति सम्भोग से रहित थे। यह तो कपाली की जाया है इसी से वह सती दक्ष के द्वारा परिवर्जित कर दी गयी थी ।७५-७६। यज्ञ में भाग लेने के लिए शम्भु को भी वर्जित कर दिया गया था। उसी अपमान के होने से सती अत्यधिक शोक से आकुल हो गई थी ।७७।

तत्याज स्वां प्रियां प्राणास्तया त्यक्तश्च शंकर ।
त्वं स्त्रीरत्नं तव पिता राजा निखिल भू भृविताम् ।।७८
तथाविधं पतिं कस्मादुग्रेण तपसेहसे ।
देवेन्द्रो वा धनेशो वा पवनो वाप्यपांपतिः ।।७९
अग्निर्वाऽन्यः सुरो वापि स्वर्मेद्यावश्विनावपि ।
विद्याधरो वा गन्धर्वो नागो वा मानुषोऽथ वा ।।८०
रूपयौवनसम्पन्नः समस्तगुण संयुतः ।
सते योग्यः पतिः श्रीमानुदारकुलसम्भवः ।।८१
येन त्वं बहुरत्नौघ-पूरितेऽतर्घविस्तृते ।
माल्यप्रकरसंयुक्ते धूपचूर्णैः सुवासिते ।।८२
मृद्धास्तरणसस्ते विस्तृते सुमनोहरे ।
चारुप्रासादगर्भस्थे जाम्बूनदविचित्रिते ।।८३
शय्याप्तते समासंद्य स योग्यस्ते भवेत् पतिः ।
एवं ज्ञात्वाऽद्य सुभगे यदि वाञ्छसि शंकरम् ।
किं ते तपोभिः सुतरामह तं योजने त्वया ।।८४

उस सती ने अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग कर दिया था भगवान् शंकर भी त्याग कर दिए गये थे। आप तो स्त्रियों में रत्न के ही समान अत्युत्तम हैं। आपका पिता हिमवान् सभी पर्वतों का राजा है ।७८। फिर किस कारण से उस प्रकार के पति के प्राप्त करने की इस उम्र में तप

के द्वारा इच्छा कर रही हैं ? देवों का स्वामी–धनेश–पवन–वरुण—अग्नि अथवा स्ववैद्य अश्विनी कुमार विद्याधर—गन्धव—नाग अथवा मानुष जो भी रूप और यौवन से सुसम्पन्न हो और समस्त गुण गण से समन्वित हो ऐसा ही उदार कुल में समुत्पन्न होने वाला श्री सम्पन्न आपका पति योग्य है ।७९-८१। जिसके द्वारा आप बहुत रत्नों के समूह से पूरित—बहुमूल्य माल्य प्रवरों से संयुत धूप के चूर्णों से सुवासित—कोमल आस्तरण से समन्वित—सुमनोहर सुविस्तृत–सुरम्य प्रासाद के मध्य में स्थित सुवर्ण के द्वारा विशेष रूप से चित्रित शय्या के बल में समासादन—करके संस्थित रहने वाला ही आपका योग्य पति होगा। हे सुभगे ! इस भाँति ज्ञान प्राप्त करके भी यदि आप शंकर को ही अपना पति बनाना चाहती हैं तो फिर आपको इन तपस्याओं से क्या प्रयोजन है मैं अपने आप ही उनके साथ योजित किये देता हूँ ।८२-८४।

इति श्रुत्वा तदा काली ब्राह्मणस्योत्तर तदा ।
मित तथ्यं जनार्दन ब्राह्मणं कोपसंयुता ।।८५
न जानासि हर देवं जानामाति भाषसे ।
बहिर्यद् दृश्यते तत्ते कथितं द्विजनन्दन ।।७६
यस्य भावं न जानन्ति सेन्द्रा ब्रह्मादयः सुराः ।
तस्य त्वं विप्रतनय शिशुर्ज्ञास्यसि किं भवम् ।।७७
यच्छ्रुत भवता नाचवदनाद् भाषितं लघु ।
इतस्ततस्तु श्रुष्वैव भाषसे त्वं न दृष्टवान् ।।८८
तस्मात् त्वत्ता वर नाहं वाञ्छये नापि वा पतिम् ।
अन्यद् वर न च त्वतो वाञ्छये हरसंगमम् ।।८९
इत्यक्त्या गिरिजा विप्रभवलोक्य सुखोमुखम्
इदमाह तदा काली सशयारूढ़चेतना ।।९०
महता चिन्तनेनेह तपसाराधिरा हरः ।
तन्ममाग्रे विप्रसुतो निन्दितुं वाक्यमुक्तवान् ।।९१

यह सुनकर काली क्रोधित हुई। इस ब्राह्मण को उसने उत्तर के रूप में बहुत ही अल्प और तथ्य कहा था ।८५। काली ने कहा—तुम देवेश्वर हर

को नहीं जानते हो—व्यर्थ ही यह कहते हो कि मैं जानता हूँ। हे द्विज-नन्दन ! जो कुछ बाहिर दिखलाई देता है वही आपने कह डाला है ।८६। जिन प्रभु के भाव को इन्द्रादि और ब्रह्मा, प्रभृति सुर भी नहीं जानते हैं। उनके भाव को तुम शिशु होते हुए हे विप्रसुत ! क्या जान सकोगे ।८७। आपने जो भी नीचों के मुख से भाषित सुना है वह बहुत तुच्छ है। आप इधर-उधर से सुनकर ही ऐसा भाषण कर रहे हैं। आपने उनका कभी भी दर्शन नहीं किया है ।८८। इस कारण से मैं आपसे वरदान नहीं चाहती हूँ और न पति के विषय में जानना चाहती हूँ अब आप अन्य कुछ भी नहीं बोलिए। मैं आपके द्वारा हर की सङ्गम प्राप्त करना नहीं चाहती हूँ ।८९। गिरिजा ने उन विप्र को इतना ही कहकर अपनी सखी का मुख देखकर उस अवसर पर संशय में समारूढ़ होकर यह कहा था कि बहुत अधिक चिन्तन द्वारा तपश्चर्या करके भगवान् शम्भु की आराधना की है। यह विप्रसुत मेरे ही आगे उनकी निन्दा करने के लिए वाक्य बोला है ।९०-९१।

तदहै चापनेष्याभि स्तुतिवाक्येन साम्प्रतम् ।
महात्मनां च यो निन्दां शृणोति कुरुतेऽथवा ॥९२
तयोरागः समं पूर्वं मया तातमुखाच्छ्रुतम् ।
तस्मात्तदपनेष्मेऽहं तन्निषेधय विप्रकम् ॥९३
इत्युक्त्वा सा सखी काली शम्भुसंगतमानसा ।
आगः समार्जनाभु हरे स्तोतुमुपाक्मत ॥९४
नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वरः ॥९५
विज्ञानसौभाग्यसुहृद्गताय ते
प्रपञ्चहीनाय हिरण्यवाहवे ।
नमोऽस्तु नारायणपद्मसम्भव
प्रधानवीजाय जगद्धिताय ते ॥९६
इति स्तुवन्तीं पुनरेव स द्विज—
स्तदा वचः किंचिदुदीरितु पुनः ।
समीक्ष्न कालीमकरोत् सयत्नकं

बुद्ध्वा समाचष्ट सखी गिरेः सुता ।।६७

अयं द्विजः किंचन वस्तुमिच्छ-
त्युग्रं हरं चापि न संविदानः ।
निन्दन्नहि प्राणहरो हरस्य
निन्दामहं श्रोतुमिह क्षमामि ।।६८

इसलिए में इस समय स्तुति वाक्य के द्वारा उसका अलम करूँगी। जो भी कोई महान् आत्मा वालों की निन्दा का श्रवण करता है अथवा बुराई किया करता है उन दोनों का अपराध समान ही होता है—ऐसा मैंने अपने पिताजी के मुख से पूर्व में श्रवण किया है। इसी कारण से मैं इसको दूर करूँगी सो इस विप्र को निषेध कर दो अर्थात् रोक दो ।६२-६३। उस काली ने यह सखी से कहकर अपराध के सम्मार्जन करने के लिए भगवान् शम्भु का स्तवन करना आरम्भ कर दिया ।६४। काली ने कहा—शान्त और कारण त्रय के हेतु अर्थात् सृष्टि–स्थित और संहार इन तीनों के कारण स्वरूप शिव के लिए नमस्कार है। हे परमेश्वर ! मैं अपने आपको निवेदन करती हूँ और आप ही मेरी गति हैं ।६५। विज्ञान—सौभाग्य और सुहृत में गत–प्रसञ्च से रहित–हिरण्य बाहु–नारायण के नाभि पद्म से समुत्पन्न प्रधान बीज—जगत् के हित रूप आपके लिए नमस्कार ।६६। इस भाँति स्तवन करती हुई उसको यह द्विज पुनः उस समय कुछ कथन करने के लिये उद्यत होने वाला है यह समीक्षण करके काली को सयत्न कर दिया था और गिरिराज की पुत्री ने समझ करके सखी से कहा था ।६७। यह द्विज कुछ कहना चाहता है और उग्र हर को नहीं जानता। अतएव यह उनकी निन्दा कर रहा है। किन्तु मैं प्राणों के हरण करने वाली शिव की निन्दा सुनने में समर्थ नहीं हूँ ।६८।

यावद् भूरिवचोऽस्याह न श्रृणोम्यधुना सखि ।
गच्छामि यावद् दूराय समुत्तिष्ठामि मतप्रिये ।।६६
इत्युक्त्वा सा तया सख्या सहिता हिमवत्सुता ।
प्रतस्थेऽथ समुत्थाय तमुत्सृज्य द्विजं हठात् ।।१००
अथ शम्भुरिजं रूपमास्थाय हितवत्सुताम् ।
तं समुत्सृज्य गच्छन्तीं हरः स्मेरमुखोऽन्वयात् ।।१०१

अहं हरो महादेवो मां संस्तौषि न चाधुना ।
सम्मुखीभव हे कालि समाश्वासय शङ्करि ॥१०२
इत्युक्त्वा स महादेवो गच्छन्त्याः पुरवो गतः ।
प्रसार्य हस्तौ काल्यास्तु गतिं तस्या विरोधयन् ॥१०३
स वीक्ष्य शम्भुवदनं तत्क्षणादभवद्धठात् ।
अधोमुखी तडिद्वातचकितेव गिरेः सुता ॥१०४
मन्दाक्षं प्रीतिलज्जाभिः सा जडेव तदाभवत् ।
वक्तुं च नाशकत् किंचिन्द्विवक्षुरपि भामिनी ॥१०५

हे सखी ! इस समय जब तक इसके बहुत वचनों का श्रवण नहीं करूँ तब तक मैं दूर देश को गमन करती हूँ हे मतिप्रिये ! वहाँ पर दूर देश में समुपस्थित रहूँ ।९९। इतना कहकर वह काली हिमवान् की पुत्री उसी सखी के सहित प्रस्थान कर गयी थी और उस द्विज को हठात् छोड़कर उठ कर चली गयी थी ।१००। इसके अनन्तर निज रूप प्रकट होकर शंकर ने रुदन करती हुई हिमवान् की सुता के पीछे गमन किया था ।१०१। शिव ने कहा—मैं ही महादेव हूँ और हर हूँ ! अब आप मेरा स्तवन नहीं करती है। हे कालि ! हे शांकरि मेरे सम्मुख होकर मुझे समाश्वासित करो ।१०२। इतना कह वे यहादेव काली के आगे गमन कर उपस्थित हो गये थे । उन्होंने दोनों हाथों को फैलाकर उस काली की गति का अवरोध किया था ।१०३। वह गिरिराज की बेटी शम्भु के मुख को देखकर उसी क्षण बरवस नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी जिस तरह से वायु से चकित तडित् हो जाया करती है ।१०४। प्रीति की लज्जा से मन्द नेत्रों वाली होते हुए उस समय में जड़ की ही भाँति हो गई थी । वह भामिनी बोलने की इच्छा वाली होती हुई भी बोलने में समर्थ न हो सकी थी ।१०५।

मनोरथानां सिद्धया तु सुधाभिरिव तूरितम् ।
शरीरमभवत्तस्या मुदा पूर्णं द्विजोत्तमाः ॥१०६
षट्त्रिवर्षसहस्रैस्तु तपः क्लेशमविन्दत ।
यत्तं क्षणात् समुत्सृज्यसम्मोदमुदिताभवत् ॥१०७
तां च वीक्ष्य तथाभूतां प्रणयाम् वृषभध्वजः ।

कामेन भस्मरूपेण गात्रस्थेन च मोहितः ॥१०८

अथ तां विरहोद्रिक्तः समेत्य वृषभध्वजः ।

सम्बोधयन्निद चाटुबचन प्रोक्तवान् मुदा ॥१०९

न तु सुन्दरि मां वस्तु किंचनापि त्वमोहसे ।

तपः क्लेश स्मरन्ती कि मह्यं कुष्यसि साम्प्रतम् ॥११०

अह च परितुष्यामि स्वामृते सुभगे मम ।

समयाद् यत् समारब्धं तपस्तष्तु त्वया हमम् ॥१११

सानुरक्तोऽथं संस्कृत्य भविष्यामि त्वया प्रिये ।

अधुना समतीतो मे यः कृतः समयो मय ॥११२

हे द्विजोत्तमो ! मनोरथों की सिद्धि हो जाने से उनका शरीर सुधा से पूरित के समान हो गया था और आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था ।१०६। नौ सहस्र वर्ष तक उस काली ने तपश्चर्या का क्लेश प्राप्त किया था । किन्तु उसी क्षण में उस सम्पूर्ण क्लेश का त्याग करके वह आनन्द से हर्षित हो गई थी ।१०७। उस प्रकार से आस्थित उसकी प्रणय वाली देखकर वृषसध्वज भस्मी भूत कामदेव के द्वारा जो कि गात्र में विद्यमान था मोहित हो गये थे ।१०८। इसके अनन्तर विरह से उद्रित्क होकर वृषभध्वज साथ में आकर सम्बोधन करते हुए आनन्द से यह चाटु वचन कहने लगे थे ।१०९। हे सुन्दर ! क्या मुझसे कुछ भी कहना नहीं चाहती हैं ? तप के क्लेश का स्मरण करती हुई क्या इस समय में मुझ पर कुपित हो रही हैं ।११०। हे सुभगे ! तुम्हारे विना मैं परितप्त हो रहा हूँ । मेरे समय से जो आपने तपश्चर्या करने का समारम्भ किया था ।१११। हे प्रिये ! मैं अनुराग से युक्त हूँ । मैं संस्कार करके तुम्हारे साथ होऊँगा । मैंने जो प्रण किया था, व्यतीत हो गया ।११२।

तपसे भवती चापि तपसैव सुसंस्कृता ।

सच्चिन्तनेन जप्येन तीव्रे णतपसा तदा ।

मूल्येन महता क्रोतो दासोऽहं मां नियोजय ॥११३

त्वदगानां संस्करणे जटानां च प्रसाधने ।

प्रमुच्य बल्कलं गात्राच्चावंशुकनिवेशने ॥११४

हारनूपुरकेयूरकांच्यादिपरिधापने ।
द्रुतं नियोजय शुभे यदि स्नेहोऽति माद्दशि ।।११५
निर्दग्धो यो मया कामो भस्मरूपेण मत्तानी ।
स्थितो नां प्रतिकृत्येव त्वदग्रे दग्धुमिच्छति ।।११६
तस्मादुद्धरं मां कामादानेरिव मनोहरे ।
त्वदंङ्गामृतदानन प्रसोद दयिते मम ।।११७

आप भी तप के लिये समुद्यत हुई थीं और उस तप से ही आप भली भाँति संस्कृत हो गयी हैं । आपने भली-भाँति चिन्तन किया—तीव्र जप किया और सदा तप किया था । आपने यह सब करके बड़ी भारी कीमत के द्वारा मुझे खरीद लिया है । अब मैं आपका दास हो गया हूँ मुझे नियोजित कीजिए ।११३। आप अपने अङ्ग-संस्कार करने—जटाओं के प्रसाधन में मेरा नियोजन करें । शरीर से वत्कल को हटाकर सुन्दर वस्त्रों का निवेशन करने में—हार नुपूर और काञ्ची आदि के परिधान करने में हे शुभे ! शीघ्र ही नियोजन करिए यदि मुझ जैसे में आपका स्नेह विद्यमान है ।११५। मैंने जो कामदेव को दग्ध कर दिया था वह भस्म रूपसे मेरे शरीर में स्थित है । मेरा प्रतीकार करके ही मुझे तुम्हारे ही सामने दग्ध कर देना वह चाहता है ।११६। हे मनोहर ! अपने अङ्ग के अमृत के दान के द्वारा उस कामाग्नि से मेरा उद्धार करिए । हे दयिते ! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ।११७।

—×—

## ।। काली हर समागम वर्णन ।।

अथ श्रुत्वा वचः शम्भोर्गिरिजातीव हर्षिता ।
मेने प्राप्त तदा भभुं सुन्दरं दयित पतिम् ।।१
अथ प्राहं तदा काली सखीववत्रेण शंकरम् ।
यथा स श्रणुते वाक्यं श्रोतुमिच्छश्च शंकरः ।।२
न संन्धानतिभेदेन प्रवर्तन्तेऽत्र सज्जनाः ।
मर्यादया हरस्तं मे पाणिगृह्णातु शंकरः ।।३
पितृदत्ता भवेत् कन्या तपोदत्ता भवेन्वहि ।
तपसा चेत् प्रदत्ताहं मां तातश्व प्रदास्यति ।।४

तस्मात् सम्प्रार्थ्य पितरं हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
वैवाहिकेन विधिना पाणिं गृह्धातु मे हरः ।।५

इत्युक्त्वा विररामाथ काली लज्जासमन्विता ।
हरोऽपि तद्वज: वत्वा तथ्यं योन्यं तदाग्रहीत् ।।६

ततः स सगणः शम्भुस्तत्र वास तदाकरोत् ।
गङ्गावतरणे सानौ यथापूर्वं तथाधुना ।।७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भगनान शम्भु के वचन का श्रवण कर गिरिजा अत्यन्त हर्षित हो गई थी और उसने उस समय में शम्भु को अपना प्राप्त हुआ पति मान लिया था ।१। काली ने सखी के मुख से भगवान् शंकर से कहा था जिस रीति से शम्भु सुनने की इच्छा करते हुए वाक्य का श्रवण कर रहे हैं ।२। यहाँ पर सन्धि में अति भेद से सज्जक प्रवृत नहीं हैं। शंकर हर मर्यादा से मेरे उस पाणि का ग्रहण करें ।३। कन्या पिता के द्वारा दत्त हुआ करती है तप से दत्त (दी हुई) नहीं होती है । मैं यदि तप से दी हुई हूँ । और मुझको पिता प्रदान करेंगे ।४। इससे हिमवान पिता की भली भाँति प्रार्थना करके भगवान् हर वैवाहिक विधि से ही मेरे पाणि का ग्रहण करें ।५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर काली लज्जा से समन्वित होती हुई विराम को प्राप्त हो गई थी । उस अवसर पर भगवान् शम्भु ने भी उसके वचन को सर्वथा सत्य और तथ्य एवं उचित ही ग्रहण किया था ।६। इसके उपरान्त भगवान् शम्भू अपने गणों के सहित ही वहाँ निवास करने लगे थे । जिस प्रकार से पहिले रहते थे उसी भाँति इस समय भी उस गङ्गावतरण शिखर पर रहते थे ।७।

काली पितृगृहं याता सखीभिः परिवारिता ।
नालोकयन्ती सा दीना गुरूणा वदनं सती ।।८

एतस्मिन्नन्तरे सप्त मरीचिप्रमुखान् मुनीन् ।
चिन्तयामास शशिभृत कालीं प्रार्थतितुं तदा ।।९

चिन्तिताः सप्त मुनयंस्तत्क्षणान्मदनारिणा ।
आकृष्टा इव केनापि तत्सकाशमुपागताः ।।१०

तान् मुनीन् ददृशे शम्भुः सप्ताग्नीनिव दीपितान् ।

अरुन्धती वसिष्ठस्य सकाशे ददृशे सतीम् ॥११

अरुन्धती ततो दृष्ट्वा वसिष्ठस्य समीपतः ।

मेने योषिद्ग्रहं धर्मं मुनिभिश्चाप्यवर्जितम् ॥१२

ततस्ते मुनयः सर्वे सम्पूज्यं वृषभध्वजम् ।

इदम् चु प्रर्षेहृण स्मरणाकर्षिताः प्रियम् ॥१३

वह काली अपनी सखियों के साथ घिरी हुई अपने पिता के घर में चली गयी। वह सती दीन होती हुई गुरुजनों के मुख का अवलोकन नहीं कर रहीं थी।८। इसी बीच सात मरीचि जिनमें प्रधान थे उन मुनियों का चन्द्र शेखर प्रभु ने उस समय काली की प्रार्थना करने के लिये चिन्तन किया था।९। उसी क्षण में कामदेव के अरि शम्भु के द्वारा चिन्तन किये हुये मनिगण सातों किसी के द्वारा आकृष्ट हुए की ही भाँति उनके समीप में समागत हो गये थे।१०। भगवान् शम्भु ने उन मुनियों को दीपित सात अग्नियों के ही समान देखा था और वसिष्ठ मुनि के समीप में सती अरुन्धती को भी देखा था।११। शिव ने मुनियों द्वारा भी न वर्जित किया हुआ योषित का ग्रहण करना धर्म मान लिया था।१२। फिर उन समस्त मुनियों ने वृषभ ध्वज की पूजा करके स्मरण से समाकर्षित हुए प्रहर्ष से यह उन्होंने प्रिय बोला था।१३।

तत प्रत्यक्ष दृश्यते शुद्धरूपं

चन्द्रप्रख्यं चन्द्रखण्डोपशोभि ।

अन्तःप्रज्ञं भावितं तन्मुतीनां

भाग्यं दृष्टं भागधेयेन मुक्तैः ॥१४

प्रजातन्त्रं ध्यानतन्त्रं पुरस्ता-

न्नित्यं ध्येयं ध्यायिनां स्वप्रकाशम् ।

पुञ्जीभूता ब्राह्मतत्त्वेन शश्वद्

योग्यप्राप्यं धाम शम्भोरुदारम् ॥१५

दृष्ट्वा यस्यैवाग्रभाग स नेत्रं

त्राणाय स्याद् दर्शनं सूर्यतुल्यम् ।

तद्धामेदं स्थानपर्वस्य नित्यं

भक्त्यां स्तुत्यं तां नमः शम्भुदेहम् ॥१६

प्रकाशते यः प्रथमादिभागतः
स्थितः स वामे य इहैव नेता ।
सोऽस्मात्मकः प्रथमं स्वतिद्ध्यै
सरस्य शक्त्या विधृतो ललाटे ॥१७

यः प्रधानात्मकः सत्त्वरजोभ्यां तमसान्वितः ।
पुरुषः सर्वंजगतां स हरो न प्रसीदतु ॥१८

इति संस्तुल्य देवेशं मुनयो विनयानताः ।
ऊचुः किमर्थ भवता स्मृतास्तन्नो निगद्यताम् ॥१९

तेषा तद्वचनं श्रुत्वा शंकरः प्रहसन्निव ।
जगाद तान्मुनान् सर्वानाभाष्य च पृथक् पृथक् ॥२०

ऋषियों ने कहा—जो प्रत्यक्ष शुद्ध रूप दिखाई देता है वह चन्द्र से प्रसिद्ध और चन्द्र के खण्ड से उपशोभित है । अन्तर में प्रज्ञ मुनियों का वह भावित स्वरूप है । युक्तों के द्वारा भाग्य के उपद होने से भाग्य देखा गया है ।१४। प्रज्ञा के अधीन—आगे ध्यान तन्त्र—नित्य—ध्यान करने के योग्य-नित्य और स्वप्रकाश है अर्थात् अपने ही से प्रकाश वाला है । बाह्य तत्व से निरन्तर पुञ्जीभूत और समुचित प्राप्त करने के योग्य भगवान् शम्भु का उदार धाम है ।१५। नेत्र के सहित जिसके अग्रभाग को देखकर ही सूर्य के समान दर्शन ही परित्राण के लिये होता है । यह स्थान सर्व का नित्य धाम है । स्तुति करने के योग्य शम्भु के उस देह को भक्ति से नमस्कार है ।१६। जो प्रथम आदि भाग से प्रकाश करता है—जो वाम भाग स्थित है वह यहाँ पर ही नेता हैं—भगवान् हर के ललाट में विशेष रूप से शक्ति धारण किया हुआ वह हमारी अपनी सिद्धि के लिए प्रथम होवे ।१७। जो प्रधान के स्वरूप वाला सत्व रज और तम से समन्वित है वह पुरुष समस्त जगतों का हर हमारे ऊपर प्रसन्न होवे ।१८। इस प्रकार से मुनिगण ने विनय से अननत होते हुए देवेश्वर की भली भाँति स्तुति करके कहा कि आपने किस प्रयोजन के लिये हम लोगों का स्मरण किया है उसे आप बताइये ।१९। उन मुनियों के उस वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने हास करते हुए उन मुनियों से सबको पृथक्-पृथक् सम्भाषण करके कहा था ।२०।

हिताय सर्वजगतां सम्भोगायात्मनस्तथा ।
दारान् ग्रहीतुमिच्छामि तथा सन्तानवृद्धते ॥२१
सहायं तत्र कुर्वन्तु भवन्तो मम साम्प्रतम् ।
मदर्थे च ततः काली याचन्तां तुहिनाचलम् ॥२२
महत्ता तपसा काला तां पतिं लघु विन्दताम् ।
किन्थ ग्रहीस्ये विधिना तास्माद् याचन्तु तं गिरिम् ॥२३
यथा यथा स्वयं काली शैलो दातुं समुत्सहेत् ।
तथा तथा विदध्वं हि यूयं वाग्भिवान्विताः ॥२४
हर सम्बोध्य मुनयो ह्यगच्छन् गिरिराङ्गृहम् ।
तेन प्रपूजिताम्ते तु प्राचुस्तं मुनया गिरिम् ॥२५
यश्चन्द्रशेखरा देवी दे देवश्च यो मतः ।
शापानुग्रहणे शक्तो य एको जगतां पतिः ॥२६
यः संहरति सर्वाणि जगन्ति प्रलयाद्भवे ।
यो विभूतिप्रदो भक्ते नानारूपो मनोहरः ॥२७
स ते दुहितरं कालीं भार्यामादातुमिच्छति ।
यदि पश्यसि त्वं योग्यं वरं तं दुहितुः यमम् ॥२८

ईश्वर ने कहा—समस्त जगतों की भलाई के लिए तथा अपने आपको सम्भोग करने के लिये एवं सन्तान की वृद्धि के लिए मैं दाराओं के ग्रहण करने की इच्छा करता हूँ ।२१। इस समय में आप लोग मेरी सहायता कीजिए । और मेरे लिए आप लोग तुहिनाचल से काली की याचना करिए ।२३। काली महान् तप के द्वारा शीघ्र ही मुझ को अपना पति प्राप्त करे, किन्तु में उसको विधि पूर्वक ही ग्रहण करूँगा इस कारण से उस गिरिराज से याचना करें ।२३। जिस तरह शैल राज स्वयं काली को प्रदान करने का उत्साह करें वैसे-वैसे आप करिए क्योंकि आप लोग तो वाणी के वैभव से समन्वित हैं अर्थात् बोलने में बहुत ही कुशल हैं ।२४। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—मुनिगण ने भगवान् हर का सम्बोधन किया फिर गिरिराज के गृह को चले गये थे । गिरिराज ने उनका अभ्यर्चन किया था फिर मुनियों ने गिरिराज से कहा ।२५। जो मस्तक में चन्द्र धारण करने वाले देव हैं और जो देवों के भी देव माने गये हैं—जो शाप देने तथा अनुग्रह करने में समर्थ

हैं—जो एक ही जगतों के स्वामी हैं ।२६। जो समस्त जगतों का प्रलय काल आने पर संहार किया करते हैं—जो भक्त को विभूत (वैभव) के प्रदान करने वाले और अनेक स्वरूपों के धारण करने वाले परम सुन्दर हैं ।२७। वे ही शंकर आपकी पुत्री को अपनी भार्या के रूप में ग्रहण करने की इच्छा कर रहे हैं। यदि आप उनको अपनी पुत्री के समान सुयोग्य वह देखते हो ।२७-२६।

तदा प्रयच्छ तनयां कालीं शशिभृते गिरे ।
इत्युक्तस्तैर्गिरिपतिश्चिर स्वहृदयस्थितम् ॥२६
दुहितुश्च प्रियं ज्ञात्वा प्राप्य सद्वचनान्मुदम् ।
आह चेदं प्रकाशेन युष्याभिस्त्वहमागतैः ॥३०
पावितो मुनिशार्दूलः पूरितश्च मनोरथः ।
दास्यामि शम्भवे पुत्रीं युष्माभिः प्रार्थितस्त्वहम् ॥३१
पूर्वमेव तपस्तप्त्वा तयेशः पतिरीहितः ।
धातुर्नियोजनमिदं कोऽन्यथा कर्तुमुत्सहेतु ॥३२
कोऽन्यः प्रार्थयितुं शक्तः सुतां मम विना हरात् ।
हरेणावगुहीता ता तामन्यः कः समुत्सहेत् ॥३३
हर गृहीत्वा मनसा नान्यं सापीह वाञ्छति ।
इत्युक्त्वा मेनया सार्धं सुता दातुं च शम्भवे ॥३४
अङ्गीकृत्य विसृष्टास्ते ह्यनुप्रापुर्महेश्वरम् ।
ते गत्वा मुनयः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः ॥३५
शैलराजो यदाचष्ट तद्रूचुर्मदनारये ।
हिमवांस्तनयां दातुं तुभ्यमुत्सहते हरः ॥३६

तो हे गिरवर ! उन शम्भु के लिये अपनी पुत्री को दे दो उनके द्वारा इस भाँति कहे हुए अचलराज अपने हृदय में स्थित दुहिता के प्रिय को चिरकाल पर्यन्त समझ कर और सद्वचन से आनन्द प्राप्त करके फिर प्रकाश से यह कहा—मुनियों में शार्दूल के ही समान अर्थात् परमाधिक श्रेष्ठ आप लोगों ने पधार कर ही मुझे पवित्र कर दिया है और आपने

मेरा मनोरथ भी परिपूर्ण कर दिया। आप लोगों ने जब मुझे आदेश दिया है तो मैं अपनी पुत्री को भगवान् शम्भु के लिए अवश्य ही समर्पित कर दूँगा।२६-३१। इसके पूर्व तपस्या का समाचरण करके उसके द्वारा ईश्वर को अपना पति चाहा था। यह तो विधाता का ही नियोजन है। इसको अन्यथा करने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् इसके विरुद्ध करने की शक्ति किसी में भी नहीं।३२। बिना शम्भु के अन्य कौन है जो मेरी पुत्री की प्रार्थना करने में समर्थ हो। जिसका ग्रहण हर ने कर लिया है उसका ग्रहण करने का अन्य कौन उत्साह करेगा।३३। और वह काली भी अपने मन से मन्त्र को ग्रहण करके अन्य किसी की इच्छा ही नहीं कर रही है। इतना कहकर मेनका के साथ शम्भु के लिये अपनी पुत्री को देने के लिये अंगीकार करके उनको विदा किया गया था और फिर वे महेश्वर के समीप में पहुँचे। उन सब मुनियों ने जिनमें मरीचि प्रधान थे हे द्विजो! वहाँ से गमन किया था।३४-३५।

शैलराजो यदाचष्ट तदूचुर्मदनारये।
हिमवांस्तानयां दातुं तुभ्यमुत्सहते हरः॥

यदिदानीं त्वया कर्तुं युज्यते क्रियतां तु तत्।
अस्मांश्चाप्यनुजानीहि हर गन्तु निजास्वनम्॥३७
सिद्धं ज्ञात्वा हरः साध्य मुदितस्तान् विसृष्टवान्।
यथायोग्यं समाभाष्य क्रमादेकैकशो मुनीन्॥३८
कालीविवाहावसरे यूयमायात मां प्रति।
इति ते वै हरणोक्त प्रतिश्रुत्यर्षयो ययुः॥३९

अथान्योन्यप्रियया कृत्वा कृत्वा गतागतम्।
सममं कारयामास विवाहाय हरो गिरिम्॥४०

माधवे मासि पचम्यां सिते पक्षे गुरोदिने।
चन्द्र चोत्तरफाल्गुन्यां भरण्यादो स्थिते रचौ॥४१

आगता मुनयस्यत्र मरींचिद्रमुखाभुहुः।
हरेण चिन्तिताः सर्वे तथा ब्रह्मादयः सुराः॥४२

जो कुछ भी शैलराज ने कहा था उन्होंने भगवान् शङ्कर से कह दिया था। हे हर ! शैलराज तो अपनी कन्या को आपके लिए प्रदान करने को समुत्साहित हो रहा है।३६। इस समय जो कुछ आप करना समुचित समझते हैं वही आपको करना चाहिए। हे हर ! अब हम लोगों को अपने आश्रम गमन करने की आज्ञा दीजिए।३७। भगवान् हर ने साधन करने के योग्य कार्य सिद्ध समझ करके उन सब मुनियों को विदाई दे दी थी। एक-एक मुनि से यथोचित रूप से सम्भाषण करके ही क्रम से विदा किया था।३८। काली के साथ जब विवाह हो उस अवसर पर आप मेरे समीप में आइये। इस प्रकार से भगवान् हर के कहे हुए वचन की प्रतीज्ञा करके ऋषिगण वहाँ से अपने आश्रमों को चले गये थे।३९। इसके अनन्तर परस्पर से प्रेम के साथ गतागत कर करके अर्थात् आपस में गमन और आगमन करके भगवान् शम्भु ने गिरिराज से विवाह के सम्पन्न होने के लिए निश्चय किया था।४०। माधव मास में—शुक्ल पक्ष में—पञ्चमी तिथि और गुरुवार के दिन में—उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में भरणी आदि में रवि के स्थित होने पर वहाँ पर मुनिगण जिनमें मरीचि प्रधान थे वहाँ पर समागत हुए और ब्रह्मा आदि देवगण भी आ गये थे।४१-४२।

तथा च सर्वे दिक्पाला मुनयश्च तपोधना।
शच्या सह तथा शंक्रो ब्रह्माण्याद्यास्तु मातुरः ।।४३
नारदश्च गतस्तत्र देवर्षिब्रंह्मणः सुतः।
एतैः परिचरैः साधं गणेराप्यायितः स्वकैः ।।४४
वैवाहिकेन विधिना गिरिपुत्रीं हरोऽग्रीत्।
विवाहे गिरिजा शम्भोः सर्पा येऽष्टौ तनौ स्थिताः ।।४५
ते जाम्बुनदसंनद्धा अलंकारास्तदाभवन्।
द्विभुजोऽभून्महादेवो जटाः केशत्वमागताः ।।४६
शिरस्थितश्चन्द्रखण्डः सोऽर्विषा ज्वलितोऽभवत् ।।४७
विचित्रवसन व्याघ्रकृत्तिरासोत्तदा द्विजाः।
विभूतिलेपो ह्यस्याभूत् सुगन्धिमलयोदुभवः ।।४८
गौररूपो हरस्तत्र वभूवाद्भुतवर्णनः।
तता देवाः शगन्धर्वा सिद्धविद्याधरोरगाः ।।४९

उसी भाँति सब दिक्पाल तप के ही धन वाले मुनिगण—शचि के सहित इन्द्र देव—ब्रह्माणी आदि मातायें—ब्राह्मणों के पुत्र देवर्षि नारदजी भी वहाँ पर गये थे। इन परिचरों के साथ और अपने गणों के द्वारा आप्यायित हुए भगवान् शम्भु ने विवाह सम्बन्धी विधि के साथ गिरिवर की पुत्री को ग्रहण किया था। गिरिजा और शम्भु के विवाह में जो आठ साप शम्भु के शरीर में स्थित थे थे वे उस समय में सुवर्ण से तन्नद्ध अलङ्कार हो गए थे। महादेव दो भुजाओं वाले हो गये थे और जटायें सुन्दर केशों से स्वरूप में हो गयी थीं ।४३-४६। शम्भु के शिर से संस्थित चन्द्रमा का खण्ड जो था वह भी किरणों से प्रज्वलित हो क्या था ।४७। उस अवसर पर व्याघ्र का जो चर्म था वह भी विचित्र वस्त्र के रूप वाला हो गया था इनका जो भस्म का विलेपन था वह उस समय में परम सुगन्धित मलय चन्दन हो गया था ।४८। उस समय में भगवान् शम्भु गौर स्वरूप से समन्वित होकर अद्भुत दर्शन वाले बन गये थे। इसके अनन्तर समस्त देवगण—गन्धर्व—सिद्ध—विद्याधर और उरग गण सभी आश्चर्य से संयुत हो गए थे ।४९।

विस्मयं परमं जग्मुर्हर दृष्ट्वा तथाविधम् ।
हिमवान् मुदितश्चासीत् सहपुत्रश्च मेनया ॥५०
ज्ञातयश्चास्य मुमुहुर्हर दृष्ट्वा तथाविधम् ।
इदं ब्रह्मा तत्र जगौ हरं दृष्ट्वा-मनोपरम् ॥५१
सर्व शिवकरं यस्मात् सुवेशमभवत्सुराः ।
तस्माच्छिवोऽयं लोकेषु नाम्नाख्यातोऽधिकः ॥५२
महेश्वरमुमायुक्तमोहश यः स्मरेधृदा ।
सततं तस्य कल्याण वाञ्छितं च भविष्यति ॥५३
एवं काली महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
पूर्व दाक्षायणी भूत्वा पश्चाद् गिरिसुताभवत् ॥५४
स्वयं समर्थापि सती कालो सम्मोहितुं हरम् ।
तथाप्युग्रं तपस्तेपे हिताय जगतां शिवा ।
तवं सम्मोहयामास कालिका चन्द्रशेखरम् ॥५५
इत्येतत् कथित सर्वं त्यक्त देहा सती तथा ।
हिमदत्तनया भूत्वा पुनः प्राप महेश्वरम् ॥५६

ये सभी लोग भगवान् शम्भु को उस धकार के स्वरूप वाले हुए देखकर बहुत ही आश्चर्य में पड़ गये थे। हिमवान् भी अपने पुत्रों के सहित और अपनी पत्नी मेनका के साथ बहुत ही प्रसन्न हुए थे ।५०। उसके सम्बन्धी लोग भगवान् को उस प्रकार के रूप वाले हुए देखकर बहुत हर्षित हुए थे। सब हर का दर्शन करके जो कि बहुत ही मनोहर थे यही कहने लगे थे कि वह तो साक्षात् ब्रह्माजी ही हैं ।५१। क्योंकि सब ही वेश शिव अर्थात् कल्याण करने वाला मङ्गल मय है इसी कारण से यह लोकों में यह अधिक शिव है। इसलिए शिव—इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ।५२। जो पुरुष महेश्वर को उमा से युक्त इस प्रकार वाले का हृदय से स्मरण किया करता है उसका निरन्तर ही कल्याण होता है और जो भी कुछ मनोवाञ्छित होता है वह भी हो जायगा ।५३। इसी प्रकार से महामाया योग जगत् की प्रसूत करने वाली काली पूर्व में दाक्षायणी अर्थात् दक्ष प्रजापति की पुत्री होकर पीछे गिरिराज हिमवान् की सुता हुई थी ।५४। सती काली स्वयं हर को सम्मोहित करने समर्थ होती हुई भी उसने तथापि जगतों के लिये शिवा ने उस तपश्चर्या का समाचरण किया था इसी रीति से कालिका ने चन्द्रशेखर प्रभु का सम्मोहित किया था ।५५। यह सब कह दिया है जिस प्रकार से सती ने अपने देह का त्याग करके हिमवान् की पुत्री होकर पुनः महेश्वर प्रभु की प्राप्ति की थी ।५६।

इदं यः कोतयेत् पुण्यं कालिकाचरितं द्विजाः ।
नाधयो व्याधयस्तस्य दीर्घायुः स च जायते ।।५७
इदं पवित्र परममिद कल्याणवर्धनम् ।
श्रुत्वापि सकृदवेद शिवलोकाय गच्छति ।।५८
यः श्राद्धे श्रावयोद्विप्रान् कालिकाचारितं महत् ।
पितरस्तस्य कैवल्यमाप्नुवन्ति न संशयः ।।५९
यः श्रावयेद् ब्राह्मणानां सन्निधौ वा समागतः ।
तत्र स्वय हरीं गत्वा श्रृणोति सह मायया ।।६०
इति वः कथित पुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
युष्मभ्यं रोचते चान्यचत्तत् पृच्छ सत्तमाः ।।६१

हे द्विजो ! जो कोई इस परम पुण्यमय कालिका देवी के चरित्र का कीर्तन किया करता है उसको आधि थी (मानसिक चिन्तायें) और व्याधियाँ

नहीं होती हैं और वह दीर्घायु हो जाता है ।७५। यह परम पवित्र है और कल्याण करने वाला है । इसका एक बार भी श्रवण करके मनुष्य शिव लोक का गमन किया करता है ।५८। जो श्राद्ध में आमन्त्रित विप्रों को इस महत् कालिका चरित्र का श्रवण करता है उनके पितृगण कैवल्य को प्राप्त किया करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।५९। जो ब्राह्मणों की सन्निधि में इसका श्रवण कराता है वहाँ पर शङ्कर माया के सहित गमन करके इसका श्रवण किया करते हैं । आप लोगों के सामने यह परम पुण्यमय और समस्त पापों का विनाशक कह दिया है । हे सत्तमो ! अब आप लोगों को जो भी कुछ अन्य हो उसका श्रवण करिए ।६०—६१।

—×—

## ।। गौरी शिव विहार वर्णन ।।

विचित्रमिदमाख्यातं ब्रह्मन् कालीहरागमम् ।
पुण्यं पापहरं नित्यं श्रुतिसौख्यप्रदं वरम् ।।१
भूयः कथयः शर्वस्य कालीतन्वर्वमुत्तमम् ।
कथं जहार गौरी वा कथम्भूताय कालिका ।।२
केन वा कारणेनाशु कृष्णा गौरीत्वमागता ।
तन्नः कथय तत्त्वेन मुनिश्रेष्ठ द्विजोत्तम ।।३
इदं तु महादाख्यानं कथयिष्यामि वोऽधुना ।
महर्षयस्तच्छृण्वन्तु तत्त्वेन शुभदं परम् ।।४
एतदौर्व पुरा राजा सगरः पृष्ठवान्सुनिम् ।
स तं यथा समाचष्ट तद्वोऽथ निगदाम्यहम् ।।५
पुराभूत सोमवशे च सगरो नाम पार्थिवः ।
से श्रीमान् बलवान् दक्षः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।।६
सोऽभूदेकरथेनैव जित्वा सर्वान् महीभुजः ।
सार्वभौमो नरपतिः सर्वराजगुणैर्युतः ।।७

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! यह काली और हर का समागम अतीव विचित्र आपने वर्णन किया है जो परम पुण्यमय—पापों का हरण करने वाला—नित्य और श्रेष्ठ तथा श्रवरण करने में सुख प्रदान करने वाला है ।

।१। अब आप पुनः शिव का उत्तम तनु का अर्ध भाग काली अथवा गौरी ने कैसे हरण किया था। वह कालिका किस प्रकार की है।२। हे मुनियों में श्रेष्ठ! हे द्विजों में उत्तम! किस कारण से शीघ्र ही काली गौरीत्व को प्राप्त हो गई थी। हमको यह सब तात्त्विक रूप से कहिए।३। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस महान् आख्यान को इस समय मैं आपके सामने कहूँगा। हे महर्षि गणो! इस परम शुभ देने वाले का आप लोग सब श्रवण कीजिए।४। यही बात पहिले समय में राजा सागर ने और्व मुनि से पूछी थी। उन्होंने उससे जिस प्रकार से कहा था वही मैं आप लोगों को बतलाता हूँ।५। प्राचीन समय में एक सगर राजा हुआ। वह बलशाली, श्रीमन् दक्ष और समस्त शास्त्रों के अर्थों का पारगामी विद्वान् था।६। वह राजा अपने एक ही रथ के द्वारा समस्त नृपों को जीतकर चक्रवर्ती हो गया था।७।

तं प्राप्तराज्यं राजानं सागरं पार्थिवोत्तमम्।
सभाजयितुमत्यर्थं मुनयः समुपागताः ॥८
प्राच्योदोच्या महात्मनो दाक्षिणात्यास्तथोत्तराः।
मुनयो ब्राह्मणश्चैव नृप द्रष्टुं समागमन् ॥९
आगतेष्वण सर्वेषु महात्मा ज्वलनोपमः।
और्वो नाम मुनिः श्रीमानागतो नन्दितु नृपम् ॥१०
तमागतं मुनि दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम्।
सपय या महत्या तु सगरस्तमपूजयत् ॥११
पाद्यमाचमनीयं च दत्त्वैवार्धपुरोगमम्।
निवेशयामास च त मुनिश्रेष्ठं वरासने ॥१२
उवाच च महात्मानमौर्वं स सगरो नृपः।
प्रणम्य च यथायोग्यं कुशलं त इति द्विजम् ॥१३
स च प्राह मुनिश्रेष्ठो नरराज सदा मम।
सर्वत्र कुशलं त्वां तु द्रष्टुं कुशलमुत्सहे ॥१४

उस राजा सगर को अभिनन्दित करने के लिए मुनिगण समागत हुए थे।८। पूर्व दिशा, उत्तर, दक्षिण तथा उत्तर के मुनिगण और ब्राह्मण नृप के दर्शन करने के लिए समागत हुए थे।९। सबके समागत होने पर अग्नि के समान महान आत्मा वाले श्रीमान् और्व मुनि नृप का अभिनन्दन

करने के लिए आये थे ।१०। उन मुनिवर का दर्शन करके जो जलते हुए अग्नि के सदृश वे राजा सगर ने उनका अभ्यर्चन किया था ।११। अर्घ्यपूर्वक पाद्य और आचमनीय देकर उन मुनिश्रेष्ठ को राजा ने श्रेष्ठ आसन पर निवेदित किया था ।१२। फिर उस सगर राजा ने महात्मा और्व से समुचित रीति से प्रणाम करके द्विज से पूछा था कि आपका कुशल तो है ।१३। और मुनि श्रेष्ठ ने कहा था कि हे नरराज मेरा सदा ही सर्वत्र कुशल है । मैं आपका दर्शन करने के लिए कुशलता के साथ उत्साह करता हूँ ।१४।

त्वत्तः कोऽन्योऽस्ति कुशली पृथिव्यां सर्वराजसु ।
य एकः सञ्जिगायाशु भवान् सकलपार्थिवान् ।।१५

कुशल वर्धतां नित्यं तव राजवरोत्तम ।
यथा नीत्या सदाचारैः पृथिवीं शाधि भूपते ।।१६

तव वृद्धो जगदवृद्धिर्वृद्धै चेष्टां ततः कुरु ।
शुभ्रांशुवद्धौ सततं सारगस्येव वर्धनम् ।।१७

प्रथम सद्गणैरात्मा क्रियतां नृप योजनम् ।
ततः स्वभार्या महिषी क्रियतां तदगुणैर्युता ।।१८

नित्ना संयोजिता चेत स्यादनिता स्ययमेव हि ।
स्वगुणेषु प्रवेक्ष्यन्ती महत्यपि धृतव्रता ।।१९

श्रुयते हिमवत्पुत्री शम्भुसङ्गतमानसा ।
क्रियाभ्यापायर्बहुभिः शम्भुना सा प्रयोजिता ।।२०

ततोऽतिमहता प्रेम्णा शंकरस्यार्थ पार्वती ।
शरीरस्यर्घ तहरत्तस्यैवानुमते सती ।।२१

आप समस्त रामाओं में कुशली हैं जिस एक ने ही आने बहुत शीघ्र ही समस्त राजाओं को जीत लिया था ।१२। हे राज नरोत्तम ! आपका कुशल नित्य ही बढ़े । हे भूपते ! नीति के अनुसार सद् आचरणों के द्वारा पृथिवी का शासन करिये ।६। आपकी समृद्ध होने पर जगत् की वृद्धि है अतएव उसी भाँति आप वृद्धि के लिए ही चेष्टा करिये । जैसे चन्द्र की बुद्धि होने पर सागर की निरन्तर वृद्धि हुआ करती है ।१७। हे नृप ! सबसे प्रथम सद्गुणों से अपनी आत्मा को योजित करिए । इसके उपरान्त उसके गुणों से समन्वित भार्या का महिषी बनाइए । ।१८। यदि वनिता को नित्य ही

सयोजित किया जावे तो वह स्वयं ही अपने गुणों के विषय में प्रवेक्षण करने गुणों के विषय में प्रवेक्षण करने वाली होती हुई और व्रतधारण करने वाली हो जाती है ।१६। ऐसा सुना जाता है कि शम्भु में सङ्गम मन वाली होती हुई हिमवान् की पुत्री बहुत सी क्रिया और अभ्युपायों के द्वारा शम्भु के द्वारा प्रयोजित की गई थी ।२०। इसके अनन्तर शम्भु के अत्यधिक प्रेम से सती पार्वती ने उनकी ही अनुमति से उनके आधे शरीर का हरण कर लिया था ।२१।

अर्धनारीश्वरस्तेन तदा प्रभृत्ति शंकरः ।
अवभन् नृपशार्दूल नान्यां भार्या गृहीतवान् ।।२२
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र स्वजायामात्मनोत्तरे ।
गणैः संयोजय लघुं संयोजय ततः मुतम् ।।२३
इत्योर्वभाषितं श्रुत्वा सगरोऽपि मृदान्वितः ।
हृद मुनिमपच्छृत नृपति स्मितसन्ततः ।।२४
कथं सा गिरिजा देवी कायार्धमहरत् सती ।
शंकरस्य द्विजश्रेष्ठ तदहं श्रोतुमुत्सहे ।।२५
नीत्या यथा वा योक्तव्या स्वात्मा भार्या सुतोऽथवा ।
तां नीति च सदाचारसंहितां श्रोतुमुत्सहे ।।२६
राजनीतिं सतां नीतिमन्येषां च कृतात्मनाम् ।
पृथक-पृथक श्रोतुमिच्छुरह त्वां नाथते द्विज ।।२७
यदि गुह्यमिद ब्रह्मन्न तदा श्रोतृमुत्स हे ।
तथा नाज्ञापयामि त्वां श्रोतमिच्छुश्च तत्समम् ।
कृपया कथनीयं चेत्तदा कथयं तन्मुने ।।२८

तभी से भगवान शङ्कर अर्धनारीश्वर हो गये थे । हे नृप शार्दूल ! उन्होंने फिर अन्य भार्या का ग्रहण नहीं किया था ।२२। इस कारण से हे राजेन्द्र ! आप भी अपनी जाया को उत्तर में आत्मा से गुणों के द्वारा संयोजित कीजिए उसके उपरान्त लघु सुत को संयोजित करें ।२३। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--राजा सगर भी इस और्व के द्वारा भाषित का श्रवण करके हर्ष से समन्वित हो गया और मन्द मुस्कान से संयुत होकर उसने मुनि से

यह पूछा ।२२। सागर ने कहा—उस सती गिरिजा देवी ने शङ्कर भगवान् के शरीर का आधा भाग हरण किया था ? हे द्विज श्रेष्ठो ! उसे ही मैं श्रवण करना चाहता हूँ ।२५। जिस नीति से अपनी आत्मा का अर्थात् अपने आपका भार्या का अथवा सुत का योजन करना चाहिए उस नीति का और सदाचार संहिता का भी मैं श्रवण करना चाहता हूँ ।२६। हे द्विज ! राज-नीति—सत्पुरुषों की नीति और अन्य कृतात्माओं की नीति का मैं पृथक्-पृथक् श्रवण करने का इच्छा वाला हूँ मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ ।२७। हे ब्रह्मन् ! यदि यप परम गोपनीय हो तो मैं नहीं सुनता चाहता हूँ । मैं उस भाँति से आपको कोई आज्ञा नहीं दे रहा हूँ और उसके ही समान मैं श्रवण करके का इच्छुक हूँ । कृपा करने आपको मुझे बतलाना चाहिए यदि वह बतलाने के योग्य हो तो हे मुनिवर ! आप करिये ।२८।

इत्येवं सगरेणोक्तमौर्वोऽपि द्विजसत्तम् ।
प्रत्युवाच महात्मानं कृपालुस्तत्र भूपतौ ।।२९
श्रणु राजन् प्रवक्ष्यामि यद् यत् पृष्टमिहि त्वया ।
यथा हरस्य तन्वर्धं भृसृत्पुत्री पुराहरत् ।।१३०
यथा नीतिस्त्वया कार्या यव यत्र नृपोद्यम ।
सर्वेषां सदाचारं क्रमाद् वक्ष्यामि तच्छृणु ।।३१
यवोढा हिमवत्पुत्री शंकरेण महात्मना ।
कियन्तं स तदा काल तत्र निन्ये सहोमया ।।३२
रमाणस्तया सार्धं सानौ कुञ्जे दरीषु च ।
विजहार चिर तत्र पार्वती मोदयन् हरः ।।३३
अथ काले तु सम्प्राप्ते शम्भुः कैलासपर्वतम् ।
सगणी भार्यवा सार्धमगच्चत्त्रिदिवोपमम् ।।३४
स तया क्रोडमानश्च त्यक्तध्यानात्मचिन्तनः ।
तद्वक्त्रचन्द्रे नेत्राणि चकोरानिव चाकरोत् ।।३५

द्विजो में परम श्रेष्ठ और्व ने भी उस राजा पर कृपालु होते हुए उस महान् आत्मा वाले के प्रति कहा ।२९। और्व ने कहा—हे राजन् ! आप श्रवण कीजिए । आपने यहाँ पर जो-जो भी पूछा है उसे मैं आपको बत-

लाऊँगा। पहले पुराने समय में हिमवान की पुत्री ने जिस रीति से भगवान हर के शरीर का आधा भाग का हरण किया था।३०। हे नृपोत्तम ! जहां-जहाँ आपको जैसी नीति करना चाहिए उसे और सबका सदाचार जो भी होना चाहिये इसे क्रम से ही मैं बतलाऊँगा।—यह आप श्रवण कीजिये।३१। जिस समय में महात्मा शङ्कर ने हिमवान की पुत्री के साथ विवाह किया था। वह उस समय कितने काल पर्यन्त वहाँ पर उमा के साथ रहे थे अर्थात् कितना समय व्यतीत किया था।३२। शिखर पर कुन्ज में और पर्वत की दरियों में उसके साथ रमण करते हुए भगवान हर ने पार्वती को प्रसन्न हुए वहाँ पर चिरकाल तक विहार किया था।३३। काल के सम्प्राप्त होने पर भगवान शम्भु अपने गणों के सहित और अपनी भार्या के साथ स्वर्ग के समान कैलास पर्वत पर चले गये थे।३४। उमा के साथ क्रीड़ा करते हुये ध्यान और आत्मा का चिन्तन त्याग दिया था और उमा के मुख चन्द्र पर ही अपने नेत्रों को चकोर के ही भाँति बना लिया था अर्थात् वे सर्वदा उसके ही मुखों का अवलोकन किया करते थे।३५।

पुष्पाणि क्वचिदाहृत्य गिरिजां प्रति शंकरः।
सर्वाङ्गसङ्गिनीं मोलां विधेऽतिमनोहराम् ॥३६
कदाचिदादर्शतले युगपच्चात्मनौ मुखम्।
मुख तथेवापर्णाया वीक्षञ्चक्रे वृषध्वजः ॥३७
कदाचिन्मृगनाभौनां विलेपैन्धपत्रकम्।
तस्या घनस्तनयुगे विलिलेख स्मरान्तकः ॥३८
गन्धसारविलेपेन तिलकान्यम्बिकातनौ।
ललाटे चाकरोच्चारु चन्द्रवद्घनसन्धिष ॥३९
उमानिर्मासिसंसक्तकेशपाशेषु चित्रकम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमस्य विलेपनैः ॥४०
चकार येन तस्यास्तु केशपाशो व्यराजत।
नर्तनायावतीर्णस्य शिखिपुच्छस्य साभ्यधृक् ॥४१
जम्बूनददायाञ्ा् शुद्धात कुण्डलाद्यान् मनोहरान्।
अलंकारानुमा देहे समाकार्षीद् वृषध्वजः ॥४२

किसी समय गिरिजा के लिये पुष्पों का समाहरण करके भगवान् शङ्कर अत्यन्त सुन्दर माला बनाया करते थे जो कि उसके सर्व अङ्गों में नीचे तक लटकने वाली होवे ।३६। किसी समय दर्पण में एक ही साथ अपना मुख और उमा देवी का मुख वृषभ ध्वज देखा करते थे ।३७। किसी अवसर पर कस्तूरिकाओं के द्वारा गन्धपत्रकों के विलयनों से दोनों स्तनों पर भगवान् शङ्कर विलेखन किया करते थे ।३८। भगवान् शम्भु अम्बिका के शरीर पर गन्धसार का विलेपन करते थे और ललाट पर लगाकर उसे सुन्दर किया करते थे । चन्द्र के समान घनी सन्धियों वाले उमा देवी के निर्यास से संसक्त पाशों में चित्रक लिखा करते थे । चन्दन—अगरु ( गूगल )— कस्तूरी और कुंकुम के विलेपनों के द्वारा विचित्र कर दिया करते थे जिससे उस देवी का केश पाश विशेष रूप से शोभायमान हो जाता था । जो केश-पाश नृत्य करने के लिए अवतीर्ण मयूर के पुच्छ की समता का धारण करने वाला हो जाया करता था ।३९—४१। वृषभ ध्वज सुवर्ण से परिपूर्ण मनोहर कुण्डल आदि अलङ्कारों की उमादेवी के देह में समाकर्षित किया करते थे ।४२।

तैर्जाम्बूनदसम्भूतैर्योजितैर्गिरिजातनुः ।
विभाति जलदापूर्ण कालिकेव तडिद्गणैः ।।४३
सर्वैर्दिव्यैरलंकारैर्नानारत्नैः सदंशुकैः ।
संपूर्णमण्डिता काली सादृश्यं प्रकृतेदधौ ।।४४
एव तदा सानुरागस्तस्यां शम्भुर्जगत्पतिः ।
जगद्धिताय चिकोड काल्या दयितया सह ।।४५
काली च जगतां माता महामाया जगन्मयी ।
योगनिद्रां जगद्बुद्धिर्विद्याविद्यात्मिकाखिला ।।४६
प्रकृतिः परमा मूतिः सर्गान्तिस्थियिकारिणी ।
सम्माहृय शंकर यत्नाज्जगतां च हितैषिणी ।
रेमे तेन सम देवी चन्द्रिकेव सुधांशुना ।।४७

उन सुवर्ण से विनित योजित अलङ्कारों से गिरिजा देवी का शरीर जलदों से आपूर्ण तड़ित गणों से कालिका की ही भाँति शोभित हो रहा था। ।४३। सम्पूर्ण दिव्य अलङ्कारों, अनेक प्रकार के रत्नों तथा सुन्दर वस्त्रों से

से पूर्ण रूप से मण्डित हुई काली ने प्रकृति देवी की सदृशता को धारण किया था ।४४। इस प्रकार से जगत् के पति भगवान् शम्भु सर्वदा उस काली में अनुराग से युक्त हो गये । उन्होंने जगत् के हित के लिये काली के साथ क्रीड़ा की थी ।४५। जगतों को माता—महामाया—जगन्माया काली योग निद्रा, जगत् की बुद्धि—विद्या और अखिला विद्या के स्वरूप वाली थी । वह परमा भूति—प्रकृति और सर्ग—स्थिति और संहार के करने वाली थी । वह जगतों की हित की इच्छा करने वाली इसी कारण से भगवान् शङ्कर का सम्मोहन करके सुधांशु के साथ चन्द्रिका की भाँति उसके साथ उस देवो ने रमण किया था ।४६-४७।

———

## ।। वेताल भैरव उत्पत्ति ।।

अथ कालक्रमेणैव प्रवृद्धास्ते महाबलाः ।
शास्त्रास्त्रज्ञानकुशलाः शास्त्रार्थपरिनिष्ठिताः ।।१
सम्प्राप्तयौवना दीप्ता दुर्धर्षाः परिपन्थिभिः ।
धर्माथज्ञानकुशला ब्राह्मण्याः सत्यवादिनः ।।२
सदा सहचरौ तत्र प्रोत्या वेतालभैरवो ।
अलर्की दमनश्चैव तथोपरिचरस्त्रयः ।
सदा सहचरो नित्यं भ्रातरश्चान्द्रशेखराः ।।३
त्रिष्वात्मजेयु नृपतेः सदोपरिचरादिषु ।
ममत्वमधिक नित्यं प्रीतिस्नेहौ तथाधिकौ ।।४
वेताले भैरवे चापि चन्द्रशेखर भूभृतः ।
नास्त्येव तादृशी प्रीतिर्यादृशी तेषु जायते ।।५
न तौ दृष्ट्वा स नृपतिः कदाचिच्चन्द्रशेखरः ।
आत्याल्हादतेऽजस्रं पुत्रबुद्धयेष्यतेऽथवा ।।६
तौ वीरौ धर्नकुशलौ महाबलपराक्रमौ ।
त्रैलोक्यविजये दक्षौ शस्त्रास्त्रग्रामपारगौ ।।७

और्व मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वे काल क्रम से ही वे महान् बल वाले प्रवृद्ध हो गये थे । वे शास्त्रों और अस्त्रों के ज्ञान में कुशल थे और

शास्त्रों के अर्थों में परिनिष्ठत थे ।१। वे यौवन के सम्प्राप्त करने वाले थे तथा परम दीप्त एवं परि पन्थियों के द्वारा दुर्धर्ष थे अर्थात् शत्रु गण उनके तेज को सहन नहीं कर सकते थे । वे धर्म और अर्थ के ज्ञान में परम प्रवीण थे तथा ब्रह्मण्य एवं सत्यवादी थे ।२। वहाँ पर प्रीति से वेताल और भैरव सर्वदा सहचर थे । अलर्की—दमन और उपरिचर ये तीन थे । चन्द्रशेखर भाई सदा नित्य साथ में चरण करने वाले थे ।३। राजा के तीन पुत्रों में जो उपचर प्रभृति थे उनमें अधिक ममत्व उसका था । किन्तु दो नित्य अधिक प्रीति और स्नेह वाले थे ।४। चन्द्र शेखर नृप की वेताल और भैरव में भी वैसी प्रीति नहीं थी जैसे उनमें होती थी ।५। वह चन्द्र शेखर नृप उन दोनों को देखकर कभी भी निरन्तर आह्लादित नहीं होता था अथवा पुत्र की बुद्धि से चाहता भी नहीं था ।६। वे दोनों वीर धर्म में कुशल थे और महान् बल तथा पराक्रम से समन्वित थे । वे दोनों लोकों के विजय करने में दक्ष थी तथा शस्त्रों एव अस्त्रों की विद्या में पारगामी थे ।

ताभ्यां बिभेति च नृप कदा किंवा करिष्यतः ।
वेतालभैरवावेतौ मां सुतान् राज्यमेव वा ।।८
इति चिन्तापरो राजा नित्यमेव निरीक्षते ।
प्रणतावपि तत्पुत्रौ सम्यग् वेतालभैरवौ ।।९
अथोपरिचर राजा यौयर ज्येऽभ्षेचयत ।
ज्यायांसमौरस पुत्रं यौवराजगुणैयुतम् ।।१०
यः पश्चात् सर्वभूपालाम् योजयिष्यति नीतिभिः ।
राजापरिचरा नाम सर्वशास्त्रार्थपारगः ।।११
दमनाय ददौ दायं तथालर्काय भूमिभृत् ।
प्रभूतधनरत्नानि तथासनरथान् बहुन् ।।१२
तावन्वि न ददौ ताभ्यां दायवित्तानि भागशः ।
वेतालभैरवाभ्यां तु ततस्तौ मन्युराविशत् ।।१३
मन्युनाभिपरीतौ तौ विचरन्तावितस्ततः ।
न भौगमीप्सतां वीरौ तपसे च कृताद्यमौ ।
अनूढभार्यौ निर्जने वसतः सदा ।।१४

नृप उन दोनों से डरा करता था कि ये दोनों वेताल और भैरव किस समय में मुझे सुतों को अथवा राज्य को नष्ट कर देंगे ।८। इसी चिन्ता में राजा नित्य ही वेताल और भैरव इन दोनों पुत्रों को भली भाँति प्रणत भी देखा करता था ।९। इसके अनन्तर राजा ने उपरिचर को यौवराज्य पद अभिषिक्त कर दिया था । वह सबसे बड़ा समस्त राजा के गुणों से संयुत औरस पुत्र था ।१०। जो पीछे नीतियों के द्वारा समस्त राजाओं को योजित करेगा । उपरिचर नाम वाला समस्त शास्त्रों के अर्थों में पारङ्गत था ।११। राजा ने दमन के लिये तथा अलर्क के लिये दान किया था जिसमें बहुत धन रत्न थे तथा अधिक आसन और रथ थे ।१२। भाग के द्वारा उतना धन रत्न आदि दाय के वित्त उन दोनों के लिये नहीं दिये थे जो कि वेताल भैरव थे इसके अनन्तर उन दोनों में क्रोध ने प्रवेश कर लिया था वे दोनों ही क्रोध से अभिभूत हो गये और दोनों इधर-उधर विवरण करने लग गये । उन दोनों वीरों ने भोगों से उपभोग करने की इच्छा ही नहीं की और तपचर्या का समाचरण करने के लिये उद्यत हो गये । उन दोनों ने किसी भार्या से विवाह नहीं किया था अर्थात् वे दोनों अविवाहित थे तथा निरन्तर सदा ही निर्जन वन में वास किया करते थे ।१४।

तथाभूतौ तदा पुत्रौ देवो वेतालभैरवौ ।
बुबुधे चिन्तयाक्रान्ता देवी तारावती तदा ।।१५

राजोपरिचाद् भीता पत्युश्चा चन्द्रशेखरात् ।
नोवाच किंचित् सुदतीच्छन्न तौ बोधयत्यपि ।।१६

एतस्मिन्नन्तरे विद्वान् कपोतो मुनिसत्तमः ।
चित्रांगदासंगभोगी सन्तुष्टः सुरतोत्सवैः ।।१७

चित्रांगदां परित्यज्य सुपुत्रां सहचारिणीम् ।
इयेष गन्तु स प्रोचे तादा चित्रांगदां वचः ।।१८

चित्रांपदे तापस्ततु गमिष्यामि तपोवनम् ।
कि तैं प्रिये करोमीह तं मे वद मनोहरे ।।१९

तुम्बुरुश्च सुवचश्वि तानयौ ताव सुव्रता ।
एतयोस्त्वं मुनिश्रेष्ठ प्रियं कुरु यथोचितम् ।।२०

मां चापि भगिनीगेहे संस्थाप्य द्विजसत्तम् ।
तदा तपोवनं गच्छ यदि ते रोचतेऽनघ ।।२१

उस काल में देव वेताल और भैरव पुत्रों को उस प्रकार से रहने वाले हैं—ऐसा ज्ञान किया तो उस समय में देवी तारावती चिन्ता से समाक्रान्त हो गयो थीं अर्थात् उसे बहुत चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी ।१५। वह उपरिचर राजा से और अपने पति चन्द्रशेखर से भयभीत हो गई थी। वह सुन्दरी गुप्त रूप से उन दोनों का ज्ञान रखती हुई भी कुछ भी नहीं बोली थी।१६। इसी बीच मुनियों में परम श्रेष्ठ और विद्वान् कपोत चित्राङ्गदा के साथ सम्भोग और सुरतोत्सवों के द्वारा परम संतुष्ट होकर उस सहचारिणी एवं पुत्रों से युक्त चित्राङ्गदा का परित्याग करके उसने वहाँ से गमन करने की इच्छा की थी और उस अवसर उसने चित्राङ्गदा से यह वचन कहा था ।१७-१८। मुनि ने कहा—हे चित्राङ्गदे ! मैं तपस्या का समाचरण करने के लिये अब तपोवन मैं गमन करूँगा। वहाँ पर मैं तेरा क्या प्रिय कार्य करूँ ? हे मनोहर ! उसी को मुझे तुम बतलादो ।१९। चित्राङ्गदा ने कहा—हे सुव्रत ! तुम्बरु और सुवर्चा ये दो आपके पुत्र हैं। मुनिश्रेष्ठ ! आप इन दोनों का जो भी उचित हो वह प्रिय करो।२०। हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझको भी मेरा भागिनी के घर में संस्थापित करके हे अनघ आपको यदि रुचता है तो तभी आप तपोवन में गमन करिए।२१।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः करोतो मुनिसत्तमः।
हिरण्याथ समालोच्य कुवेरसदनं ययौ ॥२२

प्रार्थयित्वा कुबेर तु सुवर्णानां शतानि षट्।
निष्काणां तु सहस्राणि स लेभे मुनिसत्तमः ॥२३

शतं भारांश्च रत्नानामानीय च सवीवधैः।
पुत्राभ्यां प्रददौ विप्रो भार्यायै च विशेषतः ॥२४

ततस्तां सहपुत्राभ्यां तोर्धनैरपि भूरिभिः।
चिद्रांगदामतोनाथ पुत्रयोरपि सम्मतो ॥२५
सुवर्चसं तुम्बुरं च तथा चित्रांगदामपि।
आमन्त्र्य मुनिशार्दूलः करवीर-पुरं ययौ ॥२६
तत्र गत्वा स कपोतो राजान चन्द्रशेखरम्।
राजोपरिचरं चैव वाक्यमेतदुवाच ह ॥२७

इयं ककुत्स्थजा भूत तवैव विदिता पुरा ।
सद्योजातौ तथैवास्यामेतौ मे तनयौ शुची ।।२८

मुनिश्रेष्ठ कपोत यह उसके वचन का श्रवण करके भली भाँति विचार करके हिरण्य (सुवर्ण) के लिये कुबेर के भवन में गये थे ।२२। उसने कुबेर से छः सौ सहस्र सुवर्ण के निष्कों की प्रार्थना की थी और प्राप्त कर लिया था ।२३। सौमार रत्नों को लाकर विप्र ने पुत्रों को दे दिया था और विशेष रूप से भार्या को दिया था ।२४। इसके उपरान्त पुत्रों तथा बहुत से धनों के साथ चित्राङ्गदा तथा पुत्रों के भी मतसे सुवर्चा और तुम्बरु तथा चित्राङ्गदा को भी अमिन्त्रित करके वह मुनि शार्दूल करवीरपुर में चला गया था ।२५। वहाँ जाकर वह कपोत राजा चन्द्रशेखर से तथा राजा उपरिचर यह वाक्य बोला था ।२६। हे नृप ! यह ककुत्स्थ की पुत्री हैं और यह पहिले आपकी भी जानी हुई है । उसी भाँति ये परम शुचि—सद्योजात ये दोनों इसके उदर से समुद्भूत मेरे पुत्र हैं ।२७।

एभिर्वित्तैः सम पुत्रौ मम त्वं प्रतिपालय ।
राजोपरिचरश्चापि पालयत्विह मे सुतौ ।।२९
अपुत्रस्थं नृपः पुत्री निर्धनस्य धनं नृपः ।
अमातुर्जननी राजा ह्यतातास्य पिता नृपः ।।३०
अनाथस्य नृपो नाथो ह्यभर्तुः पार्थिवः पतिः ।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एवं नृणां सखा ।
सर्वदेवमयो राजा तस्मात् त्वामर्थये नृप ।।३१
सतः स राजा प्राह मुनिमेवं द्विजोत्तमम् ।
करिष्ये त्वद्वचश्चाहं राजोपरिचरश्च सः ।।३२
अथ चित्रांगदां राजा जग्राह मुनिसम्मते ।
सुतौ च तस्य सधनौ ज्यायसे सूनवे ददौ ।।३३
स चोपरिचरः प्रादाद्राज्यागर्थं सुवर्चसे ।
तथैव सचिवाध्यक्षमकरोत्तुम्बुरं तदा ।।३४
कपोतश्चापि सुप्रीतः पुत्रार्थं समवेक्ष्य च ।
जगामामन्त्रय नृपतिं तपसे च तपोवनम् ।३५

इन धनों के साथ आप मेरे दोनों पुत्रों का प्रतिपालन करें। राजो परिचर भी यहाँ पर मेरे पुत्रों का परिपालन करें।२६। जो पुत्रहीन होता है और जो धनहीन होता है उसका धन भी नृप ही हुआ करता है। बिना माता वाले की जननी नृप है और तात से रहित का पिता भी नृप ही हुआ करता है।३०। अनाथ का नृप नाथ है और विना भर्ता वाले का पति नृप है। जिससे कोई मृत्यु न होवे वे उसका भृत्य राजा ही है और नृप ही मनुष्यों में देवता है। इसलिए हे नृप ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।३१। और्व ने कहा—इसके अनन्तर उस राजा ने द्विजोत्तम उस मुनि से इस प्रकार से कहा था मैं आपका वचन पूर्ण करूँगा और राजोपरिचर भी करेगा।३२। इसके उपरान्त उस राजा ने मुनि की सम्मति से चित्राङ्गना को ग्रहण कर लिया था। और उसने दोनों सुतों को जो धन के सहित थे बड़े पुत्र के लिये उसने दे दिया था।३३। उस उपरिचर ने सुवर्धा को राज्य का आधा भाग दे दिया था। और उसी भाँति उस अवसर पर तुम्बर को उसने सचिवों को अध्यक्ष बना दिया था।३४। और कपोत भी पुत्र का अर्ध भाग देखकर परम प्रसन्न हुआ और राजा का आमन्त्रण करके वह तप के लिये तपोवन को चला गया था।३४।

पथि गच्छन् कपोतः शम्भुपुत्रौ मनोहरौ।
एकाकिनौ चरन्तौ तु सूर्याचन्द्रमसाविव ॥३६
तयोर्ददर्श च तदा वरने वानराकृती।
स्मृत्वा पूर्वकथां दृष्ट्वा तारपृच्छत् तपोधनः ॥३७
कौ युवां देवगर्भामौ चरन्तौ विजने पथि।
एकाकिनौ नरश्रेष्ठौ तन्मे वदतमीरितम्।३८
अथ तौ प्रणिपत्यैनं सम्भाष्य च समञ्जसम्।
कपोताख्यं मुनिश्रेष्ठमचतुः शंकरात्मजौ ॥३९
चन्द्रशेखरपुत्रौ नौ तारावत्यां समुद्गतौ।
विद्धि त्वं मुनिशार्दूल प्रणमावः पदं तव ॥४०
अवज्ञां वीक्ष्य नृपतेरावयोः सततं मुने।
एकाकिनौ निर्गनेषु भ्रमावो मन्युना सदा ॥४१

किमर्थमात्मजौ पुत्रौ प्रणतौ सतत नृपः ।
अवज्ञाय महाभाग दायमात्रं न दित्सति ।।४२

मार्ग में गमन करते हुये उस कपोत ने अकेले विवरण करते हुए—परम मनोहर और चन्द्र के ही समान भगवान् शम्भु के पुत्रों को देखा था। और उन दोनों के मुख में बन्दर की सी—आकृति देखी थी । पूर्व में घटित कथा का स्मरण कर और उन दोनों को देखकर उप तपोधन ने उनसे पूछा था ।३६-३७। आप दोनों कौन हैं जो कि देव गर्भ समान आभा वाले हैं और मार्ग में उस वियावान में एकाकी विचरण कर रहे हैं हे नर श्रेष्ठो ! ग्रह मेरे कथित का आज उत्तर बतलाइये ।३८। इसके अनन्तर उन दोनों इनको प्रणिपात किया था और समञ्जस सम्भाषण किया था अर्थात् समुचित बातचीत की थी । उन शङ्कर के दोनों पुत्रों ने कपोत नाम वाले मुनि श्रेष्ठ से कहा था ।३९। हे मुनि शार्दूल ! हम दोनों चन्द्र शेखर के पुत्र हैं और तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए हैं । आप हमको जान लीजिए । हम आपके पदों में प्रणाम करते हैं ।४०। हम दोनों की राजा से निरन्तर अवज्ञा देखकर हे मुने ! क्रोध से संयुत होते हुए हम सदा ही निर्जन वनों से भ्रमण किया करते हैं ।४१। सर्वदा प्रणत रहने वाले आत्मज पुत्रों की अवज्ञा करके नृप किस लिए हे महाभाग ! दान मात्र को भी देने की इच्छा नहीं करता है ।४२।

तस्मादावां तपस्त तुमिच्छावो द्विजसत्तम् ।
उपदेशप्रदानेन चानुगृह्णाति चेद्भवान् ।।४३

ततस्तयोर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानस्ताविदं मुनिरब्रवीत् ।।४४

न युवां तनयौ तस्या चन्द्रशेखरभूपतेः ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ भवन्तौ शंकरत्मजौ ।।४५

सद्यौ जातौ महावीर्यौ वेतालत्वे च सम्मतौ ।
भृङ्गिमहाकालसंज्ञौ शापाद् धरणिमागतौ ।।४६
युवयोरत्र तेनैव न दायं दित्सति प्रियम् ।
गच्छतं शरणं तातं शंकरं वृषभध्वजम् ।।४७

स एव युवयोः सर्वं करिष्यति महेश्वरः ।
किं वात्युग्रेण तपसा चिरकालफलेन वै ।।४८
इत्युक्त्वा मुनिशार्द्दूलः कपोतः परमात्मधृक् ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानन्ताभ्यां सर्वमथोचिवान् ।।४६

हे द्विज-श्रेष्ठ ! इसी कारण से हम दोनों तप का समाचरण करने के लिए इच्छा कर रहे हैं यदि आप उपदेश के प्रदान के द्वारा हमारे ऊपर अनुग्रह करते हैं ।४३। इसके अनन्तर उन दोनों के वचन का श्रवण करके मुनि श्रेष्ठ हँसकर उन दोनों से बोले थे जो कि भूत—भव्य और भवत् के समन्वित थे ।४४। मुनि ने कहा—आप दोनों उस चन्द्रशेखर भूपति के पुत्र नहीं हैं । आप तो तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए शङ्कर के ही पुत्र हैं ।४५। आप दोनों महावीर्य सद्योजात हैं और वेतालत्व में सम्मत है । आप भृङ्गि और महाकाल नाम वाले हैं । शाप के कारण से ही आप दोनों इस धरणी से ही आप दोनों इस धरणी तल में समागत हुये हैं ।४६। तुम दोनों को यहाँ पर उसी कारण से वह प्रिय दाय नहीं देना चाहता है । आप अपने पिता वृषभध्वज भगवान् शंकर की शरण में गमन कीजिए ।४७। वे ही शम्भु तुम दोनों का सभी कुछ कर देंगे । इस उग्रतपसे क्या लाभ है जिसका फल बहुत ही लम्बे समय में प्राप्त होता है ।४८। परम आत्मा को धारण करने वाले मुनि शार्द्दूल कपोत इतना कहकर जिनको अतीत वर्तमान और भविष्य का पूर्ण ज्ञान था । उन दोनों से उनने सब कहा था ।४६।

यथा भृंगिमहाकालौ शप्ताववनिमागतौ ।
यथा हरश्च गौरी च पृथिवीमागतौ नृपः ।।५०
तारावती यथा शप्ता तेनैव मुनिना पुरा ।
यथा तौ समुत्पन्नौ तारावत्युदरे पुरा ।।५१
यथा वा नारदेनैव संशयच्छेदन नृपे ।
तत्सर्वं कथायामास पुत्राभ्यां गिरिशस्य तु ।५२
तच्छ्रुत्वा तौ महात्मानौ तदा वेतालभैरवौ ।
मुदा परमया युक्तौ वभूवतुरनिन्दितौ ।।५३
मोदपूर्णौ तदा भूत्वा सिक्ताविव सुधारसैः ।

पुनः पप्रच्छ कपोतं वेतालो भैरवोऽपि च ।।५४
पितावयोमहादेवस्त्वया सत्यमितीरितम् ।
सोऽर्चनीयो यथावाभ्यां सिद्धये मुनिसत्तम् ।।५५
आवाभ्यां च यथाराध्यो यत्र वाराधितो हरः ।
प्रसादमेष्यत्यचिरात् तन्नौ वद महामते ।।५६
धन्यावनुगृहीतौ नौ यत् त्वया मुनिसत्तम ।
विज्ञापित मिदं सर्वं हृच्छल्यं चोद्धृतं च नौ ।।५७
पुनरन्वां दयस्व त्वं कृपामय मुनीश्वर ।
प्राप्स्यावो न चिराद् भर्गं यथा वद तथैव नौ ।।५८

जिस प्रकार से भृंगि और महाकाल को शाप प्राप्त हुआ था और वे धरणी पर समागत हुए थे। हे नृप ! जैसे भगवान् शम्भु और गौरी पृथिवी पर आगत हुए थे ।५०। पहिले उस मुनि के द्वारा तारावती को शाप दिया गया था। और पुराने समय जिस तरह से वे दोनों तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए थे ।५१। अथवा जिस प्रकार से नारदजी के द्वारा नृप के संशय का छेदन हुआ था वह सभी कुछ गिरीश के पत्रों से कह दिया था ।५२। उस समय वे दोनों महात्मा वेताल और भैरव ने यह श्रवण करके परम हर्ष से संयुत हुए थे ।५३। उस अवसर पर मोह से पूर्ण होकर सुधा से सिक्त के ही भाँति वे हो गये थे। फिर वेताल और भैरव ने कपोत मुनि से पूछा था ।५४। हम दोनों के पिता महादेव हैं—यह आपने सत्य ही कहा है हे मुनि श्रेष्ठ ! वे जिस रीति से हम दोनों के द्वारा आराधना करने योग्य होवें अथवा जिस स्थान पर उनकी आराधना की जावे जिससे हम दोनों के द्वारा आराधना करने योग्य होवें अथवा जिस स्थान पर उनकी आराधना की जावे जिससे हम दोनों की सिद्ध होवे। जिसके द्वारा वे शीघ्र ही प्रसन्नता को प्राप्त होंवे हे महापते ! वह ही हमको आप बतलाने की कृपा करें ।५५-५६। हम दोनों परम धन्य हैं कि आपने हम दोनों पर परम अनुग्रह किया है। हे मुनि श्रेष्ठ ! आपने यह सब विज्ञापित कर दिया है और हम दोनों के हृदय का शल्य आपने उद्धृत कर दिया है। अर्थात् हमारे हृदय में शल्य की ही भाँति जो दुःख था वह दूर कर दिया है ।५७। हे मुनीश्वर ! आप तो कृपा से परिपूर्ण हैं। पुनः हमारे ऊपर दया कीजिये। जिस रीति

से हम शीघ्र ही भर्ग की प्राप्ति कर लेवें उसी भाँति आप हम को बतलाइये ।५८।

श्रृणु त्वं कथयाम्यद्य यत्र चाराधितौ हरः ।
नचिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ।।५६
नित्यं यत्र महादेवो वसन् भवति तुष्टये ।
युवां तत् संप्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं प्रकाशितम् ।।६०
वाराणसी नाम पुरी गङ्गातीरे मनोहरे ।
वरणायास्तथा चासेर्मध्ये चापाकृतिः सदा ।।६१
स्वयं वृषध्वजस्तत्र नित्यं वसति योगिनाम् ।
सदा प्रीतिकरो योगी स्वयं चाप्यात्मचिन्तकः ।।६२
विवत्स्था सा पुरी नित्यं भर्गयोगबलाद् धृता ।
दिव्यज्ञान ददात्येषा तत्र यो म्रियते नरः ।।६३

मुनि ने कहा—आप सुनिये, मैं आज बतलाता हूँ कि जहाँ पर आराधना किये हुये भगवान् हर शीघ्र ही आपके समक्ष में समागत ही जायेंगे ।५६। जहाँ पर नित्य ही महादेव निवास करते हुए तुष्टि के लिए होते हैं आप दोनों को उस स्थान को बतला दूँगा। वह स्थान गोपनीय प्रकाशित हैं ।६०। वाराणसी नाम वाली पुरी है तथा वारसा और असी वास के मध्य सदा चाप की आकृति वाली है ।६१। वहाँ पर वृषभध्वज स्वयं नित्य ही निवास किया करते हैं। वे योगी सदा ही योगियों की प्रीति के करने वाले हैं। वे स्वयं योगी हैं और अध्यात्म चिन्तन करने वाले हैं ।६२। वह पुरी आकाश में संस्थित है और नित्य ही भगवान् भर्ग के योग बल से धारण की हुई है। वहाँ पर जो भी अपने प्राणों का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त करता है तो यह पुरी उसको दिव्य ज्ञान प्रदान किया करती है ।६३।

तस्मै स्वयं महादेवः संसार-ग्रन्थिमुक्तये ।
स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ।।३४
सुलभेनैव निर्वाणमप्नोति हरसम्मतः ।
योगयुक्ता महादेवः पार्वत्या सहितः सदा ।।६५
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणां च नित्यशः ।

ज्ञेयो हरः प्रकाशश्च क्षेत्रं तच्च प्रकाशितम् ।।६६
न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति ।
आराधितश्चिरं प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ।।६७
गौर्या विवर्जिता सा तु पुरी तत्र न गच्छति ।
योगस्थानं महाक्षेत्रं कदाचिदपि शांकरी ।।६८
आसन्नं युवयोः क्षेत्रमिद वाराणसी तु यत् ।
कथित नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ।।६९
अपरं तु प्रवक्ष्यामि गुह्यं पीठं तदार्चितम् ।
हरगौरीसमायुक्तं पर धर्मार्थकामदम् ।।७०

उस पुरुष को महादेव स्वयं ही संसार के आवागमन की ग्रन्थि के बन्धन का छुटकारा पाने के लिए कृपा किया करते हैं। वहाँ पर मृत होकर पुरुष दूसरे जन्म के उत्पन्न होकर परम योगी हो जाता है ।६४। भगवान् हर के द्वारा सम्मत होता हुआ वह सुलभ उपाय के द्वारा ही वह पुरुष निर्वाण पद को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योग से युक्त महादेव सदा पार्वती के सहित निवास किया करते हैं ।६५। देव-गन्धर्व यक्षों को और मनुष्यों को नित्य ही हर ज्ञेय (जानने के योग्य) और प्रकाश हैं और वह क्षेत्र प्रकाशित हैं ।६६। वहाँ पर देव कामनाओं का प्रदान करने वाले नहीं हैं और शीघ्र ही प्रसन्न नहीं होते हैं। चिरकाल प्रीति से आराधना किये हुए ही निर्वाण के लिये ही प्रसन्न हुआ करते हैं ।६७। वह पुरी गौरी के द्वारा विवर्जित है। वह योग का स्नान महाक्षेत्र हैं वहाँ किसी समय में शाङ्करी देवी गमन नहीं किया करती हैं ।६८। यह वाराणसी आप दोनों का आसन क्षेत्र है ऐसा कहा गया है और वाराणसी हे नर श्रेष्ठो ! समीप में ही विद्यमान है ।६९। दूसरा गोपनीय और सदा ही अर्चित पीठ को मैं बतलाऊँगा जो हर और गौरी से समायुक्त हैं और परम धर्म अर्थ और काम के प्रदान करने वाला है ।७०।

तपसा चाति तीव्रेण चिराद् भवति मोक्षदम् ।
नचिरात् कामदं पुण्यं क्षेत्रं पीठ निगद्यते ।।७१
चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानदः ।
तत्क्ष त्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्ववन्दिभिः ।।७२

कामरूपं महापीठं गुह्यादं गुह्यतम परम् ।
सदा सन्निहि स्तत्र पार्वत्या सह शंकरः ।।७३
न चिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसादति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भर्गभक्तं तु तत्र वै ।।७४
ददाति नचिरात् कामं भक्ताय परमेश्वरः ।
तत् तु पीठं प्रवक्ष्यामि श्रृणुत साम्प्रतं युवाम् ।।७५
करतोया नदी पूर्वं यावद् दिक्करवासिनीम् ।
त्रिंशद् योजनविस्तीर्णं योजनैकशतायतम् ।।७६
त्रिकोणं कृष्णवर्णं च प्रभूताचलपूरितम् ।
नदीशतसमायुक्तं कालरूप प्रकीर्तितम् ।।७७

अत्यन्त तीव्र तप के द्वारा चिरकाल में मोक्ष के प्रदान करने वाला होता है। शीघ्र ही कामनाओं को देने वाला परम पुण्यमय क्षेत्र पीठ कहा जाया करता है ।७१। पूर्व में वन्दना करने वालों के द्वारा वह क्षेत्र लोकों में चिरकाल में काम के प्रदान वाले देव का कहा जनता है किन्तु जहाँ पर चिरकाल में भी ज्ञान देने वाले देव नहीं हैं ।७२। कामरूप महापीठ है जो गुह्य से भी परम गोपनीय है। वहाँ पर देव शंकर पार्वती के सहित सदा ही सन्निहित रहा करते हैं ।७३। वहाँ पर चिरकाल में पूजित हुए देव भी उस पीठ में प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं। वहाँ पर शिव के भक्त पर देवी पार्वती निश्चय ही अनुग्रह किया करती है ।७४। परमेश्वर अपने भक्त के लिये शीघ्र ही कामना किया करते हैं उस पीठ के विषय में मैं बतलाऊँगा। अब आप दोनों श्रवण कीजिए ।७५। पूर्व जहाँ तक दिक्कर वासिनी है कर तोया नदी है। वह तीस योजन विस्तार वाली हैं और एक शतयोजन आयत है ।७६। वह त्रिकोण कृष्ण वर्ग से युक्त तथा बहुत से पर्वतों से पूरित है। सौ नदियों समायुक्त है और काल रूप कीर्त्तित किया गया है ।७७।

शम्भुनेत्राग्निर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूप ततोऽभवत् ।।७८
तस्य पीठस्य वायव्यां नैर्ऋत्यां मध्यभागतः ।
ऐशान्यां च तथाग्नेय्यां मध्ये पार्श्वे च शङ्करः ।७९

स्वमाश्रमपद कृत्वा षट्सु स्थानेषु शोभनम् ।
नित्यं वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभिः ।।८०
मध्ये देवीगृहं तत्र तदाधीन तु शंकरः ।
नीलाख्ये पर्वत श्रेष्ठे पार्वती तत्र तिष्ठति ।।८१
ऐशान्यां नाटके शैले शंकरस्य महाश्रमः ।
नित्य वसति तत्रेशस्तदधीना च पार्वती ।।८२
अपरे चाश्रमाः सन्ति हरगौर्योः सनातनाः ।
नैतयोः सदृशः कोऽपि विद्यते शंकराश्रमः ।।८३
यत्राराध्यो महादेवो भवद्भयां नरसत्तमौ ।
तत्स्सान मनसादाय प्रसादय वृषध्वजम् ।।८४

भगवान् शम्भु के नेत्र से भस्मी भूत हुए कामदेव ने भगवान् शम्भु के अनुग्रह से वहाँ प्रर रूप को प्राप्त किया था इसीलिए तभी से वह कामरूप हो गया ।७८। उस पीठ के मध्य भाग से वायव्य में नैऋत्य में—ऐशानी में और आग्नेयी में और पार्श्व में शंकर है ।७९। इन छः स्थानों में परम शोभन अपना आश्रम का स्थान बना कर वहाँ पर भी पार्वती के साथ सब कार्यों को करते हुए नित्य ही शंकर निवास किया करते हैं ।८०। मध्य में देवी का गृह है । वहाँ पर उसी के अधीन शंकर हैं । वहाँ पर नील नामक श्रेष्ठ पर्वत में पार्वती विराजमान रहती हैं ।८१। ऐशानी दिशा में नाटक शैल पर भगवान् शंकर का महान् आश्रम है । वहाँ पर नित्य ही ईश्वर निवास किया करते हैं और उनके अधीन पार्वती रहती हैं ।८२। और दूसरे हर तथा गौरी के सनातन आश्रम है किन्तु इन दोनों सदृश कोई भी शंकर का आश्रम नहीं है । हे नरश्रेष्ठो ! जहाँ पर आप दोनों के द्वारा महादेव आराधना करने के योग्य हैं । उसी स्थान को मन से ग्रहण करके वृषभध्वज को प्रसन्न करिए ।८३-८४।

कामरूपं गमिष्यावौ रहस्यं नाटकाचलम् ।
गोरीहरौ स्थितौ यत्र नित्यं सन्निहितौ मुने ।।८५
आराधनोयौ भूतेशो ह्यवश्वमिह चावयोः ।
यथैवाराधयिष्यावस्तथाचक्ष्व द्विजोत्तम ।।८६

येन मन्त्रेण वा देवो नचिरात् तु प्रसीदति ।
तत् त्वं वद महाभागानुग्रहोऽस्त्यावयोर्यदि ॥८७
नाटकं पर्वतश्रेष्ठ गच्छतं नरसत्तमौ ।
तन्न नित्यं महादेवौ रमतेऽपर्णयासह ॥८८
सन्ध्याचले तत्र मुनिराराधयति शंकरम् ।
बसिष्ठो ब्रह्मण: पुत्रस्त युवामनुगच्छतम् ॥८९
स चा मन्त्रं सतन्त्रं चा हराराधनकर्मणि ।
ज्ञापयिष्यति वां पृष्टः किल वेतालभैरवी ॥९०
तपसे गन्तुमिच्छामि नेदानीं कालयापना ।
युज्यते मम तस्मान्मां त्यजत वीरोत्तमौ ॥९१

वेताल और भैरव ने कहा—हे मुनीवर ! हम कामरूप को गमन करेंगे जो रहस्य पूर्ण नाटक पर्वत है । जहाँ पर गौरी और हर नित्य ही सन्निहित हुए संस्थित रहा करते हैं ।८५। हम दोनों को वहाँ पर अवश्य ही भगवान् भूतेश्वर की आराधना करनी चाहिए । हे द्विजोत्तम ! जहाँ पर आराधना करेंगे उसी भाँति आप जिस मन्त्र के द्वारा देव शीर्ष ही प्रसन्न होते हैं । हे महाभाव ! आप बतलाइये यदि आपका हम दोनों पर अनुग्रह होवे ।८७। ऋषि ने कहा—हे नर श्रेष्ठो ! पर्वतों में श्रेष्ठ नाटक पर्वत पर आप जाइये । वहाँ पर नित्य ही महादेव अपर्णा के साथ रमण किया करते हैं ।८८। वहाँ पर सन्ध्याचल पर ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ मुनि भगवान शङ्कर की आराधना किया करते हैं । आप दोनों ही वहाँ पर चले जाइए ।८९। और वे ही हर के आराधना के क्रम में तन्त्र ज्ञापित कर देंगे जबकि आप दोनों वेताल और भैरव उनसे पूछेंगे ।९०। मैं तपश्चर्या करने के लिये जाना चाहता हूँ । अब काल को यापित नहीं करना है । यह समय ऐसे विताना युक्त नहीं है । इससे हे वीर श्रेष्ठो ! मुझको आप छोड़ दीजिए ।९१।

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठः कपोतः प्रययौ वनम् ।
तौ तं मुनिं नमस्कृत्य जग्मतुर्भवनं निजम् ॥९२
अथ तौ समयां कृत्वा दीक्षितौ तपसे तदा ।
पितरावप्यनुज्ञाप्य भ्रातृनन्यांश्च बान्धवान् ।

प्रस्थानं कामरूपाय चक्रतुस्तौ महामती ॥९३

तौ गच्छन्तौ परिज्ञाय शंकरोऽपि सहोमया ।

देवान् सर्वानुवाचेदं सान्त्वन्निव केन्द्रकान् ॥९४

पुत्रो मे तपसे यातः साम्प्रतं सुरसत्तमाः ।

ममाराधनचित्तौ तु तौ इयध्व सुरेश्वरः ॥९५

संस्कृत्य तपसा चौतौ वेतालभैरवी ।

गाणपत्ये नियोक्ष्यामि तौ सत्कुर्वन्तु निर्जराः ॥९६

अनेनैव शरीरेण तौ गणेशत्वमाप्स्यतः ।

सहसा तु तयोः कायौ भावं त्यक्त्वा मानुषम् ॥९७

यथाप्नुतः सौरभावं विधास्यामि ह्यहं तथा ।

इत्युक्त्वा वामदेवोऽपि पार्वत्या सह पुत्रकौ ॥९८

गच्छन्तो विजया स्नेहात् पश्चादनुययौ शिवः ।

शक्राद्यास्त्रिदशाः शर्वे दिक्पालाश्चा तथापरे ॥९९

इतना कहकर वह मुनि श्रेष्ठ कपोत वन में चला गया था । उन दोनों ने उस मुनि को प्रणाम किया था और फिर वे दोनों अपने भवन को चले गये थे ।९२। इसके अनन्तर उस समय में वे दोनों समय करके तपश्चर्या के लिए दीक्षित हुए थे। माता पिता से अनुज्ञा प्राप्त करके भाइयों को भी ज्ञापित करके उन दोनों महा मति वालों ने कामरूप के लिये प्रस्थान किया ।९३। उमा देवी के सहित भगवान् शङ्कर भी उन दोनों का गमन जानकर इन्द्र के साहित्य समस्त देवों को सान्त्वना देते हुए यह बोले ।९४। ईश्वर ने कहा—हे सुरेश्वरो ! मेरे पुत्र दोनों तप करने के लिए गये हैं। वे दोनों मेरी आराधना से चित्त वाले हैं । हे सुर श्रेष्ठो ! उन पर दया करो ।९५। इन दोनों पुत्रों का जो कि वेताल और भैरव नाम वाले हैं, तपस्या से संस्कार करके मैं इनको गाणपत्य में नियोजित करूँगा । हे निर्जरो ! आप लोग उन दोनों का संस्कार कर दो ।९६। तप से उन दोनों के शरीर मानुष भाव त्याग कर जिस रीति से दोनों सार भाव को प्राप्त हो जावें मैं वैसा ही करूँगा । इतना कहकर वाम व भी पार्वती के साथ ही आकाश मार्ग से गमन करते हुए पुत्रों के पीछे स्नेह से गये थे ।९८। अपने पुत्रों के पीछे अनु-

गमन करते हुए भगवान् हर पीछे-पीछे इन्द्र आदि सब देवगण—दिक्पाल और दूसरे लोग सब पीछे-पीछे गमन करने लग गये थे ।९९।

सर्वे हरं चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।
अथ तौ तु नदीं प्राप्य कृष्णाजिनधरौ तदा ।।१००
आदाय तापसं भावं गङ्गातुल्यां दृषद्वतीम् ।
तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाथ पालितौ ।।१०१
देवैः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ।।१०२
उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्ड नृपोत्तम् ।
तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदी गत्वा जठोद्भवाम् ।।१०३
उरस्पृश्य च तौ तत्र नन्दिनं तपसा धृतम् ।
प्रणम्य जल्पिशं देवं जग्मतुर्न्नाटकाचलम् ।।१०४
नाटकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
आराधनोपदेशाय कपोतकवचः स्मरौ ।।१०५

इसके अनन्तर उन दोनों ने जो उस समय कृष्ण हिरण्य के चर्म को धारण करने वाले थे, एक नदी को प्राप्त किया था अर्थात् उनको आगे एक नदी मिली थी ।१००। वे दोनों ही तामस के भाव को प्राप्त हुए थे । वह नदी दृषद्वती थी जो कि गङ्गा के ही समान परम पावन थी । भगवान् त्र्यम्बक देव के द्वारा वे दोनों तपस्वी पालित हुए थे ।१०१। उस समय देवगणों के सहित वे दोनों कामरूप नाम वाले आश्रम में समापतित हुए थे । कामरूप पहुँच करतोया नदी का जल मिला था ।१०२। हे नृपोत्तम ! उन दोनों के नदी के जल में आचमन किया । फिर नन्दिकुण्ड पर पहुँचे थे । यहाँ आचमन तथा स्नपन करके फिर जठोद्भवा नदी पर गमन किया था ।१०३। वहाँ पर दोनों ने उपस्पर्शन किया था और वहाँ पर तप के द्वारा धृत नन्दि कुण्ड को प्रणाम किया तथा जल्पिश देव को प्रणिपात किया था और फिर नाटक नामक पर्वत पर गमन किया था ।१०४। नाटक नामक पर्वत पर पहुँच कर वृषभध्वज को प्रणाम किया और आराधन के उपदेश के लिए कपोत वचन का स्मरण किया था ।१०५।

जग्मतुर्दक्षिणां काष्ठां यत्र सन्ध्याचलः स्थितः ।
कान्ता नाम नदी तत्र वशिष्ठेनावतारिता ॥१०६
तस्यास्तीरे महाशैलः स्निग्वच्छायलतातरुः ।
सन्ध्या वशिष्ठः कृतवांस्तत्र यस्माद्‌ विधेः सुतः ॥१०७
अतः सन्ध्याचल नाम तस्य गायन्ति देवताः ।
तत्रासाद्य वशिष्ठं तु साक्षादिव हुताशनम् ॥१०८
आराधयन्तं गिरिश ध्यानसंयुतमानसम् ।
उप श्रिया दीप्यमानं द्वितीयमिव भास्करम् ॥१०९
प्रणम्य पुरतस्तस्य तदा वेतालभैरवी ।
प्रांजली तस्थतुर्भूप विनयानतकन्धरौ ॥११०
इदं चाप्युचतुस्ती तु प्रणमन्तो विधे सुतम् ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ चन्द्रशेखरभूभृतः ॥१११
क्षेत्रे भर्गस्य तनयावावां जानाहि मानुषौ ।
आराधवितुमिच्छावो हरं कामस्य सिद्धये ॥११२

फिर दोनों दक्षिण दिशा की ओर गये थे जहाँ पर सन्ध्याचल संस्थित था । वहाँ पर कान्ता नाम की नदी थी जो वसिष्ठ मुनि ने अवतारित की थी ।१०६। उस नदी के तट पर एक महान् शैल था जिस पर बनी छाया वाले वृक्ष और लताएँ थीं क्योंकि ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ जी ने वहाँ पर सन्ध्या वन्दना की थी ।१०७। इसलिये देवगण उस पर्वत का नाम सन्ध्याचल गाया करते हैं वहाँ पर पहुँच कर वसिष्ठ मुनि का दर्शन था जो साक्षात् अग्नि के ही तुल्य थे ।१८०। वे वसिष्ठ मुनि भगवान् गिरीश की आराधना कर रहे थे और उनका मन ध्यान में संयुक्त था । वे तपस्या की श्री से दै दीप्यमान थे और दूसरे सूर्य के ही समान प्रतीत हो रहे थे ।१०९। उस अवसर पर उनके आगे वेताल और भैरव ने प्रणाम किया था । हे भूप ! वे दोनों विनय से अवनत होते हुए हाथों को जोड़े हुए स्थित हो गये थे ।११०। उन दोनों ने यह प्रणाम करते हुए विधाता के पुत्र से कहा कि चन्द्र शेखर से हम दोनों तारावती में उत्पन्न हुए हैं ।१११। इस क्षेत्र में हम दोनों भर्ग पुत्रों को मनुष्य ही जानिए । हम कार्य की सिद्धि के लिए भगवान् शम्भु की आराधना करने की इच्छा रखते हैं ।११२।

वाञ्छितस्य यदि त्वं नावनुगृह्णासि सुव्रतः ।
तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा वशिष्ठो मुनिसत्तमः ।।११३
उवाचेति युवां ज्ञातौ माया सत्यं हरात्मजौ ।
हरस्याराधनं कार्यं युवयोर्नरसत्तमौ ।।११४
तत्रास्ति मम कृत्यं कि तद्भाषतमनिन्दितौ ।
वृषध्वजाराधनाय युवयोस्तु प्रयोजनम् ।
विद्यते तन्निमित्तं यत तत् सिद्धमिति चिन्यताम् ।।११५
येन मन्त्रेण नचिरात् सम्यगाराधितो हरः ।
प्रसादमेष्यत्यवनौ तन्नो वद महामुने ।।११६
यथा चाराधयिष्यावस्तन्त्र यद् यादृशः क्रमः ।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल वक्तुमर्हसि चोत्तरम् ।।११७
यथा त्वदुपदेशेन प्राप्स्यावो नचिराद् हरम् ।
यथा वाचां मुनिश्रेष्ठ ह्यनुशाधि न तौ त्वयि ।।११८

हे सुव्रत ! यदि आप हम दोनों के अभीष्ट के विषय में अनुग्रह करते हैं। उन दोनों के उस वचन का मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने श्रवण किया और उन्होंने कहा था, कि मैंने आप दोनों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और सत्य में आप दोनों ही भगवान् शम्भु के आत्मज हैं। हे नरश्रेष्ठो ! आप दोनों को भगवान् शम्भु की आराधना करनी चाहिए ।११३-११४। परम श्रेष्ठ आप दोनों वहाँ पर मेरा क्या कृत्य है यह बोलिये। वृषभध्वज की आराधना के लिये आप दोनों का प्रयोजन है। जो उसका निमित्त है वह सिद्ध हो गया है वह चिन्तन कीजिए।११५। वेताल और भैरव ने कहा—जिस मन्त्र के द्वारा अविलम्ब ही भली भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की गई है। हे महामुने ! वह हमारे ऊपर अपनी पृथ्वी में प्रसन्नता को प्राप्त होंगे—यही हमको आप बतलाइए।११६। हे मुनि शार्दूल ! जिस रीति से हम आराधना करें—जो तन्त्र है और जैसा भी क्रम है—यह सभी आप उत्तम रूप में बताने के लिए योग्य होते हैं।११७। जिस रीति के शीघ्र ही हर को प्राप्त कर लेवें। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप अनुशासन कीजिए। हम दोनों आपके प्रति प्रणत हैं।११८।

प्रसन्न एव भवतार्वृषकेतुः सहोमया ।
नचिरात् स्वमेवात्र प्रसादं च समेष्यति ॥११९
सर्वैर्देवगणैः सार्धं सभार्यो वृषभध्वजः ।
आकाशमार्गेणायातः पलायन् स्वसुतौ गृहात् ॥१२०
किनु मानुषदेहो वामधिवास्य तपोव्रतैः ।
स्वयन्नेष्यति कैलासं गाणपत्ये नियोज्य वाम् ॥१२१
अहं चाप्युपदेक्ष्यामि तथा भर्गं युवां द्रुतम् ।
प्राप्स्यथः पार्वतीपुत्रावेकाग्र श्रृणुतं तु तत् ॥१२२
चिरात् प्रसीदति ध्यानान्नाचिराद् ध्यानपूजनात् ।
तस्माद् ध्यानं पूजनं च कथयाभ्यद्य तत्वतः ॥१२३
तेजोमयः सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धितः ।
जगन्मयश्चिदान्दः शौरिब्रह्मस्वरूपधृक् ॥१२४
महादेवो महामूर्तिर्महायोगयुतः सदा ।
जगन्ति तस्य रूपाणि तानि को गदितु क्षमः ॥१२५
किन्तु यैरिह रूपैस्तु विचरत्येष शंकरः ।
तेषां यन्मे ज्ञानगम्यं तत्रेष्टं निगदामि ॥१२६

वसिष्ठ जी ने कहा—आप दोनों के ऊपर भगवान् वृषकेतु उमादेवी के सहित प्रसन्न हैं। यहाँ पर स्वयं शीघ्र प्रसाद को प्राप्त हो जायेंगे ।११९। समस्त देवगणों के साथ अपनी भार्या के साथ वृषध्वज गृह से अपने पुत्रों का पालन करते हुए आकाश के मार्ग के द्वारा समाक्षिप्त हैं ।१२०। किन्तु आपके मनुष्य के देह का अधिवासन करके अर्थात् तपों व्रतों से संस्कार करके स्वयं ही कैलाश पर ले जायेंगे। और गाणपत्य दोनों का नियोजन करेंगे ।१२१। और मैं भी उपदेश कर दूँगा। जिससे आप दोनों ही शीघ्र ही भर्ग को प्राप्त कर लेंगे। हे पार्वती पुत्रो ! उसे एकाग्र मन से श्रवण कीजिये ।१२२। ध्यान से चिरकाल में प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ध्यान पूजन से प्रसन्न होते हैं। इस कारण से आज तात्विक रूप से ध्यान और पूजन बतलाता हूँ ।१२३। वे तेज से परिपूर्ण हैं—सदा शुरू स्वरूप हैं—ज्ञानामृत से विवर्धित हैं—जगत से परिपूर्ण है—चित् (ज्ञान) और आनन्द रूप है—

शौरि और ब्रह्मा के स्वरूप को धारण करने वाले हैं ।१२४। महादेव—महा-मूर्त्ति और सदा महान् योग से संयुत हैं—ये सम्पूण जगत् उनके ही स्वरूप हैं उनका कथन करने में कौन समर्थ है ।१२५। किन्तु जिन रूपों से ये भगवान् शङ्कर विचरण किया करते हैं उनमें से जो मेरे ज्ञान के द्वारा गम्य है उसमें जो भी अभीष्ट है आप दोनों को मैं कहता हूँ ।१२६।

प्रथम श्रृणुतं मन्त्रं ततोऽतुध्यानगोचरम् ।
ततः क्रमं तु पूजायाः क्रमाद् वृत्तं नरर्षभौ ।।१२७
समस्तानां स्वराणां तु दीर्घाः शेषाः सबिन्दुकाः ।
ऋतुशून्याः सार्धचन्द्रा उपान्तेनाभिसंहिताः ।।१२८
एभिः पंचाक्षरैर्मन्त्रं पंचवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
क्रमात् सम्मदहसन्दोह-नादगौरवः संज्ञकाः ।।१२९
प्रासादस्तु भवेच्छैषः पंचमन्त्राः प्रकीर्तिता ।
एकैकेन तथैकैक वक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ।।१३०
एकं समुदित कृत्वा पंचभिर्वा प्रपूछयेत् ।
प्रसादेनाथ वा पचवक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ।।१३१
शम्भोः प्रसादनेनैष यस्माद् वृत्तस्तु तन्त्रकः ।।१३२
तेन प्रासादसंज्ञोऽयं कथ्यते मुनिसत्तमैः ।
तस्मात् सर्वेषु प्रासादः परम प्रीतिदः परः ।।१३३

हे नरश्रेष्ठो ! सबसे प्रथम मन्त्र का स्रवण करो उसके पश्चात् ध्यान से साक्षात्कार को सुनिये । इसके पश्चात् पूजा का क्रम फिर—क्रम से वृत को सुनिये ।१२७। समस्त स्वरों में दीर्घ शेष बिन्दु से युक्त होवें । ऋतु शून्य हों तथा अर्ध चन्द्र से सयुत होवे । उमान्त से अभिसहित होवें ।१२८। इन जाँच अक्षरों के द्वारा पच वक्त का मन्त्र कहा गया है । क्रम से सम्मद सन्दोह—नाद—गौरव संज्ञा वाले हैं । एक-एक से वहाँ पर एक-एक वक्त्र को देव पूजन करना चाहिए ।१२९-१३०। अथवा एक को समुदित करके पाँचों से पूजन करे । इसके अनन्तर प्रसाद के द्वारा पच वक्त्र देव का यजन करना चाहिए ।१३१। सम्पद प्रभृति मन्त्रों में प्रसाद परम प्रसस्त कहा गया है । क्योंकि शम्भु के प्रसादन से ही वृत्त मन्त्र होता है ।१३२। इसी कारण

से मुनियों में श्रेष्ठों के द्वारा यह प्रसाद संज्ञा वाला कहा गया है। इस कारण से समस्त मन्त्रों में प्रासाद परम प्रीति के प्रदान करने वाला है।१३३।

आमोदकारकः शम्भोर्मन्त्रः सम्मदः उच्यते ।
मनःप्रपूरणाच्चापि सन्दोहः परीकीर्तितः ।।१३४
आकर्षको भवेन्नादो गुरुत्वाद् गौरवाह्वयः ।
एतद् व्यस्तं समस्त च मन्त्रं शम्भोः प्रकीर्तितम् ।।१३५
पंचाक्षर तु यन्मन्त्रं पंचवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
युवां तेनैव मन्त्रेण आराधयतमीश्वरम् ।।१३६
ध्यार वक्ष्यामि श्रृणुतं सम्यग् वेतालभैरवी ।
पंचवक्त्रं महाकायं जटाजूटविभूषितम् ।।१३७
चारुचन्द्रकलायुक्तं मूर्ध्नि वालौघभूषितम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्मामराम्बरम् ।
कालकूटधरं कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
किरीटबन्धनं बाहुभूषणं च भुजंगमान् ।।१३९
विभ्रत सर्वगात्रेषु ज्योत्स्नापितसुरोचिसम ।
भूतिसलिप्तसर्वांगमेकैकत्र त्रिभिस्त्रिभिः ।।१४०
नेत्रैस्तु पंचदशभिर्ज्योतिष्मद्भिविराजितम् ।
वृषभोपरि संस्थं तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ।।१४१

सम्मद मन्त्र भगवान् शम्भु के आमोद के रहने वाला कहा जाता है। मन की प्रापूर्ति करने ही से सन्दोह कहा गया है।१३४। नाद आकर्षण करने वाला नाद होता है। पुरूत्व होने से गौरव नाम वाला है। यह व्यस्त और समस्त अर्थात् अलग-अलग और सब पिता कर भगवान् शम्भु के मन्त्र कीर्तित किये गये हैं।१३५। पञ्चाक्षर अर्थात् पाँच अक्षरों वाला जो मन्त्र है वह पञ्च वक्त्र का कहा गया है। आप दोनों उस ही मन्त्र के द्वारा ईश्वर का समारा धन करिए।१३६। हे वेताल भैरव! मैं उसका ध्यान बतलाऊँगा उसका भली भाँति आप श्रवण करिए। अव शम्भु के स्वरूप का ध्यान बतलाया जाता है—शम्भु के पाँच मुख हैं—महान् उनका शरीर

है—वे जटा जूटों से समलंकृत हैं ।१३७। सुन्दर चन्द्रमा की कला से समन्वित हैं—मस्तक में बालों से विभूषित हैं—शम्भु की दश वायु हैं और व्याघ्र चर्म ही उनका वस्त्र है ।१३८। कण्ठ में भगवान् शम्भु ने हलाहल कालकूट विष को धारण किये हुए हैं तथा नागों के हार से उनका वक्षःस्थल विभूषित है। भुजङ्ग ही उनके किरीट का बन्धन है तथा भाग ही बाहुओं के भूषण बने हुए हैं ।१३९। सम्पूर्ण अङ्गों में चाँदनी से अर्पित सुन्दर कान्ति के धारण करने वाले हैं। भस्म से सम्पूर्ण अङ्ग संलिप्त हैं। एक-एक मुख में तीन-तीन नेत्र हैं। इस प्रकार से पन्द्रह ज्योतियों वाले नेत्रों से शोभित हैं। वृषभ के ऊपर विराजमान है। और हाथी के चर्म के परिच्छद वाले हैं। ।१४०-१४१।

सद्योजातं वामदेवमघोर च ततः परम् ।
तत् पुरुषं तथेशानं पंचवक्त्रं प्रकीर्तितम् ।।१४२
सद्योजातं भवेच्छुक्लं शुद्धस्फटिकसंनिभम् ।
पीतवर्णं तथा सौम्यं वामदेव मनोहरम् ।।१४३
नीलवर्णमघोरं तु दंष्ट्रा भीतिविवर्धनम् ।
रक्तं तत्पुरुषं देवं दिव्यमूर्ति मनोहरम् ।।१४४
श्यामलं च तथेशानं सर्वदैव शिवात्मकम् ।
चिन्तयेत् पश्चिमे त्वाद्यं द्वितीयं तु तथोत्तरे ।।१४५
अघोरं दक्षिशे देव पूर्वे तत्पुरुषं तथा ।
ईशानं मध्यतो ज्ञेयं चिन्तयेद् भक्तितत्परः ।।१४६
शक्तित्रिशूलखट्वांगवरदाभयदं शिवम् ।
दक्षिणेष्वथ हस्तेषु वामेष्वपि ततः शुभम् ।।१४७
अक्षरूत्रं बीचपूरं भुजनं डमरूत्पलम् ।
अष्टैश्वर्यसमायुक्तं ध्यायेत् तु हृद्गत शिवम् ।।१४८

अब शम्भु के पाँचों मुखों के नाम बतलाये जाते हैं—सद्यो जात—वामदेव आधार—तत्पुरुष—ईशान ये पाँच मुख कीर्तित किये गये हैं। ।१४२। सद्यो जात का वर्ण शुक्ल है और वह स्वच्छद स्फटिक के तुल्य है। वामदेव पीत वर्ण वाला—सौम्य एवं मनोहर है ।१४३। अघोर नीले वर्ण

वाला है औस उसमें दाढ़ है जो भय के बढ़ाने वाला है । तत्पुरुष देव रक्त वर्ण से युक्त हैं जिसकी मूर्ति परम दिव्य है और वे मनोहर हैं।१४४। ईशान श्यामल हैं और सर्वदा ही शिव स्वरूप हैं । आद्य स्वरूप का पश्चिम दिशा में चिन्तन करना चाहिए । उत्तर दिशा में द्वितीय स्वरूप का चिन्तन करे। १४५। अघोर देव का दक्षिण में तथा पूर्व दिशा में तत्पुरुष का चिन्तन करना चाहिए। मध्य भाग में ईशान का भक्ति तत्पर होकर चिन्तन करना चाहिए।१४६। दक्षिण भाग के हाथों में शक्ति—त्रिशूल—खट्वाङ्ग—वरदान—अभय दान के दाता शिव का चिंतन करना चाहिए उसी भाँति वाम भाग के हस्तों में अक्ष सूत्र—वीजपुर—भुजंग—डमरू और शुभ उत्पन्न का ध्यान करे। आठ ऐश्वर्यों से समायुक्त हृदय में विराजमान शिव का ध्यान करना चाहिए ।१४८।

एवं विचिन्तयेद् ध्याने महादेव जगत्पतिम् ।
चिन्तयित्वा द्वारपालान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ।।१४९
विशुद्धि पंचभूतानां चिन्तयित्वा ततो मुहुः ।
अष्टमूर्तीतस्ततः पश्चात् पूजयेदष्टनामभिः ।।१५७
आसनानि च तस्याथ पूजयेत् सकलानि तु ।
भावादीन्यष्टपुष्पाणि हृदैव विनियोजयेत् ।।१५१
नाराचगुद्रया तस्य ताडन परिकीर्तितम् ।
विसर्जनं धेनुमुद्रां दर्शयित्वा विधानतः ।।१५२
निर्माल्यधारणं कुर्यात् सदा चण्डेश्वरं धिया ।
प्रत्येकं पंचभिर्मन्त्रैरङ्गादीनि प्रमार्जयेत् ।।१५३
सम्मदाभिरेतस्य पूर्वोवतैर्नरसत्तमौ ।
वालां ज्येष्ठां तथा रोद्री काली च तदनन्तरम् ।।१५४
कलविकरिणीं देवीं वलप्रमथिनीं तथा ।
दमनीं सर्वभूतानां मनोन्मथिनीं तथैव च ।।१५५

इस प्रकार से ध्यान में जगत्के स्वामी महादेवजी का विचिन्तन करना चाहिए और द्वारपालों का चिन्तन करके गणेश आदि का पूजन करे। ।१४९। इसके अनन्तर पुनः पाँचों भूतों की विशुद्धि का चिन्न करे। इसके

उपरान्त आठ नामों के द्वारा आठ मूर्तियों का अभ्यर्चन करे ।१५०। भवादि आठ पुष्पों का हृदय के द्वाराही विनि-योजना करना चाहिए और जो समस्त आसन्न हों उनका भी पूजन करे ।१५१। नाराच मुद्रासे उसका ताड़न परि-कीर्तित किया गया है । और धेनु मुद्रा खिलाकर विधान से विसर्जन करे । ।१५२। सदा ही वृद्धि से दण्डेश्वर प्रभु का निर्माल्य धारण करना चाहिए । प्रत्येक का पाँच मन्त्रों के द्वारा अङ्गादि प्रमार्जन करे ।१५३। हे नर श्रेष्ठो ! इन पूर्व में वर्णित सम्पद आदि के द्वारा इसका प्रमार्जन करना चाहिए । फिर आठ देवियों का पूजन करे । उनके नाम हैं—वाला—ज्येष्ठा—रौद्री—काली—कलविकरणी—देवीवल प्रमर्थिनी—सब भूतों की दमनी—मनोन्म-थिनी ।१५४-१५५।

अष्टौ ताः पूजयेद् देवीः क्रमाच्छम्भोश्च प्रीतये ।
एवं शिवं पूजयित्वा ध्यानतत्परमानसः ।।१५६
जपेन्मालां समादाय मन्त्रं ध्यात्वा तथा गुरुम् ।
एकं पंचक्षरं मन्त्रमेकं प्रासादमेव वा ।।१५७
तत्सक्तमनसौ जप्त्वा शीघ्रं सिद्धिमवाप्स्यथ ।
इति वां कथितं मन्त्रं ध्यानपूजाक्रम तथा ।
गच्छत नाटक शैल तत्राराधयत हरम् ।।१५८
पञ्चाक्षरस्तु मन्त्रोऽयं धृतस्त्वत्सभ्मते मुने ।
अनेनेव हरं देवं पूजयिावावहे मुदा ।।१५९
इत्युक्त्वा तन्नमस्कृत्य तदा वेतालभैरवी ।
जग्मुतुर्नाटकं शैलं वशिष्ठनुमते नृप ।।१६०
तत्रास्ति सरसी रम्या सुसम्पूर्णमनोहरा ।
सर्वदा स्वच्छसलिला प्रफुल्लकमलोत्पला ।।१६१

इन आठ देवियों का यजन क्रम से भगवान् शम्भु की प्रीति के लिये करना चाहिए । इस रीति से शम्भु का पूजन करके ध्यान में परायण मन वाला हो जावे ।१५६। फिर अपने श्री गुरुदेव का और मन्त्र का ध्यान करके माला का आदान कर जप करना चाहिए । एक ही पाँच अक्षरों वाला मन्त्र अथवा एक प्रसाद होवे ।१५७। उसी में समासक्त मन वाले होते हुए जप करके शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति कर लोगे । यह आप दोनों को मन्त्र बतला

दिया है तथा इनका ध्यान और पूजा का क्रम भो कह दिया गया है। अब आप लोग नाटक पर्वत पर जाइये और वहाँ पर भगवान् हर की आराधना करिए।१५८। वेताल और भैरव दोनों ने कहा—हे मुनिवर ! यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र आपकी सम्पति से धारण कर लिया है और इसी मन्त्र के द्वारा देवेश्वर शम्भु का आनन्द के साथ हम यजन करेंगे।१५९। हे नृप ! इतना ही यह कहकर तथा वेताल और भैरव दोनों ने प्रणाम किया था और फिर वसिष्ठ मुनि की अनुमति से नाटक पर्वत पर वे दोनों चले गये थे।१६०। वहाँ पर एक परम सुन्दर सरोवर था जो पूर्ण सुन्दर सरोवर था जो पूर्ण सुन्दरता से बहुत ही मन को हरण करने वाली थी। उत्तम सर्वदा वहुत ही स्वच्छ जल रहा करता था और सदा विकसित कमल रहते थे।१६१।

तस्यास्तीरे तु विपुलः सुमनोज्ञो हराश्रमः ।
सर्वदा दानवैर्देवैः किन्नरैः प्रथमस्तथा ।।१६२

रक्ष्यते नृपशार्दूल नृत्यवादनतत्परैः ।
यस्मिन्नटति तत्रेशो नित्य कौतुकतत्परः ।।१६३

तस्मान्नाटकनाम्नासौ शैलराजः प्रगीयते ।
छत्राकारं तु तं शैल मनोज्ञं शंकरप्रियम् ।।१६४

आसाद्य यत्र सरसी तत्र गत्वा तु तौ तदा ।
न चैवापश्यतां तत्र हराश्रममणत्तमम् ।।१६५

गन्तुं चैवाश्रमस्थानं तौ नैवाशकतां नृप ।
ततो हरं प्रणम्याशु तस्यैव सरसस्तटे ।।१६६
निर्माय स्थण्डिलं चारु वशिष्ठोक्तक्रमेण तु ।
हरमाराद्धुमारेभे वेतालो भैरवोऽपि च ।।१६७

आराधयन्तौभूतेशं तौ तदा शंकरात्मजौ ।

दृष्ट्वा हरो देवगणैः सार्धं तस्मिस्तु पर्वते ।
अधित्यकायां न्यवसत् स्वाश्रमेऽपर्णया सह ।।१६८

उसी सरोवर के तट पर परम विशाल और अत्यधिक सुन्दर भगवान् शम्भु का आश्रम था। वह आश्रम सर्वदा दानवों—देवों—किन्नरों तथा प्रमथों द्वारा हे नृप शार्दूल ! रक्षा किया जाता है वे रक्षा करने वाले सदा ही नृत्य और वादन में परायण रहा करते हैं। जिस कारण से वहाँ पर ईश

कौतुक में तत्पर होकर नित्य नटित हुआ करते हैं ।१६२-१६३। इसी कारण से यह पर्वत नाटक इस नाम से प्रगीत किया जाता है । वह शैल छत्र के आकार के तुल्य आकार वाला था परम मनोज था और भगवान् शङ्कर का अतीव प्रिय था ।१६४। जहाँ पर सरोवर की प्राप्ति की थी । उस समय सेन दोनों वे वहाँ पर गमन किया था और उन्होंने परमोत्तम भगवान् हर का आश्रम नहीं देखा था ।१६५। हे नृप ! वे दोनों आश्रम के स्थान पर गमन करने में असमर्थ हो गये थे । इसके अनन्तर उन्होंने भगवान् शम्भु को प्रणाम किया था और उसी सरोवर के तट पर स्थित हो गये थे ।१६६। वहीं पर वसिष्ठ मुनि के द्वारा कथित क्रम से एक सुन्दर स्थण्डित का निर्माण करके वेताल और भैरव दोनों ने भगवान् हर की आराधना करना आरम्भ कर दिया था ।१६७। उस समय में शङ्कर के आतमज ये दोनों को जो कि भूतेश्वर की आराधना कर रहे थे भगवान् शङ्कर ने उस पर्वत पर देवगणों के साथ देखकर उस पर्वत की अधित्यका में अपूर्णा के साथ ही में निवास किया था । पर्वत के नीचे की भूमि को अधित्यका कहा जाता है । उसी अधित्यका में भगवान् ने निवास करना शुरू कर दिया ।१६८।

अधोभाये सरस्तीरे तपस्यन्तौ हरात्मजौ ।
स्थितौ दृष्ट्वा देवगणैः सहितः शंकरः स्थितः ॥१६९

नृत्यमदलशब्दो यो हरस्य सततं भवेत् ।
शृणुतस्तौ तदा शब्दं गन्तुं द्रष्टुं न लभ्यते ॥१७०

हरेणाधिष्ठितः शैलः सर्वदेवगणैः सह ।
राजते स्म तदा भूप सुधर्मा वासयो यथा ॥१७१

ध्यायतोस्तु तदा तत्र भगवान् वृषभध्वजः ।
नचिरादेव तस्याभूद् ध्यानमार्ग्रेषु निश्चलः ॥१७२

तौ पूज्यन्तौ गच्छन्तौ स्थितौ वा चन्द्रशेखरम् ।
नैव तत्यजतुश्चित्तैः कदाचिदपि भूमिपः ॥१७३

पंचाक्षरेण मत्रे न्ण पूजयन्तौ वृषध्वजम् ।
व्यतिचक्रमतुस्तौ त सहस्त्रं परित्सरान् ॥१७४

निराहारौ यताहारौ हरसक्तमानसौ ।
तपसा निन्यतुवर्षान् सहस्रं चैकवर्षवत् ॥१७५

सरोवर के तट पर नीचे के भाग में शङ्कर के दोनों पुत्र तपश्चर्या कर रहे थे वहाँ पर उन दोनों को स्थित हुए देखकर देवगणों के सहित भगवान् शङ्कर भी वहीं पर संस्थित हो गये थे।१६९। वहाँ पर निरन्तर भगवान् हर का जो नृत्य और मर्दल का शब्द हुआ करता था वे दोनों उस समय में उनका श्रवण किया करता है किन्तु वहाँ पर गमन करना और देखना प्राप्त नहीं होता था।१७०। हे भूप! वह पर्वत देवगणों के सहित भगवान् हर के द्वारा अधिष्ठित था। उस समय वे वापसी सुधर्मा की भाँति शोभित हो रहे थे।१७१। उस समय वहाँ पर भगवान् वृषभ ध्वज ध्यान करने वाले उनके ध्यान मार्गों में अविलम्बि ही निश्चल हो गये थे।१७२। हे भूमिष! वे दोनों ही पूजा करते हुये गमन रखते हुए अथवा स्थित होते हुए भगवान् शम्भु का ही ध्यान किया करते थे और किसी समय भी चित्तों से भगवान् चन्द्र शेखर का त्याग नहीं करते थे।१७३। पाँच अक्षरों वाले मन्त्र के द्वारा वृषभध्वज का पूजन करते हुए उन दोनों ने सहस्र वर्षों का व्यत्तिक्रत कर दिया था।१७४। बिना आहार वाले—संयत आहार वाले और भगवान् हर में संसक्त मन वाते उन दोनों ने तपश्चर्या के द्वारा सहस्र वर्षों को एक ही वर्ष की भाँति बिताया था।१७५।

गते वर्षसहस्रे त स्वमेव वृषभध्वजः।
प्रसन्नस्तु तयोर्भूत्वा प्रत्यक्षत्वमुपागतः ।।१७६

तं तु प्रायक्षतो दृष्ट्वा तदा वेतालभैरवी।
वृषध्वजं तुष्टु तृर्ध्यानगम्यं पुरः स्थितम् ।।१७७
हरस्वरूपं यथाध्यातं हृद्गतं तेजसोज्ज्वलम्।
तथा दृष्ट्वा तनस्ताभ्या वशिष्ठस्यानुमानतः ।।१७८

पंचवक्त्रं महाकार्यं सर्वज्ञानमयं परम्।
संसारसागरत्राण प्रणमावो वृषध्वजम् ।।१७९
त्वं परः परमात्मा च परेशःपुरुषोत्तमः।
त्वं कूटस्थो जगद्व्यापी प्रधानः परमेश्वरः ।।१८०
रूपात्मा त्वं महातत्वं तत्वज्ञानालयं प्रभुः।
सांख्ययोगालयः शुद्धो गुणत्रयविभागवित् ।।१८१

त्वं नित्यस्त्वमनित्याश्च जगत्कर्ता लयः स्मृतः ।
एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मयः ।।१८२

एक सहस्र वर्षों के व्यतीत हो जाने पर वृषध्वज स्वयं ही उन दोनों से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष उपागत हो गये थे ।१७६। उस अवसर पर वेताल और भैरव दोनों ने भगवान् शम्भु को प्रत्यक्ष विराजमान पाकर वृषभध्वज का स्तवन किया था ।१७७। जिस प्रकार हरके स्वरूप का ध्यान किया था और जो तेज के द्वारा उज्जवल हृदय में स्थित थे फिर उन दोनों ने उसी भाँति वसिष्ठ मुनि के अनुमान से उनका दर्शन किया था ।१७८। वेताल और भैरव ने कहा—पाँच मुखों वाले—महान विशाल शरीर से समन्वित—सम्पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण—परम—संसार रूपी सागर से परित्राण करने वाले भगवान वृषभध्वज को हम दोनों प्रणाम करते हैं ।१७९। आप पर परमात्मा है और आप परेश पुरुषोत्तम हे—आप कूटस्थ—जगत् में व्याप्त रहने वाले प्रधान परमेश्वर हैं ।१८०। आप रूपात्मा हैं—आप महातत्व हैं—तत्व ज्ञान के आलय हैं प्रभु हैं-आप सांख्य योग के आलय हैं—शुद्ध और तीन गुणों ( सत्व-रज तम ) के विभाग के ज्ञाता हैं ।१८१। आप एक और अनेक रूप वाले हैं—शान्त चेष्टा से संयुक्त और जगन्मय हैं ।१८२।

निर्विकारो निराधारी नित्यानन्दः सनातनः ।
त्व विष्णुस्त्व मदेन्द्रस्त्वं ब्रह्मा त्व जगतां पतिः ।।१८३

यो रूपरूपेश्वररत्नमालः
सम्मूतिमूतो निहवग्रहश्व ।
कांक्ष्यावतीर्णाविगतप्रमाथी
योगेश्वरी ज्ञानगतिस्त्वगम्यः ।।१८४

प्रमेयरूपात्मधराभो
भोगीन्द्रबद्ध मृतभोगतन्त्रः ।
सूक्ष्माक्षरस्तत्वविदप्रमाथी
त्वं देवदेवः शरणं सुराणाम् ।।१८५

विकल्पमानापरिहीनदेहः
शुद्धान्तधामानुगतंकविद्यः ।

वर्धिणुरुग्रः पुरुषः परात्मा
त्वमिन्द्रियौधस्य विचारबुद्धिः ।।१८६
त्वं नाथनाथ प्रभवः परेषां
गतिर्मुनीनां परयोगिगम्य ।
त्वं भूधरो भागधरो ह्यनन्तो
विश्वात्मनस्ते बहवः प्रपञ्चा ।।१८७
ज्ञानामृतस्यन्दक पूर्णचन्द्रो
मोहान्धकारस्य परः प्रदीपः ।
भवतात्मजानां परमः पिता त्वं
कामे च पंचाननरूपधरी ।।१८८
शास्ताखिलांनां प्रथमो विवस्वां-
स्तनूनपात् त्वं तनुषेगुणौधान् ।
त्वं ब्रह्मरूपेण करीषि सृष्टि
विष्णुस्वरूपः सततं स्थिति च ।।१८९

आप विकारों से रहित—निराधार—नित्य ही आनन्द स्वरूप हैं तथा सनातन है। आप विष्णु हैं—आप महेन्द्र हैं और आप ब्रह्मा तथा जगत् के स्वामी हैं।१८३। जो रूप और रूपेश्वर रत्नों की माता है—सम्भूति से भूत और निरवग्रह हैं—जो काक्ष्यावतीर्ण अवगत प्रभा भी हैं-योगेश्वर—ज्ञान की गति वाले और अगम्य अर्थात् न जानने के योग्य हैं।१८४। आप प्रमेय रूप आत्मा के धराधराम हैं—आप भोगीन्द्रो से बद्ध अमृत भोग तन्त्र वाले हैं। आप सूक्ष्म और अक्षर हैं—तत्वों के वेत्ता और अप्रमाथी हैं। आप देवों के भी देव और सुरगणों के रक्षक हैं।१८५। आप विकल्प और मान से परिहीन देह वाले हैं-आप शुद्ध अन्तधाम और अनुगतों को एक विद्या रूप हैं। आप वर्धिष्णु, उग्र पुरुष और परमात्मा हैं—आप इन्द्रियों के समूह की विचार बुद्धि हैं।१८६। आप नाथों के भी नाथ हैं—परों के प्रभव अर्थात् उत्पत्ति स्थान हैं—आप मुनिगणों की गति हैं तथा पर योनियों के द्वारा जानने योग्य हैं। आप भूधर हैं, भागसर और अनन्त हैं। विश्वात्मा आपके बहुत—से प्रपञ्च हैं।१८७। आप ज्ञान रूपी अमृत के स्पन्दन करने वाले पूर्ण चन्द्रमा हैं और मोह रूपी अन्धकार के परम प्रदीप हैं। आप भक्तों के

पुत्रों के लिये परम पिता हैं और कोप में पञ्चानन के रूप को धारण करने वाले हैं ।१८८। आप समस्तों के शास्ता हैं—आप प्रथम विवस्वान हैं—आप तनूनयात् हैं—आप गुणों के समुदायों का विस्तार किया करते हैं । आप ब्रह्म के रूप से सृष्टि किया करते हैं । और आप ही भगवान विष्णु के रूप के द्वारा परिपालन निरन्तर किया करते हैं ।१८९।

त्वं रूपी रुद्रकुरुते तथान्तं
त्वत्तो न चान्याज्जगतीह वस्तु ।
त्वं रात्रिनाथो दिवसेश्वरश्च
त्वमग्निराप: पवनो धरित्री ॥१९०
नभस्तथा त्वं क्रतुमन्त्रहोता
त्वमष्टमूर्तिर्भवतौ न चान्यत् ।
अवेन्टमूर्तिस्त्विवह मुख्यभावा-
न्निगद्यते चाष्टमयी त्रिमूर्तिः ॥१९१
अनन्तमूर्ते कथमन्यथा ते
संख्यास्ति रूपस्य यदष्टमूर्तिः ।
त्व त्र्यम्बकस्त्वं त्रिपुरान्तकंश्च
त्वं शम्भुरीश: शमनो विधाताः ॥१९२
सहस्रबाहुश्च हिरण्यबाहुः
सहस्रमूर्तिस्त्विह पंचवक्त्रः ।
प्रमूतनेनेत्रस्तु षडर्धनेत्रः
प्रभूतवाहुर्दशबाहुरीशः ॥१९३
भूतभोगी मितभोगयुक्तो
भोग्यानुसारो निरवग्रहश्च ॥१९४
नित्यानित्यस्वरूपाय नित्यधामस्वरूपिणे ।
परतत्वस्वरूपाय नमस्तुभ्यं शिवात्मने ॥१९५
नान्तं लिंगस्य यस्याप्तं विष्णुया ब्रह्मणा तव ।
तस्यावां कि विधास्याव: स्तुतिवाक्यं वृषध्वजः ॥१९६

आप ही गुरुदेव के रूप से इस जगत् का अन्त किया करते हैं। इस जगत् में आपसे अन्य कुछ भी वस्तु नहीं है। आप चन्द्रमा हैं और आप सूर्य है। आप ही अग्नि है—जल है पवन है, और आप ही धरित्री हैं।१९०। आप ही नभ हैं और आप ही क्रतुके तन्त्र होता है। आप ही अष्ट मूर्ति हैं और आपसे अन्य नहीं है। यहाँ पर मुख्यभाव से अनन्त मूर्ति है और अष्ट-मूर्ति के हो जाया करते हैं।९१। हे अनन्त मूर्त्तियों वाले ! आपके रूप की अन्य प्रकार से संख्या कैसे हो सकती है क्योंकि आप अष्ट मूर्ति हैं। आप त्र्यम्बक हैं और आप त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं। आप शम्भु है शमन हैं और विधाता हैं।१९२। आप सहस्रवाहु हैं—हिरण्य बाहु हैं—आप सहस्र मूर्ति हैं और पञ्च वक्त्र अर्थात् पाँच मुखों वाले हैं आप बहुत नेत्रों वाले हैं और तीन नेत्रों से संयुग हैं। आप बहुत बाहुओं से युक्त हैं और ईश दश बाहुओं वाले हैं।१९३। आप बहुत अधिक भोगों से उपभोग करने वाले हैं और सीमित भोगों वाले हैं। भोग्यों के अनुसार हैं और अवग्रह से रहित हैं।१९४। नित्य और अनित्य स्वरूपों वाले के लिए—नित्य धाम स्वरूपी के लिये—परतत्व स्वरूपों वाले शिवात्मा आपके लिये नमस्कार है।१९५। जिन आपके लिङ्ग का अन्त ब्रह्मा और विष्णु ने भी प्राप्त नहीं किया था। हे वृषभध्वज ! उन आपका हम दोनों क्या स्तुति वाक्य करेंगे।१९६।

स्वरूपं यस्य जानन्ति न देवा नापि दानवाः
बालावावां कथन्तु त्वां स्तोष्यावः परमेश्वरः ॥१९७
भक्तिप्रात्रेण देवेशं तवावां वृषभध्वज ।
कुर्वः प्रणामं गौरीश भूयस्तुभ्यं नमो नमः ॥१९८
इति स्तुतो महादेवो वेतालेन महात्मना ।
भैरवेणापि राजेन्द्र प्रसन्नः प्राह तौ तदा ॥१९९
तुष्टोऽस्मि युवयोः पुत्रौ वृणुतं वाञ्छितं वरम् ।
दाम्यामि युवयोरिष्टं प्रयत्नोऽहं तपोव्रतैः ॥२००
स्तुतिभिस्तु दमैश्चापि तथैकान्तानुचिन्तनैः ।
मुहुर्मुहुः सुप्रसन्न इष्टं नास्यामि वां सुतौ ॥२०१
तुष्टोऽसि यदि सत्यं नौ सत्यमावां सुतौ यदि ।
वृषध्वज वर्वेह तदेष्टं देहि नौ वरम् ॥२०२

सुतभावेन पितरं भवन्तं जगतां पतिम् ।
नित्यं यथावगच्छावस्तथा देहि वरं तु नौ ॥२०३

जिनके स्वरूप को देवाल और दानवगण भी नहीं जानते हैं। हे परमेश्वर ! हम दोनों बालक किस प्रकार से आपका स्तवन करेंगे। ।१९७। हे वृषभध्वज ! हे देवेश ! हम दोनों केवल भक्ति से ही हे गौरीश ! प्रणाम करते हैं। पुनः आपको बारम्बार नमस्कार है ।१९८। और्व ने कहा है—इस प्रकार से महान् आत्मा वाले वेताल द्वारा महादेवजी की स्तुति की गई थी। हे राजेन्द्र ! भैरव ने भीस्तवन किया था। उस समय में वे प्रसन्न होकर उन देवों से बोले ।१९९। हे पुत्रो ! मैं आपके दोनों पर परम प्रसन्न हूँ अब अपना वाँछित वरदान माँगिये मैं तपोव्रतों से परम प्रसन्न हूँ तुम दोनों का अभीष्ट दे दूँगा ।२००। हे सुतो ! आपकी स्तुतियों, संयम तथा एकान्त चिन्तनों से बार-बार जो किये गए थे मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ—आप दोनों का जो भी अभीष्ट होगा उसे मैं दे दूँगा ।२०१। वेताल—भैरव—दोनों ने कहा—यदि सचमुच ही आप हम दोनों के ऊपर प्रसन्न हैं यदि हम दोनों सत्तमुच हैं। आपके सुत हैं ! हे वृषध्वज ! यहाँ पर आपका ही जो इष्ट हो वही हम दोनों को वरदान देने की कृपा करो ।२०२। सुतभाव से जगतों के पति पिता आपको नित्य ही जैसे हम अवगत करें वैसा ही वरदान हम दोनों को प्रदान कीजिए ।२०३।

न राज्यमभिकांक्षावो न धनं नान्यदेव वा ।
त्वद्भक्त्या सेवनं कर्तुं तवेच्छावो वृषध्वजः ॥२०४
त्वत्पादपङ्कजद्वन्द्वे नित्यं मधुकरात्मताम् ।
त्वयि प्रसन्ने नेत्राणां युगले प्राप्नुतां सदा ॥२०५
इतोऽन्यथा त्वच्चिन्ताभिस्त्वद्ध्यानैस्त्वत्प्रपूजनैः ।
कल्पकोटिसहस्राणि यान्तु सम्यक्तथावयोः ॥२०६
ततस्तद् वचनं श्रुत्वा महादेवी हसन्निव ।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं देवत्वमकरोत्तयोः ॥२०७
देवेन्द्रसम्मतेनैव सुधामानीय नाकतः ।
वेतालभैरवौ तान्तु पाययामास शंकरः ॥२०८
पीतेऽमृते ततस्तौ तु सत्यं तां नरसत्तमौ ।

अमृत्यतां परियज्य प्रापतुः शिवशक्तितः ।।२०९
तस्मिन्काले स्वपन्तौ तु दिव्यज्ञानबलान्वितो ।
दिव्यरूपोपसम्पन्नो वभूवतुररिन्दमौ ।।२१०

हम लोग राज्य की इच्छा नहीं रखते हैं न धन ही चाहते हैं और अन्य कुछ की इच्छा है । वृषध्वज ! आपकी भक्ति से आपकी सेवा करना चाहते हैं ।२०४। आपके चरण कमल के युग्म ही मधुकर की स्वरूपता को प्राप्त होवें । आपके प्रसन्न होने पर नेत्रों का जोड़ा सदा ही सफलता को प्राप्त होगा ।२०५। यहाँ से आगे अन्य प्रकार से आपके चिन्तनों से—आपके ध्यानों से और आपके पूजनों से हम दोनों के करोड़ों सहस्र कल्प भली-भाँति व्यतीत होवें ।२०६। इसके अनन्तर महादेवजी ने हँसते हुए की भाँति ही सब देव-गणों के साथ उन दोनों को देवत्व कर दिया था ।२०७। भगवान् शङ्कर ने देवेन्द्र की सम्मति से ही स्वर्ग से अमृत को लाकर उसको वेताल और भैरव को मिला दिया ।२०८। हे नरश्रेष्ठो ! भगवान् शिव की शक्ति से अमृत के पी लेने पर उन दोनों ने भृत्युभाव का परित्याग करके अर्थात् मृत्यु के मुँह में जाने के भाव का त्याग करके वे दोनों ही अमर्त्यता को प्राप्त हो गये थे । ।२०९। उस अवसर में स्वपन करते हुए वे दोनों दिव्य ज्ञान और बल से समन्वित हो गये थे । वे दिव्य रूप से सम्पन्न अरियों के दमन करने वाले हो गये ।२१०।

अभिन्नेनैव देहेन देवत्वं गतयोस्तयोः ।
प्राह शम्भुस्तदा तौ तु सुतौ परमहर्षितौ ।।२११
अहं तुष्टस्तु युवयोः पार्वती दयिता मम ।
मद्दत्तं काममिच्छन्तावाराधयतमीश्वरीम् ।।२१२
तामृते तु न शक्नोभि दातुमिष्टं सनातनम् ।
सेवित च सुतौ नित्यं शरणं व्रजतं शिवाम् ।।२१३
अचिराद् येन भावेन प्रीति देवी गमिष्यति ।
अत्र वा तत्रं वा गत्वा तेन भावेन चार्य्यताम् ।।२१४

इसो अभिन्न देह के द्वारा देवत्व को प्राप्त हुये उन दोनों से भगवान् शम्भु बोले । उस समय में वे दोनों सुत परम हर्षित हुये थे ।२११। भगवान् ने कहा—मैं तो आप दोनों पर परम प्रसन्न हूँ । मेरे दिए हुए काम की इच्छा

करते हुए आप दोनों मेरी दयिता पार्वती ईश्वरी की आराधना करो ।२१२। उनके बिना मैं सनातन अभीष्ट नहीं दे सकता हूँ । उनकी नित्य ही सेवा करने के लिये शिवा पार्वती देवी की शरण में गमन कीजिए । जिस भाव से शीघ्र ही देवी प्रीति को प्राप्त हो जावें वहाँ पर अथवा यहाँ पर गमन करके उसी भाव से उनका समर्चन करिये ।२१४।

—×—

**।। महामाया कल्पे अष्टादश पटल ।।**

एवं वदति भूतेशे तदा वेतालभैरवी ।
प्राहतुर्व्योकेश तौ हर्षोफुल्लविलोचनौ ।।१
पार्वत्या न जानीवो ध्यानं मन्त्रं विधि तथा ।
कथमाराधयिष्यो भगवन् सम्यगुच्यताम् ।।२
महामाया विधि मन्त्रं कल्प च भवतोः सुतौ ।
उपदेक्ष्यामि तत्वेन येन सर्वं भविष्यति ।।३
इत्युक्त्वा स महामायाध्यानं मन्त्रं विधि तथा ।
कथयामास गिरिशस्तयोः सम्यङ् नृपोत्तमः ।।४
यदष्टादशभिः पश्चात्पटलैश्च स भैरवः ।
स निर्णयविधिं कल्पं निबवन्ध शिवामृते ।।५
कीदृङ् मन्त्रं पुरा शम्भुरवोचदुभयोस्तयोः ।
येनाराध्य महामायां तौ गणेशत्वमातुः ।।६
संकल्प सरहस्य च साङ्गं तच्छ्रोतुमुत्सहे ।
दशाष्टपटलैर्यत् तु निबबन्ध सभैरवः ।।७

और्व मुनि ने कहा—इस प्रकार से भूतेश्वर प्रभु के कथन करने पर उस समय में वेताल—भैरव दोनों ही वे हर्ष से प्रफुल्ल लोचनों वाले व्योम व्योम केश भगवान् से बोले ।१। वेताल—भैरव दोनों ने कहा—हे भगवन् ! हम दोनों देवी पार्वती का ध्यान मन्त्र और विधि नहीं जानते हैं । हम उनकी किस प्रकार से आराधना करेंगे—यह आप भली-भाँति हमको बतलाइये ।२। श्री भगवान ने कहा—हे सुतो ! मैं महा माया का मन्त्र—

और कल्प आप दोनों के उपदेश करूँगा और तात्विक रूप से बतला दूँगा जिससे यह सब हो जायगा ।३। और्व ने कहा—हे नृपोत्तम ! उन देवेश्वर ने इस प्रकार से कहकर फिर माया का ध्यान—मन्त्र और विधि गिरिश प्रभु ने उन दोनों को भली-भाँति कह दिये थे ।४। उन भैरव ने अठारह पटलों के द्वारा शिवामृत में निर्णय विधि कल्प के निबन्ध की रचना की थी सगर ने कहा—पहिले शम्भु ने उन दोनों कैसा मन्त्र बोला था जिसके द्वारा आराधन करके वे दोनों माणपत्य प्रद को प्राप्त हुए थे ।६। जो अठारह पटलों के द्वारा उन भैरव ने निबद्ध किया था उसे कल्प और रहस्य के साथ साङ्ग श्रवण करने का उत्साह कर रहा हूँ ।७।

बहुत्वाद् वदितुं तस्य चिरेणेव तु शक्यते ।
तस्मात् सद्यः समुद्धृत्य मन्महादेवभाषितम् ।
संक्षेपात् कथये तत्व तच्छ्रणुष्व नृपोत्तम ।।८
पृच्छन्तौ पार्वती मन्त्रं तदा वेतालभरवौ ।
जगाद स महादेवः शृणुतं मन्त्रकल्पकौ ।।९
शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि गुह्याद गुह्यतमं परम् ।
अष्टाक्षरं तु वैष्णव्या महामाया महोत्सवम् ।।१०
अस्य श्रीवैष्णवीमन्त्रस्य नारदऋषिः शम्भुर्देवसा ।
अनुष्टुप् छन्दः सर्वार्थसाधने विनियोगः ।।११
हान्तान्तपूर्वो रान्तश्च नान्तो णान्तस्तथैव च ।
कैकादशाष्टादिषष्ठः खान्तो विष्णुपुरः सरः ।।१२
एभिरष्टक्षरैमन्त्रं शोणपत्रसमप्रभम् ।
ॐकारं पूर्वतः कृत्वा जप्य सर्वेस्तु साधकैः ।।१३
महामन्त्रमिदं गुह्यं वैष्णवी मन्त्रसंज्ञकम् ।
मन्त्रं कलेवरगतं तस्मादङ्गं प्रकीर्तितम् ।।१३

और्व ने कहा—उसके बहुत होने से बहुत काल में ही कहा जा सकता है । इस कारण से जो भी महादेवजी कहा था उसको सद्यः समद्धृत करके उसका तत्व संक्षेप से कहता हूँ ! हे नृपोत्तम ! उसका श्रवण कीजिये ।८। उस अवसर पर पार्वती के मन्त्र को पूछते हुए उन वेताल—भैरव को

महादेवजी ने जो बोला था उस मन्त्र और कल्प को सुनिये ।९। श्री भगवान् ने कहा—आप श्रवण कीजिए में गुह्य से भी परत गोपनीय को बतलाऊँगा । वैष्णवी का महामाया महोत्सव आठ अक्षरों वाला है ।१०। इस श्री वैष्णवी के मन्त्र का नारद ऋषि है और शम्भु देवता है । इसका अनुष्टुप् छन्द है और इसका सब अर्थों के साधन में विनियोग होता है ।११। हानान्त पूर्व और शान्त उसी भाँति नान्न और शान्त है । एका दशाष्टक आदि वाल छटवाँ शान्त है जिसमें विष्णु आगे हैं ।१२। इन आठ अक्षरों से मन्त्र होता है जो शोण पत्र की प्रभा के समान होता है । ॐकार पूर्व में लगाकर समस्त प्रभा साधना करने वालों के द्वारा जप करना चाहिए ।१३। यह महा मन्त्रपरम गोपनीय है और वैष्णवी मन्त्र की संज्ञा वाला है । मन्त्र वाले वाले वर गत हैं इसी कारण से अङ्ग कीर्तित किया गया है ।१४।

महादेवस्योर्ध्वमुख बीजमेतत् प्रकीर्तितम् ।
ॐकाराक्षरबीज च यकारः शक्तिरुच्यते ।।१५
सबीज कथित मन्त्र कल्प च शृणु भैरव ।
तीर्थं नद्यां देवखाते गर्तप्रस्रवणादिके ।।१६
परकीयेतरे तोये स्नान पूर्वं समाचरेत् ।
आचान्तः शुचितां प्राप्तः कृतासनपरिग्रहः ।।१७
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थण्डिल मार्जयेत् ततः ।
करेणानेन मन्त्रेण यं सः क्षित्वा इति स्वयम् ।।१८
ॐह्लीं स इति मन्त्रेण आशापूरणकेन च ।
तोयैरभ्युक्षयेत् स्थानं भूतानामपसारणे ।।१९
ततः सव्येन गृहीत्वा स्थण्डिलं शुचिः ।
मन्त्रं लिखेत् सुवर्णेन याज्ञिकेन कुशेन वा ।।२०
ॐ वैष्णव्यै नम इति मन्त्रराजमथापि वा ।
ततस्त्रिमण्डलं कुर्यात् तेनैव समारेखया ।।२१

महादेवजी का ऊर्ध्व मुख है । यह बीज कहा गया है । ॐकार अक्षर बीज है और यकार शक्ति कही जाती है ।१५। हे भैरव ! बीज के सहित मन्त्र कह दिया गया है और कल्प का श्रवण करो । किसी तीर्थ में—

नदी में---देहवात में---गर्त प्रस्रवय आदि में---परकीय से इतर जल में पूर्व में स्नान करे। आचमन करके शुचिता को प्राप्त हुआ होकर आसव का परिग्रह करे ।१६-१७। उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर फिर स्थण्डिल का मार्जन करना चाहिए। जिसको वह स्वयं क्षिति से इस मन्त्र के द्वारा कर से करे ।१८। "ॐ ह्रीं स" इस मन्त्र के द्वारा और आशा पूरक से जलों के द्वारा भूतों के अपसारण करने में अभ्युक्षण करे ।१९। फिर सव्य हाथ से शुचि होकर स्थण्डिल का ग्रहण करके सुवर्ण की लेखनी से अथवा याज्ञिक कुशा से मन्त्र को लिखना चाहिए ।२०। अथवा वैष्णव्यै: नमः" इस यन्त्रराज को लिखे फिर उसी से समरेखा से त्रिमण्डल करे ।२१।

नित्यासु न हि पूजासु रजोभिर्मण्डलं लिखेत् ।
पुरश्चरणकार्येषु तत्कार्येषु प्रयोजयेत् ।।२२
रेखामुदीच्यां प्रथमं पश्चिमे तदनन्तरम् ।
दक्षिणे तु ततः पश्चात् पूर्वभागे तु शेषतः ।।२३
वर्णानां च सहद्वारं रेवमेव क्रमो भवेत् ।
ॐ ह्रीं श्रीं स इति मन्त्रेण मण्डल पूजत् ततः ।।२४
हस्तेन मण्डलं कृत्वा कुर्याद् दिग्बन्धन ततः ।
आशाबन्धनमन्त्रेण पूर्वोक्तेन यथाक्रमम् ।।२५
फडन्तेनात्मनाऽत्र करेणैव निबन्धयेत् ।
यवानां मण्डलैरेकमङ्गुलं चाष्टाभिर्भवेत् ।।२६
अदीर्घथोजितैर्हस्तैश्चतुर्बिशतिरङ्गुलैः ।
तत्प्रमाणेन हस्तेन हस्तैकं तस्य मण्डलम् ।।२७
पद्मं वितस्तिमात्रं स्यात् कर्णिकारं तदर्धकम् ।
दलान्यन्योन्यसक्तानि ह्यायतानि नियोजयेत् ।।२८
नन्यूनाधिकभागानि सबहिर्वेष्टितानि च ।
मध्यभागे न्यसेद् द्वारंन न्यूने नाधिके तथा ।
सुबद्धं मण्डलं तच्च रक्तवर्णं विचिन्तयेत् ।।२९

इतोऽन्यथा मण्डलमुग्रामस्याः
करोति यो लक्षणभागहीन ।

फलं न चाप्नोति न काममिष्टं
तस्मादिदं मण्डलमत्र लेख्यम् ।।३०

नित्य होने वाली पूजाओं में रजसे मण्डल को नहीं लिखना चाहिए। पुरश्चरण कार्यों में और काम्यों में और इनके अनन्तर पश्चिम में फिर इसके पीछे दक्षिण में पीछे शेष में पूर्वभाग में करे।२३। इसी प्रकार से वर्णों के द्वारों के सहित क्रम होता है। "ॐ" ह्रीं इस मन्त्र के द्वारा फिर मण्डल का पूजन करना चाहिए।२४। हाथ से मण्डल बनाकर फिर दिग्बन्धन करे। यथा क्रम से पूर्व में कथित आशाबन्धन से ही करे।२५। यहाँ पर भी फट् जिसके अन्त में हे अपने करने ही निबन्ध करे। यवों के मण्डलों से और आठों से एक अंगुल होवे।२६। अदीर्घ योजित हाथों से चोबीस अंगुलों से उस भ्रमण वाले हाथ से एक-एक उसका मण्डल होता है।२७। एक (वालिस्त) मात्र पद्म होता है और उससे आधा कर्णिकार है। उसके दल परस्पर में सक्त होते हैं और आयत हों—ऐसे ही नियोजित करे।२८। न्यूनाधिक भाग वाले न हों और बाहिर वेष्टित के सहित हैं। ठीक मध्य भाग में द्वार का न्यास करे न्यून तथा अधिक में न करे। और सुवद्ध मण्डल रक्त वर्ण वाला विचिन्तन करे।२९। इससे अन्यथा इसका उग्र मण्डल जो लक्षण और भाग रहित किया करता है और न अभोष्ट काम ही होता है। इससे यह मण्डल यहाँ पर लिखना चाहिए।३०।

—×—

## ।। महामाया कल्प वर्णन (१) ।।

ततो लमिति मन्त्रेण अर्धपात्रस्य मण्डलम् ।
चतुष्कोणं विधायाशु द्वारपद्मविवर्जितम् ।।१
औं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रेण अर्धपात्रं तु मण्डले ।
विन्यसेत् प्रथमं तत्र पूजयित्वा समिध्यति ।।२
ओं ह्रीं ह्रौमितिमन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम् ।
अर्धपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डलं विन्यसेत ततः ।।३
पूर्वन्मण्डलं कृत्वा अर्धपात्रे ततो जलैः ।
त्रिभागैः पूरयेत् पात्र पुष्पं तत्र विनिःक्षिपेत् ।।४

ततो ह्नौमिति मन्त्रेण आत्मान पूजयेद् स्वकम ।
ततः क्षौमितिमन्त्रेण आत्मान पूजयेद् ऊधः ॥५
गन्धैः पुष्पैः शिरोदेशे ततः पूजा समाचरेत् ।
ओं ह्लीं स इति मन्त्रेण पुष्प हस्ततलस्थितम् ॥६
समृज्य सव्यहस्तेन घ्रात्वा वामकरेण तु ।
ऐशान्यां निक्षिपेदेतत् पूर्वमन्त्रेण कोविदः ॥७

श्री भगवान् ने कहा—इसके उपरान्त 'लम्' इस मन्त्र के अर्धपात्र का चतुष्कोण मण्डल शीघ्र ही बनाकर जो कि द्वार पद्म से वर्जित होवे ।१। फिर "ॐ ह्लीं श्री" इस मन्त्र से मण्डल में अर्ध पात्र का विन्यास करना चाहिए। प्रथम वहाँ पूजा करके समिध्य करे ।२। 'ॐ ह्लीं, ह्लीं' इस मन्त्र से गन्ध और पुष्प तथा जल अर्ध पात्र में क्षिप्त करे फिर वहाँ पर मण्डल का विन्यास करना चाहिए ।३। पूर्व की ही भाँति मण्डल करके अर्ध पत्र तीन भागों वाले जलों से पात्र को पूजित करें और उसमें पुण्य का निक्षेप करे ।४। फिर 'ह्लीं' इस मन्त्र से आसन का जो कि अपना ही यजन करे। फिर बुध को चाहिए कि "क्षौं"—इस मन्त्र से आत्मा का पूजन करे। गन्ध—पुष्पों से शिरो देश में पूजा का समाचरण करना चाहिए। "ॐ ह्लीं स"—इस मन्त्र के द्वारा हस्त तल में स्थित पुष्प का समार्चन करके सव्य कर से आघ्राण करके वाम करके द्वारा कोविद पुरुष को ऐशानी दिशा में इसका पूर्व मन्त्र से ही विनिक्षेप करना चाहिए ।४—७।

रक्त पुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छपम् ।
बद्ध्वा कुर्यात् ततः पश्चाद् दहनप्लनादिकम् ॥८
वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणत्य कनिष्ठिकम् ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठं नियोजयेत् ॥९
उन्नतं दक्षिणङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥१०
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥११
कूर्मपृष्ठसम पृष्ठ कुर्याद् दक्षिणहस्ततः ।

एव बद्धः सर्वसिद्धि ददाति पाणिकच्छपः ।।१२
कुर्यात् तदधृदयासन्नं निर्मील्य नयनद्वयम् ।
समं कायशिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरमना बुधः ।।१३
ध्यानं समारभेद् देव्या दाहप्लवनपूर्वकम् ।
अग्नि वायौ विनिक्षिप्य वायुं तोये जलं हृदि ।।१४

रक्त वर्ण के पुष्प का ग्रहण करके दोनों हाथों से पाणि कच्छप बाँध कर इसके पीछे दहन प्लवन आदि करे ।८। बाँये हाथ की कनिष्ठिका तथा दक्षिण हाथ की तर्जनी में वाम अगुष्ठ को नियोजित करे ।९। दाहिने उन्नत अगुष्ठ को वाम कर की मध्यमादिक अँगुलियों को पृष्ठ में योजित करे जो कि दक्षिण करके पृष्ठ में करना चाहिए ।१०। वाम करके पितृ से मध्यमा और अनामिका को अधोमुख कि और दाहिने कर को दक्षिण हस्त से कूर्म के पृष्ठ के समान करे। इस प्रकार से बँधा हुआ पाणि कच्छप सभी सिद्धियों को दे दिया करता है ।११-१२। स्थिर मन वाले बुद्ध पुरुष को चाहिए कि उसको अपने हृदय के समीप में करे और दोनों नेत्रों को मूँद लेवे। अपनी काया—शिर और ग्रीवा को समान रक्खे ।१३। फिर दाह प्लवन पूर्वक देवी के ध्यान का समारम्भ करना चाहिए। अग्नि को वायु में निक्षिप्त करके वायु को जल में और जल को हृदय में निक्षिप्त करे ।१४।

हृदयं निश्चले दत्वा आकाशे निक्षिपेत्स्वनम् ।
ॐ हूं फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्रं तु मस्तके ।।१५
शब्देन सहितं जीवमाकाशे स्थापयेत् ततः ।
वाय्वग्नियमशक्राणां बीजेन वरुणस्य च ।।१६
परास्थानपराश्चैतैः सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः ।
शोषं दाहं तथोच्चादं पीयूषासेवनं परम् ।।१७
यथाक्रमेण कर्तव्यं चिन्तात्र विशुद्धये ।
ततस्तु देवीबीजेन अणुं जांबूनदाकृतिम् ।।१८
तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् इम् ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकाः ।
तदूर्ध्वभागेषु हृद्लोक स्वर्गं च ख तथा ।।१९
निष्पाद्य शेषभागेन भुवं पातालवारिणि ।

चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपां च मेदिनीम् ।।२०
तत्तेषु सागरांस्तांस्तु स्वर्णद्वीप विचिन्तयेत् ।
तन्मध्ये रत्नपर्यंकं रत्नमण्डपसंस्थितम् ।।२१

हृदय को निश्चल आकाश में देकर स्वन का निक्षेप करे। "ॐ हूँ फट्"—इस मन्त्र के द्वारा मस्तक में रन्ध्र का भेदन करके शब्द के सहित जीव को आकाश में स्थापित करे। वायु—अग्नि—यम इन्द्रों का और वरुण का बीज के द्वारा शेषादि करे।१५-१६। ये परा स्थान पर हैं बिन्दु और अर्द्ध चन्द्र के सहित इनसे शेष—दाह तथा उच्छद—पर पीयूष का आसेवन यथाक्रम से करना चाहिए। विशुद्ध के लिये चिन्तन मात्र ही है। इसके अनन्तर देवी के बीच के द्वारा जाम्बूनद की आकृति वाले अण्ड का करे।१७-१८। वहाँ पर पहुँच कर ॐ ह्रौं श्री मन्त्रों से द्विधा करना चाहिए उनके ऊर्ध्व भागों में हृद्-लोक स्वर्ग को भूमि तथा आकाश का निष्पादन कर मेष भाग से भू को पाताल के जल में चिन्तन करे। वहाँ पर सबका चिन्तन करना चाहिए। सातों द्वीपों का और मेदिनी का चिन्तन करे। उनमें उन साकरों का और स्वर्ण द्वीप का चिन्तन करना चाहिए। उसके मध्य में रत्नों से निर्मित मण्डप में संस्थित रत्न पर्यङ्क का चिन्तन करे।१६-२१।

आकाशगङ्गातोयोघैः सदैव सेवितं शुभम् ।
तत्पर्यंके रक्तपद्म प्रसन्नं सर्वदाशिवम् ।।२२
चिन्तयेत् स्यर्णमानांकं सप्तपातालनालकम् ।
आब्रह्मभुवनस्पर्शि सुवर्णचितकर्णिकम् ।।२३
तत्रस्थितां महामायां ध्यायेदेकाग्रमानसः ।
शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमर्धजलम्बिनीं ।।२४
चलत्काञ्चनामरुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।
सुवर्णरत्नसम्पन्न किरीटद्वयधारिणीम् ।।२५
शक्लकृष्णारुणैर्नेत्रै स्त्रिभिश्वारुविभूषिताम् ।
सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्व-कपोलां लोललोचनाम् ।।२६
विपंकदाडिमीबीजदान्तात् मुभ्रूयोगोज्ज्वलाम् ।

बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकम् ॥२७
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥२८
दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिशत्परेण सिद्धसूत्रकम् ।
बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभीति वरदायितीम् ॥२९
निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।
आनमन्नागपाशोरू गुप्तगुल्फां सुपर्णिकाम् ॥३०
वद्धपर्यङ्कसकल्पां निवीरासनराजिताम् ।
गात्रेण रत्नसंस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥३१

आकाश गङ्गा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह शुभ है। उस पर्यङ्क पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है।२२। उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानाङ्क है—सप्त पातालों का नाम वाला है—ब्रह्म लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाचल के कर्णिका वाला है।२३। वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे। वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुए रहकर लटके हुये हैं।२४। वह चलत्कांचना पर समारूढ़ है तथा उज्ज्वल कुण्डलों की शोभा वाली है। सुवर्ण और रत्नों से सम्पन्न दो किरीटों को धारण करने वाली हैं।२५। शुक्ल—कृष्ण और वर्णों वाले तीन नेत्रों द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है। सन्ध्या कालीन चन्द्र के तुल्य कपोलों से संयुत हैं और उनके लोचन चंचल हैं।२६। पङ्करहित दाड़िम के बीजों के समान दाँतों के रखने वाली—सुन्दर भौंहों से योग से उज्ज्वल—वन्धूक दन्त के वसनों वाली-शिरीष की प्रभा से युक्त–नासिका से संयुत—कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रों से युक्त—करोड़ों सूर्यों की प्रभा से समन्वित—चार भुजाओं वाली विवसना और पीन तथा उन्नत पयोधरो से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण करके द्वारा सिद्ध सूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अभयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमित नाग पाशों के सदृश ऊरुओं से युक्त—गुप्त गुल्फों वाली—सुन्दर पार्ष्णियों से संयुक्त—बद्ध पर्यङ्क सङ्कल्प वाली—नीवीरासन

से राजित—गात्र से रत्न संस्तम्भ को भली भाँति आलम्बन करके संस्थिता ।२७-३१।

किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः ।
पञ्चाननां पुरः संस्थ निरीक्षन्तीं सुबाहनाम् ।।३२
मुक्तावली-स्वर्णरत्नहारकंकाणादिभिः ।
सर्वैरलंकारगणैरुज्ज्वलां सस्मिताननाम् ।।३३
सूर्यकोटिप्रतीकाशां सर्वलक्षणसंयुताम् ।
नवयौवनसम्पन्नां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।।३४
ईदृशीमम्बिकां ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके ।
स्वकीये प्रथम दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च ।।३५

बारम्बार क्या चाहते हो—इस तरह से बोलती हुई—पाँच आननों वाली—पुरः संस्थित का निरीक्षण करती हुई—सुन्दर बाहन वाली—मुक्तावली: स्वर्ण, रत्न हार और किङ्किणी आदि समस्त आभूषणों के समूहों से उज्ज्वल—स्मित सहित मुख वाली—करोड़ों सूर्यों के सदृश—समस्त सुलक्षणों से समन्वित—नूतन यौवन से सम्पन्न—तथा सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों से सुन्दरी—ऐसी अम्बिका देवी का ध्यान करके "नमः फट्"—इस मन्त्र से स्वकीय मस्तक में मैं वहीं हूँ—ऐसा चिन्तन करके प्रथम देवे ।३२-३३।

अङ्गन्यासकरन्यासौ ततः कुर्यात् क्रमेण च ।
एभिर्मन्त्रैः स्वरैः सहः सुमीसूमैः क्रमान्वितैः ।।३६
ओम् क्षौम् चैते सप्रणवां रक्तवर्णा मनोहराम् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमन्त्रसंवेष्टनं फट् ।।३७
प्रान्तेय कुर्याद् विन्यासं पूर्वं करतलद्वये ।
हृच्छिरःशिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत् ।।३८
ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे ।
गाह्यवोर्गुह्ये पादयोश्च जंघायोर्जघने क्रमात् ।।३९
विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकारं च तथा स्मरन् ।
एभिः प्रकारैरतिशुद्धहेहः पूजां सदैवार्हति नान्यथा हि ।
शरीरशुद्धिं मनसो निवेशं भूतप्रसारं कुरुते नृणां तत् ।।४०

इसके अनन्तर अंगों का न्यास और करों का न्यास क्रम से करना चाहिए। और सूमी सूम क्रियान्वितों के स्वरों के सहित इन मन्त्रों से करना चाहिए। ॐ क्ष्मैं ये मन्त्र हैं प्रणव के सहित—रक्त वर्ण से संयुत—मनोहर को अंगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठिका के अन्त तक मन्त्र सवेष्टन फट् प्रान्त से पूर्व में दोनों करतलों में विन्यास करना चाहिये। फिर हृदय-शिर—शिखा—कवच—नेत्र—इनमें क्रम से न्यास करे।३६-३८। इसके अनन्तर मूल मन्त्र का मुख में—पृष्ठ में—उदर में—दोनों पादों में दोनों जाँघों में क्रम से आठ अक्षरों का विन्यास करे। तथा ओंकार का स्मरण करते रहे। इन्हीं पुकारों से अत्यन्त शुद्ध देह वाला होकर पूजा सदा ही उचित होती है। अन्य प्रकार से उचित नहीं होती है। यह शरीर की शुद्धि—मनका निवेश—भूतों का प्रसार मनुष्यों का किया करती हैं।३९-४०।

—×—

## ।। महामाया कल्प वर्णन (२) ।।

ततोऽर्घपात्रे तन्मंत्रमष्टधाकृत्य संजपेत् ।
तेन तोयानि पुष्पाणि स्व मंडलमथासनम् ।।१
आशोधयेत् ततः पश्चात् पूजोपक रण समम् ।
ॐ ऐं ह्लौंमिति मन्त्रेण शब्दप्रांशुविवर्जितम् ।।२
द्वारपालं ततो देव्या आसनानि च पूजयेत् ।
नन्दिभृङ्गिमहाकालगणेशा द्वारपालकाः ।
उत्तरादिक्रमात् पूज्या आसनानि च मध्यतः ।।३
आधारशक्तिप्रभृति हेमाद्यन्तान् प्रपूजतेत् ।
प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ।।४
दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकां तथा ।
मण्डलाग्न्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्व देशतः ।।५
सूर्याग्निसोममरुतां मण्डलानि च पद्मकम् ।
रजस्तथा तमः सत्वं योगपीठं गुरोः परम् ।।६

सारादीन् भद्रपीठान्तान् काङ्गापाङ्गान् प्रपूजयेत् ।
ब्रह्मातण्ड स्वर्णडिम्बं च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।।७

भगवान् ने कहा—इसके उपरान्त अर्धपात्र में उस मन्त्र को आठ भागों में विभक्त करके भली भाँति जप करे। उससे जल को—पुष्पी को—अपने मण्डल को—आसन को आशोधित करे इसके पीछे पूजा के उपकरणों का सम करें। ओं ऐं ह्रीं इस मन्त्र के द्वारा शब्द प्राँशु विवर्शित द्वारपाल को और फिर देवी के आसनों का पूजन करना चाहिये। नन्दि—भृङ्गि—मद्य काल गणेश—द्वारपाल का उत्तर आदि क्रम से पूजन करने के योग्य है और मध्य में आसन प्रपू के योग्य है।१–३। आधार शक्ति आदि हे भैरव ! पूजा कल्पों में समस्त तन्त्रों में प्रसिद्ध हेमेन्द्र यन्त्रों का पूजन करे।४। दश दिक्पालों के सहित धर्मा धर्मादिकों को मण्डल के अग्नि आदि कोणों में पार्श्वदेश से यजन करना चाहिए।५। सूर्य—अग्नि—सोम—मरुत्—इनके मण्डलों को—पद्मक को—रज—सत्व—तम को—योग पीठ को—गुरुदेव के चरण को नार से आदि लेकर भद्र पीठ के अन्त तक सांगोपांगों को पूजित करे—ब्रह्माण्ड—स्वर्ण डिम्ब और ब्रह्मा, विष्णु महेश्वरों का पूजन करे।६–७।

संसागरान् सप्तद्वीपाढ्वी स्वर्णदीपं समण्डपम् ।
रत्नपद्म सपर्यङ्कं रत्नस्तम्भ तथैव च ।।८
पंचाननं मण्डलस्य मध्येऽवश्यं प्रपूजयेत् ।
ह्रीं मन्त्रेण ततः कूर्मपृष्ठं पाण्योर्निबध्य च ।।९
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमाताद्यासनमुत्तमम् ।
हृन्मध्ये चिन्तयेत् स्वर्णद्वीपं पर्यङ्कसंभृतम् ।।१०
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत् ।
प्रत्यक्षाकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः ।।११
षोडशानां प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम् ।
ततस्तु वायुबीजेन दक्षिणेन पुटेन च ।।१२
नासिकाया विनिःसार्थ क्रीं मन्त्रेण च भैरव ।
स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्धस्तां न वियोजयेत् ।।१३

कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्माच्चे भैरव ।
गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैनर्नाप्यते फलम् ॥१४

सागरों के सहित सातों द्वीपों का—मण्डल के सहित स्वर्ण द्वीप का—रत्नमय—पर्यंक के सहित रत्न स्तम्भ मण्डप के पञ्चानन का मध्य में अवश्य पूजन करे। "ह्रीं" मन्त्र से हाथों को निवद्ध करके कूर्मपृष्ठ का यजन करे और पूर्व की ही भाँति उत्तम आसन को प्राप्त करके देवी का ध्यान करना चाहिए। हृदय के मध्य में पर्यंक से संभृत स्वर्ण द्वीप का चिन्तन करे।८–१०। इसके अनन्तर देखते हुए की भाँति एकाग्र मन से देवी का स्मरण करे। हृदय में प्रत्यक्ष करके मानस उपचारों से अर्थात् मन में कल्पित उपचारों के द्वारा सोलह प्रकारों से हृदय में विराजमान देवी शिवा का यजन करना चाहिए। इसके अनन्तर हे भैरव! वायु बीज के द्वारा दक्षिणपुर से क्लीं मन्त्र के द्वारा नासिका से विनिःसारण करके पद्म के मध्य में स्थापित करे और हाथ को नियोजित न करे।११–१३। हे भैरव! हाथ के वियोग करने पर उस पुष्प से गन्धर्वों के द्वारा देवी का पूजन किया जाता है और पूजकों के द्वारा फल की प्राप्ति नहीं की जाती है।१४।

आवाहनं ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह ।
महामायायै विद्महे त्वां चण्डिकाख्यां धीमहि ॥१५
एतदुक्त्वा ततः पश्चाद् धियो यो नः प्रचोदयात् ।
स्नानीय देवि ते तुभ्यं ॐ ह्रीं श्रीं नम इत्यतः ॥१६
स्नानीयं च ततो देव्यै दद्याल्लक्षणलक्षितम् ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पं सदीपकम् ॥१७
धूपादिकं प्रदद्यातु मोदकं पायस तथा ।
सितां गुड दधि क्षीरं सर्पिर्नानाविधैः फलैः ॥१८
रक्तपुष्पं पुष्पमालां सुवर्णरजादिकम् ।
नैवेद्यमुत्तमं देव्या लांगलं मोदकं सिताम् ॥१९
शाण्डिल्यकरताम्राख्य-कूष्माण्डानां फलानि च ।
हरीतकीफल चापि नागरंगमेलकाम् ॥२०
वालप्रियं च यद् द्रव्यं कसेरुक विसाप्तिकम् ।

तोयं च नारिकेलस्य देव्यै देयं प्रयत्नतः ।।२१

इसके उपरान्त शिर के साथ गायत्री मन्त्र के द्वारा आवाहन करना चाहिए। हम महामाया का ज्ञान रखते हैं और चण्डिका नाम वाली का ध्यान करते हैं।१५। इतना कहकर फिर जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे। हे देवि! आपके लिये "ॐ ह्रीं श्री नमः" इस मन्त्र से देवि केलि में स्नानीय का समर्पण करे जो लक्षण लक्षित होवे। इसके अनन्तर मूल मन्त्र से दीपक के सहित गन्ध—पुष्प—धूप आदि को अर्पण करे तथा मोदक तथा मोदक तथा पायस देवे। मिश्री—भुज—दधि क्षीर घृत और अनेक फलों से यजन करना चाहिए। अर्थात् इनको अर्पित करना चाहिए।१६-१८। रक्त पुष्प—पुष्पों की माला—सुवर्ण और रजत (चाँदी) आदिक—उत्तम नैवेद्य-देवी का लाङ्गल—मोदक—सिता (मिश्री) शाण्डिल्य कर ताम्र नामक और कूष्माण्ड के फल हरीत का फल—नारंगी—एलका (इलायची) और जो द्रव्य बाल प्रिय हो—कसेरू कविसादिक—नारियल फल का जल—ये सब देवी के लिए प्रयत्नपूर्वक समर्पित करे।१६-२१।

रक्तं कौशेयवस्त्रं च देयं नीलं कदापि न ।
देव्याः प्रियाणि पुष्पाणि बकुलं केशरं तथा ।।२२
माध्य कह्लारवज्राणि करवीरकुरुण्टकान् ।
अर्कपुष्पं शाल्मलकं दूर्वाङ्कुरं सुकोमलम् ।।२३
कुशमञ्जरिका दर्भा बन्धूककमले तथा ।
मालूरपत्रं पुष्पं च त्रिसन्ध्यारक्तपर्णके ।।२४
सुमनांसि प्रियाण्येतान्यम्बिकायाश्च भैरव ।
बन्धूकं बकुलं माध्यं विल्वपत्राणि सन्ध्यकम् ।।२५
उत्तमं सर्वपुष्पेषु द्रव्ये पायसमोदकौ ।
माल्यं बन्धूकपुष्पस्य शिवायै बकुलस्य वा ।।२६
करवीरस्यं माध्यस्य सहस्राणां ददाति यः ।
स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ।।२७
चन्दनं शीतलं चैव कालीयसमन्वितम् ।
अनुलेपनमुख्यं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः ।।२८

लाल वर्ण का रेशमी वस्त्र समर्पित करे और नीला वस्त्र कभी भी नहीं देवे। देवी के परम प्रिय पुष्प जैसे बकुल पुष्प और केशर दे। माध्य—कह्लार—वज्र—करवीर-कुरुण्टक—आक के पुष्प—शालमलक—सुकोमल दूर्वा के अंकुर कुश मञ्जरिका—दर्भ—बन्धूक—कमल—मालूर पत्र और पुष्प—त्रिसन्ध्या—रक्त पर्णक हे भैरव! अम्बिका देवी के ये पुष्प परम प्रिय होते हैं। बंधूक—वकुल—माध्य—विल्व पत्र और सन्ध्यक ये सभी पुष्पों में उत्तम हैं और पायस तथा मोदक द्रव्य हैं। बन्धूक के पुष्पों की माला—करवीर और माध्य पुष्पों की एक सहस्र संख्या जो देवी को अर्पित किया करता है। देवी का कथन है कि वह अपने अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करके मेरे लोक में आनन्द प्राप्त किया करता है ।२२-२७। शीतल चन्दन जो कालीयक से संयुत होवे मुख्य अनुलेपन प्रयत्नपूर्वक देवी के लिए देना चाहिए ।२८।

कर्पूरं कुंकुमं कूर्चं मृगनाभि सुगन्धिकम् ।
कालीयकं सुगन्धेषु देव्याः प्रीतिकर परम् ।।२९
यक्षधूपः प्रतीवाहः पिण्डधूप सगोलकः ।
अगुरुः सिन्धुवारश्च धूपा प्रीतिकरा मताः ।।३०
अंगरागेषु सिन्दूर देव्याः प्रीतिकरं पयम् ।
सुगन्धि शालियवान्नं मधुमांससमन्वितम् ।।३१
अपूपं क्षीरमन्न देव्याः प्रशस्यते ।
रत्नोदकं सकर्पूर पिण्डीतककुमारकौ ।।३२
रोचन पुष्पकं देव्याः स्नानीय परिकीर्तितम् ।
धृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्तः परिकीर्तितः ।।३३
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्याद् मूलमन्त्रेण शोभनम् ।
दत्त्वोपचारानखिलान्मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ।।३४
कामेश्वरीं गुप्तदुर्गा विन्ध्यकन्दरवासिनीम् ।
कोटेश्वरीं दीर्घिकाख्यां प्रकटीं भुवनेश्वरीम् ।।३५

कपूर—कुंकुम—कूर्च—कस्तूरी—सुगन्धिक कालीयक में सुगन्धों में देवी को परम प्रीति करने वाले होते हैं ।२९। यक्षधूप—प्रतीवाह–पिण्डधूप-

मगोलक—अगुरु—और सिन्धुवार में धूप देवी की प्रीति करने वाले माने गये हैं।३०। अङ्गराग जितने भी हैं उनमें देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला सिन्दूर है। मधु और माँस से संयुत सुगन्धि शाली से समुत्पन्न अन्न—अपूप—पायस—क्षीर ये पदार्थ देवी के लिये प्रशस्त हुआ करते हैं। कपूर के सहित रत्नोदक—पिण्डीतक—कुमारक रोचन—पुष्पक—ये ही देवी के स्कानीय कहे गये हैं। द्वीपों में घृत का दीपक प्रशस्त कहा गया है।३१-३३। मूल मन्त्र के द्वारा तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए—यही शोभन हैं। सब उपचारों को देकर मध्य में इनका पूजन करना चाहिए।३४। अब उन देवियों के नाम बतलाये जाते हैं—कामेश्वरी—गुप्त दुर्गा—विन्ध्याचल की कन्दरा में निवास करने वाली—कोटेश्वरी दीपिका नाम वाली—प्रकटी—भुवनेश्वरी।३५।

आकाशगंगा कामाख्यां यदा दिक्करवासिनीम् ।
मातंगी ललितां दुर्गां भैरवीं सिद्धिदां तथा ॥३६
बलप्रमथिनीं चण्डीं चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।
उग्रां भीमां शिवां शान्तां जयन्तीं कालिकां तथा ॥३७
मंगलां भद्रकालीं च शिवां धात्रीं कपालिनीम् ।
स्वाहां स्वधामपर्णां च पञ्चपुष्करिणीं तथा ॥३८
दमनीं सर्वभूतानां मनः प्रोत्साहकारिणीम् ।
दमनीं सर्वभूतानां चतुःषष्टि च योगिनीः ॥३९
एताः सम्पूज्य मन्य तु मन्त्रेणांगानि पूजयेत् ।
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रबाहुपदानि च ॥४०
मूलमन्त्राद्यक्षरैस्तु त्रिभिराद्यंगपूजनम् ।
एकैकं वर्द्धयेत् पश्चान्मन्त्राण्यंगोघपूजने ॥४१

आकाश गंगा—कामाख्या—दिक्करवासिनी मातंगी—ललिता दुर्गा-भैरवी—सिद्धिया—बल प्रमथनी—चण्डी—चण्डोग्राँ—चण्डनायिका-उग्रा-भीमा—शिवा—शान्ता—जयन्ती—कालिका—मंगला-भद्रकाली—शिवा—धात्री—कपालिनी—स्वाहा—स्वधामपर्णा—पञ्च—पुष्करिणी—सब भूतों की दमनी—मन के प्रोत्साहन के करने वाली—ये चौंसठ योगिनी हैं।३६-३९। इन सबका मध्य में भली भाँति अभ्यर्चन करके मन के द्वारा अंगों का

यजन करना चाहिए। हृदय--शिर--शिखा--कर्ण--नेत्र--बाहु--पद--इन अंगों का यजन करे। तीन मूल मन्त्र के अक्षरों से आदि अंग को पूजन करे। पीछे एक-एक का वर्धन करना चाहिए। अंगों के समूह के पूजन में मन्त्रों का प्रयोग करे।३०-४१।

सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गामन्त्रेण पूजयेत् ।
ततोऽष्टपत्रमध्ये तु पूजयेदष्टयोगिनी ।।४२
शैलपुत्रीं चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च ।
कालरात्रिं च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ।।४३
चण्डिकामथ कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम् ।
महागौरी चाग्निकोणे नैऋतदिषु पूजयेत् ।।४४
महामाया क्षमस्वेति मूलमन्त्रेण चाष्टधा ।
पूजयेत् पद्ममध्ये तु बलिदानं ततः परम् ।।४५
एवं यदा कल्पविधानमानैः
सम्पूज्यते भैरव कामदेवी ।
तदा स्वयं मण्डलमेत्य देयं
गृह्णाति कामं च ददाति सम्यक् ।।४६

सिद्ध सूत्र और खंग का मूल मन्त्र के द्वारा यजन करे। इसके अनन्तर अष्ट पत्र के मध्य में आठ योगिनियों का पूजन करना चाहिए।४२। पूर्व आदि चारों दिशाओं में शैल पुत्री—चन्द्र घण्टा—स्कन्द माता और काल रात्रि का पूजन करना चाहिए।४२-४३। चण्डिका-कूष्माण्डी—कात्यायनी—शभा—महागौरी इनका अग्निकोण में और नैऋत्यादिक में पूजन करे।४४। महामाया क्षमस्व—इस मूल मन्त्र से आठ प्रकार से पदम के मध्य में पूजन करे। उसके आगे बलिदान करना चाहिए।४५। हे भैरव ! इस प्रकार से जब कल्प के विधान के मानों से कामदेवी की पूजा की जाती है उस समय में स्वयं मण्डल में समागमन करके जो भी कुछ देय होता है उसका ग्रहण किया करती है और कामना को भली भाँति प्रदत्त किया करती है।

—×—

## ।। महामाया कल्प वर्णन (३) ।।

जप समारभेत् पश्चात् पर्ववद्ध्यानमास्थितः ।
हस्तेन स्रजमादात चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं ।।१
मन्त्रां च कण्ठतो ध्यात्वा सितवर्णं हिरण्मयम् ।
महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ।।२
आचक्षेत ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
देव्याश्चाप्येकतां ध्यात्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः ।।३
तत्त्वस्वरूपमेकं तु षट्चाक्रे प्रतिलम्बयेत् ।
षट्लकोऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ।।४
लम्बयेन्मूलमात्रेण वादिषोदशचाक्रकम् ।
आदिषोडशचाक्रस्था साधकानन्दकारिणीम् ।।५
चिन्तयन् साधको देवीं जपकर्म समारभेत् ।
भ्रुवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते ।।६

इसके अनन्तर पूर्व की ही भाँति ध्यान में स्थित होकर जप का समारम्भ करना चाहिए । हाथ से माला ग्रहण करके मन के द्वारा शिवा का चिन्तन करे । गुरुदेव का चिन्तन करके मूर्धा में जैसा भी वर्ण आदि होवे मन्त्र को कण्ठ से ध्यान करके जो सित वर्ण हिरण्मय है । और हृदय में महामाया की और आत्मा को गुरुदेव के चरणों में देखे । इसके अनन्तर गुरु के मन्त्र का—आत्मा का और देवी की एकता का ध्यान करना चाहिए। फिर सुषुम्ना के मार्ग के द्वारा एक तत्व को षट्चक्र की ओर लम्बित करे। उस षट्चक्र में भी एक क्षण के लिए प्रयत्नपूर्वक महामाया का ध्यान करे ।१-४। आदि सोलह चक्रों में स्थित—साधकों के आनन्द को करने वाली देवी का चिन्तन करता हुआ साधक अपने कर्म का आरम्भ करे । भौंहों के ऊपर तीनों नाड़ियों का प्रान्त कहा जाता है ।५-६।

तत्प्रान्तं त्रिपथस्थान षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ।
रक्तवर्णं तु योगज्ञैराज्ञाचक्रमितीर्यते ।।७
कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ।

सुषम्नेडापिंगानां षटकोणं तत्षडङ्गुलम् ।।८
तत् षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ।
त्रयाणामथ नाडीनां हृदये चौकता भवेत् ।।९
तत्स्थानं षोडशार स्यात् सप्तांगुलप्रमाणतः ।
तत्प्रयुक्तं तु योगज्ञैरादिषोडशचक्रम् ।।१०
ध्यानानामथ मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ।
यस्मादाद्यं तु हृदय तस्मादादोति गद्यते ।।११
जपादौ पूजयन्मालां तोयैरभ्युक्षण यत्नतः ।
निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ।।१२
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।।१३
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदां भव ।।१४

वह प्रान्त विषय का स्थान है वह षट् कोण और चार अँगुल प्रमाण वाला है। उसका वर्ण रक्त है और योग के ज्ञाताओं के द्वारा वह आज्ञा चक्र नाम से कहा जाता है ।७। मनुष्यों के कण्ठ में तीन नाड़ियों का वेष्टन विद्यमान हुआ करता है। सुषुम्ना—इडा और पिङ्गलाओं का षट्कोण है वह छः अँगुली का होता है ।८। वह कण्ठ के मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण वाला षट्चक्र—इस नाम से बताया गया है। तीनों नाड़ियो की हृदय में एकता हो जाती है ।९। वही स्थान सोलह आरों वाला होता है। जिसका प्रमाण सात अँगुल है। उसको योग के जानने वालों द्वारा आदि षोडश-चक्र के नाम से प्रयोग किया गया है ।१०। मन्त्रों के ध्यानों का चिन्तन का और जप का क्योंकि आद्य हृदय होता है इसी कारण से वह आदि इस नाम से कहा जाता है ।११। जप आदि में यत्न से जल से अभ्युक्षण करके माला का पूजन करना चाहिए मण्डल के अन्दर रखकर अथवा सव्य हस्त में रखकर करे ।१२। ओं माले ! हे माले ! आप महामाया है और सब शक्तियों के स्वरूप वाली हैं, धर्मार्थ काम मोक्ष ये चारों का वर्ग आप में ही न्यस्त रहता है। इस कारण से मेरी सिद्धि की प्रदान करने वाली हो जाओ ।१३-१४।

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षिणे करे ।
मध्येमाया मध्यभागे वजयित्वाथ तर्जनीम् ।।१५

अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभागतः ।
स्थापायित्वा तत्र मालामपुष्ठाग्रंथ तद्‌गतम् ॥१६
प्रत्येकं बीजमादाय जप्यादर्थेन भैरव ।
प्रतिवार पठेन्मन्त्रं शनैराष्ठं च चालयेत् ॥१७
मालावीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ।
पूर्वजापप्रयुक्तेन नैवांगुष्ठन भैरव ॥१८
पूतवीजं जपन् यस्तु परबीजं च सस्पृशेत ।
मालां स्वहृदयामन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।
देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद् वामेन स्पृशेत ॥२०
स्फटिकेन्द्राक्षः तुत्रञ्जीवसमुद्‌भवैः ।
सुवर्णमणिभिः सम्यक् प्रवालैरथवाब्जर्जः ॥२१
अक्षमाला तु कर्तव्या देवी प्रीतिकरी परा ।
जपेदुपांशु सततं कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ॥२२

इसके अनन्तर माला का अभ्यर्चन करके अपने दाहिने हाथ में उसका ग्रहण करना चाहिए। मध्यमा अंगुलि के मध्य भागों उसको रक्खे और तर्जनी अंगुलि को वर्जित कर देना चाहिये । जप काल मैं तर्जनी अंगुलि को सर्वथा दूर ही रक्खे । अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों से युत के अग्र भाग से वहाँ पर स्थापित करके अंगुष्ठ के अग्रभाग के द्वारा माला को रक्खे और उसमें स्थित प्रत्येक वार बीज (मनिया) को लेकर हे भैरव! अर्थ से जप करना चाहिए । प्रत्येक वार मन्त्र को पढ़ो और १ ओष्ठ को चालित करे ।१५-१७। माला के बीच (मनिया) पर जप करना चाहिए ये मनिया परस्पर स्पर्श नहीं करे ऐसा ध्यान रक्खे हे भैरव ! पूर्व के जाप से प्रयुक्त अंगुष्ठ से स्पर्श नहीं होना चाहिए ।१८। जो पूर्व बीच का जप-करता हुआ पर बीच का संस्पर्श करता है और अंगुष्ठ से उसका स्पर्श होता है उसका वह जप सर्वथा निष्फल हो जाया करता है ।१९। दाहिने हाथ से माला को धारण करके अपने हृदय के समीप में रक्खे । देवी का चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिये और बाँये हाथ से उसका कभी भी स्पर्श नहीं करे ।२०। माला की रचना स्फटिक-इन्द्राक्ष रुद्राक्ष-पुत्रजीव से समुत्पन्न-सुवर्ण और मणियों के तथा प्रवाल के अथवा कमल गट्टों के द्वारा भली

भाँति अक्षों की माला की रचना करे। यह देवी की परम प्रीति करने वाली हुआ करती है। कुश ग्रन्थि से हाथ के द्वारा निरन्तर उपांशु जाप करना चाहिए।२१-२२।

मामबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मत्प्रियाप्रियः।
रुद्रप्रीतिकरो यस्मात् तेन रुद्राक्षसेचनी ।।२३
प्रवालैरथवा कुर्यादष्ठाविंशतिबीजक।
पंचपंचाशता वापि न न्यूनरधिकंश्च वा ।।२४
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फटिकैस्तथा।
नान्यं मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिकं च यत् ।।२५
यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालायां जपकर्मणि।
तस्य वाम च मोक्ष च ददाति न प्रियंवरा ।।२६
भिवीभावं ततो याति चाण्डालैः पापकर्मभिः।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगः ।।२७
एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्य स्तूलसम्भवः।
आद्यं स्थूलं ततस्तस्माद् न्यून न्यूनतरं तथा ।।२८

माला के समस्त बीजों में रुद्राक्ष मेरी प्रिया का अप्रिय क्योंकि वह रुद्र देव की प्रीति के करने वाली है इसी से रुद्राक्ष रोचनी है।२३। अथवा प्रवाल से माला की रचना करे जिसमें अट्ठाईस मनियां होवें। अथवा पाँच-पाँच सौ से करे। अथवा इससे न्यून ही अथवा अधिक होवें ऐसा नहीं करे।२४। यदि रुद्राक्षों के द्वारा तथा स्फटिकों से जाप करे किन्तु मध्य में पुत्रजीवा आदि अन्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए।२५। यदि जप के कर्म में माला में अन्य का प्रयोग करे उसको काम और मोक्ष को प्रियङ्कारी नहीं दिया करती हैं।२६। फिर पाप कर्मों के करने वाले चाण्डालों से मिश्री भाव की प्राप्ति हो जाया करती है। वह वेदों के अङ्ग शास्त्रों का पारगामी अन्य जन्य में होता है।२७। सब मनियों के स्थूल बना हुआ एक मेरु माला में देना चाहिए। सबसे आदि में होने वाला मनिया स्थूल होना चाहिए और क्रम से न्यून तथा उससे भी न्यून होना चाहिए।२८।

विन्यसेत् क्रमतस्तश्मात् सर्पाकारा हि सा यतः।
ब्रह्मग्रन्थियुत कुर्यात् प्रतिबीज यथास्थिताम् ।।२९

अथवा ग्रन्थिरहितं दृढ़रज्जुसमन्वितम् ।
द्विरावृत्याण मध्ये चार्धवृत्यान्तदेशतः ।।३०
ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्तः स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञकः ।
आत्मजा योजयेन्मालां नामन्त्रो योजनेन्नरः ।।३१
दृढं सूत्र नियुञ्जीत जपे त्रुटयति नो यथा ।
षथा हस्तान्न च्यवेत जपतः स्रक् तमाचरेत् ।।३२
हस्तच्युतायां विघ्न स्याच्छिन्नायां मरण भवेत् ।
एव यः कुरुते मालां जप च जपकोविदः ।।३३
स प्राप्नोतीप्सितं कामं हीने स्यात् विपर्ययः ।
अन्यत्राप्रि जपेन्मालां जप्यं देवमनोहरम् ।।३४
तादृशः साधकः कुर्यान्निन्यथा तु कदाचन ।
यथाशक्ति जह कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः ।।३५

क्रम से विन्यास करे इससे वह सर्प के आकार वाली हो जावे। प्रत्येक बीज अथवा मनिया को ब्रह्म ग्रन्थि से युक्त करे और यथा स्थित रक्खे ।२६। अथवा ग्रन्थि से रहित रक्खे और दृढ़ डोरे से समन्वित बनावे। मध्य से दो आवृत्तियों के द्वारा और अन्य देश से अर्ध वृति से करे ।३०। प्रदक्षिणा वर्त्त ग्रन्थि होवे। वह ब्रह्म ग्रन्थि हुआ करती है। आत्मा से माला को योजित करना चाहिए। मनुष्य को बिना मन्त्र के कभी योजित नहीं करना चाहिए ।३१। सूत मजबूत ही लगावे जिससे जप करने में त्रुटित न हो जावे। हाथ से जिस तरह वह गिर न जावे अर्थात् छूट न जावे जप करने में माला को उसी भाँति रखना चाहिए ।३२। जप के करने के समय में माला के हाथ से गिर जाने या टूट जाने पर महान् विघ्न हुआ करता है और उसके टूट जाने पर तो मरण ही हो जाता है। इस प्रकार से जो जप करने का पण्डित जाप किया करता है ।३३। वह अपनी अभीष्ट कामना की प्राप्ति किया करता है और हीन होने पर इसका उलटा ही होता है। देव का मन हरण करने वाला जप अन्यत्र भी माला का जप करे ।४। वैसा ही साधन करने वाला करे अन्यथा कभी भी नहीं करना चाहिए। अपनी शक्ति के ही अनुसार जप करे और प्रयत्न के साथ संख्या से ही जप करना चाहिए ।३५।

असंख्यात च यज्जप्तं तस्य तन्निष्फलं भवेत् ।
जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशुस्थानेऽथ वा न्यसेत् ॥३६
स्तुतिपाठं ततः कुर्मादिष्ट कामं निवेद्य च ।
स्तुतिश्चापि महामन्त्र साधन सर्वकर्मणाम् ॥३८
वक्ष्ये युवां महाभागौ सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥३८
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।
सप्तधावर्तन कृत्या स्तुतिमेनां च साधकः ॥३९
पञ्चप्रणामान् कृत्वाथ ऐं ह्लीं श्रांमितिमन्त्रकैः ।
अन्येषां पुरतञ्चैव अधिक वा यथेच्छया ॥४०
योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।
द्वौ पाशो प्रसतीकृत्य कृत्वा चोतानमञ्जलिम् ॥४१
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वमोस्ततः ।
अनामिकायां वामस्य तत्कनिष्ठां पुरो न्यसेत् ॥४२

बिना संख्या से जो भी जप किया जाता है उसका वह किया हुआ जप निष्फल ही होता है । माला से जप करके फिर उस माला को मस्तक में अथवा प्रांशु स्थान में विन्यास करना चाहिए ।३६। इसके अनन्तर स्तुति का पाठ करे और जो भी कामना हो उसका निवेदन करे । स्तुति भी एक महामन्त्र की ही भाँति है जो कि समस्त कर्मों का साधन होता है ।३७। हे महाभागो ! आप दोनों को मैं बतलाऊँगा जो कि सब सिद्धियों का प्रदायक होता है । समस्त मङ्गलों की मङ्गल करने वाली या मङ्गल स्वरूपा है । हे शिवे ! आप सभी अर्थों की साधिका हैं । हे शरण्ये ! अर्थात् शरणागति में आ जाने वाले की रक्षा करने वाली है । हे गौरि ! आपकी सेवा में नमस्कार है । सात बार आवृत्ति करके साधक इस स्तुति को करे । "ॐ ऐं, ह्लीं श्रो" इस मन्त्र के द्वारा पाँच प्रणाम करे । अन्य अन्यों के आगे अधिक बार भी अपनी इच्छा के अनुसार करे । इसके पीछे योनि मुद्रा को दिखा कर विसर्जन करना चाहिए । दोनों हाथों को प्रसृत करके अर्थात् फैलाकर और उत्तम अञ्जलि करके दोनों अंगुष्ठों के अग्रभाग को दोनों

कनिष्ठकाओं के अग्रभाग को दोनों कनिष्ठकाओं के अग्रभाग को वाम हाथ की अनामिका में अपनी कनिष्ठका न्यास आगे करें ।३८-४२।

दक्षिणस्यानामिकायां कनिष्ठां दक्षिणस्य च ।
अनामिकायाः पृष्ठे तु मध्यमे द्वे नियेशयेत् ।।४३
द्वे तर्जन्यौ कनिष्ठाग्रेणेव योजयेत् ।
योनिमुद्रा समाख्याता देव्याः प्रीतिकरी मता ।४४
त्रिवार दर्शयेत् तां तु मूलमन्त्रेण साधकः ।
तां मुद्रां शिरसि न्यस्य मण्डलं विन्यसेत् ततः ।४५
ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जिम् ।
तत्र नत्वा रक्तचण्डां ह्लीं श्रीं मन्त्रेण साधकः ।।४६
रक्तचण्डायै नम इति निर्माल्यं तत्र निक्षिपेत् ।
उदके तरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत् ।।४७
एवं तां पूजयेद् देवीं विधानेन शिवां नरः ।
सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतात् ।।४८
अर्धलक्षजपं जप्त्वा प्रथमं चैव साधकः ।
तुरश्चरेद् विशेषेण नानानैवेद्यवेदनैः ।।४९

दाहिने हाथ की अमामिका मे दक्षिण कर कनिष्ठिका को और अनामिका के पृष्ठ भाग में दोनों मध्यमाओं का निवेश करना चाहिए। ।४३। दोनों तर्जनियों को कनिष्ठा के अग्र भाग में उसके अग्रभाग से ही योजित करना चाहिये । यह योनि मुद्रा कही गयी है जो कि देवी की प्रीति के करने वाली मानी गयी है ।४४। साधन की तीन बार उस मुद्रा को दिखाना चाहिये और मूल्य मन्त्र को पढ़कर ही दिखावे । उस मुद्रा को शिव में न्यास करके फिर मण्डल में विन्यास करना चाहिए ।४५। ऐशानी दिशा में अग्रहस्त से जो द्वार पद्म से किवर्जित होवे । वहाँ पर साधन को ह्लीं श्रीं इस मन्त्र से रक्त चडा को नमस्कार करना चाहिए ।४६। "रक्त चण्डायै नमः" इस मन्त्र से वह निर्माल्य का क्षेपण करे । जल में अथवा किसी वृक्ष के भूल में निर्माल्य का भली-भाँति त्याग करना चाहिए ।४७। इस रीति के विधान के साथ जो मनुष्य शिवा देवी का अभ्यंचन किया करता

है वह अविलम्ब ही अपनी कामनाओं की प्रीति कर लिया करता है जो भी कुछ सब उसके मन में विद्यमान होवें ।४८। सबसे प्रथम साधन आधा लाख जप करके विशेष रूप से पुरश्चरण करे जिसमें अनेक प्रकार के नैवेद्य आदि होवें ।४९।

कुण्डं मण्डलवत् कृत्वा चाष्टम्यां समपोषितः ।
नवम्यां शुक्लपक्षस्य रजोभिः पञ्चभिर्नरः ।।५०
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा गुरुपित्रोश्च सन्निधौ ।
अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ।।५१
सहितैर्विल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
तिलैर्होमं चरेत तस्यां सहस्रत्रितयं जपेत् ।।५२
नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम् ।
पूर्वोक्त चान्यदन्यस्यै प्रदद्यात पायसं तथा ।।५३
पूजावसाने देयं स्वात तज्जातीयं वलित्रयम् ।
सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि यद्यत् स्त्रीणा विभूषणम् ।।५४
निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमाल्यं च भूरिशः ।
महाशक्तु सशाल्यन्नं गव्यव्यञ्जनसंयुतम् ।।५५
देव्यै नयम्या सम्पूर्ण बलिं दद्याद् घृतादिभिः ।
दक्षिणा गुरवे दद्यात् सुवर्णगा तथा तिलम् ।।५६

एक कुण्ड की मण्डल की भाँति ही रचना करे और अष्टमी तिथि में उपवास करना चाहिए । नवमी तिथि में जो कि शुक्ल पक्ष की होवे मनुष्य पाँच रजों के द्वारा गुरु और पिता की सनिधि में पूर्व की ही मण्डल की रचना करे । इसी विधान से चण्डिका देवी का यजन करना चाहिए । तीन सौ आठ वेल पत्रों के सहित तिलों से उसमें होम का समाचरण करे । और तीन सहस्र जप करे ।५०-५२। नैवेद्य पुष्प गन्ध-वस्त्र अर्पित करे जो भी उनको प्रिय होवे । पूर्व में वर्जित तथा अन्य भी पायस आदि इसको समर्पित करे ।५३। पूजा के अन्त में उसके जातीय तीन बलि देनी चाहिए । सिन्दूर स्वर्ण रत्न और जा-जा स्त्रियों के भूषण होवें अपनी शक्ति के अनुसार निवेदन करे और पुष्प तथा मालायें अधिक निवेदित करना चाहिए ।

महा शक्ति शाली के अन्न के सहित और गाय के व्यजनों से समन्वित घृतादि के द्वारा नवमी तिथि में देवी के लिये सम्पूर्ण बलि देनी चाहिए। गुरुदेव को दक्षिणा देवे उसमें स्वर्ण-गौ और तिल देवे ।५४-५६।

अभिशप्तमपुत्रं च सावद्यं कितवं तथा ।
क्रियाहीनमकल्पज्ञ वामन गुरुनिन्दकम् ॥५७
सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत् ।
गुरुर्मन्त्रस्य मूल स्यान्मूलशुद्धौ तदुद्गतम् ॥५८
सकल जायते यस्मान्मत्र यत्नात्परोक्षयेत् ।
शाठयात् क्रोधातु मोहोद्वा नासन्मत्या गुरोर्मुखात् ॥
कल्पेषु दृष्ट्वा वा मन्त्र गृहणींयाच्छद्मनाऽथ वा ।
स मन्त्रस्तेप पापेन तामिस्रे नरके नरः ॥६०
मन्वन्तरत्रयं स्थित्वा पापयोनिषु जायते ।
शठे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके ॥६१
मन्त्रं न दूषिते दद्यात् सुवीजं विपिने तथा ।
लक्षण साधयेत् काम पुरश्चरणपूर्वकम् ॥६२
पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा ।
लक्षद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमौ ॥६३

अभिशाप प्राप्त किये हुए—पुत्र रहित—अविद्या के युक्त—कितव क्रिया से हीन—अल्पज्ञ—वामन (वोना) गुरुनिन्दक—सदा मत्सरता ने संयुत-ऐसे गुरु का मन्त्रों में वर्जित कर देना चाहिए। गुरु ही मन्त्र का मूल है और मूल के शुद्ध होने पर ही उससे जो भी उद्भूत हैं वह सफल होता है। इसी कारण से मन्त्र की यत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए। शठता-क्रोध –मोह अथवा असन्मति से–गुरु के मुख से अथवा कल्पों में मन्त्र को देखकर अथवा छल से मन्त्र का ग्रहण करने पर मनुष्य मन्त्र की चोरी के पाव से तामिस्र नामक नरक में जाया करता है ।५६-६०। तीन मन्वन्तर तक वह नरक में रहकर फिर पाप योनियों में समुत्पन्न हुआ करता है। शठ–क्रूर—मूर्ख–छद्म छल करने वाले और भक्ति से हीन में तथा दोषों से युक्त पुरुष को कभी भी मन्त्र नहीं देना चाहिए जैसे सुन्दर बीज को जङ्गल में डाल दिया जाता है वैसा ही उपर्युक्त मनुष्य को मंत्र देना भी निष्फल ही होता

है। एक लाख से पुरश्चरण पूर्वक कामना की साधना करनी चाहिए।६१-६२। क्योंकि पुरश्चरण पापों का क्षय हुआ करता है। हे श्रेष्ठ नरो! दो लाख मंत्र जप के द्वारा करे।६३।

त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं बीजसघातकेन च।
कविर्वाग्मी पण्डितश्च यशस्वी च प्रजायते ॥६४
साधकः साधक श्रेष्ठ पूजास्थानं ततः श्रृणु।
यत्र तत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः ॥६५
तस्यादत्ते स्वयं देवी पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शिला प्रशस्ता पूजायां स्थण्डिल निर्जनं तथा ॥६६
जपश्चोपांश सर्वेषामुत्तमः पदिकीर्तित।
अशुचिनं महामाया पूजयेत् तु कदाचन ॥६७
अवश्यं तु स्मरेन्मन्त्र योऽतिभक्तियुतो नरः।
दन्तरक्त समुत्पने स्मरणंचन विद्यते ॥६८
सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं व्रजेत्।
जानूर्ध्वे क्षतजे जाते नित्यं कर्म न चाचरेत् ॥६९
नैमित्तिक च तदध स्रवद्रक्तो न चाचरेत्।
सूतके च समुत्पत्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ॥७०
धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि संत्यजेत्।
द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ॥७१
कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा।
पत्रं पुष्पं च ताम्बूलं भेषजत्वेन कल्पितम् ॥७२

प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में और बीज संघात से द्वारा करने से साधक मनुष्य कवि—वाग्मी—पण्डित—और यशस्वी हो जाया करता है। ।६०। हे साधकों में श्रेष्ठ! इसके उपरान्त पूजा के स्थान का श्रवण करो। जहाँ-जहाँ पर भी निर्जन में जो मनुष्य पूजा किया करता है। उसको देवी स्वयं ही पत्र—पुष्प और फल का तथा जल का आदान किया करती हैं। पूजा में शिला प्रशस्त होती हैं तथा स्थण्डिल और निर्जन होना चाहिए

।६४-६६। उपांशु जप सभी जपों में उत्तम कहा गया है । अशुचि की दशा में कभी भी महामाया का पूजन नहीं करना चाहिये ।६७। जो अत्यन्त भक्ति से युक्त नर हो उसे मंत्र का स्मरण अवश्य ही करना चाहिए । दाँतों में रक्त किसी भी कारण से समुत्पन्न हो जाने पर स्मरण भी नहीं कहा जाता है । ।६८। मंत्रों के स्मरण से मनुष्य नरक में गमन किया करता है । जानु के ऊर्ध्व भाग में शतज उत्पन्न हो जाने पर नित्य कर्म का भी समाचरण नहीं करना चाहिये ।६०। उसके नीचे के भाग में यदि रक्त का स्नान हो जावे तो नैमित्तक कर्म न करे सूतक में समुत्पन्न होने पर—क्षुर कर्म में—मैथुन में-धूमोद्गार में—वन्ति हो जाने पर नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए । द्रव्य के मुक्त होने पर—अजीर्ण में और कुछ भी न खाकर मनुष्य सूतक में तथा मृतक में नित्य कर्म करे । पत्र—पुष्प—फल और जल-ताम्बूल भोजन के ही रूप में माना गया है ।७०-७२।

कणादिपिप्पल्ल्यन्तं च फलं भुक्त्वा न समाचरेत् ।
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद् भेषजादृते ।।७३
नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ।
जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् ।।७४
कामाद्धस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।
विशेषतः शिवापूजां प्रमीतपितृको नरः ।।७५
यावद् वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ।
महागुरुनिपाते तु कास्य किञ्चिन्न चाचरेत् ।।७६
आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धं देवयज च यत् ।
गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्येव च पाणिना ।।७०
न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरव ।
आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्नतु ।।७८

कण से लेकर पिप्पली के पर्यन्त हे नर श्रेष्ठ ! भेषज के बिना जल के भी भोजन से और फलक खाकर नहीं समाचरण करे ।७३। सदा नैमित्तिक कर्मों के साथ नित्य क्रिया को निवर्त्तित करे । जलों का—गूढ़ पाद—कृमि—मण्ड के पदादिक को काम से हाथ के द्वारा अस्पर्श करके नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए विशेष कर के प्रमीत पितृक मनुष्य को शिवा

की पूजा का त्याग कर देना चाहिए ।७४-७५। जब तक एक वर्ष ही उसके अन्त तक मन से भी आचरण न करे। महा गुरु के निपात हो जाने पर कुछ भी काम्य कर्म का समाचरण नहीं करना चाहिए ।७६। आर्त्विज्य ब्रह्म यज्ञ—श्राद्ध—देव यज्ञ गुरु का और विप्र का आक्षेप करके और हाथ से प्रहृत करके हे भैरव ! रेत के पात हो जाने पर नित्य कर्मों को नहीं करना चाहिए। आसन और अर्घ्य पात्र को भग्न हो जाने पर आसादित नहीं करना चाहिए ।७७-७८।

ऊषरे कृमिसंयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत् ।
नीचैरासनमासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ।।७९
अर्चयेच्चण्डिकां देवी देवमन्यं च भैरव ।
दिग्विभागे तु कौबेरीदिक्छिवा प्रीतिदायिनी ।।८०
तस्मात् तन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा ।
पुष्पं च कृमिसंमिश्रं विशीर्णं भग्नमृद्गते ।।८१
मकेशं मूषिकोद्धूतं यत्नेन परिवर्जयेत् ।
याचित परकीयं च तथा पर्युषितं च येत् ।
अन्त्यसृष्टं पदा स्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत् ।।८२

इदं शिवायाः परमं मनोहर
करोति योऽनेन तदीयपूजनम् ।
स वाञ्छितार्थं समवाप्य चण्डिका-
गृहं प्रयाता नचिरेण भैरवः ।।८३

ऊपर में कृमियों से संयुत्र होने पर उसको भ्रष्ट करके भी वहाँ पर अर्चन नहीं करना चाहिए। नीचे स्थान पर आसन रख कर शुचि और संयतमन वाला होकर ही हे भैरव ! चण्डिका देवी तथा अन्य देव का अर्चन करना चाहिए। दिशाओं के विभाग में कौवेरी दिशा शिवा की प्रीति के देने वाली हुआ करती ।७९-८०। इस कारण से उस देवी के सम्मुख में ही स्थित होकर सदा ही चण्डिका का अभ्यर्चन करना चाहिए। पुष्प भी ऐसा होना चाहिए जो कृमियों से समिश्रित रघुवीर न होवे विशीर्ण, भग्न और मिट्टी में पड़ा हुआ नहीं होवे। जो पुष्प चूहों से उद्भूत हो और केशों से युक्त हो उनका परिवर्जन यत्न पूर्वक कर देना चाहिए। याचना किया

हुआ—दूसरे का तथा पर्युंषित (वासी)-अत्यन्त मृष्ट—पैर से स्पर्श किया हुआ हो ऐसे पुष्प को वर्जित कर देना चाहिए। अर्थात् पूजा के कर्म में कभी ग्रहण नहीं करे।८१-८२। यह शिव का परमाधिक मनोहर विधान है इसको जो भी साधक उसके पूजन में किया करता है वह अपना अभीष्ट प्राप्त करके हे भैरव ! शीघ्र ही चण्डिका देवी के गृह में प्रयाण करने वाला होता है।८३।

———

**महामाया मन्त्र का कवच ।।**

अस्य मन्त्रस्य कवचं शृणु वेताल भैरवः ।
वैष्णवीतन्त्रज्ञस्या वैष्णव्याश्च विशेषतः ।।१
तत्र मन्त्राद्यक्षरं तु वासुदेवस्वरूपधृक् ।
वर्णो द्वितीयो ब्रह्मैव तृतीयश्चन्द्रशेखरः ।।२
चतुर्थो गजवक्त्रश्च पञ्चमस्तु दिवाकरः ।
शक्तिः स्वयं पकारश्च महामाया जगन्मयी ।।३
वेकारस्तु महालक्ष्मीः शेषवर्णः सरस्वती ।
योगिनीपूर्ववर्णस्य शैलपुत्री प्रकीर्तिता ।।४
द्वितीयस्य तु वर्णस्य चण्डिका योगिनी मता ।
चन्द्रघण्टा तृतीयस्य कूष्माण्डीं तत् परस्य च ।।५
स्कन्दमाता तकारस्य पश्य कात्यायनी स्वयम् ।
कालरात्रिः सप्तमस्य महादेवीति संस्थिता ।।६
प्रथमं वर्णकवचं योगिनीकवचं तथा ।
देवौघकवचं पश्चाद् देवीदिककबचं तथा ।

श्री भगवान् ने कहा—हे वेताल भैरव ! अब इस मन्त्र का कवच का श्रवण करो जो कि वैष्णवी तन्त्र संज्ञा करने वाले का और विशेष रूप से वैष्णवी देवी का है।१। वहाँ पर मन्त्रादि अक्षर वासुदेव के स्वरूप का धारण करने वाला है। दूसरा वर्ण ब्रह्मा ही है—तीसरा चन्द्र शेखर हैं।२। चतुर्थ गज—वक्त्र है—पाँचवाँ दिवाकर है—स्वयं शक्ति यकार है जो जगन्मयी महामाया है।३। यकार महालक्ष्मी है और शेष वर्ण सरस्वती है। पूर्व वर्ण

की योगिनी शैल पुत्री कही गयी है ।४। द्वितीय वर्ण की योगिनी चण्डिका मानी गयी है । तीसरे की चन्द्र घण्टा है और चौथे की कूष्माण्डी मानी गयी है ।५। तकार की स्कन्द माता है । देखो कात्यायनी स्वयं है । सप्तम की काल रात्रि है जो महादेवी—यह सस्थिता है ।६। प्रथम वर्ण कवच योगिनी कवच है । पीछे देवौघ कवच है तथा देवी दिक् कवच है ।७।

ततस्तु पार्श्यकवचं द्वितीयान्ताव्ययस्य च ।
कवचं तु ततः पश्चात् षड्वर्ण कवचं तथा ॥८
अभेद्यकवच चेति सर्वत्राणपरायणम् ।
इमानि कवचान्यष्टौ यो जानाति नरोत्तमः ॥९
सोऽहमेव महादेवी देवींरूपश्च शक्तिमान् ।
अस्य वैष्णवीतन्त्रकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः ॥१०
कात्यायनी देवता सर्वकामार्थसाधने विनियोगः ।
अः पातु पूर्वकाष्ठायामाग्नेय्यां पातु कः सदा ॥११
पातु चो यमकाष्ठायां दो नैऋत्यां च सर्वदा ।
मां पातु तौऽसौ पाश्चात्ये शक्तिर्वायव्यदिग्गता ॥१२
यः पातु चोत्तरस्य मैशान्यां यस्तथावतु ।
मूर्ध्नि रक्षतु मां सौऽसौ वाहौ मां दक्षिणे तु कः ॥१३
मां वामवाहौ चः पातु हृदि टी मां सदावतु ।
तः पातु कण्ठदेशमांशे कट्योः शक्तिस्तथवातु ॥१४

इसके अनन्तर पार्श्व कवच है और द्वितीयन्ता व्यय का कवच है । इसके पश्चात् षड् वर्ण कवच है ।८। अभेद्य कवच है जो सर्वत्राण परायण हैं । ये आठ कवच हैं इनको जो नरों में उत्तम है जानता है ।९। वह मैं ही कहादेवी हूँ और शक्तिमान् देवी के रूप वाला है इस वैष्णवी तन्त्र कवच का नारद ऋषि हैं और अनुष्टुप् छन्द है ।१०। कात्यायनी इसका देवता है। इसका सब कामों के अर्थों के साधन में विनियोग होता है । 'अ' पूर्व दिशा में रक्षा करे और 'का' सदा आग्नेयी में रक्षा करे ।११। 'य' यम दिशा में रक्षा करे—और 'द' नैऋत दिशा में सर्वदा मेरी रक्षा करे । पाश्चात्य दिशा में 'त' रक्षा करे तथा वायव्य दिशा में शक्ति रक्षा करे ।१२। 'य' मुझको उत्तर दिशा में रक्षित करे तथा 'य' ईशान दिशा में रक्षा करे । 'स'

मेरी मस्तक में रक्षा करे और 'क' मेरी दाहिने बाहु में रक्षा करे।३। 'च' मेरी वायीं बाहु में रक्षा करें और 'ट' सदा मेरे हृदय में रक्षा करे। कंठ देश में तो रक्षा करे और मेरी कटि की शक्ति रक्षा करे।१४।

य: पातु दक्षिणे पादे षो मां वामपादे तथा ।
शैलपुत्री तु पूर्वस्यामाग्नेय्यां मातु चंडिका ।।१५
चंद्रघंटा पातु याम्यां यमभीतिविवर्धिनी ।
नैर्ऋत्ये त्वथ कूष्मांडा पातु मां जगतां प्रसू: ।।१६
स्कन्दमाता पश्चिमायां मां रक्षतु सदैव हि ।
कात्यायनी मां वायव्ये पातु लोकेश्वरी सदा ।।१७
कालरात्री तु कौबेर्या सदा रक्षतु मां स्वयम् ।
महागौरी तथैशान्यां सततं पातु पावनी ।।१८
नेत्रयोर्वासुदेवो मां पातु नित्यं सनातन: ।
ब्रह्मा मां पांतु वदने पद्मयोनिरयोनिज: ।।१९
नासाभागे रक्षतु मां सर्वदा चन्द्रशेखर: ।
गजवक्त्र: स्तनयुग्मे पातु नित्यं हरात्मज: ।।२०
वामदक्षिणपाण्योर्मा नित्यं पातु दिवाकर: ।
महामाया स्वयं नाभौ मां पातु परमेश्वरी ।।२१

"य" दाहिने पर मैं रक्षा करे तथा 'प' वाम पाद में रक्षा करे शल पुत्री पूर्व में चण्डिका आग्नेयी दिशा में मेरी रक्षा करे ।१५। याम्य चन्द्र घटा रक्षा करे जो भय की भीति की विवर्धिनी है। जगतों की जननी कूण्माण्थी मेरे नैर्ऋत्य में रक्षा करे।१६। पश्चिम दिशा में स्कन्द माता मेरी सदा ही रक्षा करें। वायव्यदिशा में मेरी कात्यायनी रक्षा करे जो सदा लोकेश्वरी है। काल रात्रि कौबेरी दिशा में स्वयं सदा मेरी रक्षा करे। तथा ऐशानी दिशा में निरन्तर पावनी मेरी रक्षा करे।१८। मेरे दोनों नेत्रों को भगवान् वासुदेव रक्षा करे जो नित्य ही सनातन प्रभु हैं। वदन में मेरी ब्रह्मा करें जो पद्म योनि और अयोनिज हैं अर्थात् किसी योनि से उत्पन्न नहीं होकर केवल पद्म से ही समुत्पन्न हुए हैं।१९। मेरे नासिका के भाग में मेरी सर्वदा चन्द्र शेखर प्रभु रक्षा करें। भगवान् शम्भु के पुत्र गज वक्त्र

( गणेश ) मेरे दोनों स्तनों की नित्य रक्षा करें ।२०। मेरे बाँये और दाहिने हाथों की नित्य ही दिवाकर रक्षा करें। परमेश्वरी महामाया स्वयं मेरी नाभि में रक्षा करें ।२१।

महालक्ष्मी: पातु गुह्ये जानुनोश्च सरस्वती ।
महामाया पर्वभागे नित्यं रक्षत् मां शुभा ॥२२
अग्निज्वाला तथाग्नेय्यां पायान्नित्यं वरासिनी ।
रुद्राणी पातु मां याम्यां नैर्ॠत्या चण्डनायिका ॥२३
उग्रचंडा पश्चिमायां पातु नित्यं महेश्वरी ।
प्रचंडा पातु वायव्ये कोबेर्या घोररूपिणी ॥२४
ईश्वरी च तथैशान्यां पातु नित्यं सनातनी ।
ऊर्ध्वं पातु मामुग्रा पृष्ठतो वैष्णवी तथा ।
ब्रह्माणी दक्षिणे पार्श्वे नित्यं रक्षतु शोभना ॥२६
माहेश्वरी वामपार्श्वे नित्य पायाद् वृषध्वजा ।
कौमारी पर्वते पातु वाराही सलिले च माम् ॥२७
नारसिंही द्रष्ट्रिभये पातु मां विपिनेषु च ।
एन्द्री मां पातु चाकाशे तथा सर्वजले स्थले ॥२८

महा लक्ष्मी गुह्य की रक्षा करे—जानुओं की रक्षा सरस्वती करे। शुभा महामाया पूर्व भाग में मेरी नित्य ही रक्षा करें ।२२। वरासिनी अग्नि ज्वाला आग्नेयी दिशा में नित्य ही रक्षा करे। रुद्राणी मेरी याम्य दिशा में रक्षा करे और चण्ड नायिका नैॠत्य में रक्षा करे ।२३। महेश्वरी उग्र चण्डा पश्चिम में नित्य ही रक्षा करें। वायव्य में प्रचण्डा और कौबेरी दिशा में घोर रूपिणी रक्षा करे ।२४। ऐशानी दिशा में ईश्वरी सनातनी नित्य ही मेरी रक्षा करे। महामाया ऊपर की ओर और नीचे की ओर परमेश्वरी रक्षा करे ।२५। उग्रा मुझको आगे की ओर रक्षा करे तथा पृष्ठ भाग में वैष्णवी रक्षा करें। दक्षिण पार्श्व में ब्राह्मणी शोभना नित्य मेरी रक्षा करे। वृषध्वजा माहेश्वरी वाम पार्श्व में नित्य रक्षा करे। पर्वत में कौमारी और जल में वाराही मेरी रक्षा करें ।२६। दाढ़ वालों के भय में नारसिंहीं रक्षा करे जो कि विपिनों में किया करें। आकाश में ऐन्द्री तथा सर्वत्र जल में और स्थल में मेरी रक्षा करें ।२८।

सेतु: सर्वांगुली: पातु देवादि: पातु कर्णयो: ।
देवान्तश्चिबुके पातु पार्श्वयो: शक्तिपञ्चम: ।।२९
हा पातु मां तथैवीर्वामाया रक्षतु जंघयो: ।
सर्वेन्द्रियाणि य: पातु रोमकूपेषु सर्वदा ।।३०
त्वचि मां वै सदा पातु मां शम्भु: पातु सर्वदा ।
नखदन्तकरोष्ठादौ शं मां पातु सदैव हि ।।३१
देवादि: पातु मां वस्तौ देवान्त: स्तनकक्षयो: ।
एतदादौ तु य: सेतुर्बाह्ये मां पातु देहत: ।।३२
आज्ञाचक्रे सुषुम्नायां षट्चक्र हृदि सन्धिषु ।
आदिषोडशचक्रे च ललाटाकाश एव च ।।३३
वैष्णवी तन्त्रमन्त्रो मां नित्यं रक्षश्च तिष्ठतु ।
कर्णनाडीषु सर्वासु पार्श्वकक्षशिखासु च ।।३४
रुधिरस्नायु मज्जासु मस्तिष्केषु च पर्वसु ।
द्वितीयाष्टाक्षरी मन्त्र: कवच पातु सर्वत: ।।३५

समस्त अंगुलियों की रक्षा सेतु करे तथा देवादि कर्णों की रक्षा करें। देवान्त चिबुक में रक्षा करे और दोनों पार्श्वों में शक्ति पञ्चम रक्षा करे। ।२९। उसी भाँति ही मेरे ऊरुओं की रक्षा करे और माया मेरी दोनों जांघों को रक्षा करे 'य:' सर्वदा समस्त इन्द्रियों की और रोमों के कूपों में रक्षा करे ।३०। मेरी त्वचा में मुझको सर्वदा भगवान् शम्भु रक्षा करें। नाखून-दाँत—कर और ओष्ठ आदि में सदैव ही "राँ" मेरी रक्षा करे।३१। मेरी बस्ती में देवादि रक्षा करे और स्तनों तथा कक्षों में देवान्त रक्षा करे। 'य:' सेतु एतदादि में और देह के बाह्य भाग में मेरी रक्षा करें ।३२। आज्ञा चक्र में तथा ललाटा कारा में वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र मेरी नित्य ही रक्षा करती हुई स्थित रहे। समस्त कानों की नाड़ियों में और पार्श्व कक्ष शिखाओं में-रुधिर, स्नायु, मज्जाओं में-मस्तिष्कों में और पर्वों में द्वितीयाष्टाक्षर मन्त्र कवच सभी ओर रक्षा करें ।३४-३५।

रेतो पातो नाभिरन्ध्र पृष्ठसन्धिषु सर्वत: ।
षडक्षरस्तृतीयोऽयं मन्त्रो माँ पातु सर्वदा ।।३६

नासारन्ध्रे महामाया कंठरन्ध्र तु वैष्णवी ।
सर्वसन्धिषु माँ पातु दुर्गा दुर्गार्तिहारिणी ।।८७
श्रोत्रयोहूँ फडित्येवं नित्यं रक्षतु कालिका ।
नेत्रबीजत्रयं नेत्रे सदा तिष्ठतु रक्षितुम् ।।८८
ॐ ऐं ह्लीं ह्लौं नासिकायाँ रक्षन्ती चस्तु चान्डिका ।
ॐ ह्लीं हूँ मां सदा तारा जिह्वामूले तु तिष्ठतु ।।३६
हृदि तिष्ठतु मे सेतुर्ज्ञानं रक्षतुमुत्तमम् ।
ॐ क्षौं भट् च महामाया पातु मां सर्वतः सदा ।।४०
ॐ युँ सः प्राणान् कौशिकी मां प्राणान् रक्षतु रक्षिका ।
ह्लीं हूँ सौं भर्गदयिता देहशून्येषु पातु माम् ।।४१
ॐ नम मदा शैलपुत्री बसान रोगान् प्रमृज्यताम् ।
ॐ ह्लीं सः स्फेंक्षः फडस्त्राय सिंहव्याघ्रमयाद्रणात् ।।४२
शिवदूती पातु नित्यं ह्लीं सर्वास्त्रेषु तिष्ठतु ।
ॐ ह्लां ह्लीं सश्चंडघंटा कर्णच्छिद्रेषु पातु माम् ।।४३

रेत (वीर्य)—वायु में—नाभि के रन्ध्र में—पृष्ठ सन्धियों में सभी ओर षडक्षर यह तोसरा मन्त्र सर्वदा मेरी रक्षा करे ।३६। नासा रन्ध्र में महामाया और कण्ठ रन्ध्र वैष्णवी रक्षा करे तथा समस्त सन्धियों में दुर्गार्त्ति हारिणी दुर्गा मेरी रक्षा करे ।३७। श्रोत्रों मैं हूँ फट् यह कालिका नित्य रक्षा करे । नेत्र में नेत्र त्रय बीज रक्षा करने के लिए सदा स्थित रहें ।३८। ॐ ऐं ह्लीं है नासिका में रक्षा करती हुई चण्डिका रहे । ॐ ह्लीं हूँ तारा सदा मेरे जिह्वा मूल में स्थित रहे ।३६। मेरे हृदय में उत्तम ज्ञान की रक्षा करने के लिए सेतु स्थित रहे ॐ क्षौं फट् महामाया सभी ओर मेरी रक्षा करें ।४०। ॐ मुं सः प्रोण न् कौशिकी मेरे प्राणों की रक्षा करें । ह्लीं ह्लौं सौं भर्ग की दयिता देह शून्यों में मेरी रक्षा करें ।४१। ॐ नमः शैल पुत्री सदा सब रोगों का प्रमार्जन करे ॐ ह्लीं सः स्फं सः अस्त्रों से स्थित रहे । ॐ ह्लीं ह्लीं सः चन्द्र घण्टा कर्णों के छिद्रों में मेरी रक्षा करें ।४२-४३।

ॐ क्रीं सः कनेश्वरी कामानभितिष्ठतु रक्षतु ।
ॐ आ हूँ फडुग्रचंडा रिपून् विध्नान् विमर्दताम् ।।४४

ॐ अं पातु नित्यं वैष्ण शूलात्वी जगदीश्वरी ।
ॐ कं ब्रह्माणी पातु चक्रात् तं रुद्राणी तु शक्तितः ।।४५
ॐ टं कौमारी पातु वज्रात् त वाराह तु काण्डतः ।
ॐ पं नारसिहीं मां क्रव्यादेभ्यस्तथास्वतः ।।४६
शस्त्रास्त्रेभ्यं: समस्तेभ्यो यन्त्रेभ्योऽनिष्टमन्त्रतः ।
चंडिका मां सदा पातु यं स देव्यै नमो नमः ।
विश्वासघातकेभ्यो मामैन्द्री रक्षतु मन्मनः ।।४७
ॐ नमो महामायायै ओं वैष्णव्यै नमो नमः ।
रक्ष मां सर्वभूतेभ्यः सर्वत्र परमेश्वरि ।।४८
आधारे वायुमार्गे हृदि कमलदले चन्द्रवत् स्मेरसूर्ये,
वस्तौ बह्नौ समिद्धे विशतु वरदया मन्त्रमष्टाक्षरन्तत् ।
यद्ब्रह्मा मूर्ध्नि धत्ते हरिरवति गले चन्द्रचूडो हृदिस्थं,
तं मां पातु प्रधानं निखिलमतिशय पद्मयर्भाम् बीजम् ।।४६

ॐ क्रीं सः कामेश्वरी कामों में अभिस्थित होवें और रक्षा करें। ॐ आं हूँ फट् प्रचण्डा शत्रुओं को और विघ्नों को निर्मर्दित करे ।४४। ॐ अ शूल से वैष्णवी जगदीश्वरी नित्य ही रक्षा करे। ॐ व्रं ब्रह्माणी चक्र से रक्षा करे और रुद्राणी शक्ति से रक्षा करे ।४५। ॐ टं कौमारी बज्र से रक्षा करे और त वाराही काण्ड से रक्षा करे। ॐ यं नारसिही क्रव्यादों से और अस्त्र से मेरी रक्षा करे ।४६। शस्त्रों से समस्त अस्त्रों से—मन्त्रों से और अनिष्ट मन्त्र से चण्डिका मेरी रक्षा करे। य सं देवी के लिये बारम्बार नमस्कार है। ऐन्द्री विश्वास का घात करने वालों से मेरे मन की रक्षा करे ।४७। ॐ महामाया के लिये नमस्कार है—ॐ वैष्णवी के लिए बारम्बार नमस्कार है। हे पपमेश्वरि ! समस्त भूतों से सर्वत्र मेरी रक्षा करो ।४८। आधार में—वायु मार्ग में—हृदय में—कमल दल में—चन्द्र की भाँति स्मेर सूर्य में—बस्ती में—समिद्ध वह्नि में वरदा के द्वारा वह आठ अक्षरों वाला मन्त्र प्रवेश करे। जो ब्रह्मा मस्तक में धारण करते हैं गले में हरि रक्षा करते हैं—हृदय में स्थित को चन्द्र चूड़ रक्षा करते हैं पद्मागर्भ अबीज निखिल निरतिशय प्रधान त्वं मेरी रक्षा करे ।४६।

आद्याः शेषा स्वरोधैर्ममयवलवरैवस्वरेणापि युक्तः,
सानुस्वाराविस गैर्हरिहरविदित यत्सहस्र च साष्टम् ।
मन्त्राणां सेतुबन्धनिवसति सततं वैष्णवीतन्त्रमन्त्र;
तन्मां पायात्पवित्रं परमपरमजं भूतलव्योमभागे ॥५०
अङ्गयष्टौ तथाष्टौ त्रसव इह तथैवाष्टमूर्तिदलानि,
प्रोक्तान्यष्टो तथाष्टौ मधुमतिरचितः सिद्धयोऽष्टौ तथैव ।
अष्टावष्टाष्टासख्या जगति रतिकलाः क्षिप्रकाष्टांगयोगा,
मय्यष्टावक्षराणि क्षरन्तु न हि गणो यद्धदो यस्त्वमूषाम् ॥५१
इयं तत्कवच प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधकम् ।
इदं रहस्यं परममिदं सर्वार्थसाधकम् ॥५२
यः सकृच्छृणुयादेतत् कवचं मयकोदितम् ।
स सर्वाल्लभते कामान् परंत्र शिवरूपताम् ॥५३
सकृद् यस्तु पठदेदेतत् कवच मयकोदितम् ।
स सर्वयज्ञस्य फलं लभते नात्र संशयः ॥५४
संग्रामेषु जयेच्छत्रुं मातङ्कानिव केशरी ।
दहेत् तृण यथा वह्निस्तथा शत्रुं दहेत् सदा ॥५५
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रविशन्ति वै ।
न तस्य जायते व्याधिर्न च दुःख कदाचन ॥५६

आद्य शेष स्वरों के समुदायों से मम पर्वतवरों के बिना स्वर से भी युक्तों से--अनुस्वार के सहित बिना विसर्गों वालों से—हरि हर विदित जो एक सहस्र आठ हैं। वैष्णवी तन्त्र मन्त्रों का सेतुबन्ध निरन्तर निवास करना है वही परम पवित्र पर और अपरज भूतल और व्योम के भाग में मेरी रक्षा करे।५०। आठ अङ्ग तथा आठ बसुगण तथा अष्टमूर्ति दल यहाँ पर कहे गये हैं तथा आठ मधुमती रचित तथा आठ सिद्धियाँ आठ-आठ की संख्या जगत् में रतिकला और क्षिप्रकाङ्गाष्ठ योग मुझ में आठ अक्षर क्षरण करें—और इनका जो घृद गण है वह नहीं करे।५१। यह उसका कवच बतला दिया गया है जो कि धर्म—और काम का साधन करने वाला है

यह परम रहस्य है और सभी अर्थों का साधक है ।५२। मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो कोई एक बार भी श्रवण लेता है वह सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और परलोक में शिव के स्वरूप का भाव किया करता है ।५३। मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो एक बार भी पढ़ता है वह सभी यज्ञों के फलों का लाभ लिया करता है—इसमें कुछ संशय नहीं है ।५४। जैसे सिंह हाथियों को परास्त कर देता है उस भाँति वह संग्रामों में शत्रुओं पर विजयी हो जाता है । जैसे अग्नि तृण को दग्ध कर देता है वैसे ही वह पुरुष सदा ही शत्रु का दाह कर देता है ।५५। उसके शरीर में शस्त्र और अस्त्र प्रवेश नहीं किया करते हैं । उसको न कभी रोग होता है और न कभी दुःख ही होता है ।५६।

गुटिकाञ्जनपातालपादलेपरञ्जनम् ।
उच्चाटनाद्यास्ताः सर्वाः प्रसीदन्ति च सिद्धयः ।।५७
वायोरिव मतिस्तस्य भवेदन्यैरवारिता ।
दीर्घायुः कामभोगी च धनवानभिजायते ।।५८
अष्टम्यां संयतो भूत्वा नवम्यां विधिवच्छिवाम् ।
पूजयित्वा विधानेन विचिन्त्य मनसा शिवाम् ।।५९
यो न्यसेत् कवचं देहे तस्य पुण्यफलं शृणु ।
जितव्याधिः शतायुश्च रूपवान् गुणवान् ।।६०
धनरत्नौघसम्पूर्णो विद्यावान् स च जायते ।
नाग्निदहति तत्कार्यं नापः सक्लेदयन्ति च ।।६१
न शोषयति तं वायुः क्रव्यात् तं न हिनस्ति च ।
शस्त्राणि नैनं छिदन्ति न तापयति भास्करः ।।६२
न तस्य जायते विघ्नो नास्ति तस्य च संज्वरः ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसा गणनायकाः ।।६३

गुटिका—अंजन—पाताल—पाद लेप—रसाज्जन और उच्चाटन आदि वे समस्त सिद्धियाँ प्रसन्न जाया करती हैं । पारद की गुटिका आकाश और भू गामिनी होती है । अञ्जन लगाते ही ऊपर और नीचे की गुप्त वस्तुयें दिखाई देने लगती हैं ।५७। उसकी गति वायु के ही समान हो जाया

करती हैं जो अन्यों के द्वारा कभी वारित नहीं हुआ करती है। वह मनुष्य लम्बी आयु वाला हो जाता है और स्वेच्छानुसार योग करने वाला भी हो जाया करता है। वह धनवान् होता है।५८। अष्टमी तिथिमें संयत हो नवमी में विधि के अनुसार शिवा का पूजन करके मन में विधान से ही शिवा का विचिन्तन करे।५९। जो मनुष्य कवच का न्यास देह किया करता है उसका पुण्य का फल अब श्रवण करो। वह समस्त व्याधियों पर विजय पाने वाला--सौ वर्ष की आयु वाला—रूप से संयुत और सदा गुणों वाला होता है।६०। धन और रत्नों के समूह से परिपूर्ण और वह विद्यमान होता है। उसके शरीर की अग्नि दग्ध नहीं करती है और जल उसको भिगो नहीं सकते हैं।६१। वायु उसको शुष्क नहीं करता है और राक्षस उसकी हिंसा नहीं किया करता है। शस्त्र उसका छेदन नहीं करते हैं और भास्कर उसको ज्वर नहीं हुआ करता है। वेताल—पिशाच—राक्षस--और गुणों के नायक सभी उसके अधीन हो जाते हैं।६३।

सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधाः।
नित्यं पठति यो भक्त्या कवच हरनिर्मितम् ॥६४
सोऽहमेव महादेवो महामाया च मातृका।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च तस्य नित्यं करे स्थिताः ॥६५
अन्यस्य वरदः सोऽर्थैर्नित्य भवति पन्डितः।
कवित्वं सत्यवादित्वं सततं तस्य जायते ॥६६
वदेच्छलोकसहस्राणि भवेच्छ्रु तिधरस्तयथा।
लिखितं यस्य गेहे तु कवचं भैरव स्थितम् ॥६७
न तस्य दुर्गतिः क्वापि जायन्तेतस्य दूषणम्।
ग्रहाश्च सर्वे तुष्यति वशं गच्छन्ति भूमिपाः ॥६८
यद्राज्ये कवचज्ञोऽस्ति जायन्ते तत्र नेतयः।
सेसुर्देवः शक्तिबीज पंचमोहाय ते नमः ॥६९
वायुबलेन चैतायै द्वितीयाष्टाक्षरं त्विदम्।
सेतुर्देवोऽथ वैष्णव्यै षडक्षरमिद स्मृतम् ॥७०

चारों प्रकार के भूतों के समूह सभी उनके वश में हो जाया करते

हैं। जो मनुष्य नित्य ही भक्ति की भावना से भगवान् हर का बनाया हुआ कवच का पाठ किया करता है ।६४। वह मैं ही महादेव हूँ और मातृका महामाया हूँ उस पुरुष के धर्म अर्थ काम और मोक्ष उसके कर में ही नित्य स्थित रहा करते हैं ।५५। वह अर्थों के द्वारा अन्य के लिए वरदान वाला होता है। तथा बड़ा पण्डित हो जाता है। कविता करने की शक्ति और सत्य भाषण करना उसको निरन्तर हो जाया करता है ।६६। वह सहस्रों श्लोकों को बोला करता है। और वह श्रुति धर हो जाता है। हे भैरवी जिसके घर में यह कवच लिखा हुआ स्थिर रहा करता है ।६७। उसकी कहीं पर भी दुर्गति नहीं हुआ करती हैं और उसको कोई भी दोष नहीं लगता है। उस पुरुष के सभी ग्रह सन्तुष्ट हो जाया करते हैं और उसके वश में राजा हो जाते हैं ।६८। जिस राजा के राज्य में इस कवच का ज्ञाता रहता है। वहाँ पर ईतियाँ कभी नहीं हुआ करती हैं। टिड्डी आदि की वृद्धि वाली छः ईतियों होती हैं। सेतु देव हैं—शक्ति बीज है—पञ्चमोह तुम्हारे लिए नमस्कार है ।६९। वायु बल से इसके लिए वह द्वितीय अष्टाक्षर है सेतुदेव है वैष्णवी के लिए यह षडक्षर है ऐसा कहा गया है ।७०।

एतद् द्वयं तु जिह्वाग्रेसततं यस्य वर्तते ।
तस्य देवी महामाया काये तिष्ठति वै सदा ।।७१

मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः ।
क्षरत्यनीङ्कृतः पूर्वं यरस्ताच्च विशीर्यते ।।७२

नमस्कारो महामन्त्रो देव इत्युच्यते सुरैः ।
द्विजातीनामयं मन्त्रः शूद्राणां सर्वकर्मणि ।।७३

अकारं चाप्युकारं मकारं च प्रजापतिः ।
ददत्रयात्समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा ।।७४

स उदातो द्विजातीनां राज्ञां स्यादनुदात्तकः ।
प्रचितश्चोरुजानां मनसापि तथा स्मरेत् ।।७५

चातुर्दशस्वरो योऽसौ शेष-औकारसंज्ञकः ।
स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते ।।७६

निःसेतु च यथा तोयं क्षणात्न्निम्नं प्रसर्पति ।
मन्त्रस्तथैव निःसेतु क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ।।७७

ये दोनों जिस पुरुष की जिह्वा के अग्रभाग में होते उसके शरीर में महामाया देवी निश्चय ही सदा स्थित रहती है ।७१। मन्त्रों का प्रणव सेतु होता है और उसका सेतु प्रणव कहा गया है । पूर्व में अनोङ्कत क्षरित होता है और परस्तात् विशीर्ण हो जाया करता है ।७२। नमस्कार महामन्त्र देव हैं यह सुरों के द्वारा कहा जाता है । द्विजातियों का यही मन्त्र है और शूद्रों के सब कर्म्म में होता है ।७३। अकार—उकार और मकार को प्रजापति ने तीनों वेदों से उद्धृत करके पहिले प्रणव का निर्माण किया था ।७४। वह द्विजातियों का उदात्त है और राजाओं का अनुदात्त है । वैश्यों का प्रचित है । इसका मन से भी स्मरण नहीं करना चाहिए ।७५। जो यह चौदह स्वरों वाला है शेष ओंकार संज्ञा वाला है । और वह अनुस्वार—चन्द्रों से शूद्रों का सेतु कहा जाता है ।७६। जिस तरह से बिना सेतु वाला जल क्षण भर में ही निम्न स्थल में प्रसर्पित हो जाया करता है ठीक उसी भाँति बिना सेतु वाला मन्त्र यज्वाओं का क्षरित हो जाया करता है ।७७।

तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयाः ।
पाश्वर्वनोः सेतुमादाय जपकर्मसमारभेत् ॥७८
शूद्राणामादिसेतुर्वा द्विसेतुर्वा तथेच्छतः ।
द्विःसेतवः समाख्याताः सर्वदेव द्विजातयः ॥७९
एतत् ते सर्वमाख्यातं कवचं त्र्यम्बकोदितम् ।
अभेद्यं कवचं तत् तु कवचाष्टकमुत्तमम् ॥८०
महामायामन्त्रकल्प कवच मन्त्रसंयुतम् ।
षडक्षरसमायुक्तं क्षिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥८१
एतत् त्वं नृपशार्दूल नित्यभक्तियुतः पठन् ।
जपन् मन्त्रं च वैष्णव्याः सर्वसिद्धिमवाप्स्यसि ॥८२

इस कारण से सर्वत्र मन्त्रों में द्विजातिगण चार वर्णों वाले होते हैं । दोनों पाश्वों में सेतु का आदान करके जप के कर्म का समारम्भ करे ।७४। शूद्रों का आदि सेतु अथवा द्विसेतु यथेच्छा से दो सेतु समाख्यात हैं द्विजाति सर्वदा ही हैं ।७९। और्व ने कहा—यह आपको मैंने त्र्यम्बक के द्वारा कहा हुआ कवच सब कह दिया है । वह कवच अभेद्य है और कवचों के अष्टक में अत्युत्तम है ।८०। महामाया मन्त्र कल्प कवच मन्त्र से संयुत है । यह षडक्षर

समायुक्त हैं और तीनों लोकों में महान् दुर्लभ है ।७१। हे नृपशार्दूल ! इस को आप नित्य ही भक्ति से युक्त होकर पढ़ते हुए और वैष्णवी के मन्त्र का जप करते हुए सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति कर लेता है ।८२।

—×—

## ।। मन्त्र-साधना के अङ्ग ।।

श्रुत्वेमं सगरो राजा संवादं भैरवेण वै ।
वेतालेनापि भर्गस्य पुनरौर्व्वमपृच्छत ।।१
मन्त्रं कलेवरगतं साङ्गं प्रोक्तं त्वया द्विज ।
अंगमन्त्राणि मे देव्याः कथ्यन्तां भो द्विजोत्तमः ।।२
तथा मन्त्राणि सर्वाणि पूजास्थानानि सर्वशः ।
तथैवोत्तरमन्त्राणि कवचानि पृथक्-पृथक् ।।३
कामाख्यायाश्च महात्म्य सरहस्यं समन्त्रकम् ।
यथा शशंस भगवान् महादेव उमापतिः ।।४
वेतालभैरवाभ्यां तत् समाचक्ष्व सविस्तरात् ।
शृण्वतो न हि मे तृप्तिर्जायते महदद्भुतम् ।।५
भवता कथ्यमानं हि परं कौतूहलं मम ।
शृणुत्वं राजशार्दूल यत्पुत्राभ्यासुमापतिः ।।६
उवाच महादाख्यानं तन्मे निगदतोऽधुना ।
एतद्रहस्यं परमं पवित्रं पापनाशनम् ।।७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--भैरव के द्वारा इस सम्वाद को राजा सगर ने श्रवण करके और भर्ग का वेताल के द्वारा भी सुनकर पुनः और्व से पूछा था ।१। सगर ने कहा—हे द्विज ! आपने कलेवर गत मन्त्र अङ्गों के सहित बतला दिया है । हे द्विजोत्तम ! अब देवों के अङ्ग मन्त्र मुझसे कहिए ।२। तथा समस्त मन्त्र और सभी और पूजा के स्थान हैं। ठीक उसी भाँति उत्तर मन्त्र और पृथक्-पृथक् कवचों को और कामाख्या के माहात्म्य को जो रहस्य और मन्त्रों के सहित होवे । जैसा भगवान् उमापति महादेव ने कहा था और वेताल—भैरव दोनों को बतलाया था उसे विस्तार सहित

आप कहने की कृपा करें। यह महान् अद्भुत है इसका श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है। जबकि आपको इसे कहते हुए मैं देखता हूँ तो मुझे बहुत ही अधिक कौतूहल होता है।३-५। और्व ने कहा हे राज शार्दूल ! जो कि उमापति ने अपने पुत्रों से कहा था और जो एक महान् आख्यान है मैं अब आपको कहता हूँ मुझसे आप श्रवण कीजिए। यह परमाधिक रहस्य है—बहुत ही पवित्र है और पापों के नाश करने वाला है।६-७।

परं स्वस्त्ययनं पुंसा गर्भे पुंसवनं स्मृतम् ।
कल्याणकारकं भद्रं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥८
शठाय चलचित्ताय नास्तिकाय जितात्मने ।
देवद्विजगुरूणां च मिथ्यानिर्बन्धकारिणे ॥९
न पापायाभिशस्ताय खञ्जकाणादिरोगिणे ।
नकश्चं न च वा देयं श्रद्धाविरहिताय च ॥१०
महामायामन्त्रकल्पं प्रोक्त्वा ताभ्यामुमापतिः ।
वेतालभैरवाभ्यां तु पुनरेवाभ्यभाषत ॥११
अंगमन्त्रं प्रवक्ष्यामि प्रोक्तवांस्तन्त्रमुत्तमम् ।
तदेव प्रथमं विद्धि सर्वपूजासु संगतम् ॥१२
आचान्तः शुचितां प्राप्तः सुस्नातो देवपूजने ।
पूजावेद्या बहिस्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥१३
गृहे वा द्वारदेशस्थः प्रणम्य शिरसा गुरुम् ।
प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालनापि चेतसा ॥१४

यह पुरुषों का परम स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याण का आलय है और इसको गर्भ में पुंसवन कहा गया है—यह कल्याण करने वाला—परम भद्र और चारों वर्गों के फल का प्रदान करने वाला है।८। इसको ऐसे व्यक्ति को कभी भी भूलकर भी नहीं देना चाहिए जो शठ होवे—चंचल चित्त वाला हो जो नास्तिक हो जो अजित आत्मा वाला हो—जो देव, द्विज और गुरुवर्ग का मिथ्या निर्वन्धकारी होवे।९। जो पापी हो तथा अभिशस्त हो—खञ्ज हो—काणा हो और रोगी हो ऐसे पुरुष से यह नहीं करना चाहिए और न देना भी चाहिए। जिसमें श्रद्धा का अभाव हो उसे भी यह न देवे

।१०। उमा पति ने उन दोनों वेताल—भैरव से कहकर अर्थात् इस महामाया के मन्त्र कल्प का उपदेश देकर वे पुनः यह बोले थे ।११। भगवान् ने कहा—उत्तम तन्त्र तो मैंने कह दिया है किन्तु अब मूल मन्त्र को बतलाऊँगा वह ही सर्व प्रथम जान लो। यह सब पूजाओं में सङ्गत है ।१२। आचमन करके—शुचिता को प्राप्त हुआ—सुन्दर रीति से स्नान किया हुआ देव पूजा में स्थित होवे। पूजा की वेदी से बाहर स्थित होकर बुद्धि से चार हाथों के अन्तर में स्थित रहे। घर में अथवा द्वार देश में स्थित होता हुआ शिर से गुरु को प्रणाम करे अपने इष्टदेव को इसी भाँति प्रणाम करना चाहिए तथा चित्त के ही द्वारा दिक्पालों को प्रणाम करना चाहिए ।१३-१४।

यत् पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा।
प्रायश्चित्तैर्नापनुन्नं तच्च पापं स्मरेद्धिया ॥१५
तत्पापस्यापनोदाय मन्त्रद्वयमुदीरयेत्।
देवि त्वं प्राकृतं चित्तं पापक्रान्तमभून्मम ॥१६
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं हूँ फट् च ते नमः।
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च वै ॥१७
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नय साक्षिणः।
ततः पुनर्हूं फडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ॥१८
आत्मानं क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत्।
एवं कृते प्रथमतः पापोत्सारणकर्मणि ॥१९
यत् स्याद् दृढ़तरं पापं तद् दूरे चावतिष्ठते।
अतीते पूजने स्थान स्वं प्रयाति पुनश्च यद् ॥२०
यत् स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपगच्छति।
ॐ अः फडितिमन्त्रेण पूजावेदी ततो विशेत् ॥२१

जो पाप पूर्व जन्म में अथवा पूर्व काल में अर्जित किया है उन दिन अथवा अन्य किसी दिन में प्रायश्चितों के द्वारा अपनुन्न नहीं किया गया है उस पाप का बुद्धि के द्वारा स्मरण करना चाहिए ।१५। उस पाप के अपनोदन करने के लिए दो मन्त्रों का उच्चारण करे। हे देवि ! जो कि एक प्राकृत चित्त है पाप से आक्रान्त हो गया था आप मेरे चित्त से उसको उस

पाप को निकाल दो—हुँ फट् आपके लिए नमस्कार है। पाप पुण्य के कुछ देव प्रत्यक्ष देखने वाले हैं उनमें सूर्य—सोम—मम—काल और पाँच महाभूत ये नौ हैं।१६-१७। ये शुभ और अशुभ कर्म के नौ देव साक्षी होते हैं। इसके अनन्तर 'हूँ फट्—इसके पार्श्व में—उर्ध्व में और अधो भाग में आत्मा को क्रोध की दृष्टि से निरीक्षण करके सुनना हो जाना चाहिये। ऐसा करने पर प्रथम से पापों के उत्सारण कर्म किये जाने पर जो भी दृढ़ात्तर पाप होता है वह दूर ही स्थित रहा करता है। पूजन के अतीत होने पर जो अपने स्थान को पुनः प्रयाण करता है। जो भी अल्पतर पाप हो वह नाश को प्राप्त हो जाया करता है ॐ अः फट्—इस मन्त्र के द्वारा पूजा की वेदी से वह प्रवेश करे।२१।

पूजने त्यक्तपापस्य कामविष्टं क्षणाद् भवेत्।
नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समया स प्रलोकयेत्॥२२
पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्नीं हूँ फडिति मन्त्रकैः।
वेदात्मनानवज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम्॥२३
अस्पृस्यस्पर्शन वापि वदन्यायाजितं च वा।
तथा निर्माल्यसंसृष्टं कीटाद्यारोहणं च यत्॥२४
तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात्।
ततौ रमितिमन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत्॥२५
स तस्य सुमगो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रतः।
पतंगकीटकेशादि-दहात् क्रव्यादसंहतः॥२६
वसामज्जास्थिसम्पूतिर्यज्ञादावुपयोजनम्।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं दोषं स्पर्शाद् विनाशयेत्॥२७
नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत्।
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्षन्नभ्युक्ष्य याजकः॥२८

पूजन में पापों के त्याग कर देने वाले का जो अभीष्ट कामना है वह क्षण भर में ही हो जाया करता है। नाराच की मुद्रा से देखकर वह समीप में ही प्रलोकन करे।२२। पुष्प—नैवेद्य—गन्ध प्रभृति 'ह्रीं हूँ फट्' मन्त्र से जो अपने द्वारा अवज्ञान न होवें भली भाँति से पुष्प आदि का दूषण—स्पर्श

न करने के योग्य का स्पर्शन—जो अन्याय से अर्जित होवे तथा निर्माल्य में संसृष्ट जो कीट आदि का आरोहरण हो वह सभी नाश को प्राप्त हो जाता है नैवेद्य आदि के अवलोकन से फिर 'रम्'—इस मन्त्र से दीप की शिखा का संस्पर्श करना चाहिए ।२३-२५। उसका वह दीप स्पर्शन मात्र से ही सुभग हो जाता है। पतङ्ग-कीट-केश आदि के दाह से—कन्याद से संहत-वसा-मज्जा-अस्थि सम्पूति जो यज्ञादि में उपयोजन है ऐसे अज्ञात रूप वाला सभी दोष स्पर्श से ही विनाश को प्राप्त हो जाया करता ।२६-२७। नारसिंह मन्त्र के द्वारा देवतीर्थ से संस्पर्श करे। याजक को चाहिए कि घट के मध्य में स्थित जल को देखते हुए अभ्युक्षण करे ।२८।

वामेन पाणिना धृत्वा वामपर्श्वे स्थितं तदा ।
पात्रमाधारमन्त्रेण संस्कुर्वन् संस्पृशेज्जलम् ।।२९
यज्ञदानादपेयादि संसृष्टिरिह संगता ।
यदन्यद् दूषण पात्रे तोये वा ज्ञानतो भवेत् ।।३०
जलाशयं शवस्पर्शाज्जलं स्नानाच्च संगतम् ।
दूषणानि विनश्यतिन्त तानि वैं देवपूजने ।।३१
प्रजापतिसुतो ह्रान्तप्रान्तः स्वरसमन्वितः ।
चन्द्रार्धबिन्दुसहितो मन्त्रोऽयं नारसिंहकः ।।३२
स्वसंज्ञाद्यक्षरं विन्दुचन्द्रार्धपरियोजितम् ।
आधारमन्त्रं जानीयात् साधकः कार्यसिद्धये ।।३३
तत आधारमन्त्रेण पाणिभ्यामासनं स्वकम् ।
आदाय विनिधायाशु पुनः संस्पृश्य पाणिना ।।३४
आत्ममन्त्रेणोपविशेत् तदा तस्मिन् वरासने ।
दुःतिलिपरचितत्वादि यद्वान्यासनभूषणम् ।।३५

बाँये हाथ से पकड़ कर उस समय में वाम पार्श्व में स्थित पात्र को आधार मन्त्र के द्वारा संस्कार करता हुआ जल का संस्पर्श करना चाहिए ।२९। यहाँ पर यज्ञ दान से अपेय आदि की संसृष्टि सङ्गता है। जो भी अन्य दूषण पात्र में अथवा जल में ज्ञानपूर्वक होवे। शव के स्पर्श से जलाशय और स्नान से सङ्गत जल से दूषण सब देव पूजन में विनष्ट हो जाया करते हैं

।३०-३१। हान्त प्रान्त प्रजापति सुत जो स्वर से समन्वित होवे—चन्द्रार्थ बिन्दु से सहित यह नारसिंहक मन्त्र है ।३२। अपनी संज्ञादि का अक्षर जो बिन्दु और चन्द्रार्द्ध से परियोजित होवे। इसको कार्य की सिद्धि के लिये आधार मन्त्र साधक जान लेवे ।३३। फिर आधार मन्त्र के द्वारा अपने आसन को हाथों से लाकर और रखकर शीघ्र ही पाणि से संस्पर्श करे। उस समय में उस श्रेष्ठ आसन पर आत्मा मन्त्र के द्वारा उपवेशन करे। बुरे शिल्पी के द्वारा निर्मित आदि का जो अन्य आसन भूषण होते हैं। वे बिना जाने हुए ही विलय को प्राप्त हो जाता है। मन्त्र के सहित उपवेशन से ही विलन होते हैं ।३४-३५।

अज्ञातं विलयं याति उपवेशात् समन्त्रकात् ।
आहूय स्वाक्षरं पर्वं सोमसामिसमन्वितम् ॥३६
सबिन्दुकं विजानीयादात्ममन्त्र तु साधकः ।
ततस्तु मातृकान्यासं नादबिन्दुसमन्वितम् ॥३७
कुर्यात् तु मातृकामन्त्रैः स्वशरीरे विचक्षणः ।
कल्पेषु च यदज्ञात मन्त्रोच्चारणकर्मणि ॥३८
यद् दुष्टं वा तया स्पृष्टं मात्राभ्राष्ट्वादिदूषणम् ।
तन्नस्या मातृकामन्त्रा नाशयन्ति सदैव हि ॥३९
व्यञ्जनानि च सर्वाणि तथा विष्णवादयः स्वराः ।
सर्वे ते मातृकामन्त्राश्चन्द्रबिन्दुविभूषणाः ॥४०
सर्वे युगान्तवन्द्येषु न्यस्तेषु न्यूनपूरणम् ।
मन्त्रे कल्पे च कुर्वन्ति विन्स्ता मातृकाः स्वयम् ॥४१
एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेयो वर्णा एते व्यवस्थिताः ॥४२

पूर्व में सोम सामि से समन्वित स्वाक्षर के समाहूत करके साधक को बिन्दु के सहित आत्मा मन्त्र जानना चाहिए। इसके अनन्तर नाद बिन्दु से समन्वित मातृका न्यास करे। विचक्षण पुरुष को अपने शरीर में मातृका के मन्त्रों के द्वारा न्यास करना चाहिए। मन्त्रों के उच्चारण कर्म में कल्पों में जो अज्ञात होवे। जो भी दुष्ट हो तथा स्पष्ट हो और मात्राओं के भ्रष्ट

आदि का दोष होवे न्याय किये हुए मातृका के मन्त्र साद ही उनका नाश कर दिया करते हैं ।३६–३६। समस्त व्यञ्जन तथा विष्णु आदि स्वर वे सभी मातृका के मन्त्र हैं जो कि चन्द्र बिन्दु के विभूषण वाले हैं ।४०। सब युगान्त बन्धों के न्यस्त होने पर न्यूनता की पूर्ति है। विन्यास की हुई मातृका स्वयं ही मन्त्र में और कल्प में न्यूनता की पूर्ति कर देती हैं ।४१। जिसमें एक मात्र हो वह ह्रस्व होता है मात्रा का अर्थ कम से कम समय होता है। दो मात्राओं वाला स्वर दीर्घ कहा जाता है। तीन मात्राओं वाला या दो से अधिक मात्राओं वाला स्वर प्लुत जानना चाहिए वर्ण इसी प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ।४२।

सर्वेषामेव वर्णानां मात्रादेव्यस्तु मातृकाः ।
शिवदूतीप्रभृतयस्तत्न्यासास्तत्तनुस्थिताः ॥४३
पूरयन्ति च तान् न्यूनांश्चतुर्वर्गं तथाचिरात् ।
ददत्येव सदा रक्षां कुर्वन्ति सुरपूजने ॥४४
चतुर्वर्गप्रदश्चायं सर्वकामफलप्रदः ।
सर्वदामातृकान्यासस्तुष्टिपुष्टिप्रदायकः ॥४५
यः कुर्याद् मातृकान्यास विनापि सुरपूजनात् ।
तस्माद् विभेति सतत भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥४६
तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्पृहयन्ति महौजसम् ।
स सर्वं च वश कुर्याद् न च याति पराभवम् ॥४७

सभी वर्णों की मात्रा देवियाँ ही मातृका हैं। वे शिवदूती प्रभृति है। तनु में स्थित उसके न्यास हैं ।४३। ये उन न्यूनताओं की पूर्ति किया करते हैं तथा शीघ्र ही चतुर्वर्ग को देती हैं और सुतों के पूजन में सदा ही रक्षा करती हैं ।४४। सर्वदा मातृका का न्यास करना धर्मार्थकाम मोक्ष के चार वर्गों का प्रदान करने वाला होता है और सभी कामनाओं को देने वाला है। तथा यह तुष्टि और पुष्टि का भी देने वाला होता है ।४५। जो मनुष्य सुरों के बिना भी मातृका का न्यास किया करता है। उससे चारों प्रकार का भूतों का समूह निरन्तर भयभीत रहा करता है ।४६। उस महान् ओज वाले पुरुष के दर्शन करने के लिए देवगण भी स्पृहा किया करते हैं। उसमें ऐसी विलक्षण शक्ति समुत्पन्न हो जाती है कि वह सबको अपने वश में कर लिया करता है और स्वयं कभी भी पराभव को प्राप्त नहीं होता है ।४७।

कुसुमं विष्णुमन्त्रेण अंगुल्यग्रेण साधकः ।
विमर्दनार्थगृह्णीयात् खरशोधनकर्मणि ॥४८
उपान्तः सामि चन्द्रेण रंजितः शून्यसंयुतः ।
रुद्रान्तोपरिससृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवो मतः ॥४६
प्रासादेन तु मन्त्रेण अंगुल्यग्रेण साधकः ।
गृहीत्वा च ततः कुर्यात् कराभ्यां पुष्पमर्दनमः ॥५०
निर्मंथेत् कामबीजेन जिघ्रेद् ब्राह्मेण तत् पुनः ।
प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्यां विशेषतः ॥५१
एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत् ।
जलौकागूढपादादिस्पर्शाच्छुद्धिर्विशोधनात् ॥५२
दुर्गन्ध्युच्छिष्टसंस्पर्शाद् दूषणं करयोस्तु यत् ।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं नाशयेत् सुविधानतः ॥५३
अंगुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणात् भवेत् ।
तलद्वयं मर्दनात् तु विशुद्धमभिजायते ॥५४
निर्मञ्छनात् पाणिपृष्ठ घ्राणन्नासाग्रमुत्तमम् ।
तीर्थानि च समायान्ति नासिकायां कर प्रति ॥५५
तस्माद् यत्नेन कार्याणि कर्माण्येतानि भैरव ।
प्रान्तादिर्वासुदेवेन वर्णेनापि च सहितः ॥५६

साधक को चाहिए कि कुसुम को विष्णु के मन्त्र के द्वारा अँगुलि के अग्र भाग से विमर्दन के लिये ग्रहण करे और इसका ग्रहण कर शोधन के कर्म में करना चाहिए । उस कुसुम को ग्रहण करके हाथों से मर्दन करना चाहिए । उपान्त सामिचन्द्र से रंजित—शून्य से संयुत—रुद्रान्तोपरि संसृष्ट यह मन्त्र वैष्णव मन्त्र माना गया है ।४८–४६। प्रासाद मन्त्र के द्वारा साधक अँगुलि के अग्रभाग से ग्रहण करके करों से पुष्प मर्दन करे ।५०। काम बीज के द्वारा निमन्थन करे फिर ब्राह्मण के द्वारा अवघ्राण करे । ऐशानी दिशा में विशेष रूप से प्रसाद के द्वारा परित्याग करना चाहिए ।५१। ऐसा करने पर करों को अनुपम विशुद्धि होती है । जलों का—गूढ़ पाद—आदि के

स्पर्श से विशोधन करने से विशुद्धि हुआ करती है ।५२। जो हाथों में दुर्गन्धि एवं उच्छिष्ट के संस्पर्श से दूषण होता है । वह सब अज्ञान रूप वाला है उसका सुन्दर विधान से विनाश कर देता है ।५३। पुष्पों के ग्रहण करने से अँगुलियों के अग्रभाग शुद्ध हो जाते हैं और करों के दोनों तले पुष्पों के मर्दन से विशुद्धि को प्राप्त होते हैं ।५४। निर्मञ्छन करने से करों के पृष्ठ भाग और घ्राण करने से नासि का अग्रभाग उत्तम होता है । सभी तीर्थ नासिका में और करके प्रति समापात होते हैं ।५५। हे भैरव ! इस कारण से ये कार्य यत्नों के साथ करने चाहिए । प्रान्तादि वासुदेव के द्वारा और वर्ण से भी सहित होवे ।५६।

शम्भुचूडाबिन्दुयुक्तः प्रासादश्च स उच्यते ।
कामबीजं तु विज्ञेयं वासुदेवेन्दुविन्दुभिः ।।५७
व्यञ्जनं चाद्यदन्त च प्रान्तदन्त्या तु पूर्वकम् ।
आद्यदन्त्यद्वयं पश्चाद् व्यञ्जनं प्रणवोत्तरम् ।।५८
ब्रह्मबीजमिदं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रथवं दीर्घमुच्चार्य प्रथम मुखशुद्धये ।।५९
वासुदेवस्य बीजेन प्राणायामं समाचरेत् ।
यस्य देवस्य यद्रूपं तथा भूषणवाहनम् ।।६०
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् पूरकादिभिः ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कण्ठाद्ययत्पुरःसरम् ।।६१
तद् बीजं वासुदेवस्य पूर्णचन्द्रनिभं सदा ।
गङ्गावतारबीजेन प्रथमं धेनुमुद्रया ।।६२
अमृतीकरणं कुर्यादघपात्राहिते जले ।
शशिखण्डयुतः कण्ठयः पञ्चमीबलबीजकः ।।६३

शम्भु चूड़ा और बिन्दू से जो युक्त हो वह प्रसाद कहा जाता है। वासुदेव इन्द्र विन्दुओं से कर्म बीज जानना चाहिये ।५७। व्यञ्जन और आद्य दन्त्थ और आद्य दन्त्य पूर्वक तथा पीछे आद्य दन्त्यद्वय व्यंजन होवे जिसके उत्तर में प्रणव हो—यह ब्रह्मबीज कहा गया है जो सब पापों का विनाश करने वाला है । मुख का शुद्धि के लिए प्रथम दीर्घ प्रणव का उच्चारण

करे। वासुदेव के बीज के द्वारा प्राणायाम का समाचरण करे। जिस देव का जो भी रूप हो वैसा ही भूषण और वाहन होना चाहिए।५८-६०। उसके पूजन में वह ही पूरक आदि के द्वारा चिन्तन करना चाहिए। वैष्णवी तन्त्र मन्त्र का वायु पुरःसर कण्ठाद्य वह वासुदेव का बीज है जो सदा पूर्ण चन्द्र के सदृश है। प्रथम गङ्गावतार बीज से धेनु मुद्रा के द्वारा अर्धपात्र के अहित जल में अमृतीकरण करना चाहिए। चन्द्र के खण्ड से युत कण्ठ में पञ्चमी वल बीजक है।६१-६३।

गङ्गावतारमन्त्रोऽयं सर्वपापप्रणाशकः।
मात्राद्वययुतो विष्णुर्बलबीजमुदाहृतम् ॥६४
अमृतीकरणं वृत्ते तोय यद् दीयतेऽमृतम्।
भूत्वा प्रयाति देवस्य प्रीतये सुरपूजन ॥६५
गङ्गापि स्वयमायाति पूजापात्रजलं प्रति।
अमृतीकरणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ॥६६
स्वस्तिक गोमुख पद्मर्धस्वस्तिकमेव च।
पर्यंङ्कमासन शस्तमभीष्टसुरपूजने ॥६७
पादयन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम्।
तद् गृह्णीयाद् वराहस्य बोजेन प्रथमं बुधः ॥६८
मायादिरग्निबीजस्य चतुर्थः समव्याप्तिकः।
षष्ठस्वरोपरिचरो वाराह बीजमुच्यते ॥६९
वाराहबीजसंशुद्धं मन्त्रपादद्वये कृतम्।
पश्यन्नेभीष्टदेवं तु पाददोष न पश्यति ॥७०

यह गङ्गावतार बीज है जो सब पापों के प्रणाश करने वाला है। दो मात्राओं से युत विष्णु बल बीज उदाहृत किया गया है।६४। अमृतीकरण के होने पर जो जल दिया जाता है—वह अमृत होकर सुरों के पूजन में देवता की प्रीति के लिए जाया करता है।३६। पूजा के मात्र के जल की ओर गङ्गा भी स्वयं आ जाया करती है। धम काम और अर्थ की सिद्धि के लिए अमृतीकरण करना चाहिए।६६। अभीष्ट सुर पूजन में स्वस्तिक—गोमुख पद्म—अधंस्वस्तिक—पर्यङ्क आसन प्रशस्त होते हैं।६७। वह पाद

यन्त्र कहा गया है जो सब मन्त्रों से स्वत्युत्तम है । दूध पुरुष को उसे प्रथम वराह के बीज के साथ प्रथम ग्रहण करना चाहिए ।६८। अग्नि बीज काया आदि समव्याप्तिक चतुर्थ छठवें स्वरोपरिचर वाराह वाज कहा जाता है । ।६९। मंत्र के दो पादों में किया हुआ वाराह बीज संशुद्ध हैं । अभीष्ट देव का दर्शन करते हुए पाद रोष को नहीं देखा करता है ।७०।

न युक्तमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने ।
मन्त्रेण लभतेऽभीष्टांस्तस्मान्मन्त्रपरो भवेत् ।।७१
पाणिकच्छपिकां कुर्यात् कूमंन्त्रेण साधकः ।
तत्र संस्कृतपुष्पेग पूजयेदात्मनो वपुः ।।७२
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्वं स्वस्व जायते ।
द्वितीयं वैष्णवीतन्त्रं बीजं विन्द्विन्दुसंयुतम् ।।७३
षष्टस्वरोपरिचरं कूर्मबीज प्रकीर्तितम् ।
दहनप्लवनस्यादो रन्ध्रस्य दशमस्य तु ।।७४
भेदनं शाधकः कुर्यान्त्रेण प्रणधेन तु ।
बीजेन वासुदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ।।७५
प्राणेन सहितं बीजं तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
अज्ञाता प्रयतानां तु मण्डलस्थानमार्जनात् ।।७६
द्रव्याणां विप्रकारः स्यात् संसर्याणां तथैव च ।
मधुकैटभनोर्भेदसंघातैर्दृढ़ता गता ।।७७

अन्य प्रकार से सुरों के पूजन में पाद दर्शन युक्त नहीं होता है । मंत्र के द्वारा ही अभीष्टों का लाभ किया करता है । इस कारण से मंत्र में हीं तत्पर होना चाहिए ।७१। साधना करने वाले पुरुष को कर्म मंत्र के द्वारा कर की कच्छपिका बनावे । वहाँ पर संस्कार किये हुए पुरुष से अपने शरीर का पूजन करे ।७२। उस पुष्प के द्वारा पूजित होने पर अपने आपको देवत्व हो जाता है । दूसरा वैष्णवी तंत्र बीज है जो बिन्दु इन्द्र से संयुत है ।५३। षष्ठ स्वर के उपरिचर कूर्म बीज कीर्त्तित किया गया है । दहन और प्लवन के आदि में दशम रन्ध्र का भेदन साधन को प्रणव मंत्र के द्वारा भेदन करना चाहिए । वासुदेव के बीज के द्वारा आकाश में विनिधापित करे ।७४-७५।

प्रणव के सहित बीज है वह सब प्रतिपादित कर दिया है। प्रयतों का अज्ञाता मण्डल के स्थान के मार्जन से द्रव्यों का तथा संसर्गों का विप्रकार होता है। मधु कैटभ को भेद संघातों को प्राप्त हुई।७६-७७।

मेदिनी सर्वदा शुद्धा सुरपूजासु सर्वतः ।
अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति पदा क्षितम् ।।७८
न च स्वीयतनुच्छायां याजयन्ति च भूतले ।
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं लिखेत् क्षितौ ।।७६
प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति भेदनी ।
वीक्षणं धर्मबीजेन स्थन्डिलस्य समाचरेत् ।।८०
दान्तो वलेन संयुक्तश्चूडाबिन्दुसमन्वितः ।
धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामाथसाधनम् ।।८१
आदानं धारण चैव तथा संस्थानपूजने ।
पूरणं सलिलेनैव निःक्षेपी गन्धपुष्पयोः ।।८२
मन्डलस्याथ विन्यासः पुनः पुष्पस्य संश्रयः ।
अमृतीकरणं पात्रप्रतिपत्तिरियं नरः ।।८३
अनिरुद्धेन चादाय अस्त्रमन्त्रेण धारम् ।
पात्रे तु मन्डलन्यासं वाग्बीजाग्रेतु योजयेतु ।।८४

सुरों का पूजाओं में सब ओर सर्वदा भेदिनी शुद्धा होती है। आज भी समस्त देवगण क्षिति को पद से स्पर्श नहीं किया करते हैं।६८। और अपने शरीर की छाया को भूतल में योजित नहीं किया करते हैं। उस दोष के मोक्ष के लिए क्षिति पर मंत्रराज को लिखना चाहिए।७६। प्रोक्षण करने से अथवा वीक्षण से भी भेदिनी—शुद्ध हो जाया करती है स्थण्डिल का वीक्षण धर्म बोज से द्वारा समाचरण करना चाहिए।८०। दान्त वल से संयुत और चूडा बिन्दु से समन्वित धर्म बीज कहा गया है जो धर्म–काम और अर्थ का साधन होता है।८१। आदान—धारण तथा संस्थान—पूजन सलिल से ही पूर्ण—गन्ध और पुरुष का निःक्षेप—मण्डल का विन्यास और पुनः पुष्प का सश्रय अमृतीकरण यह पात्र प्रति पति है। मनुष्य अनिरुद्ध के द्वारा आदान करके अस्त्र से धारण करे और पात्र में वाग्बीजाग्र से मंडल न्यास योजित करे।८२-८४।

अनिरुद्धं भवेद्बीजमाद्यं विन्दुद्वयोत्तरम् ।
फडन्तेनानिरुद्धं तु अस्त्रामन्त्र प्रकीर्तितम् ॥८५
शम्भुराद्यवलः प्रान्तः सम्पूर्णा सहिता इमे ।
परतः परतः पूर्व समाप्त्यंताः सबिन्दुकाः ॥८६
तृतीयं वागभवं बीजं सकलं निष्कलाह्वयम् ।
स्वरश्चतुर्थः सकलः संसृष्टौ विन्दुनेन्दुना ॥८७
वर्गाद्यादिर्द्वितीयं तु वाग्भवं बीजमुच्यते ।
कामराजाह्वयं चैतद् धर्मकामार्थसाधकम् ॥८८
मनोभवस्य बीजं तु कुन्डलीशक्तिसंयुतम् ।
वासुदेवेन सम्पृक्तमाद्यं वाग्भवमुच्यते ॥८९
इद सारस्वत नाम यदाद्यं स्मृतम् ।
एककं कामबीजादि त्रिभिस्तु त्रिपुरामहः ॥९०
आद्यं तृतीय सामीन्दुबिन्दुभ्यः समलंकृतम् ।
मदनस्य तु मन्त्रोऽयं कामभोगफलप्रदः ॥९१

आद्य बिन्दु दो के उत्तर अनिरुद्ध बीज होता है । वह अनिरुद्ध जब फट् अन्त में होता है तो अस्त्र मंत्र कहा गया है ।८५। शम्भु आद्यबल प्रान्तः सपूर्ण ये संहिता है । पर वे पूर्व समाप्ति के अंत वाले विनु के सहित तीसरा वाग्भव बीज है यह सफल निष्फल नाम वाला है । चतुर्थ स्वर संकल्प संसृष्टि में विंदु से और इन्दु से वर्गादि का आदि द्वितीय तो वाग्भव बीज कहा जाता है । और यह कामराज नाम वाला है जो धर्म—आर्ग और काम का साधन होता है ।८६-८८। मनोभाव का बीज कुण्डली शक्ति से संयुत होता है वह वासुदेव से सम्पृक्त होता है जो आद्य वाग्भव कहा गया है। एक-एक काम बीज आदि तीनों से तो त्रिपुरामद है । आद्य—तृतीय सामीन्दु बिंदुओं से समलंकृत है यह मदन का मंत्र है जो काम के भोग का फल प्रदान करने वाला है ।९०-९१।

औदेतोरूकविन्यप्तं यंत्र भास्करसन्निभम् ।
तद् वक्ष्ये कुन्डलीशक्तिभेदात् तु निगद्यते ॥९२
भूतपसारणं कुर्यान्मन्त्रेणानेन याजकः ।

यस्मिन् कृते स्थानभूता दूरं यान्ति सुरार्चने ॥९३
स्थितेषु तत्र भूतेषु नैवेद्यमन्डलं तथा ।
विलम्पन्ति सदा लुब्धा न गृह्णन्ति च देवताः ॥९४
तस्माद् यत्नेन कर्तव्य भूतानामपसारणम् ।
अस्त्रमंत्रेण संहितं तस्य मंत्रमिद स्मृतम् ॥९५
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म करोम्यहम् ॥९६
अनेन स्थण्डिलाद् भूतानपसार्याथ साधकः ।
ततो दिग्बन्धनं कृत्वा दिगभ्यस्तानपसारयेत् ॥९७
विष्णुबीज फडन्तं तु मंत्र दिग्बन्धने स्थितम् ।
करेण छोटिकापूर्वं वेष्टनं दिशः ॥९८

ओत्—ऐत के रूप से विन्यस्त मंत्र भास्कर के सदृश है। उसको मैं बतलाऊँगा जो कि कुण्डली की शक्ति है। अभेद से कही जाती है।९२। मार्जक इस मंत्र के द्वारा भूतों का अपसारण करे। इसके करने पर स्थान भूत जो है वे सुरार्चन के समय में दूर चले जाया करते हैं।९३। भूतों के वहाँ पर स्थित रहने पर सदा ही ने लुब्धक नैवेद्य मण्डल को विशेष रूप से लुप्त कर दिया करते हैं और देवता उस का ग्रहण नहीं किया करते हैं।९४। इस कारण से यत्न पूर्वक भूतों का अपसारण करना ही चाहिए। यह अपसारण अस्त्र मंत्र के सहित ही करे। उसका मंत्र यह कहा गया है।९५। वे भूत इस भूमि के पालक होवें। मैं भूतों के अविरोध के द्वारा ही पूजा कर्म कर रहा हूँ।९६। साधक इसके द्वारा स्थण्डिल से भूतों को अपसारित करके इसके पश्चात् दिग्बन्धन करके उनको दिशाओं भी अवसारित कर देवे।९७। जिसके अन्त में फट् हो ऐसा विष्णु बीज दिग्बन्धन में मंत्र स्थित होता है। करके द्वारा स्फोटिका युक्त ही है।९८।

आत्मनः पूजनेनाथ कर्मारम्भाधिकारिता ।
पूजित चासनं यागपीठस्य सदृशं भवेत् ॥९९
स्वभावतः सदा शुद्धं पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
मलपूतिसमायुक्त श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ॥१००

रेतोनिष्ठोबलालाभिः स्रवद्भिरपरिष्कृतम् ।
बीजभूतानि चैतस्य महाभूतानि पञ्च वै ॥१०१

तेषां तु सर्वभूतानां बीजानां देहसंङ्गिनाम् ।
वायुतेज पृथिव्यम्भावियतां शुद्धये क्रमात् ॥१०२

शोषणं दहन भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम् ।
आप्लावनं च कर्तव्य चिन्तामात्रविशुद्धये ॥१०३

अण्डस्य चिन्तनाद् भेदात्तन्मध्ये देवचिंतनात् ।
स्वकीयस्येष्टदेवस्य त्रिता सर्वात्मना भवेत् ॥१०४

सोऽहमित्यस्य सततं चिंतनाद् देवरूपता ।
आत्मनो जायते सम्यक् संस्कृतिः पुष्पदानतः ॥१०५

अपनी आत्मा के पूजन के द्वारा ही कर्म के आरम्भ करने की अधिकारिता प्राप्त हुआ करती है। और पूजित आसन योग पीठ के सदृश हो जाया करता है।९९। यह पाँचों भूतों के स्वरूप वाले वपु स्वाभाविक वाल वपु स्वाभाविक रूप से सदा ही अशुद्ध होता है। यह मल की पूर्ति से समायुक्त है और श्लेष्मा—विट्—मूत्र—इनसे पिच्छल रहा करता है।१००। वीर्य—थूक—लार जो स्राव करती रहा करती है यह शरीर अपरिष्कृत रहा करता है। इस शरीर के बीज भूत ये पाँच महा भूत होते हैं।१०१। उन समस्त भूतों का जो देह की संगी हैं और बीज हैं। जो वायु–तेज–पृथ्वी–बल और आकाश है इनकी शुद्धि के लिए क्रम से शोषण–दहन–भस्म–प्रोत्साह—अमृत वर्षण और आप्लवन करना चाहिए जो कि चिन्ता मोक्ष की विशुद्धि के लिए है।१०२-१०३। अण्ड के चिन्तन से–भेद से उसके मध्य में देव का चिन्तन से–स्वकीय इष्टदेव की चिन्ता सर्वात्मा रूप से होती है।।१०४। मैं वही हूँ–इसका निरन्तर चिन्तन करने से देव रूपता होती है। जो कि आत्मा को हो जाती है। भली भाँति पुष्पों के दान से संस्कृति होती हैं।१०५।

अहं देवोऽथ नैवेद्यं पुष्पगन्धादिकं च यत् ।
पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते ॥१०६

देवधारो ह्यहं देवो देवं देवाय योजयेत् ।
सर्वेषां देवतासृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥१०७

मनोजीवात्मनाः शुद्धिः प्राणायामेन जायते ।
अन्तर्गतं यच्च मलं तच्च शुद्धं प्रजायते ।।१०८
गृहे चेत् पूजयेद् देवं तदा तस्य विलोकनम् ।
कुर्यादादित्यबीजेन चषु: पार्श्वैष्वपि क्रमात् ।।१०९
हान्तः समाप्तसहितो वह्निनबीजेन संहितः ।
उपान्तः सचतुर्थस्तु स तथा संकलोऽग्रतः ।।११०
आदित्यवीजं कथितं सर्वरोगविनाशनम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं तोषदायकम् ।।१११
अशुद्धपक्षिसंयोग-पक्षिविष्टाप्रसेचने ।
मूषिकाणां तथा स्पर्शः कृमिकीटादिसंगमः ।।११२
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनाद् गृहदूषणम् ।
यतस्तु योगपीठस्य ध्यान प्रथमतश्चरेत् ।।११३

मैं देव हूँ–ऐसा संस्कार हो जाता है । इसके अनन्तर जो नैवेद्य और पुष्प गन्ध आदिक है और जो भी पूजा के उपकरण के लिए है यहाँ पर देवत्व हो जाता है ।१०६। देव आधार है मैं देव हूँ । देव के लिए योजित करे। सबको देवता की सृष्टि से शुद्धता भी समुत्पन्न हो जाया करती है । ।१०७। मन और जीवात्मा की शुद्धि प्राणायाम से हुआ करती है । अन्तर्गत जो भी मल है वह भी शुद्ध हो जाता है ।१०८। ग्रह में यदि देव का यजन करे तो उस समय में उसका विलोचन करना चाहिये । और आदित्य बीज के द्वारा क्रम से चारों पार्श्वों में करे।१०९। हान्त समाप्ति से सहित और वह्निबीज से सहित होवे । चतुर्थ के सहित उपांत वह सकल आने हो—यही आदित्य बीज कहा गया है जो कि समस्त रोगों का विनाश करने वाला है । धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष का कारण है और संतोष देने वाला है ।११०-१११। किसी अशुद्ध पक्षों का संयोग–पक्षी की निष्ठा का प्रसेचन तथा मूषिकाओं का स्पर्श एवं कृमि और कीट सादि का सगम आदि दोष नष्ट हो जाया करते हैं लोकन करने मात्र से ही इनका विनाश होता है और गृह दूषण नष्ट हो जाया करता है । इसके अनंतर प्रथम योग पीठ का ध्यान का समाचरण करना चाहिए ।११२-११३।

ध्यानमात्रं योगपीठं प्रविशत्येव मण्डलम् ।
योगपीठे स्मृते सर्व योगपीठमयं समम् ।।११४

न योगपीठादधिकं विद्यते परमासनम् ।
यस्य ध्यानाज्जगद् व्याप्तं सचराचरमानुषम् ।।११५

तच्चिन्तनस्थ माहात्म्यं को वा वक्तुं समुत्सहेत् ।
चिन्तामात्रेण मानुष्यं पश्य लोकविनाशनम् ।।११६

धारणाद् योगपीठं तु चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं चतुष्कोणं चतुर्वृतिम् ।।११७

आधारशक्त्या विहित प्रग्रहं सूर्यसन्निभम् ।
आग्नेयादिषु कोणेषुचतुर्षु क्रमतः स्थिगम् ।।११८

धर्मो ज्ञानं तथैश्वर्यं वैराग्यं क्रमतः सदा ।
पूर्वदिदिक्षु चैतानि स्थितानि क्रमतो यथा ।।११९

योग पीठ का ध्यान मात्र ही पर्याप्त है । इसी से योग पीठ मण्डल में प्रवेश किया करता है । योग पीठ के स्मरण करने पर सब कुछ योग पीठ से परिपूर्ण मम हो जाता है ।११४। योग पीठ से परमोत्तम अन्य कोई भी आसन नहीं हुआ करता है । जिसके ध्यान से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है जिससे जड़-चेतन मनुष्य सभी हैं । उसके चिन्तन का बड़ा भारी महातम्य है जिसके कहने का उत्साह कौन कर सकता है ? उसके चिन्तन भर से ही देखो मनुष्यों के शोक विनाश हो जाया करता है ।११६। योग पीठ के धारण करने से तो चतुर्वर्ग के फल का वह प्रदायक होता है । अब उसके ध्यान एवं चिन्तन का प्रकार बतलाया जाता है—वह विशुद्ध स्फटिक मणि के सदृश है—चतुष्कोण है और चार वृत्तियों वाला है । आधार शक्ति से विर्दित प्रग्रह वाला है तथा सूर्य के समान है । आग्नेय आदि चारों कोनों में क्रम से सदा ही धर्म-ज्ञान-ऐश्वर्य और वैराग्य स्थित रहा करते हैं । पूर्व आदि दिशाओं में ये निम्नलिखित क्रम से स्थित करते हैं ।११७-११९।

अधर्मश्च तथाज्ञानमनैश्वर्यं ततः परम् ।
अवैराग्यं परं तस्माद्धारणार्थं व्यवस्थितम् ।।१२०

तस्योपरि जलौघस्तु तस्मिन् ब्रह्माण्डमास्थितम् ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं कूर्मस्तस्योपरि स्थितः ।।१२१

कूर्मोपरि तथानन्तः पृथ्वी तस्योपरि स्थिता ।
अनंतगात्रसंयुक्त नाल पातालगोचरम् ।।१२२
पृथ्वीमध्ये स्थितं पद्मं दिक्पत्र गिरिकेशरम् ।
तस्याष्टदिक्षु दिक्पालाः स्वर्गो मध्ये व्यवस्थितः ।१२३
कर्णिकायां ब्रह्मलोको महर्लोकादयो ह्यधः ।
स्वर्गे ज्योतीषि देवाश्च चतुर्वेदास्तदन्तरे ।।१२४
सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
सदा स्थिताः पद्ममध्ये परं तत्व तथैव च ।।१२५
अधोऽधश्छदनं तव केशराग्रे स्थितं पुनः ।।१२६

अधर्म—अज्ञान अनैश्वर्य—अवैराग्य है इससे धारणार्थ व्ग्रयस्थित है ।१२०। उसके ऊपर जल का समुदाय है । उसमें ब्रह्माण्ड आस्थित है, उस ब्रह्माण्ड के भीतर जल है । उसके ऊपर कूर्म स्थित है ।१२१। उस कूर्म में ऊपर अनन्त है और उसके ऊपर यह पृथ्वी स्थित है । अनन्त के शरीर से संयुक्त एक नाल है । जो पाताल तक गोचर होता है ।१२२। पृथ्वी के मध्य में एक पद्म स्थित है जिसके दल दिशायें हैं और गिरि उसका केशर हैं। उसके आठ दिशाओं में दिक्पाल हैं और मध्यभाग में स्वर्ग अवस्थित है । ।१२३। उस पद्म की कर्णिका में ब्रह्मलोक है । उसके नीचे भाग में महर्लोक आदि हैं। स्वर्ग में ज्योतिर्गण हैं और देवगण हैं। उनके अन्तर में चारों वेद हैं।१२४। रज—सत्व—तम ये तीन गुण हैं जो प्रकृति से समुद्गत है । ये सदा ही पद्म के मध्य में स्थित है और तथा परतत्व हैं।१२५। वहाँ पर आत्म तत्व हैं संस्थित है जो ऊर्ध्वछदन है जो ऊपर की ओर है । अधःछदन है जो नीचे की ओर है वहाँ पर केशर के अग्र भाग में पुनः स्थित है ।१२६।

सूर्याग्निचन्द्रमरुतां मन्डलानि क्रमात् ततः ।
शवासनं योगपीठं सुखासनमतः परे ।।१२७
आराध्यासनमस्माच्च ततश्च विमलासनम् ।
मध्ये विचिन्तयेत् सर्व जगद्वै सचराचरम् ।।१२८
ब्रह्मविष्णुशिवास्चौव भागत्रयविनिश्चितान् ।
आत्मानं चिन्तयेत् तत्र पूजने समुपस्थितम् ।।१२९

मन्डलं योगपीठं तु पद्मं तु चिन्तयेत् ।
शावादीन्यासनानीह चत्वार्यपि विचिन्तयेत् ॥१३०
योगपीठं पृथग्ध्यात्वा मन्डलेन सहैकताम् ।
पुनर्ध्यात्वा ततः पश्चात् पूजयेदासनं ततः ॥१३१
ध्येनन योगपीठस्य यथा यद्दीयते जलम् ।
नैवेद्यपुष्पधूपादि तत् स्वयं चोपनिष्टते ॥१३२
सर्वे देवाः सगन्धर्वाः सचराचगुह्यकाः ।
चिन्तिताः पूजिताश्च स्युर्योगपीठस्य पूजने ॥१३३

इसके अनन्तर सूर्य—अग्नि—चन्द्र और मरुत के मण्डल क्रम से है। योग पीठ में शव का आसन है और इसके परे में सुखासन है फिर आराध्य आसन है और इसके पर में विमलासन है। मध्य में सम्पूर्ण इस चराचर जगत् का विशेष चिन्तन करना चाहिए।१२७-१२८। वहाँ पर तीन भागों में विनश्चित हुए ब्रह्मा—विष्णु और शिव का चिन्तन करना चाहिए। यहाँ पर अभ्यर्थन करने में समुपस्थित अपने आपका चिन्तन करे।१२९। मण्डल-योगपीठ और पद्म का चिन्तन करना चाहिए। शव आदि के चारों आसनों का भी यहाँ पर चिन्तन करे।१३०। इसके उपरान्त योग पीठ का ध्यान करके मण्डल के साथ एकता का पुनः ध्यान करे। इसके पीछे आसन का यजन करे।१३१। योगपीठ के ध्यान के द्वारा जो जिस प्रकार से जल दिया जाता है और नैवेद्य—पुष्प—धूप आदि स्वयं ही वहाँ पर उपस्थित हो करते हैं।१३२। योग पीठ के पूजन में गन्धर्वों के सहित सब देवगण और चर—सचर—गुह्यक सभी चिन्तित और पूजित हो जाया करते हैं।१३३।

अभीष्टदेवतापूजां विना यस्य विचिन्मनात् ।
लभते वै चतुर्वर्ग तुष्टि पुष्टिश्च जायते ॥१३४
आवाहनानन्तरतः पाणिभ्यामवतारतेत् ।
प्रागुत्तानौ करौ कृत्वा ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य सान्तरौ ॥१३५
निरन्तरवधः कुर्यान्नामयन् पूजकस्तथा ।
हेरम्बस्य तु बीजेन तस्मादवतरेति च ॥१३६
आम्रेडितेन चाभीष्ट देवानां लम्बनाय वै ।

नासिकावायुः निःसारामियत्स्था देवता भवेत् ॥१३७
एवं कृते मण्डले पु स्थितिस्तस्य प्रजायते ।
स्वान्तः शुद्धांशुविन्दुभ्यां हैरम्बं बीजमुच्यते ॥१३८
नाशनं विघ्नबीजानां धर्मकामार्थसाधनम् ।
गन्धपुष्पे तथा धूपदोषौ नैवेद्यमेव च ॥१३६
यदन्यद् दीयते वस्त्रमलंकारदिकं ज यत् ।
तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ॥१४०

अपने अभीष्ट देवता के पूजन के बिना जिसके विचिन्तन से चतुर्वर्ग का लाभ उपासक किया करता है और उसकी तुष्टि एवं पुष्टि हो जाती हैं । ।१३४। आवाहन के अनंतर ही दोनों करों के द्वारा अवतारित करना चाहिए । पहिले दोनों करों को ऊँचा करे और ऊपर की ओर उत्क्षिप्त करके अंतर सहित निरंतर नीचे की ओर नमित करते हुए पूजक को करना चाहिए । गणेश के बीज से उससे अववरित होओ—यह कहे ।१३५-१३६। अभोष्ट देवों के लम्बन के लिए दो बार उच्चारण करे । नासिका को वायु निःसारण से देवता आकाश में स्थित हो जाते हैं ।१३७। इस प्रकार से करने पर उसकी स्थिति मण्डल में हो जाया करती है । स्वान्तः अंश और विन्दु से बीज कहा जाया करता है ।१३८। यह विघ्नों के बीजों का विनाश करने वाला है और धर्म—कर्म का साधने वाला है । गंध पुष्प—धूप—दीप नैवेद्य और जो भी अन्य वस्तु दी जाती है तथा वस्त्र और अलङ्कार आदि उनका दैवत उच्चारण करके प्रोक्षण तथा पूजन करे ।१३६-१४०।

उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।
वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ॥१४१
इष्टेन मूलमन्त्रेण तथौत्सर्गनिवेदने ।
लपरश्चन्द्रविन्दुभ्यां बीजं वारुणमुच्यते ॥१४२
विलोकनं तुजनं च तथा दानं पृथक्-पृथक् ।
जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरिदं त्रयम् ॥१४३
इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षण परिकीर्तितम् ।
बीज गाणपत पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥१४४

अविघ्नं कुरु माले त्वं गृहणीयादित्यनैन च।
जपान्ते शिरसि न्यासो मालायाः परि कीर्तितः ।।१४५
स्रजमादाय पाणिभ्यां श्रीबीजेन तथार्चयेत् ।
अन्त्यदन्त्यान्तमात्राश्यां चादिवर्गतृतीयकौ ।।१४६
परतः परतः पूर्व श्रीबीजं विन्दुनेन्दना ।
मालाया अवतारन्तु शिरसः क्रियते यदा ।।१४७

मूल मंत्र से उत्सर्जन करके प्रतिनाम से निवेदन करना चाहिए। वरुण के बीज के द्वारा उनका प्रोक्षण करे ।१४१। इष्ट मूल मंत्र के द्वारा उसी भाँति उत्सर्ग और निवेदन करे । ऊपर चन्द्र और विंदु से वारुण बीज कहा जाता है ।१४२। विलोकन—पूरक तथा पृथक्-पृथक् दान जप कर्म माला की प्रति पत्ति यह तीन हैं ।१४३। अपने इष्ट मंत्र के द्वारा माला का प्रोक्षण कीर्त्तित किया गया है । पहिले—गाठा पन बीज का उच्चारण करके इसके अनंतर ही करना चाहिए ।१४४। हे माला ! आप अविघ्न करे—इसी मंत्र के द्वारा माला का ग्रहण करे । जप के अंत में माला का न्यास शिर पर करे—ऐसा कहा गया है ।१४५। हाथों से माला लेकर श्री बीज के द्वारा उसी भाँति अर्चन करना चाहिए । अन्त्यांत मात्राओं आदि वर्ग और तृतीय पर से पर के पूर्व में श्री बीज विंदु से इन्दु से माला का अवतार शिर से सदा किया जाता है ।१४६-१४७।

तां समादाय पाणिभ्यां कुर्याद् सारस्वनेन वै ।
श्रीबीजानामाद्यमाद्यं बिन्दुचन्द्रार्धसंयुतम् ।।१४८
एतच्चनुष्टयं बीजं सारस्वतमुदीरितम् ।
पौराणिकैर्वैदिकश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ।।१४६
प्रदक्षिणां प्रणामं च कुर्याद्धमर्थिसाधकम् ।
भूमि वीक्ष्य तथाभ्युक्ष्य क्षितिवीजेन पूर्वतः ।।१५०
स्पृशस्तां शिरसा भूमि प्रणमेदिष्टदेवताः ।
समाप्तिहीन वाराह बीजं बिन्द्वन्दुसंयुतम् ।।१५१
क्षितिवीजं विजानीयाच्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
दर्पणं व्यजनं घण्टां चामर प्रोक्षयेत् पुनः ।।१५०

नैवेद्यालोकमन्त्रेण पूर्वप्रोक्तेन भैरव ।
नामाक्षराणि चाद्यानि च तेषां बिन्दुनेन्दुना ॥१५३
तस्मै नम इति प्रान्ते ग्रहणे मन्त्र उच्यते ।
निवेदनमर्थतेषाभिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥१५४

उसको हाथों से आदान करके सारस्वत से श्री बीजों का आद्य-माद्य बिंदु चन्द्रार्ध से संयुत—यह चार बीज सारस्वत कहे जाते हैं। पौराणिकों और वैदिकों द्वारा और मूल मन्त्र के द्वारा करे।१४८-१४९। दक्षिणा और प्रणाम करे जो धर्मार्थ का साधक है। भूमिका वीक्षण करके ध्या उसका अभ्युक्षण करके पूर्व से क्षिति बीज के द्वारा उस भूमिका शिर ास्पर्श करता हुआ अपने इष्ट देवता को प्रणिपात करना चाहिए। समाप्ति ाहोन बारह बीज है और बिन्दु-इन्दु से सयुत क्षिति बीज है इनको जान लेना चाहिए। यह चारों वर्गों का प्रदान करने वाला है। फिर दर्पण—यांजन—घण्टा—चामर का प्रोक्षण करे।१५०-१५२। हे भैरव ! यह प्रोक्षण पूर्व में कहे हुए नैवेद्य लोक मन्त्र के द्वारा करे। इनके बिन्दु से युक्त आद्य नामों के अक्षर है। तस्मै नमः अर्थात् उसके लिए नमस्कार है—यह प्रान्त में—ग्रहण में मन्त्र कहा जाता है। इसका निवेदन इष्ट मन्त्र के द्वारा समाचरण करना चाहिए।१५३-१५४।

वाग्भवस्य द्वितीयेन कामबीजेन भैरव ।
मुद्राया बन्धनं कार्य कुलमन्त्रेण दर्शनम् ॥१५५
परित्यागं तु मुद्रायास्ताराबीजेन चाचरेत् ।
प्रान्तादिश्चन्द्रबिन्दुभ्यां षष्ठस्वरसमन्वितः ॥१५६
ताराबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधवम् ।
मुदं ददाति यस्मात् सा मुद्रा तेन प्रकीर्तिता ॥१५७
दर्शितायां तु मुद्रायां भवेत् पूजासमापनम् ।
कामं मोक्ष तथा धर्ममर्थमोदयुता स्वयम् ॥१५८
ददाति साधकायाशु देवता मन्तुमुत्सुका ।
मृदान्ते तु महामन्त्रान् षडिमान् समुदीरयेत् ॥१५९
यद् दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्प फल जलम् ।

आवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ।।१६०

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।

पूजाभावं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ।।१६१

हे भैरव ! वाग्भव के द्वितीय काम बीज से मुद्रा का बन्धन करना चाहिये । और मूल मन्त्र से दर्शन करे ।१५५। मुद्रा का परित्याग तारा के द्वारा समाचरण करे । चन्द्र बिन्दुओं से प्रान्तादि षष्ठ स्वर से संयुत जो है वह तारा बीज कहा गया है जो धर्म—अर्थ और काम का साधन होता है। क्योंकि यह मुद अर्थात् आनन्द को दिया करती है इसीलिए यह मुद्रा—नाम से कीर्त्तित की गयी है ।१५६-१५७। मुद्रा दर्शित किये जाने पर पूजा का समापन हुआ करता है । यह स्वय काम—मोक्ष—धर्म—अर्थ और मोद से समन्वित होती है ।१५८। गमन करने के लिए समुत्सुक देवता साधक के लिए शीघ्र ही देता है । मुद्रा के अन्त में छै महा मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ।१५९। जो भक्ति मात्र के द्वारा पुत्र—पुष्प—फल—जल दिया गया है और जो नैवेद्य आवेदित किया है उसे कृपा करके ग्रहण करिए ।१६०। मैं आवाहन कैसे किया जाता है—यह नहीं जानता हूँ और मुझे विसर्जन करने का भी ज्ञान नहीं है । मैं यजन के भाव को भी नहीं समझता हूँ अतएव हे परमेश्वरि ! मेरी आप ही गति हैं ।१६१।

कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम् ।

अन्तश्चरेण भूतानां त्वं गतिः परमेश्वरि ।।१६२

मातर्योनिसहस्रेषु येषु ब्रजाम्यहम् ।

तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ।

देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत् ।

देवी जयति सर्वत्र या देवी सोऽहमेव च ।।१६४

यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीन च यद् भवेत् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कस्य न स्खलित मनः ।।१६५

मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्वमेव प्रसीदति ।

दातुं देवी चतुर्वर्ग न चिरादेव भैरव ।।१६६

ऐशान्यां मण्डल कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।

विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्या पूजनाय वै ।।१६७

पाद्यादिभिः पूजयित्वा ध्यात्वा निर्माल्यधारिणीम् ।

तिःक्षिप्य तस्मिन् निर्माल्यं मन्त्रेण तु विसर्जयेत् ।।१६८

कर्म, मन और वचन से आपसे अन्य मेरी कोई भी गति नहीं है। हे परमेश्वरि ! भूतों के अन्दर से सञ्चरण करने से आप ही गति हैं ।१६२। हे माता ! जिन-जिन सहस्रों योनियों में मैं गमन करूँ हे अच्युते ! उन-उन ही योनियों में सदा आपके प्रति मेरी भक्ति होवे जो कभी भी च्युत न होवे ।१६३। देवी—दात्री—भोक्त्री यह सम्पूर्ण जगत् देवी ही है। देवी सर्वत्र जय प्राप्त करती है। जो देवी है वह मैं ही हूँ ।१६४। जो अक्षर परिभ्रष्ट हो और मात्रा से हीन ही है देवि ! वह सभी आप क्षमा कह देवें। कौन ऐसा है जिसका मन स्खलित न होता हो ।१६६। हे भैरव ! इन मन्त्रों के पढ़ जाने पर देवी स्वयं ही प्रसन्न हो जाया करती है और वह अविलम्ब ही चतुर्वर्ग को प्रदान कर दिया करती है ।१६६। ऐशानी दिशा में मण्डल की रचना करे जो द्वार और पद्म से वर्जित होवे। विसर्जन के लिए निर्माल्य धारिणी के पूजन के लिए मण्डल रचना करे ।१६७। निर्माल्य धारिणी का ध्यान पाद्य आदि से पूजन करे। उसमें निर्माल्य का निक्षेपण करके मन्त्र से करे ।१६८।

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि ।

यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परम पदम् ।।१६९

विसृज्य मन्त्रणानेन ततः पूरकवायुना ।

ध्यायस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा तां स्थारयेद्धृदि ।।१७०

तिष्ठ देवि परि स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।

यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठिन्ति मे हृदि ।।१७१

तत एकजटाबीजैरिष्टदेवीं धिया स्मरन् ।

निर्माल्यं मूर्ध्नि गृह्णीयाद् धर्मकामार्थसाधनम् ।।१७२

मण्डलप्रतिपत्तिं तु ततः कुर्याद् विभूतये ।

सर्वांगुलीनामग्रौधैः पद्ममष्टदलान्वितम् ।।१७३

निर्भन्थेत् क्षितिबीजेन मण्डलं चापि भैरव ।

ततस्तु मूलमन्त्रेण सर्ववश्येन वा पुनः ।।१७४
अनामिकानामग्रेण ललाटमपि सस्पृशेत् ।
समाप्तिसहितः प्रान्तस्ताराबीजं ततः परम् ।।१७५
स्मरबीजं विसर्गेण परतः परतः परम् ।
भवेदेकजटाबीजं धर्मकामार्थसाधनम् ।।१७६

हे परमेश्वरि ! अपने परम स्थान को गमन कीजिए जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण परम को नहीं जानते हैं ।१६९। इस मन्त्र के द्वारा विसर्जन करके इसके अनन्तर पूरक वायु के द्वारा ध्यान करते हुए इस मन्त्र से नमस्कार करके उसको हृदय में स्थापित करे ।१७०। हे परमेश्वरि ! हे देवि ! परमोत्तम स्थान पर अपने आसन पर विराजमान होइए । जहाँ पर मेरे हृदय में ब्रह्मादिक सब देवता स्थित हैं ।१७१। इसके उपरान्त एक जटा बीजी से इष्ट देवी का बुद्धि से स्मरण करता हुआ निर्माल्य को मूर्धा में ग्रहण करे जो कि धर्म—काम और अर्थ का साधन होता है ।१७२। इसके अनन्तर विभूति के लिए मण्डल की प्रतिपत्ति करे । समस्त अँगुलियों के समूहों से आठ दलों से सयुत पद्म को क्षिति बीज के द्वारा निर्मन्थन करे । हे भैरव ! मण्डल का भी निर्मन्थन करना चाहिये । इसके पश्चात् मूल मन्त्र के द्वारा अथवा पुनः सर्ववश्य के द्वारा अनामिकाओं के अग्रभाग से ललाट का सस्पर्श करे । समाप्ति के सहित प्रान्त उसके आगे ताराबीज—स्मर बोज विसर्ग के सहित पर सभी पद-परम एक जटा बीज होता है जो धर्म काम और अर्थ का साधन है ।१७३-१६७।

ततो भास्करबीजेन सहितेनात्मना पुनः ।
मन्त्रेण भास्करायार्धच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ।।१७७
नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्र कर्मदायिने ।।१७८
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
एकाग्रमनसा वाग्निभरच्छिद्रमवधारयेत् ।।१७९
यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम ।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ।।१८०

ततस्तु पुष्प नैवेद्य-तोयपात्रादिकं च यत् ।
देवाबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत् ॥१८१
हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यत्र कृतः पुरा ।
मन्त्रन्यासस्तत्र तत्र विसृष्टिरमुना भवेत् ॥१८२

इससे अनन्तर पुनः आत्मा के सहित भास्कर बीज से मन्त्र के द्वारा भास्कर के लिए अच्छिद्रार्थ अध का निवेदन करना चाहिये ।१७८। हे ब्राह्मन् ! भास्वान्—विष्णु तेज वाले—जगत् के सविता–शुचि—सविता—कर्मदार्यी के लिए नमस्कार है ।१७८। इसके बाद दोनों हाथों को जोड़ हुए होकर कथित मन्त्र को पढ़कर एकाग्र मन से वागियों द्वारा अच्छिद्र का अवधारण करे ।१७६। यज्ञ का छिद्र–तपश्चर्या का छिद्र–जो छिद्र मेरे पूजन में हो वह सब अच्छिद्र हो जावे भास्कर भगवान् के प्रसाद से ही अच्छिद्रता हो जावे ।१८०। इसके पश्चात् पुष्प—नैवेद्य—जल पात्र आदि जो भी है उन सबको देवी बीज के द्वारा पुनः विलोकन करना चाहिये ।१८१। हाथ से अथवा चक्षु से जहाँ-जहाँ पहिले मन्त्र न्यास किया है वहाँ-वहाँ ही इससे विसृष्टि होती है ।१८२।

प्रान्तादिपञ्चमो वह्निबीजषष्ठ स्वराहितः ।
तथापान्त वाग्भवाद्यं दुर्गाबीजं प्रचक्षते ॥१८३
स्थण्डिले ज्वलदग्नौ च तीये सूर्यमरीचिषु ।
प्रतिमासु च शुद्धासु शालग्रामशिलासु च ॥१८४
शिवलिंगे शिलायां तु पूजा कार्या विभूतते ।
सर्वत्र मण्डलन्यासे कुर्यादेकाग्रमानसः ॥१८५
योगपीठस्य बीजेन स्थण्डिलादिषु साधकः ।
वासुदेवस्य रुद्रस्य ब्रह्मणो मिहिरस्य च ॥१८६
कुर्यात् सर्वत्र पूजामु प्रतिपत्तिमियां बुधः ।
एवं यः पूजयेद् विष्णुममीभिः प्रतिपतिथिः ॥१८७
चतुर्वर्गप्रदस्तस्य न चिराज्जायते हरिः ।
शिवो वा मिहिरो वापि येऽन्ये लम्बोदरादयः ॥१८८

प्रसीदन्ति सुरा: सर्वे पूजाता विधिनामुना ।
विशेषतो महादेर्वा महामाया जगन्मयी ।।१८६

प्रान्तादि पञ्चम वह्नि बीज षष्ठ स्वर से अहित तथा उपात वाग्भ वाद्य दुर्गा बीज कहा जाता है ।१८३। स्थण्डिल--जलती हुई अग्नि--जल सूर्य की किरणों--और शुद्ध प्रतिमाओं में तथा शाल ग्राम की शिलाओं में-शिव लिग में---शिला में विभूति के लिए पूजा करनी चाहिए । एकाग्र मन वाला होकर सभी जगह मण्डल का न्यास करे ।१८५। योग पीठ के बीज से स्थण्डिल आदि में साधक वासुदेव भगवान्--रुद्र देव--ब्रह्माजी की और सूर्य को पूजाओं में सर्वत्र बुध पुरुष को यह प्रतिपत्ति करनी चाहिए । इस प्रकार से इन प्रति पत्तियों से जो विष्णु भगवान् की पूजा करे तो उसको भगवान् हरि अविलम्ब ही चार वर्गों के प्रदाता हो जाया करते हैं । शिव हों या मिहिर हों जो भी अन्य लम्बोदर प्रभृति होवें सभी सुर गण इस विधि में प्रसन्न हो जाया करते हैं विशेष रूप से जगन्मयी महामाया महादेवी प्रसन्न होती हैं ।१८६-१८७-१८८-१८९।

प्रतिपत्तिमियां नित्यं स्पृहयत्येव पूजने ।
एवं य: कुतुते पूजा सम्यक् स फलभान्भवेत् ।।१९०
एतैर्विहीना या पूजा ततोऽल्पाल्प फल भवेत् ।
अङ्गहीनस्तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको यथा ।।१९१
अङ्गहीना तथा पूजा न सम्यक् फलभाग्भवेत् ।
इदं रहस्य परममिदं स्वस्त्ययनं परम् ।
मन्त्रवेदमयं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१९२
श: श्रावयेद् ब्रह्मणसन्निधाने
श्राद्धेषु यज्ञे सुरपूजनेषु ।
सम्यक् फलं तस्य लभेत् स कर्मणो
पूजांविनापि तदनन्तमश्नुते ।।१९३

महामाया महादेवी इस प्रति पत्ति का नित्य ही पूजन में चाहती रहती हैं । इस प्रकार से जो भी कोई पूजा किया करता है वह सम्यक्त फल का भागी होता है ।१९०। इनसे विहीन जो भी पूजा होती उससे अल्प से भी

अल्प फल हुआ करता है। जैसे अंगों से हीन पुरुष अच्छा याज्ञिक नहीं हुआ करता है।१६१। जो पूजा अंगों से हीन होता है वह अच्छा फल भागा नहीं होता है। यह परम रहस्य और परमाधिक कल्याण का अयन है। मन्त्र वेदों से परिपूर्ण और शुद्ध समस्त पापों का विनाश करने वाला होता है।१६२। जो इसका ब्राह्मणों के सन्निधान में श्रवण कराता है-श्राद्ध, यज्ञ, सुरों के पूजनों में इसको सुनाता है वह इस कर्म का बहुक अच्छा फल प्राप्त करता है। वह पूजा के बिना ही अनन्त लाभ करता है।१६३।

—×—

## ॥ देवी तन्त्र कथनम् ॥

देव्यास्तन्त्रं विशेषेण श्रृणुतं साम्प्रतं युवाम् ।
येन चाराधिता देवी नचिराद्वरदा भवेत् ॥१
पूर्वतन्त्राद्विशेषेण तथा वै तन्त्रमुत्तरम् ।
विशेषेण च सामान्यात् कथितं भवतो पुरा ॥२
पुनर्देव्या विशेषेण पूजायां भक्तिकर्मणि ।
यानि तन्त्राणि शोषाणि तानि वक्ष्याम्यहं पुनः ॥३
यः कुर्यात् तु महामायाभक्तिमेकाग्रमानसः ।
अंगिना वांगिमन्त्रेण तेन कार्यमिदं शुभम् ॥४
फलं पुष्पं च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत् ।
अदत्त्वा तु महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन् ॥५
पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः ।
यथा तथा निवेद्यैव स्वमर्थसुपकल्पयेत् ॥६
दृष्ट्यैव मदिराभांडं रक्तवणास्तथा स्त्रियः ।
सिंह शवं रक्तपद्म व्याघ्रवारणसंगमम् ॥७
गुरुं राजानमथवा महामायां ततो नमेत् ।
पतिव्रतायां भार्यायां सदैव ऋतुसंगमः ॥८

श्री भगवान् ने कहा—आप दोनों ही भली भाँति देवी के तन्त्र का श्रवण करिए जिसके द्वारा आराधना की हुई देवी शीघ्र ही वरदा हो जाया

करती है ।१। पूर्व में दिए हुए तन्त्र से विशेष रूप से उसी भाँति यह निश्चय ही उत्तम तन्त्र हैं विशेषता से सामान्यतया से यह पहिले आपके आगे कहा गया है ।२। फिर देवी की पूजा में भक्ति कर्म में विशेष रूप से जो तन्त्र शेष हैं उनको मैं पुनः बतलाऊँगा ।३। जो पुरुष महामाया की भक्ति को एकाग्र मन वाला होकर किया करता है । अंगी से अथवा अंगी के मन्त्र द्वारा करता है । इससे यह शुभ कार्य है ।४। फल—पुष्प—ताम्बूल और जो अन्न पान आदिक हैं वह तमहा देवी को समर्पित किये बिना कभी नहीं खाना चाहिए ।५। मार्ग में अथवा पर्वत के शिखर पर और सभा में साधक जैसे-तैसे निवेदन करके ही अपने अर्थ को जप कल्पित करना चाहिए ।६। मदिरा के पात्र को—रक्त वर्ण वाली स्त्रियों को—सिंह को—शव को—रक्त पद्म को—व्याघ्र और वारण (गज) के संगम को देखकर ही गुरु के लिए राजा के लिए और फिर महामाया के लिए नमन अर्थात् नमस्कार करे। जो भार्या पतिव्रता हो उसके साथ सदा ही ऋतुकाल में संगम करना चाहिए ।७-८।

क्रियते चण्डिकां ध्यात्वा सदा कार्यो विभूतये ।
शान्तिक पौष्टिकं वापि तथेष्ठापूर्त्तकर्मणी ।।९
यदा कुर्यात् तदा नत्वा देवीयात्रां समाचरेत् ।
तौर्य्यत्रिकं यदा पश्येत् केवलं गीतमेव वा ।।१०
तच्च देव्यै निवेद्येव कर्तव्य स्वोपयोजनम् ।
यदेव भूषणं वासा मलयोद्भवमेव वा ।।११
स्वकाये परियुञ्जीत तत्र मन्त्र धिया न्यसेत् ।
व्यायामे च विधाने च संभायां वा जले स्थले ।।१२
यत्र तत्र स्वयं गच्छेत् तत्र देवीं सदा स्मरेत् ।
यद् यत् कमं तु पूजांग तत्तन्मन्त्रेण चाचरेत् ।।१३
मन्त्रहीनं पूजनांग कर्म यत् तत्तु निष्फलम् ।
यस्मिन् कर्मणि योद्दिष्टो मन्त्रपुजासु भैरव ।।१४
नैवेद्यालोकमन्त्रेण तत् तत् कर्म समाचरेत् ।
देव्यास्तु मण्डलन्यासमिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ।।१५

चण्डिका देवी का ध्यान करके जो किया जाता है तब वह कार्य विभूति के लिए होता है। चाहे शान्तिक कर्म हो अथवा पौष्टिक कर्म हो तथा इष्टा पूर्त कर्म हों जब भी करे तब नमस्कार करके देवी मन्त्र का समाचरण करना चाहिए। जिस समय में तौर्यत्रिक (नृत्यगान) अथवा केवल गति को ही देखें और वह देवी के लिये निवेदन करके ही अपना उपयोजन करना चाहिए। जो भी कोई भूषण हो अथवा वस्त्र हो या मलय से समुत्पन्न चन्दन हो।९-१०। अपने शरीर में यदि उपभोग करे तो वहाँ पर घी अर्थात् बुद्धि से मन्त्र का न्यास करना चाहिए। चाहे वह व्यायाम में हो और वह विधान में हो—सभा में हो—जल में हो या स्थल में हों—कहीं पर भी हो मन्त्र का बुद्धि से न्यास करे।१२। जहाँ-जहाँ पर भी स्वयं गमन करे वहाँ पर ही सदा देवी का स्मरण करना चाहिए। जो-जो भी कर्म पूजन का अङ्ग स्वरूप हो उसका समाचरण मन्त्र के द्वारा ही करना चाहिए।१३। मन्त्र से हीन पूजन का जो भी कोई अंग होता है वह तो सब निष्फल होता है। जिस कर्म में जो भी उद्दष्टि हो हे भैरव! जो मन्त्र पूजाओं से होवे। वह कर्म नैवेद्य के आलोक मन्त्र के द्वारा उस-उस कर्म को समाचरित करे। देवी का मण्डल न्यास इष्ट मन्त्र के द्वारा करना चाहिए।१४-१५।

पूजान्ते मंडल लिप्त्वा तिलकं तेन कारयेत्।
सर्ववश्येन मन्त्रेण धर्मकामार्थदायिना ॥१६
बलिदाने बलि छित्वा खग्गास्थै रुधिरैः स्वकैः।
सर्ववश्येन मन्त्रेण ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥१७
जगद्वशे भवेत् तस्य चतुर्थः कस्य वह्निना।
षष्ठस्वरेण संयुक्तः कलाबिन्दुसमन्वितः ॥१८
अथोपान्तस्थकारान्तः सपरोऽपि तथा पुनः।
द्विर्मोहोति हकारास्य तुर्यो द्विस्वरसंयुतः ॥१९
तृतीयवर्ग प्रास्तेन तृतीयस्वरसंज्ञिना।
पूरितान्तो द्विधा वर्णस्तथा वादिचतुर्थकः ॥२०
स्वरो द्वितीयश्च तथा क्षोभशब्दः पुरःसरः।
पुरेति सहितः सोऽपि मित्रं शत्रुश्च राक्षसः ॥२१

पूजा के अन्त में मण्डल को लोप कर उसके द्वारा तिलक कराना चाहिये। और उसको सर्व वैश्य मन्त्र के द्वारा ललाट में तिलक का न्यास करे जो कि धर्म—काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है।१६-१७। उसके वश में सम्पूर्ण जगत् हो जाता है। वह्नि के साथ ककार का चतुर्थ छटवें स्वर में संयुक्त और कला बिन्दु से संयुत हो। इसके अनन्तर उपान्त में स्थित कारान्त तथा पुनः सपर भी–द्विर्मोही–इति अर्थात् दो बार मोही—यह—हकार का—चौथा दो स्वरों से समन्वित हो। तीसरे वर्ग प्रान्त से—तृतीय स्वर संज्ञा वाला से पूरित अन्त वाला दो प्रकार का वर्ण हो तथा यदि चतुर्थक होवे। और द्वितीय स्वर तथा क्षोभ शब्द आगे हो वह भी पुर—इससे सहित होवे। वह भी मित्र–शत्रु और राक्षस होता है।१८-२१।

यक्ष प्रजा तथा राजा सर्वशास्त्र इति श्रुतः।
विनापि पूजनं कुर्याद् यो रहिस्तलकं नरः ॥२२
मन्त्रेणानेन सततं सर्वं तस्य वशे भवेत्।
राजा वा राजपुत्रो वा स्त्रियो वाः यक्षराक्षसाः ॥२३
सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधाः।
प्रवासे पथि वा दुर्गे स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि ना ॥२४
कारागारे निबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि वा।
कुर्यात् तत्र महामायापूजां वै मानसी बुधः ॥२५
मनोभये समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले।
परचक्रागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम् ॥२६
मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीटकम्।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां तत्र समाचरेत् ॥२७
मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनकर्म वै।
अन्यच्च सर्वं मनसा कृत्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥२८

यज्ञ पूजा तथा राजा सर्व शास्त्र है—वह श्रुत है। पूजन के बिना भी जो कोई नर रहस्तिलक इस मन्त्र के द्वारा निरन्तर करे उसके सब वश में हो जाते हैं चाहे वह राजा हो—राजा का पुत्र हो—स्त्रियाँ हों अथवा यक्ष तथा राक्षस हों।२२-२३। चारों प्रकार के भूत ग्राम सब उसके वश में

हो जाया करते हैं। प्रवास में अर्थात् अपने घर से दूर देश में हो– अथवा मार्ग में हो—दुर्ग में हो—स्थान के न प्राप्त होने पर कही भी हो अथवा जल में हो। अथवा कारागार में घिरा हुआ हो अथवा निरन्तर भूखा हो वहीं पर महामाया की पूजा करके जो कि बुध पुरुष को मानसी ही करनी चाहिए।२४-२५। मन में भय के समुत्पन्न हो जाने पर तथा सिंह और व्याघ्र आदि के द्वारा समाकुल होने पर—दूसरे के चक्र में समागम होने पर मानसिक पूजन ही इन स्थितियों में रहने पर करना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में अन्य कोई भी चारा नहीं है ।२६। मन के द्वारा हृदय के अन्दर योग नामक पीठ का ध्यान करके वहीं पर पृथ्वी के मध्य में पूजन का समाचरण करना चाहिए ।२७। मैत्र—प्रसाधन स्नान—दन्तधावन कर्म और अन्य सभी मन के द्वारा हो करके पूजन करना चाहिए ।२८।

पश्चात् पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देशे विधीयते ।
तथा हृद्यपि कर्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तयः ॥२९
अष्टम्यां सततं देवीयाजकः स्यात् सदाव्रती ।
नवम्यां तु तथा पूजा कर्तव्या निजशोणितै ॥३०
लिंगस्थां पूजयेद् देवी मस्तकस्थां तथैव च ।
स्थण्डिलस्थां महामायां पादुकाप्रतिमासु च ॥३१
चित्रे च त्रिशिखे खड्ग जलस्थां वापि पूजयेत् ।
पञ्चाशदंगुलं त्रिशिखं च त्रिशूलकम् ॥३२
शिलायां पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे ।
देवीं सम्पूज्येन्नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥३३
वाराणस्यां सदा पूजा सम्पूर्णफलदायिनी ।
यतस्तद्द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ ॥३४
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्यां विशेषतः ।
सर्वक्षेत्रेषु तीर्थेषु पूजा द्वारावतोसमा ॥३५

इसके पीछे बाहर के देश में पुष्प आदि के द्वारा पूजा की जाती है उसी भाँति हृदय में भी सभी प्रति पत्तियाँ करनी चाहिए ।२९। देवी का यजन करने वाला निरन्तर अष्टमी तिथि में व्रत करने वाला होवे। तथा

नवमी तिथि में अपने रुधिरों से पूजा करनी चाहिए ।३०। लिंग में विराजमान देवी का पूजन करे उसी भाँति पुस्तक में संस्थित देवी का पूजन करे। स्थण्डिल में संस्थित महामाया का और पादुका प्रतिमाओं में पूजन करे ।३१। चित्र और त्रिशिख में शंख का यजन करे अथवा जल में स्थित का भी पूजन करे। पचास अंगुल परिमित और त्रिशिख तथा त्रिशूल है ।३२। शिला में—पर्वत के अग्रभाग में तथा पर्वतों में खोह में नित्य ही भक्ति भाव और श्रद्धा से संयुत होकर नित्य भली भाँति देवी का पूजन करना चाहिए ।३३। वाराणसी पुरी में सदा पूजा करना सम्पूर्ण फलों की देने वाली हुआ करती है। उससे भी दुगुनी फल प्रदाती भगवान् पुरुषोत्तमी सन्निधि में हुआ करती है ।३४। उससे भी दुगुने फल की देने वाली विशेष रूप से द्वारका में कही गयी है। समस्त क्षेत्रों में और तीर्थों में की हुई पूजा द्वारावती की पूजा के ही समान हुआ करती है ।३५।

विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गंगायामपि तत्समा ।
आर्यावर्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्ते तथैव च ।।३६
विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयागे पुष्करे तथा ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोया नदीजले ।।३७
तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डेच भैरव ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पिपेश्वरसन्निधौ ।।३८
तत्र सिद्धेश्वरीयोनो ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ।।३९
तत्समा कामरूपे तु सर्वत्रैव जले स्थले ।
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा ।।४०
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।
देवीक्षेत्रं कामरूपं विद्यतेऽन्यत्र तत्समम् ।।४१
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।
ततः शतगुणां प्रोक्ता नीजकूटस्य मस्तके ।।४२

विन्ध्याचल में की हुई पूजा सौगुनी फल दायिका होती है—ऐसा कहा गया है और गङ्गा में भी की गई पूजा उसी के समान होती है।

आर्यावर्त्त—मध्यदेश—ब्रह्म वर्त्त तथा पुष्कर में करतोया नाम की नदी के जल में उससे भी चौगुनी फल देने वाली कही गयी है ।३६-३७। हे भैरव ! उससे भी चौगुने फल देने वाली पूजा नन्दि कुण्ड होती है। उसमें भी चौगुनी जाल्पिपेञ्चर की सन्निधि में की हुई बतलायी गयी है ।३८। वहाँ पर सिद्धेश्वरि की योनि में की गयी पूजा उससे भी दुगुनी बतायी गयी है। उससे भी चौगुने फल की देने वाली लौहित्य नदी के जल में कही गयी है ।३९। उसी के समान काम रूप देश में सभी जगह जल और स्थल में मानी गयी है। जैसे सबसे श्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं तथा लक्ष्मी सबसे उत्तम है ।४०। काम रूप में सुरालय में देवी की पूजा प्रशस्त होती है। देवी का क्षेत्र काम रूप देश है और अन्यत्र उसके समान है अन्य स्थल में देवी विरला ही हुआ करती है और काम रूप में तो घर-घर में ही विद्यमान रहती हैं। इससे भी सौ गुने महत्व वाली पूजा नील कूट पर्वत के शिखर पर होती है ।४२।

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हेरुके शिवलिंगके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्यादियोनिषु ।।४३
ततः शतगुणा प्रोक्ता कालाख्यायोनिमण्डले ।
कामाख्यायां महामायापूजां यः कृतवान् सुकृत् ।।४४
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति कृत्यं तस्य न विद्यते ।।४५
वाञ्छितार्थमवाप्येह चिरातुरभिजायते ।
वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ।।४६
संग्रामे शास्त्रवादे वा दुर्जयः स च जायते ।
वैष्णवीतन्त्रं मन्त्रेण कामाख्यायोनिमंडले ।
सकृत् तु पूजनं कृत्वा फलं शतगुणं लभेत् ।।४७
मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
तस्यास्तु वैष्णवीतन्त्रं मन्त्रं प्राक प्रतिपादितम् ।।४८
अन्या या मूर्तयः प्रोक्ताः शैलपुत्र्यादयोऽपराः ।
तस्या एव विभागास्तास्तच्छरीरविनिर्गताः ।।४९

उससे भी दुगुनी हेरुक शिवलिंग में की गई पूजा फलदायिनी होती है। उससे भी दुगुनी फलदायिनी शैल पुष्पादि की योनियों में कही गई है ।४३। उससे भी सौगुनी अधिक महत्व वाली पूजा कामख्या-देवा के योनि मण्डल में बतलाई गई है। कामाख्या में महामाया की पूजा को एक बार कर चुका है वह इस लोक में कामनाओ को प्राप्त करता है और पर-लोक में भगवान् शिव की स्वरूपता का लाभ किया करता है और परलोक में भगवान् शिव की स्वरूपता का लाभ किया करता है। उस पुरुष के समान अन्य कोई भो भाग्यशाली नहीं है और फिर उसका कोई भी कृत्य शेष नहीं रह जाता है ।४४-४५। वह पुरुष अपना मनोवाञ्छित अर्थ इस में प्राप्त करके चिरायु हो जाता है। उसकी गति वायु के ही समान हो जाती है जो अन्यों के द्वारा कभी भी बांधित नहीं हुआ करती है ।४६। वह पुरुष संग्राम अथवा शास्त्रवाद में दुर्जन हो जाता है। वैष्णवी तन्त्र मन्त्र के द्वारा कामाख्या के योनि मण्डल में एक बार अभ्यर्चन करके उसका सौगुना फल का लाभ किया करता है ।४७। मूलमूर्ति महामाया योगनिद्रा जगन्मयी है उसका वैष्णवी तन्त्र मन्त्र पहिले ही प्रतिपादित कर गया है ।४८। अन्य जो मूर्त्तियाँ कही गई हैं जो शैल पुत्री आदि दूसरी हैं वे सब उसी के विभाग हैं और उसके ही शरीर से निर्गत हुई हैं ।४९।

निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यबिम्बान्मरीचयः ।
देव्यास्तथोग्रचंडाद्या महामायाशरीरतः ।।५०

तासामेवांगरूपाणि वक्तव्यानि मया तव ।
एकैव तु महामाया कायार्थं भिन्नतां गता ।।५१

कामाख्या तु महामाया मूलमूर्ति प्रगीयते ।
पीठैर्भिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ।।५२

एक एव यथा विष्णुर्नित्यत्वाद् हि सनातनः ।
जनानामर्दनात् सोऽपि जनार्दन इति श्रुतः ।।५३

तथैव सा महामाया कामार्थं संगता गिरौ ।
कामाख्येति सदा देवैर्गद्यते सततै नरैः ।।५४

यथा हि पुरुषः कोऽपिच्छत्री च्छत्रग्रहाद् भवेत् ।
स्नापकः स्नानकाले वै कामाख्यापि तथाह्वया ।।५५

महामायाशरीरं तु कामार्थं समुपस्थितम् ।

लोहितै: कुंकुमैः पीतां कामार्थमुपयोजितैः ॥५६
खड्गं त्यक्त्वा कामकाले सा गृह्णाति स्रजं स्वयम् ।
यदा तु त्यक्तकामा सा तदा स्यादसिधारिणी ॥५७

जिस रीति से नित्य ही सूर्य के बिम्ब से किरणें निःसरण किया करती है ठीक उसी भाँति देवी महामाया के शरीर से उग्र चण्डा आदि निकला करती हैं ।५०। मेरे द्वारा आपको उन्हीं के अंगरूप कहने चाहिये । महामाया का स्वरूप तो एक ही है और कार्यों के सम्पादन करने के लिए वही भिन्नता को प्राप्त हुई हैं ।५१। कामाख्या तो महामाया है और मूलमूर्त्ति गान ही जाया करता है । वह पीठों के द्वारा विभिन्न नामों वाली होकर महामाया गायी जाया करती है ।५२। जिस प्रकार से एक ही भगवान् विष्णु नित्य होने से सनातन हैं। जनों के पीड़ा को दूर करने से वही प्रभु जनार्दन– इस नाम से कहे गये हैं ।५३। ठीक उसी भाँति महामाया कामार्थ गिरि में संगत हुई थी उसी समय यह सदा देवों के द्वारा और नरों के द्वारा निरन्तर का कामाख्या कही जाती है ।५३। जैसे कोई पुरुष छत्र के ग्रहण करने से छत्री हो जाया करता है और स्नान काल में स्नापक कहा जाता है ठीक उसी रीति से नाम से यह कामाख्या हो गई ।५५। महामाया का शरीर काम के लिए समुपस्थित हुआ था । लोहित—कुंकुमों से पीत जो कामार्थ उपयोजित किये गये हैं । काम काल में खंग का परित्याग करके स्वयं ही स्रक् को ग्रहण किया करती है । जिस समय में वह काम को त्याग कर देने वाली होती है उस समय में वह असिधारिणी होती है ।५६-५७।

कामकाले शिव ते न्यस्तलोहितपंकजे ।
रमते त्यक्तकामा तु सित तोपरि स्थिता ॥५८
तथैवेतस्ततो गत्या सिंहस्था कमदा भवेत् ।
कदाचित् सा सित ते कदाचिद्रक्तपकजे ॥५९
कदाचित् केशरीपृष्ठे रमते कामरूपिणी ।
यदा लोहिपद्मस्था तथाग्रे केशरी चरः ॥६०
यदा तगता देवी तदाऽग्रेन्यां निरीक्षते ।
महामायास्वरूपेण तदा सा वरदा भवेत् ॥६१

पूजाकाले तथा प्रेतपद्मसिंहोपरि स्थिता ।
रक्तपद्मे यदा ध्यायेत् तद्राग्रे चिन्तयेद्धरिम् ।।६२
यदा ध्यायेद्धरौ चान्यद्वयमग्रे विचिन्तयेत् ।
त्रिषु ध्यायेषु युगपत् प्रेतपद्महरौ क्रमात् ।।६३

लोहित पङ्कज को न्यस्त करने वाले शिव प्रेत काम काल में सित प्रेत के ऊपर संस्थित काम को परित्यक्त कर देने वाली रमण करती है ।५८। उसी भाँति इधर-उधर गमन करके सिंह के ऊपर विराजमान होती हुई कामदा हो जाती है । किसी समय तो वह सित प्रेत पर होती है और किसी समय में रक्त पङ्कज पर स्थित होती है ।५९। किसी अवसर पर वह केशरी के पीठ पर संस्थित होती हुई कामरूप वाली रमण किया करती है । जिस अवसर पर लोहित पद्म पर संस्थित हुआ करती है तो उस समय उसके आगे केशरी चरण किया करता है ।६०। जिस समय प्रेत पर स्थित देवी होती है उस समय आगे अन्य का निरीक्षण किया करती है । जिस समय वह महामाया के स्वरूप से वह वरदा होती है ।६१। उस समय पूजा के काल में प्रेत---पद्म और सिंह के ऊपर स्थित होती है । जिस अवसर में रक्त पद्म में ध्यान करे तब आगे हरि का चिन्तन करना चाहिए ।६२। जब हरि में ध्यान करे तब अन्य दो का चिन्तन करे । एक ही साथ तीनों में ध्यान करने हर प्रेत पद्म हरि में क्रम से करना चाहिए ।६३।

स्थितेषु कामदा देवी तेषु ध्यायेत् कामदाम् ।
एकैकस्मिन्नपि तथा यथावच्चिन्तयेच्छिवाम् ।।६४
एका समस्ता जगतां प्रकृतिः सा यतस्ततः ।
विष्णुब्रह्मशिवैर्देवैर्ध्रियते स जगन्मयी ।।६५
सितप्रेतो महादेवो ब्रह्मालोतिहपंकजम् ।
हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजसः ।।६६
स्वमूर्त्वा वाहनत्वं तु तेषां यस्मान्न युज्यते ।
तस्मान्मूर्त्यन्तर कृत्वा वाहनत्व गतास्त्रय ।।६७
यस्मिन् यस्मिन् महामाया प्रोणाति सततं शिवा ।
तेन तेनैव रूपेण आसनान्यभवंस्त्रयः ।।६८

सिंहपरि स्थित पद्म रक्तं यस्योर्ध्वगः शिवः ।
तस्योपरि महामाया वरदाऽभयदायिनी ।।६९
एवं रूपेण यो ध्यात्वा पूजियेत् सततं शिवाम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवास्तेन पूजिताः स्युरसंशयम् ।।७०
एव सदा महामाया कामाख्या चैकरूपिणी ।
ध्यानतो रूपतो भिन्ना तस्मात्तां तत्र पूजयेत् ।।७१
एवं विशेषतन्त्राणि दुर्गायाः कथितानि वाम् ।
अङ्गमन्त्राणि तस्यास्तु श्रूयतां नरसत्तमौ ।।७२

उन पर कामना देवी के स्थित होने पर कामदा ध्यान करना चाहिए। एक-एक पर भी जैसे भी उसी भाँति शिवा का चिन्तन करे।६४। वह एक समस्त जगतों की प्रकृति जहाँ—तहाँ ब्रह्मा—विष्णु—शिव देवों के द्वारा वह जगन्मयी धारण की जाया करती है।६५। सित प्रेत महादेव हैं—ब्रह्मा लोहित पद्म है हरि-हरि है ऐसे ही महान् ओज वाले के वाहन जानने चाहिए।६६। क्योंकि अपनी पूर्ति से उनका वाहन होना युक्त नहीं होता है। इसी कारण से अन्य मूर्त्ति करके तीनों वाहनता को प्राप्त हुए हैं।६७। जिस–जिस में महामाया शिव निरन्तर प्रसन्न होती है उसी–उसी रूप से तीनों ही आसन हुए थे।६८। सिंह के ऊपर रक्त पद्म स्थित है, उसके ऊर्ध्व में गत शिव हैं। उनके ऊपर वह देने वाली अभय दायिनी महामाया है।६९। इस प्रकार के स्वरूप से जो ध्यान करके निरन्तर शिव का पूजन करना चाहिए। उससे ब्रह्मा—विष्णु और शिव बिना ही संशय के पूजित हो जाते हैं।७०। इस प्रकार से सदा कामाख्या एक रूप वाली महामाया ध्यान से और रूप से भिन्न है इससे वहाँ पर उसका पूजन करना चाहिए।७१। इस प्रकार से दुर्गा के विशेष तन्त्रों को आप दोनों से कह दिये हैं। हे नरश्रेष्ठो ! अब उसके अंगमन्त्रों का आप श्रवण करिये।७२।

—×—

## ।। चण्डिका मन्त्र वर्णनम् ।।

अंगमन्त्राण्हं वक्ष्ये चण्डिकाया विशेषतः ।
यैः समाराधिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ।।१

तालव्यान्तो युतः षष्ठस्वरबिन्द्वन्दुवह्निभिः ।
तथोपान्तः स्वरस्त्वेते बाह्यं वाग्भवमेव च ॥२
नेत्रबीज चंडिकायास्त्रायमेतत् प्रकीर्तिनतम् ।
वामललाटदाक्षिण्यनेत्रेषु त्रितयं क्रमात् ॥३
धर्माथकाममोक्षाणां सर्वदा कारण परम् ।
मन्त्रमेतन्मगुह्यं दुर्गाबीजमिति स्मृतम् ॥४
यदा कात्यायनमुनेराश्रमेषु दिवौकसाम् ।
तेजोभिर्धृतकायाभूद् देवी देवौघसंस्तुता ॥५
तदा नेत्रत्रयाद् देव्या भूलमूर्तिर्विनिसृता ।
तेजोमयो जगद्धात्री महिषासुरघातिनी ॥६
तेजोभिः सर्वदेवानां स धृत्वा वपुरुत्तमम् ।
अस्त्राण्यनेकान्यादाय देवदत्तानि भागशः ॥७

श्री भगवान् ने कहा—विशेष रूप से चण्डिका के अंग मन्त्रों को मैं बतलाऊँगा जिनके द्वारा समाराधन की गयी देवी चारों वर्गों के फल को प्रदान करने वाली होती है ।१। तलव्यन्त षष्ठ स्वर बिन्दु-इन्दु वह्नि से युत तथा (स्वर का) उपान्त ये बाह्य वाग्भव ही ये तीनों चण्डिका के नेत्र बीज कीर्त्तित किये गये हैं । वाम ललाट दक्षिण नेत्रों में क्रम से ये तीनों हैं ।२-३। ये धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष के सर्वदा परम कारण हैं । यह मन्त्र दुर्गा का परम गोपनीय है—यह कहा गया है ।४। जिस समय देवी के आश्रमों में कात्यायन मुनि के तेजों से देवों के समुदाय से संयुत देवी काया को धारण करने वाली हुई थी ।५। उसी समय तीनों नेत्रों से देवी की मूल मूर्ति विनिःसृत हुई थी जो तेजों से परिपूर्ण थी और महिषासुर के घात करने वाली जगत् के धात्री अर्थात् पालन करने वाली थी ।६। समाज देवी के तेजों से उसने अपना—उत्तम शरीर धारण किया था और भागों द्वारा देवों के दिए हुए अनेक अस्त्रों का समादान किया था ।७।

सगणं सानुबन्धं च सामात्यबलवाहनम् ।
ब्रह्माद्यैः संस्तुता देवी जघान महिषासुरम् ॥८
हते तु महिषे देवी पूजित त्रिदशैस्ततः ।

अनेनैव तु मन्त्रेण लोके ख्याति च सा गत ॥६
ततः प्रभृति सा मूर्तिः सर्वैः सर्वत्र पूज्यते ।
मूलभूत्तिः सुगुप्ताभूत स्वमूर्त्या ख्यातिमागताः ॥१०
देवानां वरदानेन ब्रह्माद्यैरुपयोजनात् ।
यन्मूर्तिः पूज्यते सर्वैस्तां मूर्त्ति शृणु भैरव ॥११
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतशेखरम ।
लोचनत्रयसंयुक्तां पर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥१२
तप्तकांचनवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥१३
सुचारुदशनां तीक्ष्णां पीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ॥१४

गणों और अनुबन्ध के सहित तथा अमान्य बल और वाहनों से संयुत वह देवी ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा भली भाँति संतवन की हुई थी और फिर उस देवी ने महिषासुर का वध किया था ।८। महिष असुर के निहित हो जाने पर देवी देवों के द्वारा पूजित हुई थी । और इसी मन्त्र के द्वारा वह लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी ।६। तभी से लेकर वह मूर्ति सबके द्वारा सर्वत्र पूजी जाया करती है । मूल मूर्ति तो गुप्त हो गई थी और अपनी मूर्ति से ही ख्याति को प्राप्त हो गई थी ।१०। देवों के ब्रह्मा आदि के द्वारा उपयोजन से जो मूर्ति सबके द्वारा पूजी जाती है । हे भैरव ! उसका अब तुम श्रवण करो ।११। उस मूर्ति को स्वरूप वर्णन किया जाता है—वह जटा जूटों से समायुक्त है और अर्ध चन्द्र उसके मस्तक में विराजमान है । तीन नेत्रों से उपशोभित हैं पूर्ण चन्द्र के समान उसका मुख है । तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्ण की आभा है—वह सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त और परम मनोहर लोचनों वाली है । उसका स्वरूप नूतन यौवन से युक्त है तथा सभी प्रकार के आभूषणों से वह विभूषित है ।१२। उसकी परम सुन्दर दन्त पंक्ति है—तीक्ष्ण और वह पीन तथा उन्नत स्तनों से समन्वित है । त्रिभंग स्थानों के संस्थान वाली और वह महर्षि असुर के घात करने वाली है ।१४।

मृणालायतसस्पर्शदशबाहुसमन्विताम् ।

त्रिशूल दक्षिणे देयं खड्ग चक्र क्रमादधः ।।१५
तीक्ष्णवाणं तथा शक्ति बाहुसंघेषु संगताम् ।
खेटक पूर्णचाप च पाश चांकुशमूर्धतः ।।१६
घण्टां च परशुं चापि वामऽधः प्रतियोजयेत् ।
अधस्तांन्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।।१७
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं नियंदन्त्रविभूषितम् ।।१८
रक्तरक्तीकृतांगं च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।
वेष्टित नागपाशेन भ्रकुटीकुटिलाननम् ।।१९
सपाशबामहस्तेन धृतकशं च दुर्गया ।
वमद्रुधिरवक्त्र च देव्याः सिंह प्रदर्शयेत् ।।२०
देव्यास्तु दक्षिणं पाद समं सिंहोपरि स्थितम् ।
किंचिदूर्ध्वं तथा वाममगुष्ठ महिषोपरि ।।२१

मृणाल के सदृश आयत स्पर्श वाली दश बाहुओं से युक्त है। दाहिने हाथ में त्रिशूल—देव—खंग—चक्र क्रम से नीचे की ओर हैं ।१५। बाहुओं के संघों के तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति से संगत है। ऊपर की खेटक—पूर्ण चाप—पाश और अंकुश धारण किये हुए हैं ।१६। धण्टा—परशु को नीचे वाम भाग में प्रतियोजित करना चाहिये। नीचे की ओर बिना शिर वाले महिष असुर को प्रदर्शित करना चाहिए ।१७। जिसका शिर छिन्न हो गया है और जो दानव अपने हाथ में खंङ्ग लिये हुए हैं। जो हृदय में बल से विद्ध हो रहा है और जिसकी अँतड़ियाँ बाहिर निकल रही हैं ।१८। स्रवित होते हुए रक्त से जिसके अङ्ग रुधिर प्लावित होरहे हैं और जो रक्त से विस्फुरित नेत्री वाला हो रहा है। जो नाग पास से वेष्टित है और जो क्रोधावेश के कारण कुटिल भौंहों से समन्वित मुख वाला है ।१९। जो पाश के सहित बाँये हाथ से दुर्गा के द्वारा मस्तक के केश पकड़ा हुआ है। जिसके मुख से रुधिर प्रवाहित हो रहा है ऐसा देवी के सिंह का भी प्रदर्शन करना चाहिए ।२०। देवी का दाहिना चरण सिंह के ऊपर संस्थित है तथा कुछ ऊपर की ओर वाम चरण का अंगुष्ठ महिषासुर पर स्थित है।

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चामुण्डा चण्डिका तथा ॥२२
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम् ।
चिन्तयेत् सतत देवीं धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥२३
एतस्याश्चांगमन्त्रं दुर्गातन्त्रमिति श्रुतम् ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा धर्मकामार्थसाधनम् ॥२४
वह्निभार्या स्वरः षष्ठो हान्तः प्रान्तोऽग्निरेव च ।
दुर्गादिरिति सोङ्कारं दुर्गामन्त्र मिति श्रुतम् ॥२५
रवौ मकरराशिस्थे या भवेत् सितपन्चमी ।
तस्यामनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिवच्छिवाम् ॥२६
शुक्लाष्टम्यां पुनर्देवी पूजयित्वा यथाविधि ।
नवम्यां बलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत् ॥२७
सन्ध्यायां च बलि कुर्यान्निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं कृते तु कल्याणैर्युक्तो नित्यं प्रमादते ॥२८

इस प्रकार के ध्यान को करते हुए फिर देवी का ध्यान करे जो उग्र चण्डा—प्रचण्डा—चण्डोग्रा—चण्ड नायिका—चण्डा—चण्डवती—चामुण्डा चण्डिका है। इन आठ शक्तियों से निरन्तर परिवेष्टित है। इस रीति से धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष प्रदान करने वाली देवी का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए ।२२-२३। इसका एक मन होकर श्रवण करो। यह धर्म काम और अर्थ का साधन है ।२४। वह्नि भार्या छटवाँ स्वर हान्त प्रान्त और अग्नि दूर्गादि इति सोङ्कार दुर्गा मन्त्र-यह श्रुत है। इसका अङ्ग मन्त्र दुर्गा तन्त्र—यह श्रुत किया गया है ।२४-२५। सूर्य को मकर राशि पर स्थित होने पर जो शुक्ल पक्ष की पंचमी होती है। उसमें इस तन्त्र के द्वारा विधि-विधान के साथ शिवा का भली भाँति पूजन करके फिर शुक्ल पक्ष की अष्टमी में यथा विधि देवी का पूजन करके नवमी तिथि में बहुत बलिदानों का समाचरण करना चाहिए ।२६-२७। और सन्ध्या के समय में अपने शरीर से उक्षित रुधिर की बलि करनी चाहिए। उस प्रकार से करने पर कल्याणों से युक्त होता हुआ पुरुष नित्य ही प्रमुदित होता है ।२८।

पुत्रपौत्रसमृद्धस्तु धनधान्यसमृद्धिभिः ।
दीर्घायुः सर्वसुभगो लोकेऽस्मिन् स च जायते ।
सिताष्टम्यां तु चैत्रस्य पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ।
अशोकैरपि यः कुर्यान्मन्त्रेणानेन पूजनम् ॥३०
न तस्य जायते शोको रोगो वाप्यथ दुर्गतिः ।
ज्यैष्ठे तु शुक्लपक्षस्य अष्टाम्यां समुपोषितः ॥३१
नवम्यां सतिलैरन्नैर्यावकैरथ मोदकैः ।
क्षीरैराज्यैस्तथा क्षौद्रैः शर्कराभिः सपिष्टकैः ॥३२
नानापशूनां रुधिरैर्मांसैरपि च पूजयेत् ।
ततो दशम्यां शुक्लायामद्भिस्तु तिलमिश्रितैः ॥३३
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दातव्यमञ्जलित्रयम् ।
एवं कृते दशम्यां तु यत्पापं दशजन्मभिः ॥३४
कृतं तत्प्रलयं याति दीर्घायुरपि जायते ।
आषाढे शुक्लपक्षस्य याष्टमी श्रावणस्य च ॥३५

वह मनुष्य पुत्रों और प्रपौत्रों से समृद्ध और धन धान्य समृद्धियों से समन्वित होता है और वह दीर्घ आयु वाला-सर्व प्रकार से सुभग इस लोक में होता है ।२६। शुक्ल पक्ष अष्टमी तिथि में चैत्र मास में उस समय में होने पुष्पों से और अशोकों से भी जो पुरुष इस मन्त्र के द्वारा पूजन किया करता है ।३०। उसे कभी शोक नहीं होता है अथवा कोई रोग भी नहीं होता है और न दुर्गति ही होती है । ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन मनुष्य भली भाँति उपवास करे और नवमी तिथि में तिलों के सहित अन्नों—यावकों—मोदकों से—क्षीर—घृत—शहद-शर्करा के सहित पिष्टक से—अनेक अशुओं के रुधिर से और माँसों से पूजन करे । इसके अनन्तर शुक्ल पक्ष की दशमी में तिलों से मिश्रित जल से दुर्गा मन्त्र के द्वारा तीन अंजलियाँ देनी चाहिए । इस रीति से करने पर दशमी तिथि में दस जन्मों में भी जो पाप किया है वह प्रलीन हो जाता है और करने वाला पुरुष दीर्घायु भी हो जाता है । आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की जो अष्टमी है और श्रावण मास की अष्टमी है उसमें पवित्रा धारण करावे ।३१-३५।

पवित्रारोपणं कुर्याद् देवीप्रीतिकरं परम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।।३६
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण पवित्रारोपणं चरेत् ।
विशेषाच्छ्रावणं प्राप्य देव्याः कुर्यात् पवित्रकम् ।।३७
सर्वेषामेव देवानां पवित्रारोपणं चरेत् ।
आषाढे श्रावणे वापि संवत्सरफलप्रदम् ।।३८
प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथिः ।
द्वितीया तु श्रियो देव्यास्तिथीनामुत्तमा स्मृता ।।३९
तृतीया भवभाविन्याश्चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
पंचमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ।।४०
सप्तमीभास्करस्योक्ता दुर्गायाश्च तथाष्टमी ।
मातृणां नवमी प्रोक्ता बासुकेर्दशमी मता ।।४१
एकादशी ऋषीणां च द्वादशी चक्रपाणिनः ।
त्रयोदशी त्वनंगस्य मम चैव चतुर्दशी ।।४२

पवित्राओं का आपोपण देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला होता है। हे भैरव ! दुर्गा तन्त्र से मन्त्र से—दुर्गा बीज के द्वारा पवित्रा रोपण करे ।३६। वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र के द्वारा और दुर्गा बीज से हे भैरव ! पवित्रारोपण का समाचरण करे। विशेष रूप से श्रावण को प्राप्त करके देवी को पवित्रारोपण करना चाहिए ।३७। समस्त देवों का पवित्रारोपण करना चाहिए। आषाढ़ में अथवा श्रावण में सम्वत्सर के फल का प्रदायक होता है ।३८। धनद की प्रतियद् तिथि पवित्रारोपण में कही गयी है। द्वितीया तो देवी के श्री की है जो अन्य सब तिथियों में उत्तम है—ऐसा कहा है ।३९। तृतीया तिथि भव भाविनी की है और चतुर्थी उसके सुत की है पंचमी सोम राज की है और षष्ठी गुह की बतायी गयी है ।४०। सप्तमी तिथि भगवान् भुवन भास्कर की कही है। तथा अष्टमी तिथि दुर्गा देवी की है। मातृगणों की नवमी तिथि कही है तथा दशमी तिथि वासुकि की होती है ।४१। एकादशी ऋषियों की है और द्वादशी भगवान् चक्र पाणि की होती है। त्रयोदशी कामदेव की है और मेरी चतुर्दशी तिथि है ।४२।

ब्रह्मणो दिक्यतीनां च पौर्णमासी तिथिर्मता ।
पवित्रारोपणं यो वै देवानां न समाचरेत् ।।४३
तस्य सांवत्सरीपूजाफलं हरति केशवः ।
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं पवित्रारोपणं परम् ।।४४
कृते ब्रह्मफलप्राप्तिस्तत्पूजा सफला भवेत् ।
पवित्र येन सूत्रेण यथा कार्यं विजानता ।।४५
तच्छृणुश्व प्रमाण तु वचनान्मम भैरव ।
प्रथमं दर्भसूत्रं च पद्मसूत्रं ततः परम् ।।४६
ततः क्षौमं सुपुण्यं स्यात् कार्पासिकमतः परम् ।
पट्टसूत्रं तथान्येन पवित्राशि न कारयेत् ।।४७
विचित्राणि पवित्राणि कर्तव्यानि तु यत्नतः ।
गन्धमान्यैः सुरभिभिः रचितानि यथोदितम् ।।४८
कन्या च कर्तयेत् सूत्र प्रमदा च पतिव्रता ।
विधवा साधुशीला वा दुःखशीला न कर्तयेत् ।।४९

ब्रह्मा और दिक्पालों की पौर्णमासी तिथि मानी गयी है । जो पुरुष देवों को पवित्राओं का आरोपण नही करता है उसकी साम्वत्सरी पूजा के फल को भगवान् केशव हरण कर लिया करते हैं । इसीलिए प्रयत्न पूर्वक पवित्रारोपण अवश्य करना चाहिए ।४३–४४। ऐसा करने पर बहुत फल की प्राप्ति होती है और पूजा से फल होती है । पवित्रा जिस सूत्र से और जैसे भी करना चाहिए उसका ज्ञान होना चाहिए तभी उसे पवित्रारोपण करना चाहिए ।४५। हे भैरव ! मेरे वचनसे उसको प्रमाण आप अब श्रवण करिये । सर्व प्रथम तो दर्भ सूत्र है उससे परपद्म सूत्र होता है ।४६। इसके पश्चात् क्षौम सुपुण्य होता है और इससे पर कपास का सूत्र हुआ करता है फिर यह सूत्र है तथा अन्य के द्वारा पवित्रों का करावे ।४६-४७। यत्न पूर्व का पवित्रा विचित्र करने चाहिए । अर्थात् कई रंगों से समन्वित होने चाहिए । गन्ध-मान्य सुरभियों से जैसा कहा गया है विरचित होने चाहिए ।४८। उस सूत कन्या कर ले अथवा पतिव्रता प्रमदा उसको करले । जो विधवा हो और साधु शीला हो वह उसको करले किन्तु दुःशील या दुःख शील कभी भी इसको न करे ।४९।

यत्सूचिभिन्नं च भस्मधूमाभिगुण्ठितम् ।
तद्वजनीयं यत्नेन सूत्रमस्मिन् पवित्रके ॥५०
उपयुक्तं चाखुजग्ध मद्यरक्तादिदूषितम् ।
मलिन नीलरक्त च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥५१
सूत्रैः पवित्रं कुर्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।
कनिष्ठं यत् पवित्र तु सप्तविंशतितन्तुभिः ॥५२
मर्त्यलोके यशः कीर्तिः सुखसौभाग्यवर्धनम् ।
चतुः पञ्चाशता प्रोक्तं तन्तूनां मध्यमं परम् ॥५३
दिव्यभोगावहं पुण्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।
उत्तम चैव तन्तूनामष्टोत्तरशतेन वै ॥५४
तद्दत्वा तु महादेव्यै शिवसायुज्यमाप्नुयाद् ।
उत्तमं वासुदेवाय दद्याद् यदि पवित्रकम् ॥५५
तदा याति हरेर्लोक साधको नात्र संशयः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु रत्नमालेति गीयते ॥५६

इस पवित्रा की रचना में ऐसे सूत्र का वर्णन कर देवे जो सुई से भिन्न हो—दग्ध हो—भस्म और धूम से अभिगुण्ठित हो ।५०। जिसका उपयोग किया गया हो—जो चूहों के द्वारा कुतरा हुआ हो—मद्य एवं रक्त से दूषित हो—मलिन—नील रक्त हो—ऐसे सूत्र का यत्नपूर्वक परिवर्जन कर देना चाहिए ।५१। सूत्रों से कनिष्ठ— मध्यम और उत्तम पवित्रा की रचना करे । कनिष्ठ जो पवित्रा है वह सत्ताईस तन्तुओं से होता है ।५२। यह पवित्रा मर्त्यलोक में यश—कीर्त्ति—सुख और सौभाग्य का बढ़ाने वाला होता है । चौअन तन्तुओं का पवित्रा मध्यम कहा गया है ।५३। परम दिव्य भोगों का आवाहन करने वाला पुण्य—स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान करने वाला उत्तम होता है जो एक सो आठ तन्तुओं के द्वारा निर्मित होता है ।५४। उसकी महादेवी के लिए अर्पित करके मनुष्य भगवान् शिव का सायुज्य की प्राप्ति किया करता है । यदि भगवान् वासुदेव के लिए उत्तम पवित्रा को समर्पित करे तो वेद पुरुष सीधा हरि के लोक में गमन किया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । एक हजार आठ तो रत्नमाला गाई जाती हैं ।५५-५६।

पवित्रं तु महादेव्या मुक्तिभुक्तिप्रदायकम् ।
रत्नमल्यां तु यो यच्छेन्महादेव्यै पवित्रकम् ।।५७
कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गे स्थित्वा शिवो भवेत् ।
एतत् तु नागहाराख्यं शंकरस्य पवित्रकम् ।।५८
अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तुना सुमनोहरम् ।
यः प्रयच्छति मह्यं तु स यावां तन्तुसंचयः ।।५९
तावत्कल्पसहस्राणि मम लोके प्रमोदते ।
अष्टोत्तरसहस्रेण वनमाला हरेः स्मृता ।।६०
तन्तूनां तस्य दानेन विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
यत् कनिष्ठं पवित्रं तु नाभिमात्रं भवेत् तु तत् ।।६१
द्वादशग्रन्थिसंयुक्तमात्ममानेन योजयेत् ।
ऊरुप्रमाणं मध्यं स्याद् ग्रन्थीनां तत्र योजयेत् ।।६२
चतुर्विंशतिमध्यस्य मानमात्मन एव च ।
पवित्रमुत्तमं प्रोक्तं ज्ञानुमात्रं च भैरव ।।६३

महादेवी को अर्पित पवित्रा तो भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है । जो पुरुष रत्न माला में महादेवी की सेवा में पवित्र का समर्पण किया करता है ।५७। वह सहस्र करोड़ कल्पों तक स्वर्ग में निवास करके शिव ही हो जाया करता है । यह तो नागहार नाम वाला भगवान् शंकर का पवित्रा होता है ।५८। एक सहस्र आठ तन्तुओं के द्वारा परम मनोहर पवित्रा बनाकर जो मेरे लिए अर्पित किया करता है वह उसमें जितने ही तन्तुओं का संचय होता है उतने ही सहस्र कल्पों तक मेरे ही लोक में आनन्द का उपयोग किया करता है । एक हजार आठ से भगवान् हरि की वनमाला कही गई है ।५९–६०। उसके तन्तुओं के दान से भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति किया है । जो कनिष्ठ पवित्रा होता है वह पर्यन्त रहने वाला होता है ।६१। बारह ग्रन्थियों से समन्वित आत्मज्ञान के द्वारा उसे योजित करे । उरुओं तक आने वाला मध्यम पवित्रा होता है । वहाँ पर ग्रन्थियों को योजित कर लेना चाहिए ।६२। इसका चौबीस का मान

आत्मा का है वह उत्तम कोटि का पवित्रा होता है। हे भैरव ! वह जन्तु पर्यन्त कहा गया है ।६३।

षट्त्रिंशत्तन्तुग्रन्थीनां योजयेदात्ममानतः ।
शतष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां सुविधानतः ॥६४
नागहाराह्वयं तद्वद्वन्येषु च विधानतः ।
पवित्रं क्रियते येन सूत्रेण ग्रन्थयः पुनः ॥६५
तदन्यवर्णसूत्रेण कर्तव्या लक्षणान्विता ।
ग्रन्थि तु सप्तभिः कुर्याद् वेष्टनैस्तु कनिष्ठके ॥६६
द्विगुणं मध्यमे कुर्यात्त्रिगुणैरुत्तमे तथा ।
अधिवास्य पवित्राणि पूर्वस्मिन् दिवसे ततः ॥६७
मन्त्रन्यास पवित्रे तु कुर्यात् तत्रापरेऽहनि ।
दुर्गाबीजेन मन्त्रेण मन्त्रन्यासं द्विजश्चरेत् ॥६८
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कुयुरन्यैं च भैरव ।
प्रतिग्रन्थि स्वयं कुर्यान्मन्त्रन्यासं विचक्षणः ॥६९
अंगुष्ठाग्रेण जपस्त मालायामिह भैरव ।
यावन्तो ग्रन्थयश्चात्र तावन्त्येव च सन्यसेत् ॥७०

अपने मान से छत्तीस ग्रन्थियों का योजित करे। एक सौ आठ ग्रन्थियों का सुविधान से करना चाहिए ।६४। नागाहार नामक जो है उसी के समान अन्यों में विधान से पवित्र किया जाता है जिस सूत्र के द्वारा पुनः ग्रन्थियाँ होती हैं ।६५। उनसे अन्य वर्ण वाले सूत्र से लक्षण से समन्वित पवित्रा की रचना करनी चाहिए। कनिष्ठक में सात वेष्टनों के द्वारा ग्रन्थि करे। मध्यम में दुगुनी करे और उत्तम में तिगुनी करे। पूर्व दिन में पवित्राओं का अधिवासन करना चाहिए। फिर वहाँ दूसरे दिन में मात्रा में मन्त्र न्यास करे ।६६–६७। दुर्गा बीज मन्त्र से द्विज को मन्त्र का न्यास करना चाहिए ।६८। हे भैरव ! अन्य लोग वैष्णवी तन्त्र के द्वारा करे। विचक्षण पुरुष को प्रत्येक ग्रन्थि में स्वयं मन्त्र का न्यास करना चाहिए ।६९। हे भैरव ! यहाँ पर माला में अंगुष्ठ के अग्रभाग से जप है। यहाँ पर जितनी भी ग्रन्थियाँ हों उतनी ही भली भाँति न्यास करे ।७०।

मन्त्राणि तस्य तेन स्यादेवांगोपनियोजनम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्वन्यास तु कारयेत् ॥७१
एकत्र न्यस्य सकलं यज्ञपात्रे पवित्रकम् ।
तस्मिन् निधाय गन्धादि पुष्पाणि च सुशोभनम् ॥७२
तत्वन्यासं ततः कुर्यादंगुल्यग्रेण भैरव ।
विष्णोस्तु मूलमन्त्रेण तत्वन्यास तु कारयेत् ॥७३
इदं विष्णुरिति प्रोक्तं मन्त्रन्यास द्विजस्य हि ।
शूद्राणां मन्त्रविन्यासे मन्त्रो वै द्वादशाक्षरः ॥७४
प्रासादेन तु मन्त्रेण तत्वन्यासो मम स्मृतः ।
अनेन मन्त्रन्यासं च दानं चानेन कारयेत् ॥७५
कुंकुमोशीरकर्पूरैश्चन्दनादिविलेपनैः ।
पवित्राणि विलिप्यार्थं पत्त्वन्यासं तु योजयेत् ॥७६
सम्पूज्य मण्डले देवी विधिवत् प्रयतो नरः ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥७७

उसके मन्त्र उससे अङ्गोपयोजन होवें । दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के द्वारा तत्व न्यास कराना चाहिए ।७१। एक स्थान में यज्ञ पात्र में समस्त पवित्राओं को रखकर उसमें गन्ध आदि और पुष्पों को रखकर परम शोभन है भैरव ! अंगुली के अग्रभाग से फिर तत्व न्यास करना चाहिए । भगवान् विष्णु के मूल मन्त्र के द्वारा तत्व न्यास करावे ।७२-७३। द्विज का मन्त्र न्यास "इन्द्र-विष्णुः"—यह कहा गया है । शूद्रों के मन्त्र विन्यास में मन्त्र बारह अक्षरों का होता है ।७२। प्रासार मन्त्र से मेरा तत्व न्यास कहा गया है । इसके द्वारा मन्त्र न्यास और इससे ही दान करावे ।७५। कुंकुम—उशीर—कर्पूर और चन्दन आदि विलेपनों से पविश्राओं का विलेपन करके तत्व न्यास को योजित करना चाहिए ।७६। प्रयत मनुष्य विधि पूर्वक मण्डल में देवी का अभ्यर्चन हे भैरव ! वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र द्वारा दुर्गा तंत्र से करे ।७७।

दुर्गाबीजेन दद्यात् तु देव्या मूर्ध्नि पवित्रकम् ।
यस्य देवस्य यः प्रोक्तस्तस्य तेनैव मण्डलम् ॥७८

यस्य यस्य तु यो मन्त्रो यथा ध्यानादि पूजनम् ।
तत् तत् तेनैव मन्त्रेण पूजयित्वा प्रयत्नतः ।।७९
तस्यैव बीजमन्त्राभ्यां मूर्ध्नि दद्यात् पवित्रकम् ।
पवित्रं मम यो दद्याद् देवेभ्यश्च पवित्रकम् ।।८०
सर्वेषामेव देवानां सम्पूर्णार्थश्च भैरव ।
अग्निब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरगः ।।८१
स्कन्दो भानुर्मातृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहाः ।
एतान् घटेषु प्रत्येकं पूजयित्वा यथाविधि ।।८२
पवित्रं मूर्ध्नि कैकेकं दद्यादेभ्यः समाहितः ।
पंचगव्यचरुं कृत्वा देव्यै दत्वाहुतित्रयम् ।।८३
तेनैव विष्णवे दत्वा शम्भवे च यथाविधि ।
आज्यैरष्टोत्तरशतं तिलैराज्यैस्तथैव च ।।८४

दुर्गा बीज द्वारा देवी के मस्तक में पवित्रा का समर्पण करना चाहिए। जिस देव का जो कहा है उसका उसी से ही मण्डल होता है ।७९। जिस-जिसका जो मन्त्र है जैसा भी ध्यान आदि पूजन है वह-वह उसी मन्त्र से ही यत्नपूर्वक पूजन करके उसके ही बीज और मन्त्र से मस्तक में पवित्रा का अर्पण करे। जो भी मुझको पवित्री का समर्पण करता है और देवों के लिए देता है ।७८-८०। हे भैरव ! सभी देवों का सम्पूर्ण अर्थ होता है। अग्नि ब्रह्मा—भवानी—गज—वक्त्र—महोरग—स्कन्द—भानु—मातृगण—दिक्पाल—नवग्रह—इन सबको घटों में यथा विधि—प्रत्येक का पूजन करके परम सावधान होते हुए इनके लिए एक-एक पवित्रा मस्तक में समर्पित करे पञ्चगव्य चरु को बना करके देवी के लिए तीन आहुतियाँ देवे। उसी से भगवान् विष्णु और शम्भु के लिए यथा विधि देवे। आज्य (घृत) तथा तिल संयुत घृत से अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देनी चाहिए ।८१-८४।

अष्टोत्तरशतं दद्यान्महादेव्यै च साधक ।
एवमेव विधाने विष्णवादीनां च साधकः ।।८५
पवित्रारोपणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
नैवेद्यैर्विविधैः पेयैर्वटपिष्टकमोदकः ।।८६

कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खज्जुरै पनसैस्तथा ।
आम्रदाडिमकर्कारुद्राक्षादिविविधैः फलैः ।।८७
भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वैर्मत्स्यैर्मासैस्तथौदनैः ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैश्च सुमनोहरैः ।।८८
वासोभिर्भूषणैश्चैव भवानीसाधको यजेत् ।
नतनर्तकसंघैश्च वेश्याभिश्चैव भैरवः ।।८९
नृत्यगीतैः समुदितो जागरं कारयेन्निशि ।
भोजयेदब्राह्मणांश्चापि ज्ञातीनपि द्विजातिभिः ।।९०
पवित्रारोपणे वृत्ते दक्षिणामुपदापयेत् ।
हिरण्यं गां तिलघृत वासो वा शाकमेव वा ।।९१

साधना करने वाले को महादेवी के लिए एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिए । इसी विधान से भगवान् विष्णु आदि को भी साधक द्वारा आहुतियाँ देनी चाहिए ।८५। धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिए पवित्रारोपण करना चाहिए । परमावश्यक कृत्य है । अनेक प्रकार के नैवेद्य पेय पिष्टक—मोदकों से—कूष्माण्ड नारिकेल—खजूर पनस—आम्र—दाड़िम—कर्क—रुद्राक्ष आदि विविध भाँति के फलों के द्वारा—समस्त भक्ष्य भोज्य आदि से मत्स्य माँस ओदन से—गन्ध—पुष्प—धूप—दीप—सुभ मोह वस्त्र—भूषण से भवानी का साधक यजन करे । हे भैरव ! नर और नर्तकों के समुदाय तथा वेश्याओं के द्वारा देवी का मनो विनोद करे ।८६-८९। नृत्य और गीतों से समुदित होकर रात्रि में जागरण करे । द्विजोतियों के साथ और ज्ञानियों को तथा ब्राह्मणों को भोजन करावे । पवित्रारोपण के हो जाने पर दक्षिणा का उपदाय न करे । दक्षिणा में सुवर्ण—गौ—तिल घृत—वस्त्र अथवा शोक ही देवे ।९०-९१।

इमं मन्त्रं ततः पश्चात् साधकः समुदीरयेत् ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।।९२
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु परमेश्वरिः ।
ततो विसर्जयेद् देवीं पूजाभिः प्रतिपत्तिभिः ।।९३
एवं कृते पवित्राणां दाने देव्या यथाविधि ।

संवत्सरस्य या पूजा सम्पूर्णा वत्सराद् भवेत् ॥९४
कल्पकोटिशतं यावद् देवीगेहे वसेन्नरः ।
तत्रापि सुखसौभाग्यसमृद्धिरतुला भवेत् ॥९५

इसके अनन्तर साधक इस मन्त्र का उच्चारण करे--हे परमेश्वरि ! मणि—विद्रुम की मालाओं से और मन्धर के कुसुम आदि के द्वारा आपकी यह साम्वत्सरी पुजा सम्पन्न होवे । इसके उपरान्त पूजाओं से और प्रतिपत्तियों के द्वारा देवी का विसर्जन करना चाहिए ।९२-९३। इस रीति से देवी को यथा विधि पवित्राओं के दान के हो जाने पर सम्वत्सर की जो पूजा है वह वासर से सम्पूर्ण हो जाया करती है ।९४। वह मनुष्य सैकड़ों करोड़ कल्पों तक देवी के ही घर में निवास किया करता है और वहाँ पर भी उसको सुख—सौभाग्य की अतुल समृद्धि होती है ।९५।

—❀—

## ॥ महिषासुरोपाख्यान ॥

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण कुर्यादिद् दुर्गामहोत्सवम् ।
महानवम्यां शरदि बलिदान नृपादयः ॥१
आश्विनस्य तु शुक्लस्य भवेद् या अष्टमी तिथिः ।
महाष्टमीति सा प्रोक्ता देव्या प्रीतिकरी परा ॥२
ततोऽनु नवमी या स्यात् सा महानवमी स्मृता ।
सा तिथिः सर्वलोकानां पूजनीया शिवाप्रिया ॥३
अनयोर्वत्स पूजायां विशेष शृणु भैरव ।
सम्पूज्य मण्डले देवीं विधिवत् प्रयतो नरः ॥४
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ।
मूर्तिभेदे यथा देवी पूजां गृह्णाति भूतये ॥५
कन्यासंस्थे रवौ वत्स शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ।
अयाचिताशी नक्ताशी एकाशी त्वथ चापदः ॥६
प्रातः स्नायी जितद्वन्द्वत्रिकालं शिवपूजकः ।
जपहोमसमायुक्तो भोजयेच्च कुमारिकाः ॥७

श्री भगवान् ने कहा—दुर्गा तन्त्र से मन्त्र के द्वारा दुर्गा का महोत्सव करना चाहिए। शरद् काल में महा नवमी राजा आदि को बलिदान करना चाहिए।१। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में जो अष्टमी तिथि होती है, वह महा अष्टमी कही गयी हैं जो देवी की परम प्रीति करने वाली हुआ करती है।२। इसके पश्चात् जो नवमी तिथि होती है, वह नवमी कही गयी है। वह तिथि समस्त लोकों की पूजनीय और शिव की होती है।३। हे भैरव ! हे वत्स ! इन दोनों में जो पूजा होती है उसमें जो कुछ भी विशेषता में उसका आप श्रवण करिए। मण्डल में तिथि के साथ देवी का प्रयत होकर मनुष्य भली-भांति पूजा करे।४। हे भैरव ! वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र के द्वारा और दुर्गा के मन्त्र से मूर्त्ति भेद में जैसे देवी भूति के लिए पूजा का ग्रहण किया करती है। कन्या राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे वत्स ! शुक्ल पक्ष की नन्दिका अर्थात् प्रति पत् तिथि से आरम्भ करके रहे। अयाचित का अशन करने वाला—रात्रि में एक बार भोजन करने वाला—अमद रहने वाला–प्रात:काल में स्नान करने वाला—शीतोष्ण आदि द्वन्दों का सहन करने वाला और दोनों वक्त में शिव का पूजन करने वाला—जप और होम से समायुक्त होता हुआ कुमारिकाओं को भोजन कराना चाहिये।६–७।

बोधवेद् विल्वशाखासु षष्ठ्यां देवीफलेषु च ।
सप्तम्यां विल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥८
पुनः पूजां यथाष्टम्या विशेषेण समाचरेत् ।
जागर च स्वसं कुर्याद् बलिदानं महानिशि ॥९
प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् ।
ध्यायेद् दशभुजां देवीं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥१०
विसर्जन दशम्यां तु कुर्याद् वै साधकोत्तमः ।
कृत्वा विसर्जन तस्यां तिथौ नक्तं समाचरेत् ॥११
यदा तु षोडशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेषं तन्त्र व शृणु ॥१२
कन्यायां कृष्णपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यामेकभक्तं तु नक्तं कुर्याद् परेऽहनि ॥१३

चतुर्दश्यां महामायां वोधयित्वा विधानतः ।
गीतवादिवनिर्घोषैस्र्नानैवेद्यवेदनैः ।।१४

विल्व वृक्ष की शाखाओं में बोध न करे और षष्ठी तिथि में देवी-पूजन फलों से करे । सप्तमी तिथि में उस विल्व की शाखा का आहरण करके प्रति पूजन करना चाहिए ।८। फिर अष्टमी में विशेष रूप से पूजा का समाचरण करना चाहिए । स्वयं जागरण करे तथा महा निशा में बलिदान करे ।६। अधिक बलिदान तो विधि के सहित नवमी में करना चाहिए । दश भुजाओं वाली देवी का ध्यान कर और दुर्गा तन्त्र से पूजा करनी चाहिए ।१०। उत्तम साधक को दशमी तिथि में विसर्जन करना चाहिए । उस तिथि में रात्रि में विसर्जन करके समाचरण करे ।११। जिस समय में सोलह भुजाओं वाली महामाया का पूजन करे । दुर्गा तन्त्र के मन्त्र से करे । उसकी विशेषता के विषय में अब श्रवण करो । कन्या की संक्रान्ति में कृष्ण पक्ष की एकादशी में उपवास किये हुए द्वादशी में एक बार दूसरे दिन में करे ।१३। चतुर्दशी में विधान से महामाया का बोधन करे जो गीत वाद्य और निर्दोष के द्वारा और अनेक नैवेद्यों के वेदनों के द्वारा बाधन करना चाहिये ।१४।

आयाचितं बुधः कुर्यादुपवास परेऽहनि ।
एवमेव व्रत कुर्याद् यावद्वै नवमी भवेत् ।।१५
ज्येष्ठायां च समभ्यर्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ।
उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ।।१६
यदा त्वष्टदशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्रापि शृणु भैरव ।।१७
कन्यायां कृष्णपक्षस्य पूज भत्वाद्रभे दिवा ।
नवम्यां वोधयेद् देवीं गीतवादिज्ञनिस्वनैः ।।१८
शुक्लपक्षे च थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ।
प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापतेत् तु शुभैर्जलैः ।।१६
सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपाषणम् ।
पूजाजागरणं चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ।।२०
सम्प्रेषणं दशम्यां तु क्रीडा कौतुकमंगलैः ।

नीराजन दशम्यां तु बलवृद्धिकरं महत् ।।२१

बुध पुरुष को दूसरे दिन में अयाचित उपवास करे। इस प्रकार ही जब तक नवमी हो व्रत करे।१५। ज्येष्ठा में भली-भाँति अभ्यर्चन करना चाहिए और मूल में प्रतिपूजन करे। उत्तरा से अर्चन करके श्रवण के अन्त में विसर्जन करना चाहिए।१६। जिस समय में अठारह भुजाओं वाली महा-माया का पूजन करे। हे भैरव ! दुर्गा मन्त्र के द्वारा वहाँ पर भी करे। हे भैरव ! उसका आप श्रवण कीजिए।१७। कन्या में कृष्ण पक्ष की आर्द्रा नक्षत्र में दिन में पूजन करे। नवमी तिथि में गीत वादित्र निर्घोषों के द्वारा देवी का बोधन करे।१८। शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि में देवी के केशों का विमोचन करे। पञ्चमी में प्रातः काल ही में शुभ जल से स्नपन करावे।१९। सप्तमी में पत्रिका की पूजा करे और अष्टमी में भी उपोषण करे। नवमी में विधि के साथ पूजा जागरण और बलि करे।२०। दशमी में क्रीड़ा—कौतुक मङ्गलों द्वारा सम्प्रेषण करे दशमी में नीराजन करे जो महान् बल और वृद्धि का करने वाला होता है।२१।

यदा वै वैष्णवी देवी महामायां जगन्मयीम् ।
पूजयेत् तत्र च यदा विशेष शृणु भैरव ।।२२
कन्यासस्थे रवौ पूजा या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरै ।।२३
नवम्यां बलिदान तु कर्तव्यं वै यथाविधि ।
जप होमं च विधिवत् कुर्यात् तत विभूतये ।।२४
सप्पूजयेन्महादेोमष्टपुष्पिकया नरः ।
रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च ।।२५
रात्रादेव महादेवी ब्राह्मणा बोधिता पुरा ।
ततस्तु व्यक्तनिद्रा सा नन्दामामाश्विने सिते ।।२६
जगाम नगरी लङ्कां यत्रासीद्राघवः पुरा ।
तत गत्वा मसादेवी तदा तौ रामरावणौ ।।२७
युद्धं नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ।
रक्षसां वानराणां च सन्ध्वा सा मांसशोणिते ।।२८

जिस समय जगन्मयी वैष्णवी देवी महामाया का पूजन करे वहाँ पर इस अवसर पर जो विशेषता है उसका हे भैरव ! अब आप श्रवण करिए। ।२२। सूर्य के कन्या राशि पर संस्थित होने पर जो पूजा है वह शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि है उस तिथि में रात्रि में वैभव के विस्तारों से पूजा करनी चाहिए ।२३। नवमी से यथा विधि बलिदान करना चाहिए। वहाँ पर विशेष मूर्ति के लिए जप—होम विधि के साथ ही करना चाहिए ।२४। मनुष्य को महादेवी का अष्ट पुष्पिका से भली-भाँति करना चाहिए। पहिले समय में श्रीराम के ऊपर अनुग्रह करने के लिए और रावण के वध के लिए ब्रह्माजी के द्वारा महादेवी रात्रि में ही बोधित की गयी थी। इसके अनन्तर वह निद्रा का त्याग करके नन्दा में आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में नन्दा तिथि में गमन करने वाली हुई थी ।२५-२६। जहाँ पर पहिले श्री राघवेन्द्रों थे वहाँ लंका में गये थे। वहाँ पर महादेवजी ने गमन करके उस समय में राम और रावण को युद्ध करने के लिए नियोजित कर दिया था और अम्बिका देवी स्वयं अन्तर्धान हो गई थी। वहाँ वानरों और राक्षसों के माँस और रुधिर का भक्षण किया था ।२७-२८।

रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत् ।
व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः ॥२९

रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ।
यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षय ॥३०

तावत् तु सप्तरात्राणि सैव देवैः सुपूजिता ।
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः ॥३१

विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः ।
ततः सम्प्रेषिता देवी दशम्यां शार्वरोत्सवैः ॥३२

कोऽपि देवसनाया नीराजनमथाकरोत् ।
शान्त्यथ सरसैन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये ॥३३

रामरावणबाणेन युद्ध चावीक्ष्य भीतिदम् ।
तृतीया तु लंकायाः पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ॥३४

स्वातिनक्षत्रतुक्तायां भीत सुरबल महत् ।
शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरेः ॥३५

उस देवी ने श्रीराम और रावण का युद्ध एक सप्ताह तक नियोजित किया था। सातवीं रात्रि के समाप्त होने पर फिर नवमी में रावण को श्री-राम ने मार दिया था। यह जगन्मयी महामाया देवी ने उन दोनों की जब तक युद्ध के केलि हुई थी उसको स्वय देखा था ।२९-३०। तब तक सात रात्रियों में वह हो देवों के द्वारा सुपूजित हुई थी। और रावण के निहित हो जाने पर नवमी तिथि में समस्त देवगणों के द्वारा पूजा की गयी थी। ।३१। लोकों के पितामह श्री ब्रह्माजी ने दुर्गा देवी की विशेष पूजा की थी। इसके अनन्तर शार्वरोत्सवों के द्वारा देवी दशमी तिथि में देवी सम्प्रेषित की गयी थी ।३२। इन्द्रदेव ने देव सेना का निराजन किया था। और वह नीरा-जन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये ही किया था ।३३। राम और रावण के वाण से जो युद्ध था वह देखकर भय देने वाला हुआ था। तृतीया में लङ्का से पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाति नक्षत्र से युक्त में सुरों का बल बहुत अधिक भयभीत हो गया था। देवेन्द्र ने हरि के वचन से शान्ति के लिए वारण किया था ।३४-३५।

ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम् ।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजनः हरः ।।३६
नीराजिबलः शक्रस्तत्र रामं च राघवम् ।
सम्प्राप्य प्रथयौ स्वर्गं सह देवैः शचीपतिः ।।३७
इतिवृत्तं पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै ।।३८
नृणां त्रेतायुगस्यादौ जगतां हितकाम्यया ।
पुराकल्पे यथावृत्तं प्रतिकल्पं तथा तथा ।।३९
प्रवर्तते स्वयं देवी दैत्यानां नाशनाय वै ।
प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः ।।४०
तथैव जायते युद्धः तथा शिवशसगमः ।
एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः ।।४१
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
पूजयन्ति सुराः सर्वे बलं नीराजयन्त्यपि ।।४२

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से संयुत दशमी में शुभ चण्डिका को विदा करके हरि ने शान्ति स्थापित करने के लिए बल का नीराजन (आरती) किया था।३६। जिसके बल का नीराजन किया था वह इन्द्रदेव वहाँ पर श्रीराम और रावण को संस्थापित करके देवा सहित अपने स्वर्ग लोक को चला गया था।३७। पहिले कल्प में यह इति वृत है जो कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में था। उस समय में दश भुजाओं वाली देवी देवों के हित का सम्पादन करने के लिए प्रादुर्भूत हुई थी।३८। त्रेता युग के आदि काल में मनुष्यों के जगतों की जनता के हित की कामना से पहिले काल में जो हुआ था वैसा ही वैसा प्रत्येक कल्प में हुआ था।३९। देवी स्वय दैत्यों के विनाश करने के लिए प्रवृत्त होती है प्रत्येक कल्प में श्रीराम राज रावण भी हुआ करता है।४०। उसी प्रकार से युद्ध होता है और उसी भाँति देवों का सङ्गम भी होता है। इसी प्रकार से सहस्रों ही श्रीराम के अवतार हुआ करते हैं और रावण भी सहस्रों की सख्या में होते हैं।४१। प्राणी भी जो होने वाले हैं वे होते हैं और वैसे ही देवी भी प्रवृत्त हुआ करती है। सभी सुरगण उसी देवी का पूजन किया करते हैं तथा नीराजन भी करते हैं।४२।

तथैव च नराः सर्वे कुर्यु पूजां यथाविधिः ।
बलनीराजनं राजा कुर्याद् बलविवृद्धये ।।४३
दिव्यालङ्कारयुक्तभिर्वारुणीभिः प्रवर्तनम् ।
कर्तव्ययं नृत्यगीतानि क्रीडाकौतुकमंगलैः ।।४४
मोदकैः पिष्टकैः पेयंर्भक्ष्यभोज्यैपनेकशः ।
कूष्माण्डेर्नारिकेलैश्च खर्जुरैः पनसैस्तथा ।।४५
द्राक्षामलकशाण्डिल्यैः प्लीहैश्च करुणैस्तथा ।
कशेरुक्रमुकैर्मूलैः सजम्बुतिन्दुकादिभिः ।।४६
गव्यैर्गुडैस्तथा मांसैर्मद्यैर्मधुभिरेव च ।
वालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभिः ।।४७
दक्षुदण्डैः सिताभिश्च लवलीनागरङ्गकैः ।
अजाभिर्महिर्षर्मेषैरात्मशोणितसञ्चयैः ।।४८

उसी भाँति जैसा कि पूर्व कल्प में करते थे सभी मनुष्य विधि विधान के साथ पूजा किया करता है।४३। दिव्य अलङ्कारों से युक्त वारुणी से

प्रवर्त्तन होता है। उस समय में क्रीड़ा कौतुकों के द्वारा मङ्गलमय नृत्य और गीत करने चाहिए।४४। मोदकों से—पिष्टों से पेयों से और अनेक प्रकार के भक्ष्यों तथा भोज्यों से—कूष्माण्ड नारिकेल—खर्जूर—पनस—हास—आँवला—शांडिल—प्लीह—करुण—कशेरु क्रमुक—मूल—जम्बू—तिन्दक तथा भव्य—गुड़—माँस—मद्य—मधु ताल प्रिय नैवेद्य लाजा (खील)—अक्षत—इक्षु दण्ड—सिता (मिश्री। लवली नागरङ्क—अजा—महिषं—मेष अपने शोणित के सञ्चय—पक्षी आदि बलि के जाति वाले तथा अनेक प्रकार के पशुगण के द्वारा तथा माँस रुधिर के कर्दम के द्वारा जगत् की धात्री के पूजन करना चाहिए।४५-४९।

पक्ष्यादिवलिजातीयैस्तथा नानाविधैर्मृगैः ।
रात्रौ स्कन्दविशाखयस्य कृत्वा पिष्टकपुत्रिकाम् ।
पूजयेच्छत्रुनाशाय दुर्गायाः प्रीतये तथा ।।५०
होमं च सतिलैराज्यैर्मांसैरपि तथा चरेत् ।
उग्रचण्डादिकाः पूज्यास्तथाष्टौ योगिनीः शुभाः ।।५१
योगिन्यश्च चतुःषष्टिस्तथा वै कोटियोगिनीः ।
नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिताः शुभाः ।।५२
जयन्त्यादिर्गन्धपुष्पैस्ता देव्या मूर्तयो यतः ।
देव्यः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ।।५३
अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तानि वाहनं सिंहमेव च ।
महिषासुरमर्दिन्याः पूजयेद् भूतपेद् सदा ।।५४
पुराकल्पे महादेवी मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
नृणां कृतयुगस्यादौ सर्वदेवैः स्तुता सदा ।।५५
महिषासुरनाशाय जगतां हितकाम्यया ।
योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ।।५६

रात्रि में स्कन्द विशाख की पिष्ठ पुत्रिका बना कर शत्रुओं के विनाश के लिए दुर्गा प्रीति के सम्पादन के वास्ते पूजन करे।५०। और तिलों के सहित घृत से तथा माँस से भी होम करना चाहिए। उग्र चण्डादिक की पूजा करनी चाहिए तथा आठ शुभ योगिनियों की अर्चना करे।५१। योग-

नियाँ चौंसठ हैं तथा करोड़ योगनियाँ हैं। देवी के सन्निहित परम शुभ सब दुर्गाओं का यजन करे।५२। जयन्ती आदि का गन्ध पुष्पों से पूजन करें क्योंकि वे देवी की मूर्तियाँ हैं और देवियाँ हैं। देवी के समस्त अस्त्र तथा सब भूषण जो देवी के अङ्ग प्रत्यङ्ग में युक्त हैं और देवी का वाहन सिंह का पूजन करना चाहिए। महिषासुर के दर्दन करने वाली के सब का सदा भूति—वैभव के लिये यजन करे।५३-५४। पहिले कल्प में स्वायम्भुव मनु के अन्तर में मनुष्यों के कृतयुग के आदि काल में महादेवी सदा देवगणो के द्वारा सस्तवन की गई थी।५५। महिषासुर के विनाश के लिये तथा जगतों के हित की कामना से योगनिद्रा—जगद्धात्री महामाया प्रसिद्ध थी।५६।

भुजैः षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे विभ्रती विपुलां तनुम् ॥५७
अतसोपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ।
जटाजूटसखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ॥५८
नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ।
शूलं चक्रं च खड्गं च शंखं बाणं तथैव च ॥५९
शक्ति वज्रं च दण्डं च नित्यं दक्षिणबाहुभिः ।
विभ्रती सततं देवी विकाशिदशनोज्ज्वला ॥५०
खेटकं चर्म चापं च पाशं चांकुशमेव च ।
घण्टां पशुं मुशलं विभ्रती वामपाणिभिः ॥६१
सिंहस्था नयनैः रक्तवर्णैस्त्रिभिरतिज्वला ।
शूलेन महिष भित्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ॥६२
वामपादेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ।
तां दृष्ट्वा सकला देवाः प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥६३
नोचुः किञ्चन दृष्ट्वा निहितं महिषासुरम् ।
ततः प्रोवाच देवांस्तान् ब्रह्मादीन् परमेश्वरी ॥६४

वह महामाया सोलह भुजाओं से संयुत थी और भद्रकाली—नाम से लोकों में विश्रुत थी। क्षीर सागर के उत्तर पूर्वी तट पर अपने विपुल तनु का धारण करती हुई थीं।५७। उसका वर्ण अलसी के पुष्प की आभा के ही

समान था और उनके कुण्डल तपे हुए सुवर्ण के समान देदीप्यमान थे। खण्ड चन्द्र से युक्त उनके मस्तक पर जटाजूट थे तथा तीन मुकुटों से वह शोभायमान था ।५८। उनके कण्ठ में नागों का हार विराजमान तथा सुवर्ण का भी हार पड़ा हुआ था जिससे वे विभूषित हो रही थीं। दाहिनी ओर की बाहुओं के द्वारा वे शूल—चक्र—खड्ग—शंख—बाण शक्ति-वज्रादण्ड नित्य ही निरन्तर धारण कर रहीं थीं। देवी विकास संयुत दर्शनों की पंक्तियों से परम समुज्ज्वल थीं ।५९-६०। बाँई ओर वाली बाहुओं के द्वारा वे खेटक—चर्म—चाप—पाश—अकुश—घण्टा—परशु—मुशल को धारण कर रही थीं ।६१। सिंह वाहन पर विराजमान थी और लाल वर्ण वाले तीन नेत्रों से अतीव उज्ज्वल थीं। परमेश्वरी अपने शूल के द्वारा महिष असुर का भेदन करके संस्थित थीं ।६२। वहाँ पर अपने बाँये चरण से आक्रमण करके जगन्मयी देवी विराजमान थी। उन देवी का दर्शन करके समस्त देवगण उनको प्रणाम कर रहे थे ।६३। उस महिषासुर को निहत विलोकन करके वे देव कुछ भी नहीं बोले थे। इसके अनन्तर वह परमेश्वरी उन ब्रह्मादिक देवों से बोली ।६४।

स्मितप्रभिन्नवदना विकाशिवदोज्ज्वला ।
गच्छन्तु भोः सुरगणा जम्बुद्वीपान्तरं प्रति ।।६५
हिमवत्-पर्वतासन्ने वर कात्यायनाश्रमम् ।
तत्रैव भवतां भाव्य भविष्यति न संशयः ।।६६
इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ।
देवा अपि तदा जग्मुः कात्यायनमुनेः पुरम् ।।६७
आश्रमं प्रति ते गत्वा विस्मयाविष्टमानसा ।
निहता महिषो देव्या दिष्टोऽस्माभियदर्थतः ।।६८
स्तुता चैव महादेवी जगद्धात्री जगन्मयी ।
किमर्थमाह सा देवी गन्तुं कात्यायनाश्रमम् ।।६९
किमन्यद् वाञ्छितं कार्यमस्माकं वा भविष्यति ।
इति ब्रुवन्तस्ते सर्वे गच्छन्ति स्म परस्परम् ।।७०

देवी के मुख में मन्द हास था और परम प्रसन्न थी—उनकी शुभदन्त पंक्ति से वे उज्ज्वल थीं। उन्होंने देवों से कहा—हे सुरगणो ! आप

लोग अब अन्य जम्बूद्वीप की ओर गमन कर जाओ ।६५। हिमवान् पर्वत के समीप में परम श्रेष्ठ कात्यायन का आश्रम है । वहाँ पर ही आपका साध्य होगा—इसमें संशय नहीं है ।६६। इतना कहकर वह महादेवी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गयी थी । उस अवसर में देवगण भी कात्यायन मुनि के पुर को चले गये थे ।६७। आश्रम की ओर वे गमन करके विस्मय से समाविष्ट मन वाले हो गये थे । देवों के द्वारा महिषासुर निहत हो गया था ।६८। और महा जगतों की धात्री—जगतों से परिपूर्ण देवी का स्तवन किया गया था उस महादेवी ने हमको यहाँ कात्यायन के आश्रम में गमन करने को किस प्रयोजन के लिए कहा है ।६९। क्या कोई अन्य कार्य हमारा वाञ्छित होगा ? वे सब यही परस्पर में बोलते हुए चले गये थे ।७०।

हिमवत्-पर्वतासन्न मुनि कात्यायनाश्रमम् ।
तत मेन्द्राः सदिक्पाला ब्रह्मविष्णुशिवास्तथा ।।७१

निषेदुः सुचिरं प्रीता दुर्गादर्शनलालसाः ।
ततो रुद्रगणाः सर्वे महिषासुरचेष्टितम् ।।७२

आगत्य कथायामासुर्देवलोकपराभवम् ।
ततस्तत्र तहाकोपं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।।७३

चक्रुः कोऽन्योऽस्ति महिषो हतो देव्या स दानवः ।
पुनर्वेनेह क्रियते जगद्विध्वंसनं भृशम् ।।७४

इति प्रकुप्यता तेषां शरीरेभ्यः पृथक्-पृथक् ।
निश्चक्रमुश्च तेजांसि शक्तिरूपाणि तत्क्षणात् ।।७५

तत्तेजोभिर्धृत्तवपुर्देवी कात्यायनेन वै ।
सन्धक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी स्मृता ।।७६

ततस्तेनैव मन्त्रेण दशबाहुयुतेन वै ।
पश्चाज्जघान महिषं जगद्धात्री जगन्मयी ।।७७

हिमवान् पर्वत राज के समीप में ही कात्यायन मुनि का आश्रम है । फिर इन्द्र के सहित तथा दिक्पालों के समेत ब्रह्मा—विष्णु—शिव वहाँ गये थे ।७१। वहाँ पर बहुत लम्बे समय तक वे बैठ गये और सभी दुर्गा देवी के दर्शन की लालसा वाले हो रहे थे । इसके अनन्तर समस्त रुद्रगणों से महिषासुर के चेष्टित को आकर कहा था ।७२। उन्होंने देवलोक के पराभव का

कथन वहाँ आकर किया था। इसके अनन्तर वहाँ पर ब्रह्मा—विष्णु—शिव प्रभृति ने महान् कोप किया था।७३। क्या कोई अन्य महिष है। वह महिषासुर तो देवी के द्वारा हत कर दिया गया। वह कौन है जिसके द्वारा पुनः यहाँ पर जगतों का अत्यन्त विध्वंस किया जा रहा है।७४। इस प्रकार से प्रकोप करते हुए उन देवों के शरीरों से पृथक्-पृथक् तेज निर्वात हुए जो उसी क्षण शक्ति के स्वरूप वाले थे।७५। उन देवों के शरीरों से निःमृत तेजों से देवी ने वपु धारण किया था और निश्चय ही कात्यायन के द्वारा सन्धुक्षित एवं पूजित हुई थी। इसी से वह कात्यायनी—इस नाम से कही गयी है।७६। इसके अनन्तर उसी मन्त्र के द्वारा जो दश बाहुओं से समन्वित है उस जगतों की धात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था।७७।

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥७८
देवानां तेजसां मूर्तिः शुक्लपक्षे सुशोभने।
सप्तम्यां साऽकरोद् देवी अष्टम्यां तैरलङ्कृता ॥७९
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम्।
निजघान दशम्यां तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ॥८०
श्रुत्वेमां सगरो राजा देव्याः सङ्गतिमुत्तमाम्।
सशयालुश्च तद्रूपे पुनरार्व्वमपृच्छत् ॥८१
यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम्।
कथ पूर्वं भद्रकाशी-रूपामून्महिषासुरम् ।८२
तथाहि दर्शनं तस्याः पादाकान्तश्चकार च।
हृदि शूलेन निर्भिन्न ददृशुः सकलाः सुराः।
एवं तु सशयं छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥८३

जिस अवसर पर महादेवी का संस्तवन किया गया था और शोभित की गई थी तो आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी।७८। वह देवों के तेजों की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में उसने किया था और वह देवी अष्टमी में उन्हीं के द्वारा समलंकृत हुई थी।७९। नवमी तिथि में वह उपहारों के द्वारा पूजित

थी और उसने महिषासुर का हनन किया था। दशमी में विदा की गई और शिवा अन्तर्धान हो गई थी।८०। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–राजा सगर ने इस देवी की सङ्गति का श्रवण करके वह उसके स्वरूप में संशयालु होकर पुनः उसने और्व से पूछा था।८१। राजा सागर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया था तो पूर्व में कैसे महिषासुर के लिए वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी।८२। उसी भाँति उसका दर्शन है कि उसके चरणों से समाक्रान्त किया गया था कि उस असुर के हृदय में शूल गड़ा हुआ है और हृदय निर्भिन्न हो रहा है। हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझे यह गड़ा संशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिये।८३।

शृणु त्वं नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४
महिषासुर एवासौ निद्रायां निशि पर्वते।
स्वप्नं प्रददृशे वीरो दारुणं घोरदर्शनम् ॥८५
महामाया भद्रकाली छित्वा खड्गेन मे शिरः।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितस्यातिभीषणा ॥८६
ततः प्रातर्भययुतः स दैत्यो महिषासुरः।
तामेव पूजयामास सुचिरं सानुगस्तदा ॥८७
आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजैः षोडशभिर्युता ॥८८
ततः प्रणम्य महिषो महामायां जगन्मयीम्।
उवाचेदं वचो नम्रमूर्तिभक्तियुतोऽसुरः ॥८९
देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥९०
अवश्यं तु त्वया कार्यं मया ज्ञातं प्रमाणतः।
एतद्रुधिरपानं मे तत्रैक देहि मे वरम् ॥९१

और्व मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप श्रवण करिए–जिस तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी। वह माहामाया महिषासुर के साथ ही थी।८४। यह महिषासुर ही है जो पर्वत में निद्रा में वर्तमान था। उस वीर

ने एक दारुण घोर दर्शन वाला स्वप्न देखा था ।८५। उसने यह स्वप्न देखा था कि मुँह फैलाये हुए अत्यन्त भीषण महामाया ने खड्ग से मेरे शिर का छेदन करके उसके रुधिर का पान कर रही थी ।८६। इसके अनन्तर प्रातः काल में वह दैत्य महिषासुर भय से युक्त होकर उसी का अपने अनुगामियों के साथ बहुत काल पर्यन्त पूजन किया करता था ।८७। उस समय महिषासुर के द्वारा भली-भाँति आराधना की हुई देवी भद्र काली सोलह-भुजाओं से युक्त होकर प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी ।८८। इसके निरन्तर महिषासुर ने जगन्मयी महामाया को प्रणाम किया और अत्यन्त विनम्र मूर्ति वाला होकर भक्ति की भावना से परिपूर्ण होते हुए उस असुर ने यह वचन कहा ।८९। महिष बोला—हे देवि ! आपके खड्ग से मेरे मस्तक को काटकर मेरे रुधिर को आपने पीया था और मैंने यह देखा है । स्वप्न के द्वारा निश्चित रूप से मैंने अवलोकन किया है ।९०। आपके द्वारा यह अवश्य ही करना ही है—यह मैंने प्रणाम से ज्ञान प्राप्त कर लिया है यह मेरे रुधिर का पान आप अवश्य ही करेंगी । अब उसमें मुझे एक वरदान दीजिये ।९१।

वध्यस्तवाहं नात्रास्ति संशयः परमेश्वरि ।
ममापि तत्र नो दुख नियतिः केन लंध्यते ॥९२
किन्तु त्वयैव सहितः शम्भुराराधितः पुरा ।
मम पित्रा मदर्थेन जातः पश्चादहं ततः ॥९३
मयाप्याराधितः शम्भुः प्राप्तचेष्टास्तथाविधाः ।
मन्वन्तरत्रयं यावदासुरं राज्यमुत्तमम् ॥९४
अकण्टकं मया भुक्तमनुतापो न विद्यते ।
कात्यायनेन मुनिना शप्तोऽहं शिष्यकारणात् ॥९५
सीमन्तिनी विनाश ते करिष्यति न संशयः ।
पुरा मुनिं तपस्यन्तं रौद्राश्वं नाम सत्तमम् ॥९६
मुनेः कात्यापनाख्यस्य शिष्यं हिमवदन्तिके ।
दिव्यस्त्रीरूपमतुलं कृत्वाहं कौतुकात् तदा ॥९७
मया सम्मोहितो विप्रोऽत्यजत् सद्यस्तदा तपः ।
नदूरात् सस्थितेनाहं मुनिना कात्यसूनुना ॥९८

हे परमेश्वरि ! मैं तुम्हारे द्वारा ही वध करने के योग्य हूँ। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मुझे भी इस विषय में कोई दुःख नहीं है क्योंकि जो नियति है अर्थात् जो होने वाला नियत ही है वह किसी के भी द्वारा लघित नहीं हुआ करता है अर्थात् उसे कोई भी टाल नहीं सकता है ।९२। किन्तु पहले समय में आपके ही साथ मैंने भगवान् शम्भु की आराधना की थी। मदर्थ से ही मेरे पिता के द्वारा जन्म ग्रहण किया था उनके पश्चात् मैं समुत्पन्न हुआ था ।९३। मैंने भी शम्भु का समाराधना किया था और उसी भाँति की चेष्टायें प्राप्त हुई थीं। जब तक तीन मन्वन्तर हैं उत्तम असुर राज्य है ।९४। मैंने उस राज्य को अकण्टक रूप से भोग किया है । मुझे इसका कुछ भी अनुताप नहीं है। शिष्य के कारण से कात्यायन मुनि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था ।९५। यह सीमन्तिनी तेरा विनाश करेगी— इसमें संशय नहीं है। पुराने समय में तपश्चर्या करते हुए परम श्रेष्ठ रौद्राश्व नामक जो कात्यायन मुनि के शिष्य को हिमवान् के समीप में एक अनुपम स्त्री का रूप धारण करके मैंने कौतुक से मोहित किया था। विप्र ने उस अवसर में तप का त्याग कर दिया था। पाप में ही संक्षिप्त कात्यायन के पुत्र ने मुझे शाप दिया ।९६-९८।

ज्ञात्वा मायां तदा शप्तः शिष्यार्थे क्रोधवह्निना ।
यस्मात् त्वया मे शिष्योऽयं मोहितस्तपसश्च्युतः ।।९९
कृतस्त्वा स्त्रीरूपेण तत् त्वां स्त्री विहनिष्यति ।
इति मां शप्तवान् पूर्वं मुनिः कात्यायनः स्वयम् ।।१००

तस्य शापस्य कालोऽयमागत्य समुपस्थितः ।
देवेन्द्रत्वं मया प्राप्तं भुक्तं त्रिभुवनं समम् ।।१०१
किञ्चिन्न शौर्च्यं मेऽवास्ति वाञ्छनीयं हि यन्मया ।
यद् देवि देत्रि दुर्गे त्वं भूयस्तुभ्यं नमो नमः ।।१०२
प्रार्थनीयो वरो यस्ते त वृणुष्व महासुर ।
दास्यामि ते वरं प्रार्थ्यं संशयो नात्र विद्यते ।।१०३
यज्ञभागमह भोक्तुमिच्छामि त्वत् प्रसादतः ।
यथा मखेषु सर्वेषु पूज्योऽहं स्यां तथा कुरु ।।१०४

त्वत्:पादसेवां न त्याक्ष्ये यावत्सूर्थः प्रवर्तते ।

एवं वरद्वय देहि यदि देयो वरो मम् ।।१०५

उस समय में माया का ज्ञान प्राप्त करके शिष्य के लिये क्रोध की अग्नि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था क्योंकि तुमने यह मेरा शिष्य मोहित किया है जो तप से च्युत हो गया है ।९९। तूने स्त्री के स्वरूप के द्वारा ऐसा किया है इससे तुझको स्त्री ही मारेगी । इस रीति से पूर्व में कात्यायन मुनि ने स्वयं मुझको शाप दिया था । उस शाप का काल अब आकर उपस्थित हो गया है । मैंने देवों के इन्द्र का पद प्राप्त किया था और तीनों भुवनों का समान उपयोग किया था ।१००-१०१। मुझे कुछ भी सोचने अर्थात् शोक और चिन्ता करने के योग्य नहीं है और मुझे कुछ भी वांछनीय ही है । इस कारण से मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ । मुझे शेष जो भी प्रार्थना करने के योग्य है जो देवि ! हे दुर्गे ! मुझे दीजिये । आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है ।१०२। देवी ने कहा—हे महासुर ! जो तुझे वरदान प्रार्थना करने के लायक हैं उसके विषय में तुम अब श्रवण करो । तुम्हारा प्रार्थनीय जो वर है उसको दे दूँगी—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। ।१०३। महर्षि ने कहा—मैं आपकी प्रसन्नता से यज्ञ के भाग का उपभोग करना चाहता हूँ । जिस रीति से सभी मखों में अर्थात् यज्ञों में मैं पूज्य हो जाऊँ वैसा ही आप मुझे वर दीजिये ।१०४। जब तक भी संसार में सूर्यदेव विद्यमान है मैं आपके चरणों की सेवा का परित्याग नहीं करूँगा । यदि आपके द्वारा मुझे वरदान देना है तो इस प्रकार से ये दो वर मुझे देने की कृपा कीजिये ।१०५।

यज्ञभागाः सुरेभ्यस्तु कल्पिता वै पृथक्-पृथक् ।

भागो न विद्यते चान्यो यं दास्यामि तवाधना ।।१०६

किन्तु त्वयि मया युद्धे निहते महिषासुर ।

नैव त्यक्ष्यसि मत्पादं सतत नात्र संशयः ।।१०७

मम प्रवर्तते पूजा यत्र यत्र च तत्र ते ।

पूज्यश्चिन्त्यश्च तत्रैव कायोऽयंऽतव दानव ।।१०८

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रत्युषे महिषासुरः ।

वरं प्राप्येह मुदितः प्रसन्नवदनस्तदा ।।१०९

तग्रचण्डे भद्रकालि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।
प्रभूता मूर्तयो देवि भवत्या सकलात्मिकाः ॥११०
काभिस्ते मूर्तिभिः पूज्यो यज्ञेऽहं परमेश्वरि।
तत् समाचक्ष्व यदि भवत्येह कृपा मयि ॥१११

देवी ने कहा—यज्ञों के भाग तो देवगणों के ही लिये पृथक्-पृथक् कल्पित हैं। अन्य कोई भी भाग शेष नहीं है जो मैं इस समय तुझे दूँगी।१०६। किन्तु हे महिषासुर ! मेरे साथ युद्ध में तेरे निहत हो जाने पर तू मेरे चरण को कभी नहीं त्यागेगा और निरन्तर चरण से संपुष्ट ही रहेगा— इसमें कुछ भी संशय नहीं है।१०७। हे दानव ! जहाँ-जहाँ पर भी मेरी पूजा प्रवृत्त होती है वहाँ पर यह तुम्हारा शरीर भी पूजा के और चिन्तन करने के योग्य होगा।१०८। प्रातःकाल में यह उस देवी का वचन सुनकर महिषासुर वहाँ पर वर प्राप्त करके परम प्रसन्न हुआ और उसका प्रसन्नता से संयुत हो गया था।१०९। उसने कहा—हे उग्र चण्डे ! हे भद्र कालि ! हे दुर्गे ! हे देवि ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है। हे देवि ! आपकी बहुत सी मूर्तियाँ हैं और आपके द्वारा समस्त परिपूर्ण हैं। हे परमेश्वरि ! मैं यज्ञ में किन मूर्तियों के द्वारा पूज्य होऊँगा। यही आप मुझे बतलाइये यदि आपके द्वारा मेरे ऊपर यहाँ पर कृपा की गई है।११०-१११।

यानि नामानि प्रोक्तानि त्वयेह महिषासुर।
तासु मूर्तिषु सपृष्टः पूज्यो लोके भविष्यसि ॥११२
उग्रचण्डेति या मूर्तिभद्रकाली ह्यहं पुनः।
यया मूर्त्या त्वां हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता ॥११३
एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणां भवान्।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गे देवानामपि रक्षसान् ॥११४
आदिसृष्ट वुग्रचण्डामूर्त्या त्वं निहतः पुरा।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हतः ॥११५
दुर्गारूपेणाधुना त्वां हनिष्यामि सहानुगम्।
किन्तु पूर्वं न गृहीतस्त्वं मया पादयोस्तले ॥११६
अधुना प्रार्थितवरो गृहीतः पूर्वकामयोः।

ग्रहीतव्यश्च पश्चात् त्व यज्ञभागोपभुक्तये ।।११७

इत्युक्त्वा सा महामाया उग्रचण्डाह्वयां तनुम् ।

दर्शयामास च तदा महिषासुराय व ।।११८

या मूर्तिः षौडशभुजा भद्रकालीति विश्रुता ।

तथैव मूर्ति बाहुभ्यामपराभ्यां तु विभ्रता ।।११९

देवी ने कहा—हे महिषासुर ! यहाँ पर आपने जो भी नाम कहे हैं उन मूर्तियों में संस्पृष्ट होता हुआ लोक में तुम पूज्य होओगे ।११२। जो उग्र चण्डा मूर्ति हैं फिर मैं भद्र काली हूँ । जिस मूर्ति के द्वारा मैं तेरा हनन करूँगी वह दुर्गा कीर्त्तित की गयीं है ।११३। इन मूर्तियों में सदा ही तुम मेरे चरणों में संलग्न रहोगे और आप मनुष्यों के—स्वर्ग में देवों के भी और राक्षसों के पूज्य होओगे ।११४। प्राचीन काल में जब सृष्टि का आदि काल था उस समय उग्र चण्डा मूर्त्ति के द्वारा तुम्हारा हनन किया गया था। दूसरी सृष्टि के समय में आपको भद्र काली मेरे द्वारा निहत किया था ।११५। और इस समय दुर्गा के स्वरूप के द्वारा तुमको तुम्हारे अनुगामियों के सहित हनन करूँगी किन्तु पूर्व में मेरे द्वारा चरण के तल में तुमको ग्रहण नहीं किया गया था ।११६। इस समय तो तुम वरदान को ग्रहण करने वाले हो गये हो अतएव पूर्व कालों में ग्रहण करने के योग्य हो गये हो ।११७। और्व मुनि ने कहा—इतना कहकर उस महामाया ने उग्र चण्डा नाम वाले तनु को उस समय में महिषासुर को दिखला दिया था ।११८। जो मूर्ति सोलह भुजाओं वाली थी और रुद्र काली—इस नाम से विश्रुत थी उसी भाँति मूर्ति को अमर वाहुओं से धारण करने वाली थी ।११९।

दक्षिणाधो गदां वामपाणिना पानपात्रकम् ।

सुरापूर्ण च शिरसा मुण्डमालां विवेशयन् ।।१२०

भिन्नाञ्जनचयप्रख्या प्रचण्डा सिंहवाहिनी ।

रक्तनेत्रा महाकाया युक्ताऽष्टादशबाहुभिः ।।१२१

उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूर्तिद्वयं तथा ।

महिषः प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमागतः ।।१२२

ततो यथा पदाक्रम्य निहतो महिषासुरः ।

तथैव जगृहे पादतले देवीद्वयं तु तम् ।।१२३

हृदि शूलेन निभिन्न माहिषं विशिरस्ककम् ।
गृहीतकेशं देव्या तु निर्दंदन्त्रविभूषितम् ॥१२४
वमद्रक्तं महाकायं दृष्ट्वा पूर्वतनुं स्वकम् ।
भयं प्राप्यासुरः सीऽथ शुशोच च मुमोह च ॥१२५
ततस्तु क्षणमात्मानं संस्तम्भ स तु दानवः ।
प्रणम्य वचनं देवीमिदमाह स गद्‌गदम् ॥१२६

दक्षिण की ओर नीचे गदा रक्खे हुए—बाँये हाथ से पान पात्र को रक्खे हुए थी जो सुरा से भरा हुआ था। शिर में नर मुण्डों की माला धारण करने वाली थी। भिन्न हुए अजन के समान थी—प्रचण्ड स्वरूप वाली और सिंह के वाहन वाली थीं। लाल वर्ण वाले नेत्र थे—महती काया थी और अठारह बाहुओं से युक्त थी।१२०-१२१। उग्र चण्डा और भद्रकाली ये दो मूर्तियाँ थीं। ऐसे स्वरूप का दर्शन करके शीघ्र ही महिषासुर ने उनको प्रणिहात किया था और वह बहुत ही विस्मय को प्राप्त हो गया था।१२२। इसके अनन्तर जिस रीति से आक्रान्त करके महिषासुर को निहत किया था, ठीक उसी भाँति दोनों देवियों ने उसको चरण के तल के नीचे ग्रहण कर लिया था।१२३। उसका हृदय शूल से विदीर्ण किया हुआ और महिषासुर बिना शिर वाला था। देवी के द्वारा उसके केश ग्रहण किये हुए थे और निकली अँतड़ियों से भूषित हो रहा था।१२४। जिसके मुँह से रुधिर निकल रहा था—महान् जिसका शरीर था ऐसे अपने पूर्व शरीर को उसने देखा था। वह असुर भय को प्राप्त करके बहुत चिन्ता एवं शोक करने लगा था तथा मोह को प्राप्त हो गया था।१२५। इसके अनन्तर एक ही क्षण में दानव ने अपने आपको संस्तम्भित किया था और उसने देवी को प्रणाम किया था तथा गद्‌गद् होकर देवी से उसने यह वचन कहा—

यदि देवि प्रसन्नासि यद्‌भागाश्च कल्पिताः ।
तथा ममान्यथा नाश एवमेतद् भवेन्न हि ॥१२७
यथाहं न सुरैः सार्धं करिष्ये वैरमद्‌भुतम् ।
तथा मां कुरु भो देवि न जन्म प्रलभे यथा ॥१२८
आराधिताऽह भवता वरो दत्तो मया तव ।
वध्यश्च त्व ममैवेह नात्र कार्या विचारणा ॥१२९

यत् त्वया प्रार्थितं चापि सर्वैः सुरगणैः सह ।
विरोधो मे सदा मा भूदिति चापि भविष्यति ॥१३०
सत्पादतलसंस्पर्शाच्छरीरं तव दानव ।
यज्ञभागोपभोगाय विशीर्णं न भविष्यति ॥१३१
तव जीवात्मभिः प्राणाः सव एव महासुर ।
हरस्य पादसंयोगाच्चिरं स्थास्याति केवलम् ॥१३२
कल्पकोटिसहस्राणि त्रिशत् त्वं महिषासुर ।
शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति ॥१३३

महर्षि ने कहा—हे देवि ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और आपने यज्ञ के भागों को मेरे लिए कल्पित किया है तब मेरा अन्य प्रकार से नाश ही है—इस प्रकार से नहीं होना चाहिए ।१२७। जिस प्रकार से मैं देवगणों के साथ अद्भुत बैर न करूँगा, हे देवि ! मुझे आप ऐसा ही कर देवे जिससे मैं अन्य जन्म न प्राप्त करूँ ।१२८। देवी ने कहा—आपने मेरी आराधना की है अतएव मैंने आपको वर दे दिया है । यहाँ पर तुम मेरे ही द्वारा वध होंगे, इस विषय में कुछ भी विचार तुमको नहीं करना चाहिए ।१२९। जो भी तुमने प्रार्थना की है कि मेरा विरोध सुरों के साथ न होवे—यह भी सब हो जायगा ।१३०। हे दानव ! मेरे चरण के तल के संस्पर्श से तेरा शरीर यज्ञ भागों से उपभोग करने के लिए विशीर्ण नहीं होगा ।१३१। हे महासुर ! तेरे जीवात्माओं के साथ प्राण सब ही भगवान् हर के पाद के संयोग से केवल चिरकाल पर्यन्त स्थित रहेंगे ।१३२। हे महिषासुर ! सहस्रों करोड़ कल्प तक और अन्य आठ तीस सौ तक चिरकाल पर्यन्त तेरे जन्म न होंगे ।१३३।

इति देवी वरं दत्त्वा महिषायासुराय वै ।
प्रणता तेन शिरसा तत्रैवान्तरधीयत ॥१३४
महिषोऽपि निजस्थान ययौ समोहितः पुनः ।
मायया चासुरं भावमादाय नृप पूर्ववत् ॥१३५
अनेके निहता दैत्या मायया लोकभूतये ।
न ते पुनः प्रगृहीतास्तेभ्यो दत्त्वा वरान्न शुभान् ।

केन वा कारणेनापं प्रगृहीता वराः कथम् ।
दत्तास्तस्मै समाचक्ष्व मम सम्यग् द्विजोत्तम ।।१३६
आराधितो महादेवो रम्भेण सुरवैरिणा ।
चिरेण स च सुप्रीतस्तपसा तस्य शंकरः ।।१३७
अथ तुष्टो महादेवः प्रत्यक्षं रम्भमूचिवान् ।
प्रीतोऽस्मि ते वरं रम्भ वरयस्व यथेप्सितम् ।।१३८
एवमुक्तः प्रत्युवाच रम्भस्तं चन्द्रशेखरम् ।
अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः ।।१३९
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शंकर ।
अवध्यः सर्वभूतानां जेता च त्रिदिवौकसाम् ।।१४०

इस प्रकार से यह वर देवी ने उस महिषासुर को देखकर उस असुर के द्वारा शिर से प्रणत होती हुई वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थीं ।१३४। वह महिष भी हे नृप ! पुनः माया के द्वारा सम्मोहित होता हुआ पूर्व की भाँति आसुर भाव का आदान करके अपने स्थान को चला गया था ।१३५। राजा सागर ने कहा--माया के द्वारा अनेक दैत्य निहत किये गये थे जिनका वध लोकों की विभूति के ही हुआ था । उसको शुभ वरदान देकर वे पुनः प्रगृहीत नहीं हुए थे । यह किस कारण से वर देकर कैसे पुनः प्रगृहीत हुआ था ? हे द्विजोत्तम ! मुझे यह बतलाने की कृपा करें ।१३६। और्व मुनि ने कहा--सुरों के वैरी रम्भ के द्वारा महादेवजी की आराधना को गयी थी । उसके चिरकाल किये हुए तप से वे भगवान् शंकर परम प्रसन्न हो गये थे ।१३७। इसके अनन्तर परम प्रसन्न महादेवजी प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित होकर उस रम्भ से बोले थे । मैं तुझ पर परम प्रसन्न हो गया हूँ अब जो भी तेरा इच्छित हो मुझसे वरदान का वरण करलो ।१३८। इस रीति से कहा हुआ रम्भ भगवान् चन्द्रशेखर से बोला था । हे महादेवजी ! मैं बिना पुत्र वाला हूँ । यदि आपका मुझ पर अनुग्रह हो तो हे शङ्कर ! मेरे तीन जन्मों में आप ही मेरे पुत्र होकर जन्म ग्रहण करें । ऐसे ही पुत्र हो जो समस्त प्राणियों के द्वारा अवध्य हो और देवगणों का नेता होवे ।१३९-१४०।

चिरायुश्च यशस्वी च लक्ष्मीवान् स च शंकर ।

एवमुक्तस्तु दैत्येन प्रत्युवाच वृषध्वजः ॥१४१
भवत्वेद्वाञ्छितं भविष्यामि सुतस्तव ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१४२
रम्भोऽपि यातः स्वस्थानं हर्षोत्फुल्लविलोचनः ।
पथि गच्छन् स रम्भोऽथ ददर्श महिषीं शुभाम् ॥१४३
त्रिहायणीं चित्रवर्णा सुन्दरीमृतुशालिनीम् ।
स तां दृष्ट्वाथ महिषीं रम्भः कामेन मोहितः ॥१४४
दोर्भ्यां गृहीत्वा च तदा चकार सुरतोत्सवम् ।
तयोः प्रवृत्ते सुरते तदा सा तस्य तेजसा ॥१४५
दधार महिषी गर्भं तदाऽभून्महिषासुरः ।
तस्यां स्वांशेन गिरिशस्तत्पुत्रत्वमवाप्तवान् ॥१४६
ववृधे स तदा राम्भिः शुक्लपक्षशशांकवत् ।
तं च कात्यायनमुनिः शप्तवान्महिषासुरम् ॥१४७
दुर्नयं वीक्ष्य शिष्यार्थे शिष्यानुग्रहकारकः ।
कात्यायनेन शप्तं तं विज्ञाय महिषासुरम् ।
प्राह प्रणामपूर्वं तु चण्डिकां चन्द्रशेखरः ॥१४८

हे शङ्कर ! वह मेरा पुत्र ऐसा हो जिसकी आयु चिरकाल तक की होवे—यह यशस्वी और लक्ष्मीवान् होवे । इस प्रकार से जब उस दैत्य के द्वारा प्रार्थना की गयी तो भगवान् वृषभध्वज ने कहा—।१०१। यह तेरा वाञ्छित हो जावे और मैं तेरा पुत्र हो जाऊँगा इतना ही कहकर भगवान् वृषभध्वज वहाँ पर ही अन्तर्धान होगये थे ।१४२। रम्भ भी हर्ष से विकसित लोचनों वाला होता हुआ अपने निवास स्थान को चला गया था । मार्ग में गमन करते हुए उस रम्भ ने शुभ महिषी को देखा था ।४३। वह महिषी त्रिहायणी—चित्र वर्ण वाली परम सुन्दरी और ऋतुशालिनी थी । उस रम्भ ने उस महिषी को देखा था और कामदेव से मोहित होगया था अर्थात् महिषी को देखकर ही उसके हृदय में काम का विकार हो गया था ।१४४। उसी अवसर पर रम्भ ने अपने दोनों बाहुओं से उस महिषी को ग्रहण करके उसके साथ सुरतोत्सव किया था । फिर रति क्रीड़ा के प्रवृत्त हो जाने पर

उसी सयस्य में वह महिषी उसके तेज से युक्त होकर वह गर्भवती हो गयी थी ।१४५। महिषी ने गर्भ धारण कर लिया था तभी उसके उदर से महिषासुर समुत्पन्न हुआ था । उस महिषी में अपने ही अंश से भगवान् शङ्कर ने उसके पुत्र हो जाने की प्राप्ति की थी ।१४६। वह रम्भ का पुत्र राम्भि शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की ही भाँति बड़ा हो गया था । कात्यायन मुनि ने उस महिषासुर के लिए शाप दे दिया था ।१४७। शिष्य के अर्थ उसको दुर्नय अवलोकन करके शिष्य पर अनुग्रह करने वाले चन्द्रशेखर ने कात्यायन के द्वारा शाप दिये हुए उस महिषासुर का ज्ञान प्राप्त करके चण्डिका से प्रणाम पूर्वक कहा—।१४८।

देवी कात्यायनेनाय शप्तोऽद्य महिषासुरः ।
योषिद्विनाशकर्त्रीति भवितेति जगन्मये ।।१४९
निःसंशयमृषेर्वाक्यं भविष्यति न संशयः ।
मदीयो माहिषः कायो देवि कार्यस्त्वा त्वयि ।।१५०
हन्तव्यः सततं योगयुक्तं पूर्वे परेऽपि च ।
हरिर्हरिस्वरूपेण न त्वां वोढुं क्षमोऽधुना ।।१५१
ममायं माहिषः कायस्तव वोढा भविष्यति ।
इति पूर्वं महादेवी देवीं प्रार्थितवान् पुरा ।।१५२
तेन देवी महादेवं जग्राह महिषासुरम् ।
त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽभूद्रम्भस्य भगवान् हरः ।।१५३
सृष्टित्रये स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत ।
तासुरं तादृशं तेपेः परमदारुणम् ।।१५४

ईश्वर ने कहा—आज हे देवि ! यह महिषासुर कात्यायन के द्वारा शाप दिया गया है । इसके विनाश करने वाली योषित होगी । इससे हे जगन्मये ! ऋषि का वाक्य बिना किसी सन्देह के ही पूर्ण होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह महर्षि मेरा ही शरीर है। हे जगन्मयि ! यह तुम्हारे द्वारा करना है और इसका हनन करना है । पूर्व और पर में भी निरन्तर योग से युक्त मैं हरि-हरि के स्वरूप से तुमको वहन करने में अब समर्थ नहीं हूँ ।१४९-१५१। मेरा यह शरीर महर्षि तुम्हारा बोढा होगा । यह महादेवजी

ने पूर्व में पहिले देवी से प्रार्थना की थी ।१५२। इससे देवी ने महिषासुर महादेव का ग्रहण किया था। तीनों जन्मों में भगवान् हर रम्भ के पुत्र हुए थे ।१५३। तीनों सृष्टियों में वह रम्भ भी रम्भ ही होकर समुत्पन्न हुआ था। उसने उसी प्रकार का आसुर तप का तपन किया था जो परग दारुण था ।१५४।

तथैवाराधितः शम्भुः पुत्रार्थे प्रददौ वरम् ।
तथैव महिषीं भेजे प्रथमं सुरताय स. ।।१५५
तस्यां तथाऽभवद्वीरो दानवो महिषासुरः ।
तथैव शेपे भगवान् मुनिः कात्यायनस्तु तम् ।।१५६
इति प्रवृत्ते पूर्वेऽस्मिन् परस्मिन् स तु जन्मबि ।
महिषः पूजयित्वाऽथ देवीं वरमयचतः ।।१५७
तृतीये जन्मनि वरं प्राप्य कल्पानशेषतः ।
नेह मे जन्म भवितेत्यवं वरमयाचत ।।१८५
तेन देवीपादतले तिष्ठत्येषोऽसुरोऽधुना ।
नोत्पत्तिरपि तस्याथ संवर्तान्तिदभूः नृपः ।।१५९

उसी भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की थी और पुत्रार्थ वरदान प्रदान किया था। उसी रीति से उसने अपनी महिषी की सुरत के लिए सेवन किया था ।१५५। उसमें उसी प्रकार से दानव महिषासुर दानव वीर हुआ था। भगवान् कात्यायन ने भी उसी प्रकार से उसको शाप दिया था ।१५६। पूर्व जन्म में इस प्रकार से प्रवृत्त होने पर उसने पर जन्म में महिष ने देवी का पूजन करके वर की याचना की थी ।१५७। तीसरे जन्म में वर प्राप्त करके अशेष कल्पों में यहाँ पर मेरा जन्म न होवे—वह वरदान माँगा था ।१५८। इस कारण से देवी के चरणों के तल में इस समय में महिषासुर स्थित रहा है। हे नृप ! इसके अनन्तर सम्बर्त्त के अन्त से उसकी उत्पत्ति भी नहीं हुई थी ।१५९।

एवं देवीप्रसादेन महादेवांशसम्भवः ।
पराभवाप सततं प्रतिपत्ति महासुरः ।।१६०
इति कथितं राजन् यथा स महिषासुरः ।
देवीपादतलं प्राप्य यथा सोऽद्यापि मोदते ।

प्रस्तुतं श्रृणु भो राजन् कथयामि नृपोत्तमः ।।१६१
इति वः कथित राजा सगरः सहितो यथा ।
और्व्वेण चक्रे संवादं देवीमहिषयोजने ।।१६२

इस प्रकार के देवी के प्रसाद से महादेव जी के अंश से उत्पन्न होने वाले महीसुर ने निरन्तर परा प्रति का लाभ किया था ।१६०। वह आज भी देवी के चरणों के तल की प्राप्ति करके परम प्रसन्न होता है । हे राजन् ! यह आपके समक्ष में सब कहकर सुना दिया है जिस तरह से महिषासुर था । हे राजन् ! अब प्रस्तुत विषय का आप श्रवण कीजिए । हे नृपोत्तम ! मैं आपके सामने कहता हूँ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जिस तरह से सहित राजा सागर था और देवी—महर्षि के योजन में और्व के साथ सम्वाद किया था—यह सभी आपको बतला दिया है ।१६२।

—×—

## ।। कामाख्या माहात्म्य ।।

यथाह भगवान् देवो भैरवाय महात्मने ।
वेताला नृपश्रेष्ठ तया त्वं प्रस्तुतं श्रृणु ।।१
उग्रचण्डा चयामूर्तिरष्टादशभुजाऽभवत् ।
सा नवम्यां पुरा कृष्णपक्षे कन्यां गते रवौ ।।२
प्रादुर्भूता महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।
आषाढस्य तु पूर्णायां सत्रं द्वादशवार्षिकम् ।।३
दक्षः कर्तुं समारेभे वृताः सर्वे दिवौक्सः ।
तहोऽहं वृतस्तेन दक्षेण सुमहात्मना ।।४
कपालीति सती चापि तज्जातेति च नो वृता ।
ततो रोषसमायुक्ता प्राणांस्तयाज सासती ।।५
त्यक्तदेहा सती चापि चण्डमूर्तिस्तदाऽभवत् ।
ततः प्रवृत्ते यज्ञेऽपि तस्मिन् द्वादशवार्षिके ।।६
नवम्यां कृष्णपक्षे तु कन्याया चण्डमूर्तिधृक् ।
योगनिद्रां महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।।७

और्व मुनि ने कहा—जिस रीति से भगवान् देव ने महात्मा भैरव से कहा था वेताल के लिए कहा था हे नृप श्रेष्ठ ! आप उसी भाँति प्रस्तुत को सुनो ।१। श्री भगवान् ने कहा—जो उग्र चण्डा मूर्ति है और जो अठारह भुजाओं वाली हुई थी वह पहिले कन्या राशिगत सूर्य के होने पर कृष्ण पक्ष में नवमी में करोड़ों योगिनियों के सहित महामाया प्रादुर्भूत हुई थी। आषाढ़ मास की पूर्णिमा में द्वादश वर्ष का होने वाला सत्र होता है। इस सत्र को करने के लिए प्रजापति दक्ष ने समारम्भ किया था और सभी देवों का वरण किया गया था। अर्थात् महात्मा दक्ष ने मुझे आमन्त्रण नहीं दिया था ।२-३-४। वे कपाली अर्थात् कपाल धारी है और सती उनकी पत्नी है—इसीलिए वरण नहीं किया था। इसके पश्चात् रोष से समायुक्त होकर उस सती ने प्राणों का परित्याग कर दिया था ।५। देह के त्याग करने वाली सती फिर उस समय चण्ड मूर्ति हो गई थी। फिर बारह वर्ष में पूर्ण होने वाले उस यज्ञ के प्रवृत्त होने पर कन्या के सूर्य में कृष्ण में नवमी तिथि के दिन चण्ड मूर्ति को धारण करने वाली योग निद्रा महामाया ने करोड़ों योगिनियों के साथ यज्ञ का नाश किया था ।६-७।

सतीरूपं परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत् ।
शंकरस्य गणैः सर्वैं सहिता शंकरेण च ॥८
स्वयं वभञ्ज सा देवी महासत्रं महात्मनः ।
ततो देव्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवौकसः ॥९
पूजयांचक्रु रतुयां देवीं पूर्वोदितेन वै ।
पूर्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौकसः ॥१०
कृत्वैव परमामापुर्निवृतिं दुःखहानये ।
एवमन्यैरपि सदा कार्यं देव्याः प्रपूजनम् ॥११
विभूतिमतुलां प्राप्तुं चतुर्वर्गप्रदायिकम् ।
यो मोहादथवाऽऽलस्याद् देवी दुर्गां महोत्सवे ॥१२
न पूजयति दम्भाद् वा द्वेषाद्वाऽप्यथ भैरव ।
क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै ॥१३
परत्र च महामाया-बलिर्भूत्वा प्रजायते ।
अष्टम्तां रुधिरैश्चैव महामांसैः सुगन्धिभिः ॥१४

उस महामाया ने सती के स्वरूप का परित्याग करके यज्ञ का विध्वंस कर दिया था। वह सभी भगवान् शिव के गणों तथा शङ्कर के भी सहित थी।८। महात्मा दक्ष के उस महा सत्र को उस देवी ने स्वयं भङ्ग किया था। फिर महादेवी के महान् क्रोध के व्यतीत हो जाने पर देवगणों ने पूर्व में वर्णित प्रकार से उस अनुपम देवी की पूजा की थी। देवों ने पूर्व वर्णित विधान से इस देवी की पूजा की थी।९-१०। देवों ने दुःखों की हानि के लिए पूजा करके ही परम निर्वृत्ति की प्राप्ति की थी इसी प्रकार से अन्य जनों को भी सदा देवी का पूजन करना चाहिए।११। अतुल विभूति की प्राप्ति के लिये इस चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाली पूजा को अवश्य सदा सबको करनी चाहिए। जो मोह वश या आलस्य से इस महोत्सव के अवसर में देवी दुर्गा का पूजन नहीं करता है। हे भैरव ! दम्भ से या द्वेष से यजन नहीं करता है तो उससे देवी परम क्रुद्ध हो जाती है और अभीष्ट कामनाओं का निहनन किया करती हैं।१२-१३। पर जीवन में महामाया का वलियों का प्रजनन प्राप्त किया करता है। अष्टमी तिथि में सुगन्धित महा माँसों और रुधिरों के द्वारा शिव का अभ्यर्चन करना चाहिए।१४।

पूजयेद्बहुजातीयैर्बलिभिर्भोजनै शिवाम् ।
सिन्दूरैः पट्टवासोभिर्नानाविधविलेपनैः ॥१५
पुष्पैरनेकजातीयैः फलैर्बहुविधैरपि ।
उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ॥१६
यथा तथैव पूतात्मा व्रतो देवीं प्रपूजयेत् ।
पूजयित्वा महाष्टम्यां नवम्यां बलिभिस्तथा ॥१७
विसर्जयेद् दशम्यांतु श्रवणे शावरोत्सवैः ।
अन्त्यपादी दिवाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥१८
तदा सम्प्रेषण देव्या दशम्यां करयेद् बुधः ।
सुवासिनी–कुमारीभिर्वेश्याभिर्नर्तकैस्तथा ॥१९
शंखतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा ।
ध्वजैर्वस्त्रैर्बहुविधैर्लाजपुष्पप्रकीणकैः ॥२०

बहुत जाति वाली बलियों के द्वारा तथा भोजना से—सिन्दूर—वह वस्त्र—अनेक प्रकार के विलेपन—पुष्प जो नाना प्रकार के हों—बहुत तरह

के फलों के द्वारा पूजन करना चाहिए। इस महाष्टमी में जो पुत्र वाला हो उसे उपवास नहीं करना चाहिए।१५-१६। जिस किसी प्रकार से पवित्र आत्मा वाला व्रतधारी देवी का यजन करे। महाष्टमी में पूजा करके नवमी तिथि में बलियों का समर्पण करके विदा करे।१७। दशमी तिथि में श्रवण में शावरोत्सवों के द्वारा जिस समय में दिवा के भाग में श्रवण का अन्तिम चरण होवे उसी समय में देवी का दशमी में बुध पुरुष को सम्प्रेषण करना चाहिए। सुवासिनियों के द्वारा---कुमारियों के वेश्याओं के—नर्तकियों के द्वारा—शंखों—तूर्यो की ध्वनियों से—मृदङ्ग और पटहों के द्वारा ध्वज बहुत प्रकार के वस्त्रों से---लाजा (खील) और पुष्पों के प्रकीर्ण के द्वारा।१८-२०।

तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा।
अन्त्यपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥२१
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां दिनभागतः।
विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण वत्स भैरव ॥२२
कर्तव्यसम्भसि स्थाप्य विसृज्य च विभूतये।
उत्तिष्ठ देवि चण्डेशे शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥२३
कुरुष्व मम कल्याणमष्टभिः शक्तिभिः सह।
गच्छ गच्छ परं स्थान स्वस्थानं देवि चण्डिके ॥२४
यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे।
व्रज त्वं स्रोतसि जले तिष्ठ गेहे च भूतये ॥२५

उसी समय नवमी में निशा के भाग में देवी का समुत्थान करे दिन में नहीं करे। निशा के भाग में जब अन्तिम चरण श्रवण का होवे।२१। उसी समय में देवी का समुत्थान नवमी में दिन के भाग में होता है। हे वत्स भैरव! इसी मन्त्र के द्वारा विसर्जन होता है।२२। कर्त्तव्य का जल में स्थापित करके विभूति के लिए विसर्जन करना चाहिए। हे देवि! हे चण्डेशे! आप समुत्थान कीजिए और शुभा पूजा का ग्रहण करिये।२३। अपनी आठों शक्तियों के सहित मेरा कल्याण करिए। हे देवि! चण्डिके! अपने परम स्थान को गमन कीजिए प्रस्थान करिए।२४। हे देवि! मेरे द्वारा जो पूजन किया गया है वह मुझे परिपूर्ण होवे। आप स्त्रोता के जल में गमन करो और भूति के लिए गृह से सस्थित होइए।२५।

निमज्ज्याम्भसि सन्त्यज्य पत्रिकावर्जिते जले ।
पुत्रायुधनवृद्ध्यर्थं स्थापितासि जले मया ।।२९
इत्यनेन तु मन्त्रेण देवी संस्थापयेज्जले ।
सर्वलोक-हितार्थाय सर्वलोकविभूतये ।।३०
दुर्गा तन्त्रेण पूजितव्ये उभे ऽपि ।
भद्रकालीमुग्रचण्डां महामायां महोत्सवे ।।३१
नेत्रबीजं तु सुर्वासां पूजने परिकीर्तितम् ।
योगनीनां तु सर्वासां मूलमूर्तैतथैव च ।।३२
मन्त्र तथोग्रचण्डायाः पृथक् त्वं शृणु भैरव ।
आद्यद्वयं नेत्रबीजं मन्त्रस्योपान्तमन्तरे ।।३३
वाह्नाऽन्तः स्वरेणेन्दुबिंदुभ्यां तन्त्रमौग्रकम् ।
नेणबीजं द्वितीयं तु द्विधावर्तितमुच्यते ।।३४
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रोऽयं धर्मकामार्थसिद्धये ।
यदा तु वैष्णवी देवी महामाया जगन्मयी ।।३५

जल में निमज्जन करके पत्रिका वर्जित जल में भली भाँति त्याग करके पुत्र—आयु और धन की वृद्धि के लिए मेरे द्वारा जल में आपको स्थापित किया है ।२९। इसी मन्त्र के द्वारा देवी का जल में संस्थापन करना चाहिये । यह सब लोकों के हित के सम्पादन के लिए और सब लोगों की विभूति के लिए करे ।३०। महोत्सव में दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के द्वारा भद्र-काली—महामाया उपचण्डा दोनों ही देवियों का पूजन करना चाहिए ।३१। सब देवियों के पूजन में नेत्र बीज परिकीर्तित किया गया है । सब योगिनियों का तथा मूल मूर्ति का तथा उग्र चण्डा का मन्त्र हे भैरव ! आप पृथक् श्रवण कीजिए । अन्तर में मन्त्र का उपान्त आद्यद्वय नेत्र बीज है । अन्तः स्वरवह्नि से–विन्दुओं से औग्रक तन्त्र है । द्वितीय तो नेत्र बीज द्विधा वर्त्तित कहा जाता है ।३२–३४। यह भद्रकाली का मन्त्र है जो धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिए है । जिस समय वैष्णवी देवी जगन्मयी महामाया है ।३५।

पूज्यते वैष्णवी देवी तन्त्रोक्ता अष्टयोगिनीः ।

ताः प्रोक्ताः शैलतन्त्र्याश्च पूर्वकल्पे च भैरव ॥३६
उग्रचण्डादयश्चाष्टौ दुर्गातन्त्रस्य कीर्तिताः ।
भद्रकाल्यास्तु गन्त्रेण भद्रकालीं प्रपूजयेत् ॥३७
पूजयेद् भूतिवृद्ध्यर्थमेता एवाष्टयोगिनी ।
जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकाली कपालिनीम् ॥३८
दुर्गां भिवां क्षमां धात्रीं दलेष्वष्टसु पूजयेत् ।
यदोग्रचण्डातन्त्रेण सा देवी तत्र पूज्येत् ॥३९
योगिन्यस्तत्र पूज्याः स्युरष्टावन्याश्च भैरव ।
कौशिकी शिवदूती च उमा हेमवतीश्वरी ॥४०
शाकम्भरी च दुर्गा च सप्तमी च महोदरी ।
उमायाः सौम्यमूर्तेस्तु तन्त्रं त्वं श्रृणु भैरव ॥४१
पादिः समाप्तिसहितः फडन्ती नान्त एव च ।
एकाक्षरस्त्र्यक्षरश्च उमामन्त्र इति स्मृतः ॥४२

आठ योगिनियों वाली तन्त्र में वर्णित वैष्णवी देवी का यजन किया जाया करता है । हे भैरव पूर्व कल्प में वे शैल की पुत्री कही गयी है ।३६। उग्रचण्डा आदि आठ दुर्गा तन्त्र की कीर्तित की गयी हैं । भद्रकाली के मन्त्र के द्वारा भद्र काली का पूजन करना चाहिये ।३७। ये आठों योगिनियों का भूति की वृद्धि के लिए अभयर्चन करना चाहिए । अब उन आठों के नाम बतलाये जाते हैं—जयन्ती–मङ्गला–काली—भद्रकाली—कपालिनी–दुर्गा—शिवा—क्षमा—धात्री इनका आठ दलों में पूजन करे । जिस समय में उग्रचण्डा तन्त्र के द्वारा वहाँ पर वह देवी पूजी जाती है ।३८-३९। हे भैरव ! वहाँ पर आठ योगिनियाँ जो अन्य हैं पूजनी चाहिए अब इनके भी नाम बतलाये जाते हैं—कौशिकी—शिव दूती—उमा–हेमवतीश्वरी–शाकम्भरी–दुर्गा—सातवीं महोदरी है । हे भैरव ! सौम्य मूर्ति उमा का तन्त्र अब आप श्रवण कीजिए ।४०-४१। समाप्ति के सहित पादि फट् जिसके अन्त में होवे और अन्त ही न होवे । एक अक्षर वाला और तीन अक्षरों से संयुत उमा का मन्त्र कहा गया है ।४२।

जया च विजया चैव मातङ्गी ललिता ॥४३

नारायण्यथ सावित्री स्वधा स्वाहा तथाऽष्टमी ।
पूर्वं शुम्भो निशुम्भश्च दानवौ भ्रातरावुभौ ।।४४
बभूवतुर्महासत्त्वौ महाकायौ महावलौ ।
अन्धकस्य सुतौ द्वौ तौ दन्तिनाविव दुर्मदौ ।।४५
मया विनिहिते तस्मिन्नन्धकाख्ये महाबले ।
ससन्यवाहनौ तौ पातालतलदाश्रितौ ।।४६
सुवर्ण सदृशीं गौरी भुजद्वयसमन्विताम् ।
नीलारविन्दं वामेन पाणिनां विभ्रतीं सदा ।।४७
शुक्लं तु चामरं धृत्वा भर्गस्यांगेऽथ दक्षिणे ।
विन्यस्य दक्षिणं हस्तं तिष्ठन्ती परिचिन्तयेत् ।।४८
विनापि शम्भुं रुद्राणीं भक्तस्तु परिचिन्तयेत् ।
द्विभुजां स्वर्णगौरांगी पद्मचामरधारिणीम् ।।४९
व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मसनगता सदा ।
एतस्याः पूजने प्रोक्ता अष्टौ वेतालभैरव ।।५०
योगिन्यो नायिकाश्चापि पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।

अब ध्यान बतलाया जाता है—सुवर्ण के समान वर्ण वाली है—गौरी—दो भुजाओं से युक्त हैं दाँये हाथ से नील कमल को सदा धारण किये रहती हैं ।४३। शुक्ल चामर को धारण करके भर्ग के दाहिने अङ्ग में दाहिने हाथ का विन्यास करके संस्थित हैं—ऐसा ही परिचिन्तन करना चाहिए ।४४। भक्त को शम्भु के बिना भी रुद्राणी का ध्यान करना चाहिए । जो दो भुजाओं वाली है—स्वर्ण के सदृश परम शुभ्र अङ्गों से समन्वित है—पद्म तथा चामरों को धारण करने वाली है । व्याघ्र के चर्म पर स्थित पद्म पर सदा पद्मासन में संस्थित है । हे वेताल भैरव ! इसके पूजन में आठ योगिनियाँ बतायी गयी हैं ।४५-४६। योगिनियों और नायिकायें भी पृथक् व्यवस्थित हैं—अब उन आठों के नाम बताये जाते हैं-जया-विजया-मातङ्गी—ललिता—नारायणी—सावित्री—स्वधा—स्वाहा ये हैं । पहिले समय में शुम्भ और निशुम्भ ये दो भाई दानव थे ।४७-४८। ये दोनों महान् सत्व वाले थे । इनका विशाल शरीर था । ये महान् बल वाले थे अन्धक

दानव के पुत्र थे और ये दोनों मतवाले दुर्मद गजों के ही समान थे ।४६। ये अन्धक नाम वाले महान् बलवान् मेरे द्वारा ही विनहित हुए थे। वे दोनों सेना के सहित रहते थे और उनके वाहन भी थे। वे पाताल तल में समाश्रित थे ।५०।

ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं ब्रह्माणन्तौ महासुरौ ।
सम्यक् तदाऽतोषयतां स सुपीतो वरं ददौ ।।५१
तौ ब्रह्मवरदृप्तौ तु समासाद्य जगत्त्रयम् ।
इन्द्रत्वमकरोच्छुम्भश्चन्द्रत्व च निशुम्भकः ।।५२
सर्वेषामेव देवानां यज्ञभागानुपाहरत् ।
स्वयं शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालत्वं तौ गतौ ।।५३
सर्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गत्वा हिमाचलम् ।
गंगावतारनिकटे महामायां प्रतुष्टुवुः ।।५४
अनकेशः स्तुता देवी तदा सर्वामरोत्करैः ।
मातंगवनितामूर्तिर्भूत्वा देवानपृच्छत ।।५५
युष्माभिरमरैरत्र स्तूयते का च भामिनी ।
किमर्थमागता यूयं मातंगस्याश्रम प्रति ।।५६

इसके उपरान्त उन दोनों महान् असुरों ने परम तीव्र तपश्चर्या की और उस समय तप के द्वारा उन्होंने ब्रह्मा जी को परम सन्तुष्ट कर लिया था। ब्रह्माजी ने बहुत ही प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया था ।५१। वे दोनों ही ब्रह्माजी के द्वारा वर प्राप्त करके बहुत घमण्डी हो गये थे और उन्हीं तीनों लोकों को प्राप्त कर लिया था। शम्भु ने इन्द्र के पद को प्राप्त करके इन्द्रत्व कर लिया था और निशुम्भ ने चन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था ।५२। इन्होंने समस्त देवगणों के जो यज्ञों में भोग ये उनका उपाहरण कर लिया था। स्वयं शुम्भ और निशुम्भ ने दिक्पालों के पद को प्राप्त कर लिया था ।५३। इन्द्र के सहित समस्त देवगण फिर हिमाचल पर गये थे और गङ्गावरण के स्थल के समीप में उन्होंने महामाया की स्तुति की थी ।५४। नाना भाँति से स्तवन की हुई देवी जो कि सभी देवों के समुदायों द्वारा स्तुत हुई थी मातङ्ग वनिता का स्वरूप धारण करके उस देवी ने देव-

गणों से पूछा था ।५५। हे देवगणों ! यहाँ पर आपके द्वारा कौन-सी भामिनी का स्तवन किया जा रहा है और आप लोग यहां पर किसलिये समागत हुए हुए हैं किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये इस मातङ्ग के आश्रम की ओर आये हैं ? ।५६।

एवं ब्रुवन्त्या सातंग्यास्तस्यास्तु कायकोषतः ।
समुद्भुताऽब्रवीद् देवीं मां स्तुवन्ति सुरा इति ।।५७
शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ बाधेते नकलान् सुरान् ।
तस्मात् तयोर्वधायाहं स्तये तैः सकलः सुरैः ।।५८
विनिः सृतायां देव्यां तु मातंग्याः कायकोषतः ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साऽभूद् गौरी क्षणादपि ।।५९
कालिकाख्याऽभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ।
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिणः ।।६०
उग्रादपि भयात्त्राति यस्माद् भक्तान् सदाम्बिका ।
एतस्याः प्रथमं बीज कथितं त्रयमेव च ।।६१
एषैवैकजटाख्या तु यस्मात्तमाज्जटैकिका ।
शृणुतं चिन्तनं चास्याः सम्यग्वेतालभैरवौ ।।६२
यथा ध्यात्वा महादेवीं भक्तः प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।६३

इस प्रकार से यह बोलती हुई उस मातंगी के काय कोष से समुद्भूत हुई देवी ने कहा—ये सुरगण मेरा ही स्तवन कर रहे हैं ।७५। शुम्भ और निशुम्भ ये असुर समस्त देवों को बाधा दिया करते हैं । इसी कारण से उन दोनों के वध करने के ही लिये इन समस्त सुरों के द्वारा मेरा स्तवन किया जा रहा है ।५८। मातंगी के काय कोष से देवी के विनिसृत होने पर वह गौरी पिसे हुए अञ्जन के समान ही एक ही क्षण में कृष्ण वर्ग की हो गयी थी ।५९। वह भी कालिका नाम वाली हो गयी थीं और वह हिमवान पर्वत में समाश्रय वाली थी । ऋषिगण जो मनीषी है उसको यहाँ पर उग्र तारा नाम से कहा करते हैं ।६०। यह अम्बिका देवी सदा अत्युग्र भय से भी परित्राण किया करती है । इसका प्रथम बीज तीनों ही कहे गये हैं ।६१। यह ही

इसी कारण से एक जटा नाम वाली है क्योंकि एक ही जटा वाली है। हे वेताल भैरवी ! इसका चिन्तन अर्थात् ध्यान किस प्रकार से करना चाहिए उसका अब आप लोग श्रवण करिए ।६२। जिस प्रकार से भक्त ध्यान करके अपना अभीप्सित प्राप्त किया करता है—वह चार भुजाओं से समन्वित है उनका वर्ण एकदम कृष्ण है और यह नरमुण्डों की माला से शोभायमान है ।६३।

खड्गं दक्षिणपाणिभ्यां बिभ्रतीं चामरं त्वधः ।
कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमागामेन विभ्रतीम् ।।६४
द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रतीं शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा ।।६–
वक्षसा नागहारं तु बिभ्रतीं रक्तलोचनाम् ।
कृष्णवस्त्रधरां कट्यां तथाध्राजिन-समन्विताम् ।।६६
वामपाद शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पद्म ।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहानां शवं स्वयम् ।।६७
साट्टहासां महाघोरां रावयुक्तातिभीषणाम् ।
चिन्त्याग्रे तारा सततं भक्तिमदभिः सुखेप्सुभिः ।।६८
एतस्याः सम्प्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीः स्मृताः ।
महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ।।६९
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् ।।७०

दाहिने हाथों से वह खंग को धारण किये हुए हैं और अधोभाग में चमर कर रहीं हैं। क्रम से बाँये हाथ से खर्पर को धारण करने वाली हैं ।६४। स्वयं शिर के द्वारा एक जटा को धारण कर रही हैं। जो द्युलोक को मानों जटा से लिख रही होंवें। मस्तक में मुण्डों की माला पहिने हुए हैं और सर्वदा ग्रीवा में भी मुण्डमाला धारण करती हैं ।६५। उनके वक्षः स्थल में नागों का हार है और उनके नेत्र रक्त वर्ण के हैं। कोटि में कृष्ण वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली है तथा बाघाम्बर से भी समन्वित रहती हैं ।६६। उनका बाँया चरण शव के हृदय पर है तथा दाहिना चरण सिंह की पीठ

पर संस्थापित हो रहा है और स्वयं शव को अपनी लम्बी जिह्वा से चाट रही है ।६७। अट्टहास करती हुई महान् घोर ध्वनि वाली अत्यन्त ही भीषण स्वरूप वाली है। निरन्तर सुख की इच्छा वाले भक्तियुक्त भक्तों के द्वारा आगे वह तारा देवी चिन्तन के योग्य हैं ।६८। अब इस देवी की जो आठ योगिनियाँ कही गयीं हैं उनको मैं बतलाऊँगा। उनके अब नाम बतलाये जाते हैं—महाकाली—रुद्राणी—उग्रा—भीमा—घोर—भ्रामरी—महारात्रि और आठवीं भैरवी बतलायी गई है। उन योगनियों का यजन करना चाहिए ।७९-८०।

या कायकोषान्निःसृता कालिकायास्तु भैरव ।
सा कौशिकीति विख्याता चारुरूपा मनोहरा ।।७१
निःसृता हृदयाद् देव्या रसनाग्रेण चण्डिका ।
नैतस्या सदृशी मूर्त्या चारुरूपेण विद्यते ।।७२
त्रिषुलोकेषु कान्त्या वा नास्यास्तुल्या भविष्यति ।
योगनिद्रा महामाया या मूलप्रकृतिर्मता ।।७३
तस्याः प्राणस्वरूपेयं देवी या कौशिकी स्मृता ।
नेत्रबीजं तथैतस्या बीजं तु परिकीर्तितम् ।।७४
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि मूर्तिरूपं च भैरव ।
समाप्तिनान्त्यस्तु षड्वर्गादि-सविन्दुभिः ।।७५
षष्ठस्वरेण संस्पृष्टो बिन्दुना समलंकृतः ।
कौशिकीमन्त्रतन्त्रोऽयं सर्वकामार्थदायकः ।।७६
तस्यास्तु सम्प्रवक्ष्यामि या मूर्तिरिह भैरव ।
श्रृणुवैकमना भूत्वा जगदाह्लादकारकम् ।।७७

हे भैरव ! जो कालिका के काम कोष से निकली थी वह कौशिकी इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी। यह परम सुन्दर—स्वरूप वाली और अत्यधिक मनोहर थी ।७१। यह देवी के हृदय से निःसृत हुई थी रसना के अग्रभाग से चण्डिका निकली थी। यह इतनी अधिक सुन्दर थी कि इनके संतान कोई भी अपनी मूर्ति की चारु रूपता से युक्त नहीं थीं -७२। तीनों लोकों में कान्ति से इसके तुल्य कोई भी नहीं है और न होगी। जो महा-माया योग निद्रा मूल प्रकृति मानी गयी है ।७३। जो यह कौशिकी देवी कही

गयी है यह उसकी प्राण की स्वरूप वाली है । तथा इसका नेत्र बीज कहा गया है ।७४। हे भैरव ! इसका मन्त्र और मूर्त्ति रूप को मैं कहूँगा । समाप्ति नान्त्य दन्त्य बिन्दुओं के सहित सर्वाङ्गादि और परस्पर में संस्पृष्ट हो और बिन्दु से समलंकृत होवे यह कौशिकी मन्त्र का तन्त्र है जो समस्त काम और अर्थ का देने वाला है ।७५-७६। हे भैरव ! उनकी जो यहाँ पर मूर्ति है उसको मैं बतलाऊँगा । आप एक मन वाले होकर उसका श्रवण करिये। वह जगत् के आह्लाद का करने वाला है ।७७।

धम्मिल्लसंयतकचां विधोश्चाधोममुखीं कलाम् ।
केशान्ते तिलकस्योर्ध्वे दधती सुमनोहरा ।।७८
मणिकुण्डलसंघृष्टगण्डा मुकुटमण्डिता ।
सज्ज्योतिः कर्णपूराभ्यां कर्णमापूर्य संगता ।।७९
सुवर्णमणिमणिक्यनागहरविराजिता ।
सदा सुगन्धिभिः पद्मैरम्लानैतिसुन्दरी ।।८०
मालां विभूति ग्रीवायां रत्नकेयूरधारिणी ।
मृणालायतवृत्तेस्तु वाहुभि कोमलैः शुभैः ।।८१
राजन्ती कञ्चुकोपेत-पीनोन्नत पयोधरा ।
क्षीणमध्या पीतवस्त्रा त्रिवलीप्रख्यभूषिता ।।८२
शूलं वज्रं च वाणं च खड्गं शक्ति तथैव च ।
दक्षिणः पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ।।८३
गदां घण्टां च चापं च चम शंख तथैव च ।
ऊर्ध्वादिक्रमतो देवी दधती वामपाणिभिः ।।८४

अब उसके स्वरूप का वर्णन किया जाता है—धाम्मिल पुष्पों के द्वारा जिसके केश सुसंयत हैं—केशों के अन्त में और तिलक के ऊर्ध्व भाग में चन्द्र की नीचे की ओर मुख वाली कला को धारण किये हुए हैं और परम मनोहर है । मणियों से परिपूर्ण कुण्डलों से जिसके गण्ड स्थल संम्पृष्ट हो रहे हैं तथा जिसका मस्तक मुकुट से विभूषित है । कर्ण पूरों की सद्ज्योति कानों को आपूरित करके सङ्गत हो रही है और वह सुवर्ण—मणि तथा माणिक्यों के सहित नागहार से विराजमान है । वह सर्वदा सुगन्ध युक्त पद्मों से जो

कि म्लान नहीं हैं अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाली है ।७८-८७। जो अपनी ग्रीवा में माला को धारण किये हुये हैं और निर्मित केयूरों को पहिने हुए हैं। यह मृणाल के सदृश आयत एवं सुवृत्त तथा कोमल और शुभ बाहुओं से समन्वित है। ।८१। को कञ्चुकी के समेत पीर एवं उन्नत पयोधरों वाली शोभायमान है। इनका मध्यभाग बहुत क्षीण है—पीत वर्ण के वस्त्रों वाली हैं और त्रिवली से विभूषित है ।८२। वह देवी अपने दाहिने ओर के करों के द्वार-शूल—वज्र वाण—खड्ग और शक्ति को धारण करके विराजमान है ।८३। वह देवी अपने बांये करों से ऊर्ध्वादि क्रम से ही गदा–जटा–चाप–वर्म और शंख को धारण करने वाली है ।८४।

सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्माणि कौशिकी ।
विभ्रति रूपमतुलं ससुरासुरमोहनम् ॥८५
एतस्याः श्रृणु वत्स त्वं याः पूज्या अष्टयोगिनीः ।
ताः पूजिताश्च कुर्वन्ति चतुर्वर्गं नृणां सदा ॥८६
ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरीं मता ।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ॥८८
नारसिंही तथैवैन्द्री शिवदूती त्रथाऽष्टमी ।
एतः पूज्या महाभागा योगिन्यः कामदायिकाः ॥८८
देव्या ललाटनिष्क्रान्ता वा कालीति च विश्रुता ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं श्रृणु भैरव ॥८९
समाप्तिसहितो दन्त्य प्रान्तस्तस्मात् पुरः सरः ।
षष्ठस्वराग्निविन्द्विन्दुसहितः सादिरेव च ॥९०
कालीमन्त्रमिसि शोक्तं धर्मकामार्थदायकम् ।
एतन्मूर्ति प्रवक्ष्यामि वत्सैकाग्रमनाः श्रृणु ॥९१

वह कौशिकी देवी सिंह के ऊपर संस्थित हैं तथा व्याघ्र के चर्म को धारण किये हुए हैं। उनका रूप अयल अर्थात् अनुपम है—जो सभी सुरों और असुरों के मोदन करने वाला है।८५। हे वत्स! इसकी जो आठ योगिनी पूजा के योग्य हैं उनके विषय में आप श्रवण करिये। ये पूजित होती हुई मनुष्यों के चतुवर्ग को सदा किया करता है ।८६। अब उन आठों के शुभ

नाम बतलाये जाते हैं—सर्व प्रथम ब्रह्माणी कही गयी है—फिर माहेश्वरी-कौमारी—वाराही-तथा पाँचवी वैष्णवी है—नारसिंही—ऐन्द्री—तथा आठवीं शिवदूती है। इन महामाया योगिनियों का अभ्यर्चन करना चाहिए। ये कामनाओं के प्रदान करने वाली हैं।८७-८८। जो देवी ललाट से विनिर्गत हुई थी बतलाऊँगा—उसका आप श्रवण करिए मन्त्र कामनाओं का प्रदान करने वाला है।८९। समाप्ति के सहित दन्त्य है और उसके आगे रहने वाला प्रान्त होता है। छटवें स्वर अग्नि और बिन्दु के सहित होता है तथा आदि के भी सहित होता है।९०। यह काली का मन्त्र गताया गया है। यह धर्म-काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है। अब इसकी मूर्ति का वर्णन करूँगा। हे वत्स ! तुम एकाग्र मन वाले होकर उसका श्रवण करिए।९१।

नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसुमन्विता।
खट्वांगं चन्द्रहास च विभ्रती दक्षिणे ॥९२
वामे चर्म च पाशं च ऊर्ध्वाधोभागतः पुनः।
दधती मुण्डमालां च व्याघ्रचर्मधरा वराम् ॥९७
कृशांगी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा।
लोलजिह्वा निम्नरक्तःनयना नादभैरवा ॥९४
कबन्धवाहनासीना विस्तारःश्रवणानना।
एषा ताराह्वया देवी चामुण्डेति च गीयतेः ॥९५
प्रतस्या योगिनोश्चाष्टौ पूजयेच्यितयेत् यदिः।
त्रिपुरा भीषण चण्डी कर्त्री हर्त्री विधायिनी ॥९६
कराला शूलिनी चेति अष्टौ ता, परिकीर्तिताः।
एषाऽतिकामदा देवी जाड्यहानिकरी सदा ॥९७
एतस्याः सदृशी काचित् कामदा न हि विद्यते।
कौशिक्या हृदयाद् देवी निःसृता ध्यायतो हरेः ॥९८

वह नील कमल के समान श्याम वर्ण वाली है और चार बाहुओं से समन्वित उनका वपु है। वह अपने दाहिने कर में खट्वाङ्ग और चन्द्र हास को धारण करने वाली है।९२। वाम करमें पुनः ऊर्ध्व और अधो भाग में चर्म और पाश को धारण किये हुए हैं। कण्ठ में नरमुण्डों की माला पहिने हुए है और व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाली परम श्रेष्ठ हैं।९३। उनका अंग कृश है और लम्बी दाढ़ों वाली है तथा अत्यन्त दीघ अर्थात् लम्बी

एवं अत्यन्त भीषण स्वरूप से समन्वित है। उनकी जिह्वा अतीव चञ्चल हैं—निम्न रक्त वर्ण वाले नेत्रों से संयुत है—उनका महान् भैरव नाद है ॥९४। मृत मनुष्य के धड़ को वाहन बना कर उपविष्ट हैं और उनके श्रवण तथा नुख विस्तार वाले हैं। इस प्रकार के स्वरूप से सम्पन्न यह तारा देवी है और यह चामुण्डा—इन नाम से गान की जाया करती है।९५। बस देवी की आठ योगिनियाँ हैं यदि उनका यजन एवं ध्यान किया जावे। उनके ये शुभ नाम हैं—त्रिपुरा—भीषण—चण्डी—कर्त्री—दायिनी ।९६। कराला और शूलिनी—ये आठ वे कीर्त्तित की गयी हैं। यह देवी अति काम की हानि करने वाली है। अर्थात् के भाव का विनाश कर देने वाली ।९७। इस देवी के समान कोई भी कामनाओं के देने वाली नहीं है। यह देवी कौशिका के हृदय से निकली हैं और ध्यान करने वाले हरि को यह प्रसिद्ध हैं।९८।

शिवदूतीति सा ख्याता या च देवशतैर्वृता ।
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थदायकम् ॥९९
यच्छ्रुत्वा साधको याति दुर्लभं शिवमन्दिरम् ।
यामाराध्य महादेवी शिवदूतीं शिवात्मिकाम् ॥१००
नचिरारुलभले कामान् नरः सर्वजयी भवेत् ।
अन्तः समाप्तिसहितो बिन्द्विन्दुभ्यां दशावरः ॥१०१
स्वरेणोपान्तदन्त्येन संस्पृष्टोऽन्तेन पूर्वशः ।
स एव बिन्दुयुगलपूर्वस्थोपान्तपावकः ॥१०२
षष्ठस्वरकलाशन्यै सहितः प्रथमस्थितः ।
मन्त्रोऽयं शिवदूत्यास्तु शिवदूतीजयप्रदः ॥१०३
रूपमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु वत्सैकसम्मतः ।
चतुर्भुजं महाकायं सिन्दुरसदृशद्युति ॥१०४
रक्तदन्तं मुण्डमालाः जटाजूटार्धचन्द्रधृक् ।
नागकुण्डलहाराभ्यां शोभितं नखराज्वलम् ॥१०५

यह देवी शिवदूती नाम से प्रसिद्ध है और सैकड़ों देवों से सर्वदा समावृत रहा करती है। अब मैं इसका मन्त्र बतलाऊँगा जो धर्म काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है।९९। जिसका श्रवण करके साधना करने

वाला व्यक्ति परम दुर्लभ भगवान् शिव के मन्दिर में गमन किया करता है। जिस महादेवी की आराधना करके जो कि शिव दूती और शिव के ही स्वरूप वाली हैं मनुष्य अविलम्ब ही समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और सब विजय प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है। अन्त समाप्ति के सहित है और बिन्दु तथा इन्दु से दशाबर है।१००-१०१। उपान्त्य दन्त्य स्वर से अन्त से पूर्व से संस्पृष्ट होता है। वह ही दो बिन्दु पूर्व में स्थित उपान्त पावक है।१०२। छटे स्वर कला से शून्यों के सहित प्रथम स्थित है। यह शिव दूती का मन्त्र है जो शिवदूती के जप को प्रदान करने वाला है। ।१०३। हे वत्स ! अब मैं इसके स्वरूप का वर्णन करूँगा। आप एकाग्र चित्त होकर ही इसका श्रवण करिये। इसकी चार तो भुजायें हैं—परम विशाल शरीर है और सिन्दूर के समान ही इसकी आकृति है।१०४। रक्त वर्ण वाली इसकी दन्त पंक्ति है। कंठ में नर मुण्डों की माला धारण किये हुये रहती है और मस्तक में जटा जूट तथा अर्द्ध चन्द्र विराजमान रहा करता है। नागों के कुण्डलों तथा हार से शोभायमान हैं उसके नख परम उज्वल हैं।१०५।

व्याघ्रचर्म-परीधान दक्षिणे शूलखण्डधृक् ।
वामे पाशं तथा चर्म बिभ्रदूर्ध्वापरक्रमात् ॥१०६
स्थूलवक्त्रं च पीनाष्ठं तुंगमति भयंकरम् ।
निक्षिप्य दक्षिणं पाद सन्तिष्ठत् कुणपोपरि ॥१०७
यामपादं शृगालस्य पृष्ठे केरुशतैर्वृतम् ।
ईदृशी भिवदूत्यास्तु मूर्ति ध्यायेद् विभूतये ॥१०८
ध्यानमात्रावथैतस्ता नरः कल्याणमाप्नुयात् ।
पूजनादविराद देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥१०९
यः शिवाविरुतं श्रुत्वा शिवदूतीं शुभप्रदाम् ।
प्रणमेत साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ॥११०
यदा जघान जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।
महादेवी महामाया तदास्याः कायतः सृताः ॥१११
दूतं प्रस्थापयामास शिवं शुम्भाय साम्बिका ।
तेन सा शिवदूतीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ॥११२

यह देवी वाघम्बर का परिधान करती है। दक्षिण भुजाओं में शूल खंब धारण किया करती हैं तथा बाँये करों में पाश तथा चर्म ऊर्ध्व तथा अधो भाग के क्रम से धारण करने वाली हैं।१०६। इनका मुख स्थूल है—पीन अर्थात् मोटे ओष्ठ हैं—इनकी मूर्ति बहुत ऊँची है और यह परमाधिक भयङ्कर हैं—यह दाहिने चरण को कुणप के ऊपर निक्षिप्त करके सस्थित रहती है। उनका बाँया चरण शृंगाल की पीठ पर रहता है जो शृंगाल सैंकड़ों ही फेरुओं से घिरा हुआ है होता है। इस प्रकार की शिव दूती की प्रतिमा है। इसका ध्यान विभूति की वृद्धि के लिये करना चाहिए।१०७-१०८। इस देवी के केवल ध्यान ही करने से मनुष्य परम कल्याण की प्राप्ति कर लिया करता है। और यदि इस देवी का अर्चन किया जावे तो यह समस्त कामनाओं को प्रदान कर दिया करती है।१०९। जो कोई पुरुष शिवाओं की ध्वनि का श्रवण करके शुभों की प्रदात्री शिवदूती का साधक प्रणाम किया करता है और भक्ति की भावना से प्रणिपात करता है तो उसकी सभी कामनायें उसके हाथ ही में स्थित रहा करती हैं।११०। जिस अवसर पर समस्त जगतों की भलाई करने के लिए इसने रक्त बीज का हनन किया था तो उस समय में महामाया महादेवी इसके शरीर से विनिःसृत हुई थी।१११। उस अम्बिका ने शुम्भ दैत्य के लिए शिव को ही अपना दूत बनाकर उसके पास प्रेषित किया था। उसी कारण से वह समस्त देवगणों के द्वारा शिवदूती इस शुभ नाम से गान की जाया करती है।११२।

क्षेमकरी च शान्ता वेदमाता महोदरी।
कराला कामदा देवी भगास्या भगमालिनी ॥११३
भगोदरी भगारोहा भगजिह्वा भगा तथा।
एता द्वादश योगिन्यः पूजने परिकीर्तिताः ॥११४
एता द्वादश योगिन्यः शिवदूत्याः सदैव हि।
विचरन्ती स्वयं देवी यत्र तत्रैव गच्छति ॥११५
योगिन्यो ह्यथ सख्यः स्युर्यथान्यासां तथा पुनः।
चण्डिकायास्तु योगिन्यः संख्योऽत्र च प्रकीर्तिताः ॥११६
इति ते त्वङ्गमन्त्राणि कथितानि समासतः।
कामाख्यायाश्च माहात्म्यं कल्पमात्रं वदामि वाम् ॥११७

इसके पूजन में वारह योगिनियाँ कीर्त्तित की गयी हैं—उनके शुभ नाम ये हैं—क्षेमकारी—शान्ता—वेदमाता महोदरी कराला—कामदा देवी—भगास्या—भग मालिनी—भगोदरी—भगारोहा—भग-जिह्वा—भगा—ये द्वादश योगिनियाँ है जिनका पूजन कहा गया है ।११३-११४। देवी स्वयं ही विचरण करती हुई जहाँ-तहाँ पर गमन किया करती है ।११५। जिस प्रकार से अन्यों की हुआ करती है वैसे हो पुनः ये योगिनियाँ सखियाँ होती हैं। चण्डिका की योगिनियाँ यहाँ पर सखियाँ बतायी बई ।११६। ये इस रीति से आमने सामने अंग मन्त्र से क्षेम में वर्णित कर दिये गये हैं। अब आप दोनों के समक्ष में कामाख्या देवी का कल्पमात्र माहात्म्य बतलाता हूँ ।११७।

—×—

## ।। नृप धर्म कथनम् ।।

कथिता भवता सर्गः संशयश्चापि शातिताः ।
त्वत्प्रसादान्महाभाग कृतकृत्या वयं गुरो ।।१
भूयश्च श्रोतुमिच्छामो वयमेतद् द्विजोत्तम ।
कोऽयो भृङ्गी महाकाला जातो वेताभैरवी ।।२
वेतालं च महाकालं भैरवं भृङ्गिण तथा ।
शृणुमो द्विजशार्दूल कथमेषां चतुष्टयम् ।।३
भुवं गते महाकाले मानुष्यस्थे च भृङ्गिणि ।
वेतालभैरवाख्ये च तयार्मू ते द्विजोत्तमाः ।।४
वरलब्धे च वेताले भैरवे तेन सङ्गते ।
अन्धकं तपसा युक्त भृङ्गिणं चाकरोद्धरः ।।५
अन्धकस्तु हर पूर्व विरुध्यापदमागतः ।
पश्चाद्धरं समाराध्यं तुत्रोऽभूत् तस्य सोऽसुरः ।।६
भृङ्गिस्नेहाद् भृङ्गिणं तं संज्ञया चाकरोद्धरः ।
स्नेहेन तु महाकाले वाणं बलिसुतं हरः ।।७
विष्णुना छिन्नवाहुं तु महाकालमथाकरोत् ।
एवं मुनिवरस्तेषां सयतं च चतुष्ट्यम ।।८

वेतालभैरवी भृङ्गिमहाकाली ह्यनुक्रमात् ।।८

ऋषियों ने कहा—आपने सर्ग का वर्णन किया और जो भी कुछ संशय उसमें हुए थे उनका भी आपने निवारण कर दिया है । हे गुरो ! आपके प्रसाद से हे महाभाग ! हम कृत्य हो गये हैं । हे द्विजात्तमा फिर हम आपसे कुछ श्रवण करना चाहते हैं यह अन्यभृङ्गी महाकाल कौन है और जो यह वेताल तथा भैरव समुत्पन्न हुए हैं । वेताल को महाकाल और भृंगा भैरव को हम सुनते हैं । इनका चतुष्य कैसे हुआ अर्थात् चार कैसे हो गये थे । ।१-३। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! महाकाल के भूमण्डल में उत्पन्न होने पर और मनुष्यत्व में भृंगी के होने पर उन दोनों से ये वेताल और भैरव नामों वाले समुद्भूत हुए थे । वेताल को वरदान प्राप्त होने पर और उसके साथ भैरव के संगत हो जाने पर भगवान् हर ने तप से युक्त अन्धक को भृंगी कर दिया था ।४-५। अन्धक पहिले हर से विरुद्ध होकर आपदा में फँस गया था । इससे उसने भगवान् हर की समाराधना की थी और वह सुन्दर उनका पुत्र हुआ था । भगवान् हरि ने भृंगी के स्नेह से उसका नाम भृंगी रख दिया था । भगवान् हर ने स्नेह से जो महाकाल में था उसको बलि का पुत्र वाण कर दिया ।६-७। भगवान् विष्णु के द्वारा कटे हुए बाहुओं वाले को महाकाल बना दिया था । इस प्रकार से हे मुनिवरो ! उनका चार होना संयत होता है । अनुक्रम से वेताल भैरव भृंगी और महाकाल है ।८।

यत् पृष्टं सगरेणैव मुनिमौर्व्वं महाधियम् ।
नीत्या योज्या यथा भार्या सुत आत्माऽथवा गुरो ।।६
राजनीतौ सतां नीतौ सदाचारे च ये स्थिताः ।
विशेषास्तेन ये प्रोक्ता औवेंण सुमहात्मना ।।१०
विशेषेण द्विजश्रेष्ठ श्रोतुं सम्यक् तपोधन ।
इच्छामस्तान् महाभाग कथयस्व जगद्गुरो ।।११
ये ये विशेषाः कथिता औवेंण सुमहात्मना ।
तद् वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमा ।।१२
श्रुत्वैवं सगरी सर्वं मन्त्रकल्पादिकं पुनः ।
विशेषं परिपयच्छ नीत्यादीनां महामुनिम् ।।१३

यथा नीत्या प्रयोक्तव्य: सुत आत्मा प्रिया तथा ।

तेषां विशेष सहित सदाचर वदस्व मे ।।१४

ऋषियों ने कहा—जो राजा सगर ने महान् बुद्धिमान और्व मुनि से पूछा था हे गुरुवर ! नीति से जिस तरह से भार्या सुत और बोधित किये जाते हैं । राजनीति में सत्पुरुषों की नीति में और सदाचार में स्थित है । महात्मा और्व ने जो विशेष कहे हैं वे तप ही के धन वाले ! हे द्विजों के परम श्रेष्ठ ! उसे हम विशेष रूप से श्रवण करना भली-भाँति चाहते हैं । हे जगत् के गुरुवर ! आप तो महान् भाग वाले हैं उनको आप बतलाइये । ।६-११। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—महान् आत्मा वाले और्व ने जो-जो विशेष बतलाये थे । हे मुनियों में श्रेष्ठवरो ! यह सब आपको बतलाऊँगा आप श्रवण करिये । राजा सगर ने इस तरह से मन्त्र कल्पादित को सुनकर उन महा मुनि से पुन: नीत्यादिक की विशेषता पूछी थी । सगर ने कहा—जिस प्रकार से नीति के द्वारा सुत—आत्मा और प्रिया के साथ नीति से प्रयोग करना था उनकी विशेषता के सहित जो सदाचार हैं उसको आप मुझे बतलाइए ।१२-१४।

क्रमेण शृणु राजेन्द्र यया नीत्या नियोजित: ।

आत्मा सुतो वा भार्या वा तद्विशेषं शृणु त्व मे ।।१५

ज्ञानविद्यातपोवृद्धान् वयोवृद्धान् सुदक्षिणान् ।

सेवेत प्रथमं विप्रानसूयाषपरिवर्जितान् ।।१६

तेभ्यश्च शृणुयान्नित्यं वेदशास्त्रविनिश्चयम् ।

लद्चुस्ते च तत् कार्यं प्राज्ञश्चैव नृपश्चरेत् ।।१७

पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चाश्वा: शरीर रथ उच्यते ।

आत्मा रथी कशा ज्ञान सारथिस्मैन उच्यते ।।१८

अश्वान् सुदान्तान् कुर्वीत सारथि चात्मनो वशम् ।।१६

अदान्तांस्तु समारुह्य सैन्धवान् स्पन्दना यथा ।

अश्वानामिच्छया गच्छन्नुत्पथ प्रतिपद्यते ।।२०

तत्रावश: सारथिस्तु स्वेच्छया रयन् हयान् ।

नयेत् परवशं सम्यग् प्रथितं वीरमप्युत ।।२१

और्व मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! अब आप क्रम से ही श्रवण कीजिए जिस प्रकार की नीति के द्वारा आत्मा—सुत और भार्य्या को नियोजित किया जाता है उसकी विशेषता मुझसे सुनिये ।१५। ज्ञान में बड़े—वय में बड़े—विद्या तप में बड़े सुदक्षिणों का सब से प्रथम सेवन करे तथा निन्दा में रहित विप्रों का सेवन करना चाहिए । और उनसे नित्य ही वेदों और शास्त्रों के विशेष निश्चय का श्रवण करना चाहिए उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह करना चाहिए—जो प्राज्ञ नृप है उसे उसका समाचरण करना चाहिए ।१६-१७। ये पाँच इन्द्रियाँ पाँच अश्व हैं और यह शरीर रथ कहा जाता है । आत्मा रथी अर्थात् रथ का स्वामी है अश्वों को हाँकने के लिए ज्ञान कशा चाबुक है इस रथ का सारिथ मन होता है । अश्वों को सुदान्त करे और सारथि मन को आत्मा के वश में तैरना चाहिए । कशा को सदा सुदृढ़ करे तथा शरीर की स्थिरता रखनी चाहिए ।१७-१६। जिस तरह से अदान्त अश्वों पर समारोहण करके रथी अश्वों की इच्छा के अनुसार गमन करता हुआ कुपथ को प्राप्त हो जाया करता है । अपनी ही इच्छा से अश्वों को प्रेरित करता हुआ सारथि वहाँ पर अवश होता और वह परम प्रथित बीर को भी परवश कर देता है ।२०-२१।

तथेन्द्रियाणि नृपतिर्विषयाणां परिग्रहे ।
स्ववश्यानि प्रकुर्वीत मनो ज्ञानं दृढ़ तथा ।।२२
ज्ञाने दृढे कशादां च दृढायां नृपसत्तम ।
सारथि स्ववशी दान्तानीशः रियुतुं हयान् ।।२३
अतो नृपः स्वेन्द्रियाणि वशे कृत्वा मनस्तथा ।
ज्ञानमार्गमधिष्ठाय प्रकुर्वीतात्मनो हितम् ।।२४
भोक्तव्यै स्वेच्छाया भूयो न कुर्याल्लोभमासवे ।
द्रष्टव्यमिति द्रष्यव्यं च स्वेच्छया ।।२५
श्रोतव्यमिति श्रोतव्यं नाधिकं श्रवणे चरेत् ।
शास्त्रतत्वामृते धीरः श्रुतिवश्यो भवेन्न हि ।।२६
एवं घ्राणं त्वचं चापि वशीकृत्येच्छया नृपः ।
स्वेच्छया नोपभुञ्जीत नोद्दामं विषयं व्रजेत् ।।२७

एवं यदि भवेद्राजा तदा स स्याज्जितेन्द्रियः ।
जितेन्द्रियत्वे हेतुश्च शास्त्रबृद्धोपसेवनम् ।।२८

इसी भाँति राजा को विषयों के परिग्रहण करने में इन्द्रियों को अपने ही वश्य करना चाहिए तथा मन और ज्ञान को सुदृढ़ करना चाहिए ।२२। हे नृपश्रेष्ठ ! ज्ञान के सुदृढ़ होने पर कशा की सुदृढ़ता में अपने वश में रहने वाला सारथि दान्त अश्वो प्रेरित करने में समर्थ होता है। इसीलिए नृप को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों को तथा मन को अपने वश में रखकर ज्ञान के मार्ग में अविष्ठित होकर आत्मा का हित सम्पादित करे ।२३-२४। फिर अपनी इच्छा से भोग करना चाहिए और आसव में लोभ न करे देखना है- इससे देखना चाहिए और अपनी इच्छा से नहीं देखना चाहिए ।२५। जो सुनने के योग्य हैं उसे ही श्रवण करना चाहिए। श्रवण में अधिक का समाचरण न करे। शास्त्रों के तत्वामृत में धीर श्रुति वश्य नहीं होता है ।२६। इस रीति से इच्छा से घ्राण—त्वचा को वशीकृत करके अपनी इच्छा से उपयोग न करे और उद्‌दाम विषय का गमन न करना चाहिए ।२७। यदि राजा इसी रीति से समाचरण करने वाला होवे तो उसी समय में वह इन्द्रियों को जीत लेने वाला हो सकता है जितेन्द्रिय होने में शास्त्रों और बृद्धों का उपसेवन करना ही हेतु हुआ करता है ।२८।

अबृद्धसेव्याशस्त्रज्ञो नृपः शत्रुवशो भवेत ।
तस्माच्छास्त्रमधिष्ठाय भवेद्राजा जितेन्द्रियः ।।२९

धृतिः प्रागल्भ्यमुत्साहो वाक्पटुत्वं विवेचनम् ।
दक्षत्वं धारयिष्णुत्वं दानमैत्रीकृतज्ञता ।।३०

दृढशासनतासत्यशौचं मतिविनिश्चयम् ।
पराभिप्रायवेदित्वं चरित्रं धैर्यमापादि ।।३१

क्लेशाधारणशक्तिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ।
अनसूया ह्यकीपित्वं गुणोनेतान्नृपोऽभ्यसेत् ।।३२

कार्याकार्यं विभागाश्च धमार्थौ काम एव च ।
सततं प्रतिबुध्येत कुर्याद्‌वसरेऽपि तत् ।।३३

सामदानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम् ।
ज्ञात्वोपायांस्तु तत्काले तदुपायत् प्रयोजयेत् ।।३४

सामस्तु विषये भेदो मध्यमः परिकीर्तितः ।
दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते ।।३५

जो नृप वृद्धों का सेवन करने वाला नहीं है तथा शास्त्रों का ज्ञाता नहीं होता है वह शत्रुओं के वशीभूत हो जाया करता है । इस कारण से शास्त्रों में अधिष्ठित होकर राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए ।२९। धृति—प्रागल्भ्य—उत्साह—वाक्पटुता—विवेचन—दक्षता—धारयिष्णुता—दान-मैत्री—कृतज्ञता—दृढ़ शासनता—सत्य—शौच—बुद्धि का विशेष निश्चय-दूसरों के अभिप्राय का ज्ञान करना—चरित्र—आपत्ति में धीरज—निन्दा न करना—क्रोधी न होना—गुरु द्विजों का अर्चन—निन्दा न करना—क्रोधी न होना—इन गुणों का प्रजा को अभ्यास करना चाहिए ।३०-३२। धर्म में-अर्थ में और काम में कार्य और अकार्य का विभाग का निरन्तर प्रतिबोध करना चाहिए और अवसर होने पर उसे करना चाहिए ।३२। साम—दाम-भेद और दण्ड वह चतुष्टय अर्थात् चार बातें हैं । उसके कालों में उपायों का ज्ञान करके उनके उपायों का प्रयोग करे ।३४। साम विषय में भेद मध्यम कहा गया है । दान के विषय में साम योग्य ही उपलक्षित होता है ।३५।

दानस्य विषये दण्डो ह्यधनः परिकीर्तितः ।
दण्डस्थ विषये दानं तदप्यधर्ममुच्यते ।।३६

साम्नस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधमः स्मृतः ।
सौजन्यं सततं ज्ञेयं भूभृतो भेददण्डयोः ।।३७

साम्नो दानस्य च यथा सौजन्यं याति गोचरे ।
कामः क्रोधश्च लोभश्च हर्षो मानो मदस्तथा ।।३८

एतानतिशयान राजा शत्रुनिव विशातयेत् ।
सेव्या काले सुंयुक्तौ ते लोभगर्वो विवर्जयेत् ।।३९

तेज एव नृपाणां तु तीव्रं सूर्यस्य वै यथा ।
तत्र गर्वं रोगयुक्तं कायवांस्त तु सत्यजेत् ।।४०

आखेटकाक्षौ स्त्रीसेवा पानं चैवार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डयाश्च पारुष्यं सप्ततानि विवर्जये ।।४१

परस्त्रीषु विरक्तासु सेवामेकान्ततस्त्यजेत् ।
सतीषु निजनारोषु युक्तं कुर्यान्नि वेशनम् ।।४२

दान के विषय में दण्ड अधम कहा गया है । दण्ड के विषय में दान जो होता है—वह भी अधम ही कहा जाता है ।३६। साम के गोचर अर्थात् प्रत्यक्ष होने पर जो दण्ड का प्रयोग हैं वह अधर्म से भी अधम कहा गया है । राजा के दण्ड और भेद में निरन्तर सौजन्य जानना चाहिए ।३७। साम और दान की सुजनता गोचर में जाती है । काम को-लोभ-हर्ष-मान-मद-इनको अतिशय रूप में होने वालों का राजा को शत्रुओं की तरह विनष्ट कर देना चाहिए। संयुक्त काल में ही उनका सेवन करना चाहिए । लोभ और गर्व को विवर्जित कर देवे ।३८-३६। नृपों का तेज ही तीव्र होता है जिस तरह से सूर्य का हुआ करता है । उसमें गर्व रोग से युक्त होता है । कायवान् को उसका त्याग कर देना चाहिए।४०। आखेट—अक्ष—स्त्री सेवन—पान और अर्थ दूषण—वाणी और दण्ड में कठोरता इन सबका वजन कर देना चाहिए। विरक्त परायी स्त्रियों में सेवन करना एकान्त रूप से वर्जित कर देवे । अपनी सती नारियों में युक्त सेवन करना चाहिए ।४१-४२।

रतिपुत्रफला दारास्तांस्तु नैकान्ततस्त्यजेत् ।
तयोः सिद्धयै स्त्रियः सेव्या वर्जयित्वातिसक्तताम् ॥४३
मृगयां तु प्रमादानां स्थानं नित्यं विवर्जयेत् ।
अक्षांस्तथा न कुर्वीत सत्कार्यासक्तिनाशकम् ॥४४
अन्यः कृतं कदाचित् तु सेवेत नात्मनाचरेत् ।
अकार्यकरणे बीजं कृत्यानां च वर्जने ॥४५
अकालमन्त्रभेदे च कलहे सत्कृतिक्षये ।
वर्जयेत् सततं पानं शौचमाङ्गल्यनाशनम् ॥४६
अर्थक्षयकरं नित्य त्यजेच्चैवात्मदूषणम् ।
अभिशस्तेषु चारेषु घातकेष्वाततायिषु ॥४७
सतत पृथिवीपालो दण्डपारुष्यमाचरेत् ।
नान्यत्र दण्डपारुष्यं कुर्यान्नृपतिसत्तमः ॥४८
वाक्पारुष्यं च सर्वत्र नैव कुर्यात् कदाचन ।
रक्षणीयं सदा सत्यं सत्यमेकं परायणम् ॥४६
क्षमां तेजस्वितां चैव प्रस्तावान्नृप आचरेत ।

जो दाराएं रति और पुत्र के फल वाली है उसका एकान्त रूप से त्याग नहीं करे। रति और पुत्र दोनों की सिद्धि के लिए स्त्रियों को सेवन करना चाहिए किन्तु उनमें अत्यन्त आसक्ति का वर्जन कर देवे। मृगया यो प्रमादों का स्थान होता है इसका नित्य वर्जन कर देवे। कदाचित् अन्यों के द्वारा किये हुई का सेवन करे किन्तु अपने द्वारा इसका समाचरण नहीं करे। अक्षों का भी सेवन न करे। अक्षों का भी सेवन न करे। ये सत्कार्य और शक्ति का विनाश करने वाले होते हैं। अकार्यों के करने में और कृत्यों के वर्जन में यह बीज होता है।४३-४५। अकाल मन्त्र भेद में—कलह में सत्कार के क्षय में निरन्तर पान का वर्जन कर देवे जो कि यह मदिरा पान औच और माङ्गल्य का विनाश करने वाला होता है।४६। यह अर्थ के क्षय का करने वाला होता है। अतएव आत्मा के दूषण इसका त्याग देना चाहिए अभिशस्त्र चोर—चातक—आततायी में राजा को निरन्तर दण्ड की कठोरता का समाचरण करना चाहिए। श्रेष्ठ नृप को अन्य स्थलों में दण्ड की कठोरता नहीं करनी चाहिए।४७-४८। वाणी को कठोरता को तो सभी जगह कभी भी नहीं करे! सदा सत्य की रक्षा करनी चाहिए। एक सत्य में ही परायण रहे।४९

यानासनाश्रयद्वैधसन्धयो विग्रहस्तथा ॥५०
अभ्यसेत् षड्गुणानेतांस्तेषां स्थानं च शाश्वतम् ।
यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ॥५१
कोषे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ।
जनपदे दण्डे चैकैकत्र त्रयं त्रयस् ॥५२
प्रस्तावाद्विनिञ्जीत् रक्षेन्नंकांस्ततस्त्विमान् ।
मित्रे शत्रावुदासीने प्रभावं त्रिष्वपीररेत् ॥५३
उत्साहो विजिगीषांय धर्मकृत्येऽटवर्गके ।
शरीरयात्रानिर्वाहे क्रियेत सततं नृपैः ॥५४
मन्त्रनिश्चयसम्भूतां बुद्धिं सर्वत्र योजयेत् ।
अमात्ये शात्रवे राज्ये पुत्रेष्वन्तः पुरेषु च ॥५५

क्षमा और तेजस्विता का प्रस्ताव से नृप को समाचरण करना चाहिए। यान, आसन, आश्रय, द्वैध, सन्धि तथा विग्रह—इन छहगुणों

तथा इनके शाश्वत स्थान नृप को अभ्यास करना चाहिए। जो स्थान—वृद्धि—क्षय—कोष—जनपद में और दण्ड में जो प्रमाण को नहीं जानता है वह राज्य पर अवस्थित नहीं रहा करता है। वह एक-एक तीन-तीन है। प्रस्ताव से विनियोग करना चाहिए। किसी एक की ही रक्षा न करे इन सबकी रक्षा करनी चाहिए। मित्र—शत्रु और उदासीन तीनों में ही अपने प्रभाव करना चाहिए ।५०-५३। नृपों को विजय की इच्छा में—धर्म कृत्य में अष्ट वर्ग में—शरीर यात्रा निर्वाह में निरन्तर उत्साह करना चाहिए ।५४। मन्त्र के निश्चय से समुत्पन्न बुद्धि को सर्वत्र योजित करे—अमात्य में—राज्य में—पुत्री में और अन्तःपुर में बुद्धि का याजन करना चाहिए ।५५।

कृषि दुर्गं च वाणिज्यं खड्गानां करसाधनम् ।
आदानं सैन्यकरण्योर्बन्धन गजवाजिनोः ॥५६
शून्ये सद्ममुखानां च योजनं सततं जनैः ।
त्रयाणां सारसेतूनां बन्धनं चेति चाष्टमम् ॥५७
एतदष्टसु वर्गेषु चारान् सम्यक् प्रयोजयेत् ।
कार्याकार्यविभागाय चाष्टवर्गाधिकारिणाम् ॥५८
अष्टौ चारान्नियुञ्जीयादष्टवर्गेषु पार्थिवः ।
दश शून्येषु युञ्जीत क्रमतः शृणु तानि मे ॥५९
स्वामी सचिव-राष्ट्राणि मित्रं कोशो बलं तथा ।
दुर्गं तु सप्तमं ज्ञेयं राज्याङ्ग गुरुभाषितम् ॥६०
दुर्गयुक्तं चाष्टवर्गे चारान्नात्मनि योजयेत् ।
यस्मादिमानि शेषाणि पंच चारपदानि च ॥६१
शुद्धान्तेषु च पुत्रेषु स यूथादौ महानसे ।
शत्रुदासीनयोश्चापि बलाबलविनिश्चिय ॥६२
अष्टादशसु चैतेषु चारास राजा प्रयोजयेत् ।
न यत् प्रकाशं जानीयात् तत तच्चारैर्निरूपयेत् ॥६३

कृषि—दुर्ग वाणिज्य—खड्गों का कर साधन—सैन्य करों का आदान—गजों और अश्वों का बन्धन—सद्म मुखों के शून्य में जनों के द्वारा निरन्तर योजन और तीन सार सेतुओं का बन्धन आठवां है। इन

आठ वर्गों में चारों को भली भाँति प्रयोजित करना चाहिए। कार्य और अकार्य के विभाग के लिए अष्ट वर्ण के अधिकारियों को योजित करे। राजा आठ चारों को ओष्ठ वर्गों के नियोजित करे। दश को शून्य में नियुक्त करे। उनका क्रम से मुझसे श्रवण करिये ।५६-५९। स्वामी—सचित राष्ट्र मित्र कोश बल—दुर्ग सप्तम और गुरु भाषित राज्य के अंग हैं ।६०। दुर्ग से युक्त अपने अष्ट वर्ग से चारों को योगित करे। इन कारण से इन शेष पाँच चार पदों को शुद्धान्तों में पुत्रों में—यथादि में—अहानम में—शत्रु और उदासीनों से—बल—अबल के विशेष निश्चय में इन अठारहों में राजा चारों को प्रयुक्त करे। प्रकाश में इनको कोई भी न जान पावे उसी भाँति चारों के द्वारा निरूपित कर देना चाहिए ।६१-६३।

निरूप्य तत्-प्रतीकारमयश्यं छिद्रतश्चरेत् ।
यथानियोगमेतेषां यो यो यत्रान्यथाचरेत् ।।६४
ज्ञात्वा तत्र नृपश्चारै र्दण्डयेद् वा वियोजयेत् ।
चारांस्तु मन्त्रिणा सार्धं रहस्ये संस्थितो नृपः ।।६५
प्रदोषसमये पृच्छेत् तदानीमेव साधयेत ।
स्वपुत्रो चाथ शुद्धान्ते ये तु चारा महानसे ।।६६
नियुक्तास्तान्मध्यरात्रे पृच्छेत् स्वेऽपि च मन्त्रिणि ।
एतांश्चारान् स्वयं पश्तेन्नृपतिर्मन्त्रिणा विना ।।६७
अन्यांस्तु मन्त्रिणा सार्धं निरूप्य प्रदिशेत् फलम् ।
नैकवेशधरश्चारी नैको नोत्साहवर्जितः ।।६८
संस्तुतो नहि सर्वत्र नातिदीर्घो न वामनः ।
सततं न दिवाचारी न रोगी नाप्यबुद्धिमान् ।।६९
न वित्तविभवैर्हीनो न भार्यापुत्रवर्जितः ।
कार्यश्चारी नृपतिना तत्त्वगुह्यविनिर्णये ।।७०

उसका प्रतीकार अवश्य ही निरूपण करके छिद्र से समाचरण करे। इनका जैसा नियोग है और जो-जो जहाँ पर अन्यथा चरण करे ।६४। यहाँ पर नृप को ज्ञान प्राप्त करके जो कि चारों के द्वारा किया जावे दण्ड देवे या चारों को अलग कर देवे। नृप मन्त्रों के साथ एकान्त में संस्थित रहे।

राजा को चाहिये कि प्रदोष के समय में पूछे और उसी समय में साधन करे। अपने पुत्र के विषय में—शुद्धान्तः पुर में और जो चार महासन (रसोई गृह) में नियुक्त होवें उनसे मध्य रात्रि में पूछना चाहिए। और जो अपने मन्त्री के विषय चार हों उनसे राजा बिना मन्त्री के स्वयं ही पूछे।६५-६७। अन्य जो चार हों उनसे मंत्री के साथ निरूपण करके फल का प्रदेशन करे। चार एक देश के धारण करने वाला न होवे—न एक ही होवे और न उत्साह से रहित होना चाहिए।६८। चार सर्वत्र संस्तुत नहीं होना चाहिए। वह अत्यन्त लम्बा न होवे और न बोना ही होना चाहिए। निरन्तर दिन में चरण करने वाला चार होना चाहिए। और वह रोगी तथा बुद्धि रहित भी नहीं होवे।६९। चार चित्त के वैभव से हीन भी न होवे और ऐसा भी नहीं होना चाहिए जिसके भार्या तथा पुत्र न होवे। ऐसा ही चार राजा को तत्व गुह्य के विशेष निर्णय में नियुक्त करना चाहिए।७०।

अनेकवेशग्रहणक्षमं भार्यासुतैर्युतम् ।
बहुदेशवचोऽभिज्ञं पराभिप्रायवेदकम् ।।७१
दृढ़भक्तं प्रकुर्वीत चार शक्तमसाध्वसम् ।
अभितिष्ठेत् स्वग्रं राजा कृषिमात्मसमैस्तथा ।।७२
वणिक्पथे तु दुर्गादौ तेषु शक्तान्नियोजयेत् ।
अन्त पुरे पितुस्तुल्यान् धीरान् वृद्धान्नियोजयेत् ।।७३
षण्ढान् पण्डांस्तया वृद्धां स्त्रियो वा बुद्धितत्पराः ।
शुद्धान्ते द्वारि युञ्जीयात् स्त्रियो वृद्धा मनीषिणीः ।।७४
नकः स्वपेत कदाचित् तु नैको भुञ्जीत पार्थिवः ।
नैकाकिनीं तु महिषीं ब्रजेन्मैत्राय नैनकः ।।७५
अमात्यानुपधाशुद्धान् भार्याः पुत्रांस्तथैव च ।
प्रकुर्यात् सतत भूपः सप्रसाद समाचरन् ।।७६
धर्मार्थकाममोक्षैश्च प्रत्येकं परिशोधनैः ।
उपेत्य धीयते यस्मादुपधा सा प्रकीर्तिता ।।७७

राजा को अपना चार कैसा बनाना चाहिए यह बतलाया जाता है—

जो अनेक प्रकार के वेष--भूषा के ग्रहण करने में समर्थ हो—भार्या और पुत्रों में संयुत होवे। बहुत से देश और वाणियों का अभिज्ञ होवे तथा दूसरों के अभिप्राय का ज्ञाता होवे। चार ऐसा ही करना चाहिए जो दृढ़ भक्त—समर्थ और भय रहित होवे। राजा कृषि में अपने ही समानों के साथ स्थित होवे ।७१-७२। वाणिक्पथ में और दुर्ग आदि में जो शक्त हों उनको ही नियोजित करना चाहिये ।७३। अन्तःपुर से चारों को नियुक्त करे जो पिता के तुल्य होवें धीरे होवें और वृद्ध होवें। शुद्धान्तःपुर में तथा द्वार में ऐसों की नियुक्ति करनी चाहिए जो षण्ढ—तथा वृद्ध होवें या स्त्रियों को नियुक्त करे जो वृद्धा और मनीषिणी होवें ।७४। राजा को अकेला कभी शयन नहीं करना चाहिए और अकेला भोजन भी नहीं करना चाहिये। अकेली महिषी का गमन न करे और एक ही की मैत्री के लिये भी कुछ नहीं करना चाहिए ।७५। अमात्यों की—उपधा शुद्धों की—उपधा शुद्धों की—भार्याओं को तथा पुत्रों को प्रसाद के सहित समाचरण करते हुए ही नृप को निरन्तर करना चाहिये ।७६। धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष से प्रत्येक का परिशोधन के द्वारा प्राप्त होकर धारण किया जाता है इसी कारण से वह उपधा कही जाती है ।७७।

अर्थकामोपधाभ्यां तु भार्यापुत्रांश्च शोधयेत् ।
धर्मोपधाभिर्विप्रांस्तु सर्वाभिः सचिवान् पुनः ।।७८
एभिर्यज्ञैस्तथा दानैरिहैव नृपतिर्भवेत् ।
तस्माद् भवांस्तु राज्यार्थी धर्ममेव समाचरेत् ।।७९
अनेनैवाभिचारेण यज्ञैर्वा पार्थिवी ह्यम् ।
प्राणांस्त्यजति राजा त्वं भविष्यसि न संशयः ।।८०
इति धर्मो नृपस्यैव अश्वमेधादिकश्च यः ।
स्वयं न कुरुते भूपस्तस्मात् त्वं कुरु सत्तम ।।८१
एव मन्त्रैर्मर्मयित्वा नृपः कार्यान्तिकाद् द्विजात् ।
तैरज्ञ तान् स्वत ज्ञात्वा गृह्णीयात् तस्य तैर्मनः ।।८२
यदि राज्याभिलाषेण सचिवोऽधर्ममाचरेत् ।
नृपतौ वाधिकं कुर्याद् धर्मं तं हीनतां नयेत् ।।८३

आभिचारिकमत्यर्थं कुर्वाण तु विघातयेत् ।
प्रवासयेद् ब्राह्मण तु पार्थिवश्चाभिचारिकम् ।।८४

अर्थ—काम की उपधाओं से भार्या और पुत्रों का परिशोधन करे। धर्म की उपधाओं से विप्रों को और सब उपधाओं से सचिवों का शोधन करे ।७८। इनके द्वारा—यज्ञों से और दोनों के द्वारा यहाँ पर ही नृप होता है । इस कारण से आप राज्य के अर्थी हैं अतएव इसी भाँति धर्म का ही समाचरण करे ।७९। इस अभिचार से अथवा यज्ञों के यह राजा प्राणों का त्याग करता है और तुम राजा हो जाओगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।८०। यही नृप का धर्म है और जो अश्वमेध आदिक है राजा स्वयं नहीं करता है इस कारण से हे श्रेष्ठतम ! तुम करो ।८१। इस प्रकार से नृप कार्यान्तिक द्विज से मन्त्रों के द्वारा मन्त्रणा करके उनके द्वारा अज्ञातों को स्वयं ज्ञान प्राप्त करके उनसे उसके मन को ग्रहण करे ।८२। यदि राज्य की अभिलाषा में सचिव अधर्म का आचरण करे अथवा राजा के विषय में अधिक करे तो उस धर्म को हीन बना देवे ।८३। अत्यन्त आभिचारिक कर्म को करने वाले का विघात कर देवे । राजा को चाहिए कि अभिचारिक ब्राह्मण हो तो उसको देश से बाहिर निकलवा देवे ।८४।

एषा धर्मोपधा ज्ञेया तैरमात्यान् सुताञ्च जयेत् ।
एतादृशीं तथैवान्यामुपधां धर्मतश्चरेत् ।।८५
कोशाध्यक्षान् समामन्त्र्य राजामात्यान् प्रतारयेत् ।
पुत्रान्यान् प्रति तथा मन्त्रसवरणाक्षमान् ।।८६
अयं हि प्रचुरः कोषो मदायत्तो नरोत्तम् ।
आनये तव संमत्या तद् यदि त्वं प्रतीक्षसि ।।८७
तवार्थलग्नादस्माकं जीवन च भविष्यति ।
त्वं चापि प्रचुरैः कोषैः किं वा न करिष्यसि ।।८८
एवमन्येः कोषगतैरुपायैर्नृपसत्तमः ।
पुत्रमात्यादिकान् सर्वान् सयतं परिशोधयेत् ।।८९
कोषदोषकरान् हन्यात् कर्तुमिच्छून् विवासयेत् ।
द्वैधाचित्तान् विमन्येत् कुर्याद् वै कोशरक्षणम् ।।९०

दासीश्च शिल्पिनीर्वृद्धा मेधाधृतिमती: स्त्रिय: ।
अन्मर्बहिश्च या याति विदिता: सचिवादिभि: ।।९१

यह धर्मोपधा जाननी चाहिए। उनके अमात्यों को और सुतों को विजित करे। इस प्रकार की उसी भाँति अन्य उपधा का धर्म से समाचरण करना चाहिये।८५। कोषाध्यक्षों को सममन्त्रित करके राजा अमात्यों को प्रतारित कर देवे। तथा पुत्रों को अथवा अन्यों को जो मन्त्र के संवरण करने में असमर्थ होवें प्रतारित कर देना चाहिए।८६। हे नरोत्तम! यह प्रचुर बहुत बड़ा कोष मेरे अधीन है यदि उसको आप प्रतीक्षा करते हैं तो आपकी सम्पति से उसे ले आता हूँ।८७। आपके अर्थ के लग्न दोने से हमारा जीवन होगा और आप भी इन प्रचुर कोषों के द्वारा क्या-क्या नहीं करोगे।८८। इस प्रकार से अन्य कोष गत उपायों के नृप श्रेष्ठ पुत्र-अमात्य आदिक सबका निरन्तर पपिशोधन करे।८९। जो कोष में दोषों के करने वाले हैं उनका हनन कर देवें और जो करने की इच्छा रखते होवें उनको देश से बाहिर निकलवा देना चाहिए। जो द्वैध चित्त वाले होवें उनको विमानित कर देवे किन्तु कोष की रक्षा हर प्रकार से करनी चाहिये।९०। दासियाँ शिल्पिनी—वृद्धा—मेघा और धृति वाली स्त्रियाँ जो बाहिर और भीतर गमन किया करती हैं तथा सचिवों आदि के द्वारा विदित हैं।९१।

ता राजा रहसि स्थित्वा भार्यादिभिरलक्षित: ।
अभिमन्त्र्याथ समन्त्र्य प्रेषयत् सचिवान् प्रति ।।९२
ता गत्वा हृदयं बुद्धा स्त्रियो विज्ञानतत्परा: ।
महिषीप्रमुखा राज्ञस्त्वां वै कामयते शुभा: ।।९३
तत्राहं योजयिष्मामि यदि ते विद्यते स्पृहा ।
सचिवस्त्वां कामयते त्वद्योग्यो वरवर्णिनि ।।९४
तं संगमयितुं शक्ता यदि श्रद्धा तवास्त्यहम् ।
इत्मनेन प्रकारेण नानोपायैस्तथोत्तरै: ।।९५
भार्या: पुत्रदुहित्रोश्च स्नुषाश्च प्रनुस्षास्तथा ।
शोधयेत् सचिवान् पुत्रान् पौत्रादीन सेवकांस्तथा ।।९६
कामोपधाविशुद्धांस्तु धातयेदविचारयन् ।

स्त्रिय स्तु योज्या दण्डेन ब्राह्मणांस्तु प्रवासयेत् ।।९७
मोक्षमार्गा वसक्तं तु हिंसापैशुन्यवर्जितम् ।
क्षमैकसारं नृपतिः सचिव परिवर्जयेत् ।।९८

राजा उनको भार्या आदि से अलक्षित होकर स्थित रह कर एकान्त में अभिमन्त्रण करके तथा इसके अनन्तर भली भाँति मन्त्रणा करके सचिवों के पास प्रेषित कर देवे ।९२। वे जाकर वहाँ हृदय का ज्ञान प्राप्त करके बिज्ञान में तत्पर राजा की महिषी प्रमुख शुभ तुमको चाहती है यदि आपकी स्पृहा हो तो वहाँ पर मैं योजित कर दूँगी । सचिव तुमको चाहता है हे वरवर्णिनि ! आपके योग्य भी है यदि आपकी श्रद्धा हो तो मैं उसका संगम कराने के लिये समर्थ हूँ । इस रीति से तथा अनेक उपायों से और उत्तरों के द्वारा भार्याओं—पुत्र दुहित्रियों—स्नुषाओं तथा प्रस्नुषाओं—सचिवों—पुत्रों—पौत्रो—सेवको आदि का शोधन करना चाहिए ।९३-९६। काम की उपधाओं से अविशुद्ध के बिना ही कुछ विचार किये हुए विघात कर देना चाहिए । स्त्रियों को दण्ड के द्वारा योजित करे और ब्राह्मणों को प्रवासित कर देवे । मोक्ष के मार्ग में अवसक्त तथा हिंसा और पैशुन्य से रहित—क्षमा को ही एक सार मानने वाले सचिव का राजा सो परिवजन कर देना चाहिए ।९७-९८।

मोक्षमार्गविषक्तांस्तु दण्डयानपि न दण्डयेत् ।
समबुद्धिस्तु सर्वत्र तस्मात् तु परिवर्जयेत् ।।९९
इति सूत्र चोपधानामुपधा बहुधा पुनः ।
विवेचिता चोशनसा तच्छास्त्रे तत्र वोधयेत् ।।१००
विग्रहं सतत राजा परेन्नं सम्यगाचरेत् ।
भूतित्तमित्रलाभेषु निश्चितेष्वेव विग्रहाः ।।१०१
सप्ताङ्गेषु प्रसादश्च सदा कार्यो नृपोत्तमैः ।
कोषस्य सञ्चयं रक्षां सततं सम्यगाचरेत् ।।१०२
मन्त्रिणस्तु नृपः कुर्याद् विप्रान् विद्याविशारदान् ।
विनयाज्ञान् कुलोनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून् ।।१०३
मन्त्रयेत् तैः समं ज्ञानं नात्यर्थं वहुभिश्चरेत् ।

एकैकेनैव कर्त्तव्यं मन्त्रस्य च विनिश्चयम् ।।१०४

व्यस्तैः समस्तैश्चात्यस्य व्यपदेशैः समन्ततः ।
सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं वारुह्य मन्त्रयेत् ।।१०५

जो मोक्ष मार्ग विशेष रूप से सक्त हों ने दण्ड योग्य भी हों तो भी उन्हें दण्ड नहीं देना चाहिए। वह सर्वत्र सम बुद्धि वाला है इसी कारण से उसको परिवर्जित कर देवे ।९९। उपधाओं का यह सूत्र है। पुनः उपधा का बहुत-सा विवेचन किया गया है। उशना ने इसका अच्छा विवेचन किया है। वहाँ पर उसके शास्त्र में इसका बोध करे ।१००। राजा को दूसरों के साथ निरन्तर विग्रह का भले प्रकार से आचरण नहीं करना चाहिए। भूमि—चित्त—मित्र लाभों से जब ये निश्चित हो जावें तो ही विग्रह होते हैं। उत्तम नृपों के द्वारा स्वतः अंगों में सदा प्रसाद ही करना चाहिए। कोष की रक्षा और निरन्तर सञ्चय भली भाँति करना चाहिए ।१०१-१०२। राजा को अपने मन्त्रीगण विद्या में विशारद विप्रों को ही करना चाहिए। जो विशेष रूप से नर्मशास्त्र के ज्ञाता—कुलीन—धर्म और अर्थ में कुशल एवं सरल स्वभाव वाले होवें ।१०३। उनके साथ ज्ञान की मन्त्रणा करे और अत्यन्त अधिक बहुतों के साथ कभी भी समाचरण करे। एक-एक के ही साथ मन्त्रणा का विशेष निश्चय करे ।१०४। व्यक्त—समस्त सभी ओर से अन्य के व्यय देशों से सुसंवृत मन्त्रणा करने का गृह होवे उसी स्थल समारोहण करके मन्त्रणा करे ।१०५।

अरण्ये निःशलाके वा न यामिन्यां कदाचनः ।
शिशूञ्छाखामगान् पण्डाञ्छुकान् वै सारिकांस्तथा ।।१०६

वर्जयेन्मन्त्रगेहे तु मनुष्यान् विकृतांस्तथा ।
दूषणं मन्त्रभेदेषु नृपाणां मत् तु जायते ।।१०७

न तच्छक्यं समाधातुं दक्षैर्नृपशतैरपि ।
दण्डयांस्तु दण्डयेद् दण्डैरण्ड्यान् दण्डयेन्नहि ।।१०८

अदण्डयन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्यांश्चापि दण्डयन् ।
नृपतिर्वाच्यतां प्राप्य चौरकिल्विषमाप्नुयात् ।।१०९

दुर्गे तु समतां कुर्यात् प्राकाराट्टालतोरणैः ।
भूषितान्नगराद्राजा दूरे दुर्गाश्रयं चरेत् ।।११०.

दुर्गं बलं नृपाणां तु नित्यं दुर्गं प्रशस्यते ।
शतमेको योधयति दुर्गस्थो धनुर्धरः ।।१११
शत दशसहस्राणि यस्माद् दुर्गं प्रशस्यते ।
जलदुर्गं भूमिदुर्गं वृक्षदुर्गं तथैव च ।।११२

अरण्य से निशिलोक में मन्त्रण करे किन्तु रात्रि में कभी भी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये । मन्त्रणा के गृह में छोटे बच्चों को—शाखा मृगों को बन्दरों—पण्डों को शुकों को सारिकाओं को तथा विकृत मनुष्यों को वर्जित कर देना चाहिए । नृपों के मन्त्र भेदों में जो दूषण हो जाता है वह परम दक्ष सैकड़ों नृपों के द्वारा भी समाधान नहीं किया जा सकता है । जो दण्ड के योग्य हैं उनको तो अवश्य दण्ड देवे और जो अदंडनीय हों उनको नहीं देना चाहिए ।१०६-१०८। जो दंड के योग्य है उनको दंड न देते हुये और जो दंड के योग्य नहीं है उनको दंड देते हुये राजा निन्दा को प्राप्त करके चोर के पाप को प्राप्त किया करता है ।१०९। प्राकारअट्टालिका और तोरणों के द्वारा दुर्ग में समता करनी चाहिए । राजा को चाहिये कि भूषित नगर से दूर में दुर्गाश्रय करे ।११०। राजाओं का बल दुर्ग है और नित्य ही दुर्ग की प्रशंसा की जाती है । एक ही धनुधारी दुर्ग में स्थित होकर सौ शूरों से युद्ध किया करता है । एक सौ शूर दश सहस्र वीरों के साथ युद्ध किया करता है । इसी कारण से दुर्ग को प्रशास्त कहा जाया करता है । दुर्ग कई प्रकार के होते हैं—जल दुर्ग होता है—भूमि दुर्ग है—और वृक्ष दुर्ग होता है ।१११-११२।

अरण्यंमरुदुर्ग च शैलजं परिखोद्भवम् ।
दुर्गं कार्यं नृपतिना तथा दुर्गं स्वदेशतः ।।११३
दुर्गं कुर्वन् पुरं कुर्यात् त्रिकोण धनुराकृति ।
वर्तुलं च चतुष्कोणं नान्यथा नगरं चरेत् ।।११४
मृदङ्गाकृतिदुर्गं तु सततं कुलनाशनम् ।
यथा राक्षसराज्यस्य लङ्का दुर्गान्विता पुरा ।।११५
वलेः पुर शोणिताख्य तेजो दुर्गैः प्रतिष्ठातम् ।
तद्द यस्माद् व्यञ्जनाकारं मनोभ्रष्टः शिवावलिः ।।११६

सौभाग्यं शाल्वराजस्यं नगरं पञ्चकोणकम् ।
द्विवि यद् वर्तते राज्यं तच्च भ्रष्टं भविष्यति ॥११७
यच्चायाध्याह्वय भूप पुरभिक्ष्वाकुमूभृताम् ।
धनुराकृति तच्चापि ततोऽभूद् विजयप्रदम ॥११८
दुर्गभमौ जयेद् दुर्गां दिक्पालांश्चैव द्वारतः ।
पूजयित्वा बिधानेन जय भूपः समाप्नुयात् ॥११९

अरण्य मरु दुर्ग—शैल से समुद्‌भूत दुर्ग और परिखा से उद्‌भूत दुर्ग होता है—नृप का जैसा अपने देश से दुर्ग हो वैसा ही दुर्ग करना चाहिए ।११३। दुर्ग की रचना करते हुए त्रिकोण और धनुष की आकृति वाला पुर बनाना चाहिए । वर्तुल और चतुष्कोण की रचना करे अन्य प्रकार से नगर नहीं करना चाहिए ।११४। मृदंग की आकृति वाला दुर्ग निरन्तर कुल के नाश करने वाला होता है । जिस प्रकार से पहिले राक्षसों के राजा रावण की लंका पुरी दुर्ग से युक्त थी ।११५। राजा बलि का शोणित नाम वाला पुर था और दुर्गों से प्रतिष्ठित था । क्योंकि वह व्यञ्जनाकार था और शिवा वलि मनो भ्रष्ट थी ।११६। शल्वराज का सौभाग्य नगर पाँच कोनों वाला था । जो राज्य दिवलोक में है वह भ्रष्ट हो जायेगा ।११७। और जो अयोध्या नामक इक्ष्वाकुओं नृपों का पुर था वह भी धनुष की आकृति वाला था इसी विजय प्रद हुआ था ।११८। दुर्ग की भूमि में दुर्गा का यजन करना चाहिए । और द्वार पर दिक्पालों का यजन करे । विधान रे पूजन करके नृप जप को प्राप्त किया करता है ।११९।

अतो दुर्गं नृपः कुर्यात् सतत जयवृद्धये ।
न ब्रह्मणान् राजा सदा केनाप्यवमनीकृतान् ॥१२०
अवमन्य नृपो विप्रान् प्रेत्येह दुःखभाग् भवेत् ।
न विरोधस्तु तैः कार्यः स्वानि तेषां न चाददेत् ॥१२१
कृ यकालेषु सततं तानेव परिपूज्येत् ।
नैषां निःदां प्रकुर्वीत नाभ्यसूयां तथाचरेत् ॥१२२
एवं नृपो महाबुद्धिस्तत्त्वमण्डलसंयुतः ।
अप्रमादी चारचक्षुर्गुणवान् सुप्रियंवदः ॥१२३

प्रेत्येह महतीं सिद्धिं प्राप्नोति सुखभोगवान् ।
यैं गुणैर्यौजितश्चात्मा तैः पुत्रानपि योजयेत् ॥१२४
नृपस्य च स्वतन्त्रत्वं सततं स्व विनाशयेत् ।
स्वतन्त्रो भूपतनयो विकारं याति निश्चितम् ॥१२५
निर्विकाराय सततं वृद्धांश्च परियोजयेत् ।
भोजने शयने याने पुरुषाणां च वीक्षणे ॥१२६
वियोजयेत् सदा दारान् भूपः कामविचेष्टने ।
अस्वतन्त्राः स्त्रितः कार्याः सततं पार्थिवेन तु ॥१२७

इसलिए राजा को अपना दुर्ग निरन्तर जय की वृद्धि के लिये करना चाहिये राजा ब्राह्मणों को सदा किसी से भी अवमानीकृत न करे। राजा विप्रों का अवमान करके यहाँ पर और मृत्युगत होकर भी दुःख का भागी होता है। उनके साथ कभी विरोध नहीं करे और उनका धन ग्रहण नहीं करना चाहिये ।१२०-१२१। कृत्य के कालों में निरन्तर उनका ही परिपूजन करना चाहिये। इनकी निन्दा न करे और न इनकी अभ्यसूया करनी चाहिए ।१२२। इस प्रकार से महान् बुद्धिपान तत्व मण्डल ने संयुत नृप अप्रमादीं—चार चक्षु—गुणवान्—प्रिय वद होता है। यहाँ पर और मृत्युगत होकर महती सिद्धि को प्राप्त होता है और सुखो के भोग वाला हुआ करता है। जिन गुणों से अपने आपको योजित करे उन गुणों से पुत्रों को भी योजित करना चाहिए ।१२३-१२४। नृप की निरन्तर स्वतन्त्रता अपने आपका विनाश किया करती है। राजा का पुत्र स्वतन्त्र रहकर निश्चित रूप से विकार को प्राप्त हो जाता है ।१२५। निर्विकार के लिये निरन्तर वृद्धों को परियोजित करे। भोजन में—शयन में—यान में और पुरुषों के वीक्षण में सदा दाराओं को भय को काम विचेष्टन में नियोजित करना चाहिये। राजा के द्वारा स्त्रियाँ निरन्तर अस्वाधीन रखनी चाहिए ।१२६-१२७।

ताः स्वतन्त्रताः स्त्रियो नित्यं हानये सम्भवन्ति हि ।
तस्मात् कुमारं महिषीमुपधाशिर्मनोहरैः ॥१२८
शोधयित्वा नियुञ्जीत यौवराज्यावरोधयोः ।
अन्तः पुरप्रदेशे तु स्वतन्त्रत्वं निषेधयेत् ॥१२९

भूपपुत्रस्य भार्याया बहिःसारे तथैव च ।
अन्य विशेषः संक्षेपान्मृ पधर्मो मयोदितः ।।१३०
पुत्राणां गुणविन्यासे भार्याणामपि भूपते ।
उशना राजनीतिनां तन्त्राणि तु बृहस्पतिः ।।१३१
चकारान्यान् विशेषांस्तु तयोस्तन्त्रेषु बोधयेत् ।
एवं राजा महाभागो राजनीतौ विशेषताम् ।
कुर्वन्न सींदति सदा भूयसीं श्रियमश्नुते ।।१३२

वे स्वतन्त्र रहने वाली स्त्रियाँ नित्य ही हानि के लिए हुआ करती हैं। इस कारण से कुमार को और महिषी को मनोहर उपधानों से शोधन करके यौवराज्य और अवरोध में नियोजित करे। अन्तःपुर के प्रवेश में स्वतन्त्रता का विषेध कर देना चाहिये ।१२८-१२६। राजा के पुत्र का— भार्या का तथा वहिःसार के यह विशेषता संक्षेप से नृप का धर्म मैंने बतला दिया है ।१३०। पुत्रों के गुणों के विन्यास में और राजा की भार्याओं के भी विषय में उशना ने और बृहस्पति ने राजनीतियों के तन्त्रों को किया है। अन्य विशेषताओं को उन दोनों के तन्त्रों में समझना चाहिए। इस प्रकार से महाभाग राजा राजनीति में विशेषता को करता हुआ कभी भी दुःखित नहीं होता है और सदा बहुत बड़ी श्री की प्राप्ति किया करता है ।१३२।

—×—

## ।। सदाचार कथनम् ।।

सदाचारेषु राजेन्द्र विशेषान् शृणु सम्प्रति ।
यानवश्यं नृपः कुर्यात् तान्मत्तः सकलान् शृणु ।।१
साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरण यत् तत् सदाचारः स उच्यते ।।२
आगमेषु पुराणेषु संहितासु यथोदितान् ।
समुदिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तान् गृहस्थवत् ।।३
ऋषीन् यजेद् वेदपाठैर्देवान् हौमैः प्रपूजयेत् ।
श्रद्धैः पितृं स्तर्पयेत् तु भूतानि बलिभिस्तथा ।।४

मैत्र प्रसाधन स्नान दन्तधावनामञ्जनम् ।
सर्वं गृहस्थवत् कुर्यान्निषेकाद्यं विधि तथा ।।५
षट्कर्मसु नियुञ्जीत राजा विप्रान् समन्ततः ।
तथैव क्षत्रियादोंश्च स्वे स्वे धर्मे नियोजयेत् ।।६
यः स्वधर्मं परित्ज्य परधर्मं समाचरेत् ।
तं शतेन नृप दण्डं पुनस्त्यस्मिन् नियोजयेत् ।।७

और्व्व ने कहा—अब हे राजेन्द्र ! सदा चारों में जो विशेषतायें हैं उनका श्रवण कीजिए। जिन्हें राजा को अवश्य ही करना चाहिए उन ही सबका श्रवण कीजिए ।१। साधुगण क्षीण दोषों वाले होते हैं क्योंकि सत् शब्द साधु होते हैं क्योंकि सत् शब्द साधु वाचक हुआ करता है। उनका जो भी आचरण है वह सदाचार कहा जाया करता है ।२। आगमों में—पुराणों में और संहिताओं में जिस प्रकार से कहे गये उन समुद्दिष्ट सदाचारों में गृहस्थ की भाँति ग्राहण करना चाहिये ।३। वेदों के पाठों के द्वारा ऋषियों का यजन करे और होमों के द्वारा देवगणों का पूजन करे। श्राद्धों के द्वारा पितृगणों को तृप्त करे तथा बलियों के द्वारा भूतों को संतृप्त करना चाहिये ।४। मैत्र—प्रसासन—स्नान—दन्त धावन—अञ्जन यह सब गृहस्थ की ही भाँति करे तथा निषेकाद्य विधि को करना चाहिये ।५। राजा को चाहिये कि षट् कर्मों में सभी ओर से विप्रों की नियुक्ति करे। उसी भाँति क्षत्रीय आदि को अपने-अपने धर्म में नियोजित करे ।६। जो अपने शास्त्रोक्त धर्म का परित्याग करके पराई के धर्म का समाचरण करे उसके राज एक सौ का दण्ड देवे और फिर उसको उसी विहित धर्म में नियोजित करना चाहिये ।७।

सांवत्सरेषु कृत्येषु विशिष्यैतान् समाचरेत् ।
अवश्य पार्थिवो राजन् यास् विशेषाञ्श्रृणुष्व मे ।।८
शरत्काले महाष्टम्यां दुर्गायाः परिपूजनम् ।
नीराजनं दशम्यां तु कुर्याद् वै बलवृद्धये ।।९
पौषे मासि तृतीयायां कुर्यात् पुष्याभिषेचनम् ।
पूजयित्वा श्रियं देवीं पञ्चम्यां नृपतिश्चरेत् ।।१०
श्रीयज्ञं धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम ।

ज्यैष्ठे दशहरायां तु विष्णोरिष्टिं तथाचरेत् ।।११

रवौ हरिस्थे द्वादश्यां शक्रपूजां समाचरेत ।

विशिष्यैतांस्तु नृपतिः कुर्याद्‌ यज्ञान बहुव्ययैः ।।१२

एभिः कृतैर्बलं राज्यं कोशश्चापि विवर्धते ।

अकृतेष्वेषु यज्ञेषु दुर्भिक्षं मरणं तथा ।।१३

जायन्ते चेतयः सर्वा विशिष्यैतांस्ततश्चरेत् ।

शरत्काले महाष्टम्यां दुर्गायाः पूजने विधिः ।।१४

एक सम्वत्सर में होने वाले कृत्यों में विशेष रूप से इनका समाचरण करना चाहिये । हे राजन् ! राजा उन विशेषों का अवश्य ही समाचरण करे—उनका श्रवण मुझसे करलो ।८। शरत्काल में महा अष्टमी के दिन दुर्गा का परिपूजन करे । दशमी तिथि में बल की वृद्धि के लिये नीराजन करना चाहिये ।९। पौष मास में तृतीया ये पुष्प का अभिषेक करे । नृप पञ्चमी में श्री देवी का पूजन करके चरण करे ।१०। हे नृप श्रेष्ठ ! धन धान्य की वृद्धि के लिये श्री यज्ञ का समाचरण करना चाहिये । ज्येष्ठ मास में दशहरा के दिन भगवान विष्णु की इष्टि का समाचरण करे ।११। द्वादशी में हरिस्थ रवि के दिन में इन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिये । राजा को इन यज्ञों का विशेष रूप से बहुत व्यय के द्वारा करना चाहिये ।१२। इनके किये जाने पर वल राज्य—और कोष भी वृद्धि को प्राप्त होते हैं । इन यज्ञों को किये जाने पर देश में दुर्भिक्ष (अकाल) और मरण होता है ।१३। सब प्रकार की ईतियाँ होती हैं । (टिड्डी आदि ईतियाँ हुआ करती हैं) अतएव इनको विशेष रूप से करना चाहिये । शरत्काल में महाष्टमी तिथि में दुर्गा की पूजा की विधि है ।१४।

पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजनम् ।

विधिं नीराजनस्य त्वं श्रृणु पार्थिवसत्तम् ।।१५

कृतेन येन चाश्वानां बजानामपि वर्धनम् ।

आश्विने शुक्लपक्षे तु तृतीयां स्वातियोगिनी ।।१६

ऐशान्यां स्वपुरस्यैव गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ।

नीराजनं ततः कुर्यात् संप्राप्ते दिवसेऽष्टमे ।।१७

नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव ।
विधानमात्रं श्रृणु मे कृतकृत्यो भविष्यसि ।।१८
एक हयं महासत्त्व सुमनोहरमेव च ।
पूजयेत् सप्तदिवसान् गन्धपुष्पांशुकदिभिः ।।१६
तृतीयादौ पूजयित्वा नयेत यज्ञमण्डलम् ।
चेष्टां निरूपयंस्तस्य जानीयात् तु शुभशुभम् ।।२०
परराष्ट्रवमर्दः स्यादश्वो यदि पलायते ।
म्रियते राजपुत्रस्तु यदि चाश्रूणि मुञ्चति ।।२१

यह विधि पहिले कह दी गयी है उसी विधि में पूजन करना चाहिये। हे पार्थिवों में परम श्रेष्ठ। आप नीराजन की विधि का श्रवण कहिए।१५। जिसके करने से अश्वों की ओर गजों की वृद्धि हुआ करती है। आश्विन मास में शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि स्वाती नक्षत्र की योग वाली हो।१६। अपने पुर की ही ऐशानी दिशा में किसी उत्तम स्थान का ग्रहण करे। आठवें दिन के सम्प्राप्त हो जाने पर नीराजन करना चाहिए।१७। नीराजन (आरती) का काल तो आपको मैंने बहुत ही बतला दिया है। अब तो केवल मुझसे विधान ही का श्रवण करिये। इससे आप कृतकृत्य हो जायेंगे।१८। हे महासत्व ! एक अश्व जो बहुत ही सुन्दर होवे सात दिन तक गन्ध, पुष्प, वस्त्र आदि से उसकी पूजा करे।१६। तृतीया के आदि से अर्चन करके उसे यज्ञ मण्डल में ले जावे। उसकी चेष्टा का निरूपण करते हुए शुभ और अशुभ का ज्ञान करो।२०। यदि अश्व पलायन करता है तो पराये राष्ट्र का अवमर्द होता है। यदि वह अश्व अपने नेत्रों से अश्रुओं का मोचन किया करता है तो राजा के पुत्र की मृत्यु हो जाती है।२१।

नीयमानो न गच्छेत् तु महिषीमरणं ततः ।
तथैव मुखनासाक्षि शब्दं कुर्याद्धयो यदि ।।२२
यः काष्ठाभिमुऊः कुर्यात् तेत् काष्ठायां जयेद्रियून् ।
उत्क्षिप्य दक्षिणाग्रं तु पदमश्वो पुरः ।।२३
तदा यदि समस्तांश्च नृपतिर्विजयेद्रियपून् ।
प्रातर्नीराजनं कुर्याद् शदम्यां नृपसत्तम ।।२४

तदप्राप्तौ च द्वाद्वश्यां तस्यामेव समाचरेत् ।
कार्तिके पंचदश्यां वा तत्राभावे तु पार्थिवः ॥२५
ऐशान्यां स्वपुरस्योच्चैर्हस्तमानेन षोडश ।
दशहस्त तु विपुलां कुर्याद् वै तत्र तोरणम् ॥२६
द्वात्रिंशद्धस्तमात्रं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ।
यज्ञार्थं मण्डलं कुर्यान्मध्ये वेदिं विनिर्दिशेत् ॥२७
वेद्योश्चोत्तरतश्चांश्व-वेदिं कुर्यादनुत्तमाम् ।
यत्र संस्थाप्य सोऽश्वश्च पूजितव्यः पुरोहितैः ॥२८

ले जाया हुआ वह अश्व आदि गमन न करे तो महिषी का मरण हो जाता है। यदि अश्व मुख–नासिका और नेत्रों से शब्द करे तो जिस दिशा की ओर मुख करके ध्वनि करना उस दिशा में शत्रुओं के ऊपर जय प्राप्त कराता है। यदि अश्व दाहिने पद के अग्र भाग को उत्क्षिप्त करके आगे होवे तो राजा सम्पूर्ण रिपुओं पर विजय प्राप्त करता है। हे नृप श्रेष्ठ ! दशमी तिथि में प्रातः काल में ही नीराजन करना चाहिये।२२-२४। उसकी अप्राप्ति होने पर उसी द्वादशी में समाचरण करना चाहिये। हे पार्थिव ! अथवा वहाँ पर अभाव होने पर कात्तिक मास में पञ्चदशी में ऐशानी दिशा में जो अपने पुर से होवे सोलह हाथों के मान ने दश हाथ विपुल वहाँ पर तोरण करे।२४–२६। बत्तीस हाथ प्रमाण से युक्त और सोलह हाथ विस्तार वाला यज्ञ के लिए मण्डल बनावें और मध्य में वेदी का विनिर्देश करना चाहिए।२७। वेदी के उत्तर दिशा में बहुत श्रेष्ठ अश्व वेदी की रचना करे। जहाँ पर संस्थापित करके पुरोहितों के द्वारा अश्व का पूजन करना चाहिए।२८।

सर्जोदुम्बरशाखानामर्जुनस्याथवा नृप ।
तत्स्यशखाङ्कितैश्चक्रैर्ध्वर्जश्चाप्यभिभूषयेत् ॥२९
तोरणं कनकरत्नैस्तथा नानाविधैः फलैः ।
भल्लातकं शालिकुष्ठं सिद्ध्यर्थं सैन्धवस्य तु ॥३०
कण्ठदेशे निवध्नीयात पुष्टिशान्त्यर्थमेव च ।
वैष्णवं मण्डलं कृत्वा दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥३१
विश्वेदेवांस्तु मन्त्रेण विष्णुमुख्यान् प्रपूजयेत ।

आज्यैस्तिलैश्च पुष्पैश्च मिश्रीकृत्य पुरोहित: ।।३२

रवेस्तु वरुणस्यैव प्रजेशस्य तथैव च ।

पुरुहूतस्य विष्णोश्च होमं सप्ताहमाचरेत ।।३३

एकैकस्य सहस्रं वा अष्टोत्तरशतं च वा ।

कुर्यात तु प्रत्यहं होमं चतुर्वर्गस्य सिद्धये ।।३४

समधिश्चापि होतव्या: पालाशः खादिरास्तथा ।

औदुम्बर्यश्च काश्मर्या आश्वत्थाश्चा पुरोहिता ।।३५

हे नृप ! सर्ज—उदुम्बर की शाखाओं का अथवा अर्जुन की शाखा के मत्स्य—शंख के अङ्कित चक्रों से और ध्वजों में भूषित करना चाहिये ।२६। सुवर्ण और रत्नों से तथा अनेक फलों के द्वारा सैन्धव की सिद्धि के लिये भल्लातक शालिकुष्ठ तोरण कण्ठ देश में पुष्टि और शान्ति के लिए बाँधे। वैष्णव मण्डल की रचना करके दिक्पालों और नवग्रहों का तथा विश्वेदेवों का और विष्णु मुख्यों का पूजन करना चाहिये। पुरोहित तिलों से मिश्रित घृत से और पुष्पों में रवि का—वरुण का—प्रवेश का—इन्द्रदेव का—भगवान् विष्णु का होम सात दिन तक करे ।३०-३३। एक-एक का एक सहस्र अथवा अष्टोत्तर शत जप करे और चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिए प्रतिदिन होम करना चाहिये ।३४। समिधायें भी हवन के लिये पलाश (ढाक) अथवा खदिर की होनी चाहिये। पुरोहित के द्वारा समिधायें उदुम्बर (गूलर) की हों या काश्मोर की होवे तथा पीपल की होम में ग्रहण करनी चाहिये ।३५।

सौवर्णान राजतान् वापि मार्तिकान् वा यथेच्छया ।

कुर्यादु तु कलशानष्टौ फलाम्राम्बरयोजितान् ।।३६

क्षिपेत् तेषु घटेष्वेव समङ्गहरितालकम् ।

चान्दनं चा कुष्ठं प्रियङ्गु च मनः शिलाम् ।।३७

अञ्जनं चा हरिद्रां च श्वेतां दन्तीं तथैव य ।

भल्लातकं पूर्णकोशं सहदेवी शतावरीम् ।।३८

वचां समागकसुमां सामराजीं सुगुप्तिकान् ।

तुत्थं च करवीर चा तुलसीदमेव चा ।।३९

एतानि निक्षिपेन्मध्ये कलशानां पुरोहितः ।
कनकैरम्बुजैर्यज्ञदारुभिः स्रुकस्रवौ तथा ॥४०
कर्तव्ये शान्तिकामेन नीराजविधौ नृप ।
एवं सप्ताहपर्यन्तं पूजाभिर्हवनैस्तथा ॥४१
पूर्वोक्तान् पूजयित्वा तु नृपः सप्ताहमाचरेत् ।
यावन्नीराजन कुर्यात् तावद्राजा वसेद् गृहे ॥४२

फलाम्राम्बर से योजित आठ कलश रक्खे वे कलश चादी—सुवर्ण अथवा इच्छानुसार मृत्तिका के ही होवें । कलशों समङ्ग हरिताल—चन्दन-कुष्ठ—प्रियंगु—मेंनसित—अञ्जन—हल्दी—श्वेतदन्ती—भल्लातक—पूर्ण-कोश—सहदेवी—शतावर—वज—सनगाकु—सुम—मोमराजी-सुषुप्ति का-तुत्थ—करबीर—तुलसीदल—इन सबको पुरोहित कलशों के मध्य में निक्षिप्त कर देवे । हे नृप ! नीराजन विधि में शान्ति की कामना से कनक-अम्वुज अथवा यश के काष्ठों के द्वारा स्रुक् और स्रुव बनवाने चाहिये । उस प्रकार से एक सप्ताह पर्यन्त पूजा करे ।३६-४१। इस प्रकार से पूजन करके नृप एक सप्ताह तक समाचरण करे । जब तक नीराजन करे तब तक राजा की गुह में वास करना चाहिए ।४२।

रात्रौ व यज्ञभूमौ तु निवसेच्चान्तिमिच्छुकः ।
नारोहयेत् तुरङ्गं तां गज वा तत्र पार्थिवः ॥४३
यावत् सप्ताहपर्यन्तं यानेनान्येन वै ब्रजेत् ।
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चैव मधुपायसयाबकैः ॥४४
मोदकैर्वा वलिं कुर्यादन्नव्यञ्जनधम्भवै ।
पूर्वोक्तानां तु देवानां सप्ताह यावदुत्तमम् ॥४५
सप्तेमेह्निए तु रेभन्तं पूजयेत् तोरणान्तरे ।
सूर्यपुत्रं महावाहुँ द्विभुजं कवचोज्ज्वलम् ॥४६
ज्वलन्तं शुक्लस्त्रेण केशानुद्ग्रथ्य वाससा ।
कशां वामकरे बिभ्रद् दणिक्ष तु करं पुनः ॥४७
स खड्ग न्यस्य वामायां सितसैन्धवसंस्थितम् ।

एवंविध तु रेभन्त प्रतिमायां घटेऽपि वा ।।४८
सूर्यपूजाविधानेन पूजयेत् तोरणान्तरे ।
पूजयित्वा तु रेभन्तं द्विरदं तुरगं तथा ।।४९

शान्ति की इच्छा रखने वाले नृप को रात्रि के समय में यज्ञ मूमि में निवास नहीं करना चाहिए। राजा उस अश्व पर अथवा हाथों पर आरोहण न करे। जब तक एक सप्ताह होवे राजा को दूसरे ही किसी यान के द्वारा गमन करना चाहिये। और अनेक प्रकार के अन्न के व्यञ्जन से सम्भूत भक्ष्यों से—मधु—पायस—यावकों से अथवा मोदकों के द्वारा बलि करे। सप्ताह तक पूर्व में बतलाते हुए देवताओं की उत्तम बलि करे।४३-४५। सातवें दिन में तोरण के अन्तरमें सेवन करते हुए का पूजन करना चाहिए। महा बाहुओं वाले दो—भुजाओं से युक्त कवच में उज्ज्वल जाज्यल्यमान सूर्य पुत्र का पूजन करे। शुक्ल वस्त्र से केशों का उद्ग्रथित करके का बाँये हाथ में लिए हुए दक्षिण कर को खड्ग के सहित सित सैन्धव पर संस्थित नामा में न्यस्त करे। इस प्रकार के रेवन्त को प्रतिमा में अथवा घट में तोरण के अन्तर में सूर्यदेव की पूजा के विधान से पूजन करे। रेवन्त अश्व को अथवा गज को पूजित करना चाहिए।४०-४९।

अहताम्बरसवीत स्रक्चन्दनसमन्वितम् ।
सुवर्णविद्धनिम्त्रितं विचित्र कवचादिभिः ।।५०
युक्तं तु होमकुण्डस्य ऐशान्यामश्ववेदिकाम् ।
पूर्वं कृतां नयेदश्वगजपालौ पृथक् पृथक् ।।५१
नीयमाने गजे चाश्वे पूर्वोक्तं तु निमित्तकम् ।
यत्नाद् वीक्षेत नृपतिः फलं चैवावधारयेत् ।।५२
होमकुण्डस्योत्तरस्यां वैयाघ्रे चर्मणि स्थितः ।
वेदविदा चाश्वविदा सहितो वीक्ष्य सैन्धवम् ।।५३
नीताय तुरगायाशु भक्तपिण्डीं सुगन्धिननीम् ।
दद्यात् पुरोहितस्तत्र समन्त्र्य शान्तिमन्त्रकैः ।।५४
भक्षणाद् यदि जिघ्रेत् तदश्नीयाद् व पयः स च ।
तदा स्यात् सर्वं कल्याणं विपरीतमतोऽन्यथा ।।५५

शाखामौदुम्बरीमाम्री सकुशां च घटोटके ।
आप्लाव्याप्लाव्य तुरगान् गजान् भूपं च सैनिकान् ।।५६
रथांश्च संस्पृशन्मन्त्रैः शान्तिकैः पौष्टिकैस्तथा ।
सेचयेत् सहितैर्विप्रैश्चतुरङ्गं पुरोहितः ।।५७

अहत अम्बर (वस्त्र से) से संजीव—माला और चन्दन से संयुत सुवर्ण से विद्ध निस्त्रिंश वाला—विचित्र—कवच आदि से युक्त—ऐशानी दिशा में होमकुण्ड की वेदिका पर जो पूर्व में हुई हैं अश्व और गज के पालक पृथक्-पृथक् ले जावें ।५०–५१। अश्व और गज के ले जाया जाने पर राजा पूर्व में कथित निमित्त को यत्न साथ देखे और फल का भी अवधारण करे ।५२। होम कुण्ड की उत्तर दिशा में बाघम्बर चर्म पर स्थित होकर वेदों के ज्ञाता और अश्वों के ज्ञान रखने वाले के सहित सैन्धव (अश्व) को देखकर लाये हुए अश्व के लिए शीघ्र ही सुगन्धित भक्त (भात) की पिण्डी देवे। पुरोहित वहाँ पर शान्ति मन्त्रों के द्वारा अभिमन्त्रित करके ही उसे देवे ।५३–५४। वह अश्व यदि उसका अवघ्राण करे अथवा अशन करे तो उस अवसर पर सब प्रकार का कल्याण होता है। और इसके विपरीत होवे तो अन्यथा हुआ करता है ।५५। उदुम्बर की शाखा कशा के साथ घट के जल में आप्लावित कर करके अश्वों का—हाथियों का—राजा का और सैनिकों का अथवा रथों का स्पर्श करे। पुरोहित शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों के द्वारा विप्रों के सहित चतुरङ्ग का सेवन करे ।५६–५७।

दिक्पालानां ग्रहाणां च मन्त्रैश्च वैष्णवेस्तथा ।
बहुधा चाभिषिच्याथ ततः सौवर्णं दर्पणम् ।।५८
वीक्षयित्वा नृप चर्त्विक् ततो मन्त्रिणमेव च ।
राजपुत्रं तथामान्यानन्यापि च सैनिकान् ।।५९
कम्पयन् द्विजशार्दूलः सर्वानिब तु दर्शयत् ।
चतुरङ्गस्य स्वस्यापि कृत्वैव शान्तिपौष्टिवे ।।६०
मृन्मयं शात्रवं कृत्वा चाभिचारिकमन्त्रकैः ।
हृदि शूलेन विध्वा तं शिरं खड्गेन छेदयेत् ।।६१
आचार्यः कविर्का पश्चादभिमन्त्र्य हयाय वै ।

ऐन्दैः प्रभाकरैर्मदद्यद् वक्त्रे स्वयं पुनः ॥६२

तमनेन तु मन्त्रेण समारुह्य नृपस्तदा ।

गच्छेद्रुत्तरपूर्वा तु दिशं सर्वैर्बलैर्युतः ॥६३

दिक्पालों और ग्रहों का वैष्णव मन्त्रों द्वारा बहुत प्रकार से अभिषिञ्चन करके ऋत्विक् सुवर्ण के दर्पण को नृप को फिर मन्त्री को—राजपुत्र को तथा अन्य अमात्योंको और सैनिकों को दिखाया करके शिव शार्दूल कम्पन करते हुए सबको दिखलावे । अपने भी चतुरङ्ग का शान्ति—पौष्टिक इस प्रकार से करे ।५८–६०। मिट्टी से शत्रु से हृदय में शूल से वेध करे और शिर का खङ्ग से छेदन करना चाहिए ।६१। आचार्य पीछे कवि का कोई अभिमन्त्रित करके फिर प्रभाकर ऐन्द्र मन्त्रों से स्वय हय के लिए मुख में देवे ।६२। उस समय में इस मन्त्र से नृप उस पर समारूढ़ होकर अपने सम्पूर्ण बलों के सहित उत्तर पूर्व दिशा में गमन करे ।६३।

ऋत्विक् पुरोहिताचार्याः सर्व एव नृपं तदा ।

अनुगच्छेयुरन्यानि निमित्तानि विलोकितुम् ॥६४

वादित्रघोषंस्तुमुलैरातपत्रैं र्वृतस्तथा ।

गच्छेन्नीराजने राजा दारयन्निव मेदिनीम् ॥६५

मणिविद्रुममुक्तादि-स्वर्ण-रत्नैरलङ्कृतः ।

क्रोशमात्रं ततो गत्वा पूर्वद्वारेण पार्थिवः ॥६६

स्वपुर प्रविशेद् विप्रैर्यज्ञ यायात् पुरोहितः ।

तत्र गत्वा दक्षिणां तु हिरण्यं गा तथा तिलम् ॥६७

दत्त्वा पश्चाद् द्विजेभ्यस्तु दद्यानि शक्तितः ।

एव नीराजन कृत्वा बलानां च महीक्षितः ॥६८

प्रत्येह सुस्थिरां लक्ष्मीं नृपतिः प्राप्नुयात् तथा ।

त्वमश्वामृतसञ्जात सागरोद्भव सन्धव ॥६९

येन सत्वेन बहसे शक्रं तेनेह मां वह ।

येन सत्येन रेभन्त येन सत्येन भास्करम् ॥७०

वहसे तेन सत्येन विजयाय वहस्व माम् ।

आभ्यां तु भूपमन्त्राभ्यामश्वरोहणमाचरेत् ॥७१

उस समय में ऋत्विक—पुरोहित—आचार्य सब ही नृप के पीछे अनुगमन करें और अन्य निमित्तों का विलोकन करें ।६४। राजा तुमुल वाद्यों की ध्वनियों से और आत पत्रों से वृत हाता हुआ मेदिना को मानों विदीर्ण करता हुआ नीराजन में गमन करे ।६५। विविध मणि विद्रम—मुक्ता आदि स्वर्ण रत्नों से सुभूषित होकर केवल एक कोश गमन करके राजा पूर्व के द्वार से अपने पुर में प्रवेश करे और पुरोहित विप्रों के साथ यज्ञ में गमन करे। वहाँ जाकर पीछे द्विजों के लिये दक्षिणा सुवर्ण—गौ- तिल आदि शक्ति से दान देवे। इस प्रकार से बलों का और राजाओं का नीराजन करके इस लोक में और मृत्युगत होकर राजा सुस्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति किया करता है। हे अश्व ! आपका उद्भव सागर से हुआ है आप अश्वामृत से सञ्जात हैं। जिस सत्व से इन्द्र का वहन किया करते हैं उसी से मेरा वहन करें। जिस सत्य से रेभन्त का—जिस सत्य से भास्कर का वहन करते हो उसी सत्य से विजय प्राप्त करने के लिए मेरा वहन करो। इन भूप मन्त्रों के द्वारा अश्व पर अरोहण का समाचरण करना चाहिए ।६६-७१।

आरुह्याग्रे महिष्यास्तु शुद्धान्ते लम्बरेत ततः ।
महिषी च ततो भूप पर्यंकोपरि संस्थितम् ।।७२
दूर्वाक्षतैः ससिद्धार्थैः स्त्रीभिः तमर्चयेत् ।
कृते तु भूमिग्रहणे तृतीयायां निराजने ।।७३
सूतक यदि जायेत तत्र दुष्यति केवलम् ।
सूतकी मृतको चापि पाथिवस्तं यथा तथा ।।७४
वलनीराजनं कुर्यात् तमात्र च विशेषतः ।
कुद्यः शौचं भवेद्राज्ञो व्यवहारविलोकने ।।७५
तथाधिवासने यज्ञे परराष्ट्रविमर्दने ।
अयं ते कथितो राजन्नीराजन क्रमो मया ।
नुष्यस्नानविधानं तां पार्थिवश्शृणु साम्प्रतम् ।।७६

महिषी के आगे समारोहण करके फिर शुद्धान्तः पुर लम्बित करे। फिर वह महिषी (पट्टाभिषिक्ता रानी) को पलङ्ग पर सस्थित राजा का सिद्धार्थ के सहित दूर्वा क्षतों से स्त्रियों के साथ अभ्यर्चन करना चाहिए। यह मंजन तृतोया में नीणाजन में भूमि के ग्रहण करने पर ही करे ।७२-७३।

यदि सूतक उत्पन्न होवे तो केवल दूषित होता है सूत की हो अथवा मृत की हो पार्थिव जैसे-तैसे राजा बल का नीराजन करे और विशेष रूप से उतना करे व्यवहार के विलोकन में राजा तुरन्त ही शौच हो जाता है। तथा अधिवासन में यज्ञ में और पर राष्ट्र के विमर्दन में भी शौच होता है। हे राजन् ! यह मैंने आपके सामने नीराजन का क्रम बतला दिया है। अब पुष्प के स्नान का विधान आप मुझसे श्रवण कीजिये।७३-७६।

—❀—

## ।। राज्याभिषेक वर्णन ।।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुष्यस्नानविधिक्रमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण विघ्ना नश्यन्ति सन्ततम् ।।१
पौषे पुष्यर्क्षगे चन्द्रे पुष्यस्नानं नृप चरेत् ।
सौभाग्यकल्याणकरं दूर्भिक्षमरणापहम् ।।२
विष्ट्याादिष्टकरणे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
वज्रे शूले हर्षणादौ योगे तु लभ्यते ।।३
तृयीयायुक्तपुत्यक्षं रविशौरिकजेऽहनि ।
तदा समस्तदोषाणां तत स्नानं हानिकारकम् ।।४
ग्रहदोषाश्च जायन्ते यदि राज्येषु केतयः ।
तदा पुष्ये तु नक्षत्र कार्यान्मासान्तरऽपि च ।।५
ययं तु ब्रह्मणा शान्तिरुद्दिष्ठा गुरवे पुरा ।
शक्रादिसर्वदेवानां शान्त्यर्थं च जगत् पतिः ।।६
तुषकेशास्थिवल्मीक-कीटदेशादिवर्जिते ।
शर्कराक्रमिकुष्माण्ड-वहुकष्टविवर्जिते ।।७

और्व ने कहा—हे राजन् अब मैं आपको पुण्य—स्नान की विधि के क्रम को बतलाऊँगा जिसके विज्ञान से ही विघ्न निरन्तर नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं ।१। पौष मास में चन्द्र के पुष्प नक्षत्र गत होने पर राजा को पुष्प स्नान का समाचरण करना चाहिये। यह स्नान सौभाग्य और कल्याण करने वाला होता है और दुर्भिक्ष तथा मरण का अपहरण करने वाला होता है।२। विष्टि (भद्रा) आदि दुष्ट करण में—व्यतीपात और वैधृति में—

शूल—हर्षण आदि में योग मैं यदि इसका लाभ होता है तो तृतीया से युक्त पुष्य नक्षत्र रवि—शौरि और मंगलवार में तब यह समस्त दोषों की हानि करने वाला होता है ।३–४। ग्रहदोष होते हैं और राज्यों में ईतियाँ होती हैं पुष्य नक्षत्र में और मासान्तर में भी करना चाहिए ।५। यह शान्ति पहले समय में ब्रह्माजी ने गुरु के लिये बताई थी और जगत्पत्ति ने शक्र आदि समस्त देवों की शान्ति के लिए ही कहा था ।६। तुषकेश—अस्थि—वल्मीक कीट देश आदि से वर्जित—शर्करा—कृमि—कूष्माण्ड—बहु कृष्ट से रहित ।७।

काकोलूकैश्च कङ्कश्च काकोलैगृध्रशौनकैः ।
वर्जिते कण्टकिवने विभीतकविर्जिते ।।८
शिग्रुश्लेष्मातकाभ्यां त जलोकाद्यैविवर्जिते ।
स्वस्थाने चम्पकाशोक-वकलादिविराजते ।।९
हंसकारण्डवाकीर्णे सरस्वतीरेथवा शुचौ ।
पुष्यस्नानाय नृपतिर्गृह्णीयात् स्थानमुत्तसमम् ।।१०
ततः पुरोहितो राजा नाना बादिशत्रैर्निःस्वनैः ।
प्रदोषसमये गच्छेत् तत स्थानं पूर्ववासरे ।।११
तस्य स्थानस्य कौवेर्यां दिशि स्थित्वा पुरोहितः ।
सुगन्धचन्नैः पानैः कर्पूराद्यधिवासितैः ।।१२
गोरोचनाभिः सिद्धार्थैरक्षतैः सफलादिभिः ।
गन्धद्वारेत्यादिभि मन्त्रैः सर्वौधिसिक्तकैः ।।१३

काक—उलूक—कङ्क—ककोल—गृध्र—शौनकी से रहित—कण्टक वाले वन में विभीतक से वर्जित—शिशु श्लेष्मातकों से रहित और जलोका आदि से वर्जित—चम्पक, अशोक—वकुल आदि से विराजित अपने स्थान में—हंस और कारण्वों से समाकीर्ण अथवा शुचि सर के तट पर पुष्य स्नान स्नान के लिये राजा को उत्तम स्थान का ग्रहण करना चाहिये ।८-१०। इसके अनन्तर राजा और पुरोहित अनेक वाद्यों की ध्वनियों के साथ प्रदोष के साथ प्रदोष के समय में उस स्थान पर पूर्व दिन में गमन करें। उस स्थान की कौवेरी दिशा में पुरोहित-स्थित होकर सुगन्धित चन्दन—पान—कर्पूर आदि से अधिवासित—गोराचनाओं से सिद्धार्थों से—अक्षतों से जो फल

आदि के सहित होवे--"गन्ध द्वारा" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सबके अधिसिक्तों से उस स्थान को अधिवासित करके वहाँ पर देवगणों का पूजन करना चाहिए।११-१३।

अधिवास्य तु तत्स्थान पूजयेत् तत्र देवताः ।
गणेशं केशवं शक्रं ब्राह्मणं चापि शङ्करम् ॥१४
उमया सहितं देवं सर्वाश्च गणदेवताः ।
मातृश्च पूजयेत् तत्र नृपतिः सपुरोहितः ॥१५
मङ्गलान् कलशान् कृत्वा नानानैवेद्यसञ्चयान् ।
प्रदद्यात् पायसं स्वादुफलं मोदकयावकौ ॥१६
अधिवास्य च तत् स्थानं दूर्वासिद्धार्थकाक्षतैः ।
तत्स्थानाच्चापि भूतानि सारयेन्ममत्रमीरयन् ॥१७
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन स्नानकर्म करोम्यहम् ॥१८
ततः करौ पुटीकृत्य मन्त्रणानेन पार्थिवः ।
आवाहयेदिमान् देवान् पूज्यान् पुष्याभिषेकतः ॥१९
आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो हि पालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥२०
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा पुनर्मन्त्रं पठेदिमम् ।
अद्य तिष्ठन्तु विबुधाः स्थानमासाद्य मामकम् ॥२१

भगवान् गणेश—केशव—इन्द्रदेव—ब्रह्मा—देव शङ्कर—उमा के सहित और समस्त गण देवता और मातृगणों का पुरोहित के साथ राज अर्चन करे।१४-१५। मङ्गल कलशों को स्थापित करे और अनेक प्रकार के नैवेद्यों के समुदायों का--पायस--स्वादु फल और मोदक तथा यावक देवे। उस स्थान को अधिवासित करके जो दूर्वा व सिद्धार्थ और अक्षतों के द्वारा करना चाहिए। उस स्थान से भी भूतों को मन्त्र का उच्चारण करते हुए अपसारित करना चाहिए।१६-१७। जो भूत भूमि के पालक हैं वे यहाँ से अवसरण कर जावें। भूतों का विरोध न करते हुए मैं स्नान के कर्म्म करता हूँ।१८। इसके अनन्तर दोनों हाथों को पुटित करके राजा इस मन्त्र के द्वारा

इन पूज्य देवों का पुष्प के अभिषेक के लिये आवाहन करे ।१९। जो यहाँ पर पूजा के अभिलाषी देव होवें वे सब सुरगण यहाँ पर आगमन करें । सब दिशाओं के पालक होवें और जो भी अंश भागी होवें वे आगमन करें । फिर पुष्पों की अञ्जलि देकर पुनः इस मन्त्र का पाठ करे । मेरे इस स्थान को प्राप्त करके आज यहाँ पर विबुध गण स्थित होवे ।२०-२१।

स्वपूजां प्राप्य पातारो दत्वा शान्ति महीभुजे ।
ततस्तां नृपती रात्रि नयेत् तु सपुरोहितः ।।२२
स्वप्ने शुभाशुभं विद्यान्नृपस्तु सपुरोहितः ।
कृत्वां पूजां तु देवानां रात्रौ स्थाने नृपः स्वपेत् ।।२३
शुभाशुभफल स्वप्ने ज्ञेयं दोषज्ञसम्मते ।
दुःस्वप्नदर्शनं चेत् स्यात् तदा पुष्याभिषेचने ।।२४
होमं चतुर्गुण कुर्याद् दत्वा चापि गवां शतम् ।
गोवाजिकुंजराणां तु प्रासादस्य गिरेस्तरोः ।।२५
आरोहणं शुभकरं राज्यश्रीबुद्धिकारकम् ।
दधिदेवसुवर्णानां ब्राह्मणस्य प्रदर्शनम् ।।२६
वीणादूर्वाक्षतफल पुष्पच्छत्रविलेपनम् ।
शीतांशु चक्रशत्रूणां पद्मस्य सुहृदस्तथा ।।२७
लाभाः क्षयकराः शत्रौ रत्नकारस्य भूभृतः ।
दर्शनं चोपरागस्य निगडेन च बन्धनम् ।।२८
मांसस्य भोजनं चैव पर्वतस्य विवर्तनाम् ।
नाभिमध्ये तरूत्पत्तिर्मृतं प्रत्यनुरोदनम् ।।२९

रक्षा करने वाले आप अपनी पूजा प्राप्त करके और राजा को शान्ति प्रदान करके स्थित होवें । इसके उपरान्त राजा पुरोहित के साथ उस रात्रि को व्यतीत करे ।२२। पुरोहित के सहित राजा स्वप्न में शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त करे । देवी की पूजा करके रात्रि में स्थान में नृप को स्वयम् करना चाहिए ।२३। दोषों के ज्ञाताओं द्वारा सम्मत स्वप्न में शुभ—अशुभ के फल को जानना चाहिए । यदि बुरे स्वप्न का दर्शन होवे तो पुरुष के अभिषेचन में चौगुना हवन करना चाहिए और सौ गौओं का दान भी देवे ।

गौ—घोड़ा—हाथी—प्रसाद—पर्वत वृक्ष का आरोहण शुभ करने वाला और राज्य श्री की वृद्धि का करने वाला हुआ करता है। दधि—देव—सुवर्ण—ब्राह्मण की प्रदर्शन, दूर्वा—वीणा—अक्षत—फल—पुष्प छत्र—विलेपन—शीतांशु (चन्द्र)—चक्र—शत्रु का—पद्म का और सुहृद का लाभ—रात्रि में क्षय करने वाले हैं। रत्नाकार—भूभृत और उपराग का देखना निगड़ के द्वारा बन्धन करने वाला होता है। माँस का भोजन-पर्वत का विवर्त्तन-नाभि के मध्य में वृक्ष की उत्पत्ति और मृत पुरुष के पीछे रुदन करना ।२५-२६।

अगम्यागमनं कूप पङ्कगर्भावतीर्णता ।
पर्वतस्य तथा नद्याः स्रोतसां लंघनं तथा ।।३०
स्वपुत्रमरणं चैव पानं रुधिरमद्ययोः ।
भोजनं पायसस्यासि मनुष्यारोहणं तथा ।।३१
कल्याणसुखसौभाग्य-राज्य-शत्रुक्षयं तथा ।
एते स्वप्नाः प्रकुर्वन्ति नृपस्य नृपसत्तमः ।।३२
खरोष्ट्रमहिषाणां च आरोहो राज्यनाशनः ।
नृत्यं गीत तथा हास्यं पाठश्चाप्यशुभप्रदः ।।३३
रक्तवस्त्रपरिधानं रक्तमालानुलेपनम् ।
रक्तां कृष्णां स्त्रियं चैव कामयन् मृत्युमाप्नुयात् ।।३४
कूपान्तरे प्रवेशः स्याद् दक्षिणाशागतिस्तथा ।
पङ्के निमज्जनं स्नानं भार्यापुत्रविनाशनम् ।।३५

अगम्य स्त्री के साथ गमन—कुँआ—कीच के मध्य में उतरना-पर्वत की—नदी तथा स्त्रोत का लाँघना—अपने पुत्र का मरण—रुधिर और मदिरा का पान—पपयस का भोजन तथा मनुष्य पर आरोहण हे नृप श्रेष्ठ! ये स्वप्न राजा के कल्याण—सुख-सौभाग्य-राज्य और शत्रुओं का क्षय किया करते हैं।३०-३२। गधा ऊँट और महिष का आरोहण राज्य के नाश करने वाला होता है। नृत्य-गीत-हास्य और पाठ भी अशुभ के प्रदान करने वाले हैं।३३। रक्त वस्त्र का परिधान-रक्तमाला और रक्त अनुलेपन-रक्त तथा काली की कामना करता हुआ भी मृत्यु को प्राप्त किया करता है।

।३४। कूप के अन्दर प्रवेश तथा दक्षिण दिशा में गति—कीच में निमज्जन या स्नान भार्या और पुत्र का विनाश करने वाला होता है ।३५।

लाभस्तस्य भवेत् स्वप्नेप्यरुत्पत्तिर्नृपस्य च ।
आदाय गर्भनाड़ीं तु सकुलो याति खञ्जनम् ।।३६
स तु राज्यान्तरं प्रप्य महामल्याणमाप्नुयात् ।
दीर्घं विंशतिहस्त तु हस्तषोडशस्तृितम् ।।३७
कुर्यात् तु लक्षणोपेतं यज्ञमण्डलमुत्तमम् ।
ततोऽपरेऽह्नि पूर्वाह्णे मातृणां पूजनं चरेत् ।।३८
कुड्यलग्नां वसोर्धारां वृद्धिश्राद्धं तथैव च ।
चन्दनागुरुकस्तूरीधूमकर्पूरचूर्णकैः ।।३९
सम्पूज्य मन्डलस्थानं तस्मिन् ह्रौं शम्भवे नमः ।
अस्त्राय हूँ फडित्येवं लिखेन्मन्त्रद्वय बुधः ।।४०

उसका स्वप्न में लाभ होवे और नृप की अरुत्पत्ति होवे गर्भ नाड़ी का आदान करके कुल सहित खञ्जन को जाता है ।३६। वह अन्य राज्य की प्राप्ति करके महान् कल्याण को प्राप्त किया करता है । बीस हाथ दीर्घ और सोलह हाथ विस्तार से युक्त सब लक्षणों से युक्त उत्तम यज्ञ मण्डल की रचना करनी चाहिये । इसके उपरान्त दूसरे दिन में पूर्वाह्न में मातृगणों की पूजा करे ।३८। भीत में लगी हुई वसो धारा तथा वृद्धि श्राद्ध अर्थात् नान्दी मुख नामक श्राद्ध करे । चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-धूम कर्पूर के चूर्ण से मण्डल स्थान की भली-भाँति पूजा करके उसमें "ह्रौं शम्भवे नमः" अस्त्राय हूँ "फट्" इन दो मन्त्रों को बुध को लिखना चाहिये ।३९-४०।

मन्त्रविण्डलज्ञश्च सूत्रैः कम्बलसम्भवैः ।
कौशेयैर्वा स्वस्तिकाख्यं प्रथमं मण्डलं लिखेत् ।।४१
चतुर्हस्तप्रमाणं तु मण्डलं विलिखेत् ततः ।
हस्तप्रमाणं पद्मं तु मण्डस्य प्रकीर्तितम् ।।४२
द्वाराणि सार्धस्तानि कर्णिकाकेशरोज्वलम् ।
सितं रक्तं च पीतांच कृष्णं हरितमेव च ।।४३

शालिचूर्णैश्च कौसुम्भैर्हरिद्रैर्हरिदुभवैः ।
कुर्यात् तथाञ्जनैश्चूर्णै राजा मण्डलवृद्धये ॥४४
पद्मान्ततः समारभ्य तालं पश्चिमगामिनम् ।
पश्चिमद्वारमध्ये च शतहस्तं विनिर्दिशेत् ॥४५
प्रत्येकं द्वारमध्ये तु पद्मं चैवाष्टपत्रकम् ।
कुर्यान्मण्डलभागश्चूर्णैरेव पृथक्-पृथक् ॥४६
चूर्णैस्तु मन्डलं कृत्वा सूत्राण्युत्सारयेत् ततः ।
उत्सार्य सत्रं प्रथमं मन्डलं पूजयेत् ततः ॥४७
भवनाय नम इति ततो हस्त वियोजयेत्
सव्यावलम्बहस्तं त रजपात्रं समाचरेत् ॥४८
मध्यमानातिकांगुष्ठैरुपरिष्ठाद् यथेच्छया ।
अधोमुखांगुली कृत्वा पातयेच्च विचक्षणः ॥४९

मन्त्र का ज्ञाता और मण्डल के ज्ञान रखने वाला पुरुष कम्बल से उत्पन्न सूत्रों से अथवा कौशेयों से प्रथम स्वस्तिका नामक मण्डल का लेखन करे ।४। फिर चार हाथी प्रमाण वाला मण्डल लिखना चाहिए । मण्डल का पद्म एक हाथ प्रमाण वाला कहा गया है ।४२। डेढ़ हाथ के प्रमाण वाले द्वार होने चाहिए । वह पद्म कर्णिका के केसरों से समुज्वल होवे । सफेद-लाल-पीला-कृष्ण और हरा और शाली के चूर्ण से-कौसुम्भ से तथा हरिदुद्भव ह्लान्द्रि से अंजन के चूर्ण से मण्डल की वृद्धि के लिये रचना करे। ४३-४४। पद्म के अन्दर से आरम्भ करके पश्चिमगामी ताल को और पश्चिम के द्वार के मध्य में सौ हाथ विनिर्दिष्ट करना चाहिये ।४५। द्वार के मध्य में प्रत्येक पद्म आठ पत्रों वाला होना चाहिए । मण्डल के भाग में ज्ञात को चूर्णों से पृथक्-पृथक् ही करना चाहिए ।४६। चूर्णों के द्वारा मण्डल की रचना करके फिर सूत्रों को उत्सारित करे । सूत्र का उत्सारण करके प्रथम मण्डल का अर्चन करना चाहिए । "भवनाय नमः" इससे फिर हाथ से वियोजित करे । समावलम्ब हस्त रज पात्र का समाचरण करे ।४६-४८। मध्यमा—अनामिका और अंगुष्ठ से इच्छानुसार ऊपर नीचे की ओर मुख वाली अंगुलियों को करके विचक्षण पुरुष पातन कर देवे ।४९।

समारेखा तु कर्तव्या विच्छिन्ना पुष्परञ्जिता ।

अङ्गुष्ठपर्वनैपुण्यात् समा कार्या विजानिता ।।५०
संसक्तविषमं स्थूलं विच्छिन्नं कृसराकृतिम् ।
पर्यन्तमर्पितं ह्रस्वमालिखेन्न कदाचन ।।५१
संसक्ते कलहं विद्यादूर्ध्वं रेखे तु विग्रहम् ।
अतिस्थूले भवेद् व्याधिर्नित्यं पीडाविमिश्रिते ।।५२
विन्दुभिर्भमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संशयः ।
कृशायां चार्थहानिः स्याच्छिन्नायां मरणं ध्रुवम् ।।५३
वियोगो वा भवेत् तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य वा ।
अविदित्वा लिखद् यस्तु मन्डलं तु यथेच्छया ।५४
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः पूर्वमीरिताः ।
सितसर्षपदूर्वाया रेखाः कार्या विजानता ।।५५
विमल विजयं भद्रं विमान शुभद्रं शिवम् ।
वर्धमानं च देवं च शताक्षं कामदायकम् ।।५६
रुचिकं स्वास्तिकं चौव द्वादशैते तु मण्डलाः ।
यथास्थान यथायज्ञ योजनीया विचक्षणैः ।।५७

रेखा समान करनी चाहिए जो विच्छिन्न और पुष्प रंजित होवे ज्ञाता पुरुष के द्वारा अंगुष्ठ के पर्व की निपुणता से समादी करनी चाहिए ।५०। संसक्त—विषय स्थूल—विच्छिन्न—कृसराकृत—पर्यन्त अर्पित और ह्रस्व कभी भी नहीं लिखनी चाहिये ।५१। यदि रेखा ससक्त हो तो उससे कलह जानना चाहिये और उर्ध्व रेखा में विग्रह होता है । अत्यधिक स्थूल होने पर व्याधि होती है—विमिश्रत होने पर नित्य पीड़ा होती है । बिन्दुओं से भय को प्राप्त हुआ करता है—जो कि शत्रु के पक्ष की ओर से हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं । कृपा में अर्थ की हानि होती हैं और रेखा छिन्ना हो तो उसमें निश्चय ही मरण हुआ करता है ।५२-५३। अथवा अभीष्ट द्रव्य या सुत का वियोग उसका होता है। जो भी कोई न जानकर ही इच्छा के ही अनुसार मण्डल का लेखन करे तो वह सभी दोषों को प्राप्त किया करता है जो भी दोष पूर्व में बताये गये हैं । ज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा सफेद सरसों और दूर्वा से रेखा करनी चाहिए । ।५४-५५। मण्डल वारह

होते हैं उनके नाम विमल—विजय—भद्र—विमान—शुभद—शिव-वर्धमान । देव—दशाक्ष कामदायक—रुचिक—स्वस्तिक—ये ही बारह मण्डल हैं । विचक्षणों द्वारा स्थान और यज्ञ के अनुसार ही योजित करने चाहिये ।५६-५७।

सागरे मध्यमाने तु पीयूषार्थं सुरोत्करैः ।
पीयूषधारणार्थाय निर्मिता विश्वकर्मणा ।।५८
कलां कलां तु देवानामसित्वा ते पृथक्-पृथक् ।
यतः कृतास्तु कलासास्ततस्ते परिकीर्तिताः ।।५९
नवैव कलसाः प्रोक्ता नामतस्तान्निबोधत ।
गोह्योपगोह्यो मरुतो मयूखश्च तथापरः ।।६०
मनोहाचार्यभद्रश्च विजयस्तनु दूषकः ।
इन्द्रियघ्नोऽथ विजयो नवम परिकीर्तितः ।।६१
तेषामेव क्रमाद् भूप नव नामानि यानि तु ।
शृणु तान्यपराण्येव शान्तिदानि सदैव हि ।।६२
क्षितीन्द्रः प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो जनसम्भवः ।
पवनाग्नी ततो द्वे तु यजमानस्ततः परः ।।६३
कोषसम्भवनाभ्यां तु षष्टः स परिकीर्तितः ।
सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त आदित्यस्तु तथाष्टमः ।।६४

सुरों के समूहों द्वारा अमृत के लिये सागर के मन्थन लिये जाने पर पीयूष के धारण के लिये विश्व कर्मा के द्वारा निर्मित किये गये थे ।५८। क्योंकि देवों की कला-कला पृथक्-पृथक् आसन करके वे किये गये हैं इसी से वे कलश नाम से कीर्त्तिक हुए हैं ।५९। कलम नौ हो बताये गये हैं । अब उनको नाम से समझ लो । गोह्योयगोह्य—मरुत—मयूख—मनोहाचार्य भद्र—विजय—तनुदूषक—इन्द्रियघ्न—विजय ये नौ कहे गये हैं ।६०-६१। हे भूप ! उनके ही जो दूसरे नौ नाम हैं उनका श्रवण करो जो सदा ही शान्ति प्रदान करने वाले हैं ।६२। प्रथम क्षितीन्द्र कहा गया है दूसरा जन सम्भव होता है । दो दो पवन और अग्नि हैं-फिर यजमान है । कोष सम्भव नाभि में छटवाँ कहा गया है । सोम सातवाँ कहा गया है और आदित्य आठवाँ है ।६३-६४।

विजयो नाम कलसो योऽसौ नवम उच्यते ।
स तु पञ्चमुखः प्रोक्तो महादेवस्वरूपधृक् ॥६५
घटस्य पञ्चवक्त्रेषु पञ्चवक्त्रः स्वयं तथा ।
यथाकाष्टां स्थितः सम्यग्वामदेवादिनामतः ॥६६
मण्डलस्य तु पद्मान्तः पञ्चवक्त्रं घटं न्यसेत् ।
क्षितीन्द्रं पूर्वतो न्यस्तं पश्चिमे जलसम्भवम् ॥६७
वायव्ये वायवं न्यस्य आग्नेये ह्यग्निसम्भवम् ।
नैऋत्ये यजमान तु ऐशान्यां कोषसम्भवम् ॥६८
सोममुत्तरतो योज्यं सौर दक्षिणतो न्यसेत ।
न्यस्यैवं कलसांश्चैव तेषु चैतान् विचिन्तयेत् ॥६९
कलसानां मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां शंकरः स्थितः ।
मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्थिताः ॥७०

विजय नाम वाला कलम है वह नवम कहा गया है । वह पंच मुख कहा गया है जो महादेव के स्वरूप का धारण करने वाला है ।६५। घर को पाँच मुखों में पंच वक्त्र स्वयं स्थित है । दिशा के अनुसार वामदेव आदि नाम से भरी भाँति स्थित हैं ।६६। मण्डल के पद्म के अन्दर पन्च वक्त्र घट का न्यास करना चाहिये । पूर्व की ओर क्षितीन्द्र का न्यास करके पश्चिम में जल सम्भव का न्यास करे । वायव्य कोण में वायव का न्यास कर आग्नेय में अग्नि सम्भव का न्यास करे । नैर्ऋत्य में यजमान का और ऐशानी में कोष सम्भव का न्यास करे ।६७-६८। रोम का योजन उत्तर में करे तथा सौर का न्यास दक्षिण में करना चाहिये । इस रीति से कलशों का न्यास करके उनमें इनका विचिन्तन करे ।६९। कलशों के गुख में ब्रह्मा है और उनकी ग्रीवा से शङ्कर स्थित रहते हैं । मूल में भगवान् विष्णु संस्थित है और मध्य में मातृगण विराजमान है ।७०।

दिक्पाला देवताः सर्वा वेष्टयन्ति दिशो दश ।
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपाश्च संस्थिताः ॥७१
नक्षत्राणि ग्रहाः सर्वे तथैव कुलपर्वताः ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥७२

कलसे संस्थिताः सर्वे तेषु तानि विचिन्तयेत् ।
रत्नानि सर्वबीजानि पुष्पाणि च फलानि च ।।७३
वज्रमौक्तिकवैदूर्यमहापद्मेन्द्रस्फाटिकैः ।
सर्वधाममय बिल्वं नागरोदुम्बरं तथा ।।७३
बीजपूरकजम्बीरकाश्मीराम्रातदाडिमम् ।
यव शालि च नीवारं गोधूमं सितसर्षपम् ।।७५
कुंकुमागुरुकर्पूरमदनं रोचनं तथा ।
चन्दनं च तथा मांसीमेलां कुष्ठं तथैव च ।।७६
कस्तूरीपत्रचूर्णं च जलनिर्यासकाम्बुदम् ।
शैलेय वदरं जातीपत्रपुष्पे तथैव च ।।७७

दिक्पाल सब देवता दशों दिशाओं को वेष्टित किया करते हैं। कुक्षि में सात सागर है और सात द्वीप संस्थित हैं ।७१। नक्षत्र-समस्त ग्रह तथा कुल पर्वत गङ्गा आदि सब नदियाँ—चारों वेद कलम में ये सभी विराजमान रहते हैं उनमें वनका चिन्तन करना चाहिए। रत्न—सब बीज पुष्प—फल-वज्र मोतिक-वैदूर्य—महापद्म—इन्द्र—स्फटिक से युक्त सर्व धाम मय विम्व—मागरोहुम्बर-बीज पुरक-जम्बीर-काश्मीर और आम्रत-दाड़िम-यश-शाली-नीवार-गोघूम-जिस सर्षय ।७२-७५। कुंकुम-अगुरु-कपूर-मदन-रोचन-चन्दन-माँसी-एला-कुष्ठ-कस्तूरी पत्र चूर्ण—उन निर्यास काम्बुद-शैलेय-वदर-जातीपत्र-पुष्प ।७१-७७।

कालशाकं तथा पृक्का देवीपर्णकमेव च ।
वचां धात्रीं समञ्जिष्ठां तुरुष्कं मङ्गलाष्टकम् ।।७८
दूर्वा मोहनिकां भद्रां शतमुलीं शतावरीम् ।
वर्णानां सरलां क्षुद्रां सहदेवीं गजाह्वयाम् ।।७९
पूर्णकोषां सितां पीटां गुञ्जां शिरसिकानलौ ।
व्यामक गजदन्तं च शतपुष्प पुनर्नवाम् ।।८०
ब्राह्मी देवी शिवां रुद्रां सर्वसन्धानिकां तथा ।
समाहृत्य शुभानेतान् कलसेपु निधापयेत् ।।८१

कलशस्य यथादेशं विधिं शम्भुं गदाधरम् ।
यथाक्रमं पूजयित्वा शम्भुं मुख्यतया यजेत् ।।८२
प्रासादेन तु मन्त्रेण शम्भुं तन्त्रेण शङ्करम् ।
प्रथम पूजयेन्मध्ये नाना नैवेद्यवेदनैः ।।८३
दिक्पालानां घटेष्वेव दिक्पालानपि पूजयेत् ।
पूर्वं वहिः स्थापितेषु ग्रहाणां कलसेषु च ।।८४

काल शाक-पृक्वा-देवी पणक वचा-धात्री-मंञ्चिष्ठा तुरुष्क-मङ्गष्टक-दूर्वा-मोहनिकाभद्रा-शतमूली-शतावरी वर्णों की सरला-क्षुद्रा-सह देवी-गजाह्वा-पूर्ण कोषा-सिता-पीठा-गुंजा-शिर सक-अनल-व्यामक-गजदन्त शत पुष्प-पुनर्नवा-ब्राह्मी–देवी-शिवा-रुद्रा-सर्वसव्धानि का इन सबका समाहरण करके कलसों में निधापित करना चाहिए ।७८-८१। कलम के देश के अनुसार-ब्रह्मा-शम्भु-गदाधार का क्रम के अनुसार पूजन करके मुख्यता से भगवान्-शम्भु का यजन करना चाहिए ।८२। प्रासाद मन्त्र के द्वारा शम्भु का और तन्त्र के द्वारा शङ्कर का प्रथम मध्य में अनेक प्रकार के नैवेद्यों के निवेदन द्वारा पूजन करना चाहिए ।८३। दिक्पालों के घटों में ही दिक्पालों का अर्चन करे । पूर्व में बाहिर स्थापित कलशों में ग्रहों का पूजन करना चहिए ।

नवग्रहान् पूजयेत् तु मातृर्मातृघटेषु च ।
सर्वे देवा घटे पूज्या घटास्तेषां पृथक्-पृथक् ।।८५
नवैव तत्र पूर्वोक्ताः स्मृता मुख्यतया नृप ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ।।८६
यावकैः पायसैश्चैव यथासम्भवयोजितैः ।
पुष्यस्नानाय नृपतिः पूजयेत् सकलान् सुरान् ।।८७
दक्षिणे मण्डलस्याथ कुण्ड निर्माय पायसैः ।
समिद्भिः अलिसिद्धार्थैर्घृतैर्दूर्वाक्षतैस्तथा ।।८८
केवलैश्च तथैवाज्यैः पूजितान् सकलान् सुरान् ।
होमेन तोषयेद् वृद्धय्यै नृपः सार्त्विक्पुरोहितः ।।८९
होमान्ते मण्डलोदीच्यां वेदिकायां सपट्टकम् ।

रोचनाख्यमलंकारांस्तथा सर्वान नियोजयेत ।।९०
वृद्धायगुलमगुल्या षड्विंशांगलिकावधि ।
वृत्तं वा ततुरस्त्रं वा पदमं त्रिकोणसंज्ञकम् ।।९१

नवग्रहों का और मातृघटों में मातृकाओं का पूजन करना चाहिये। सभी देवों का घट में यजन करना चाहिये। उनके घट पृथक्-पृथक् होते हैं।८५। हे नृप ! पूर्व में नौ ही कहे गये हैं जो मुख्य तथा वर्णित हैं। भक्ष्य-भोजन-पेय अनेक भाँति के पुष्प और फल-पावक-पायस जो भी सम्भव योजित होवें उनके द्वारा राजा सकल सुरों का पुष्प स्नान के लिये पूजन करे।८६-८७। मंडल में कुण्ड का निर्माण करके पायस-समिधा-शाली-सिद्धार्थ-दूर्वा-अक्षत-तथा केवल घृत से पूजित सकल सुरों को ऋत्विक् पुरोहित के सहित नृप वृद्धि के लिए होम के द्वारा सन्तुष्ट करे।८८-८९। होम के अन्त में मण्डल के उत्तर में वेदिका में पदक के सहित-रोचना नामक तथा अलङ्कारों को सबको नियोजित करे।९०। वृद्धि में अंगुलि से अंगुल छब्बीस अंगुलिका की अवधि पर्यन्त वृत अथवा चौकोर त्रिकोण संज्ञा वाला पद्म को।९१।

रत्नेशां पद्ममध्ये तु गोमुष्टिकविनायकैः ।
श्रीवृक्षवरारोहामुमादेवी शुभान्विताम् ।।९२
रत्नैः सर्वैरलंकारैः पट्टं कार्या द्विहस्तकम् ।
हस्तविस्तारमुच्छ्रायं नवहस्तं दशांगुलम् ।।९३
स्नानार्थं सार्धहस्त च पट्टं वृत्तं गुणात्वितम् ।
शय्या चतुर्गणा दीर्घा धनुर्मानं तु पीठकम् ।।९४
गर्जसिहकृताटोप हेमरत्नविभूषितम् ।
सिंहाख्य सधिविस्ताराद् दण्डासनमथापिवा ।।९५
व्याघ्रचित्रकपट्टैर्वा उपधानानि कारयेत् ।
अन्यैर्वा निर्मितां चममृदुदूलकपूरिता ।।९६
शय्या दीर्घार्धविस्तीर्णा चतुहस्ता सुलक्षणा ।
वितस्त्यधिकमिच्छन्ति नृपस्या गुरुविद्यया ।।९७

अर्धचन्द्रसम कुर्यादासन चतुरस्त्रकम् ।
उपधानानि शय्यायाः कर्णादिमूलभेदतः ।।९८

पद्म के मध्य में गोमुष्टिक विनायकों से रत्नेशों को—श्री श्री वृक्ष वरारोहा—शुभान्वत उमा देवी को सब रत्नों से और अलङ्कारों से दो हाथ यह बनाना चाहिये । वह एक हाथ विस्तार वाला और नौ हाथ दश अंगुल वाला ऊँचा स्नान के लिए डेढ़ हाथ का वृत्त तथा गुणों से अम्बित यह करे । शय्या चौगुनी दीर्घ बनावे और धनुष के मान वाला पीठ करे ।९२-९४। गज और सिंह के द्वारा किये हुए आरोप और हेम तथा रत्नों से विभूषित सिंह नामक सार्ध विस्तार से दण्डासन को अथवा व्याघ्र चित्रक पदों के द्वार उपधानों को करावे । अथवा अन्यों के द्वारा निर्मित्त चर्म मृदु तूल से पूरित चार हाथ वाली परिमाण में सुन्दर लक्षण से युक्त दीर्घार्घ विस्तार से युक्त शय्या गुरु विद्या से नृप की वितस्ति से अधिक की इच्छा करते हैं । आधे चन्द्र के समान चतुरस्त्र आसन करना चाहिए । शय्या के उपधान कर्णादि मूल भेद से करे ।९५-९८।

शोडशैवात्र कार्याणि वर्णचित्रयुतानि च ।
यानं सिंहासन पट्टं शय्योपकरणादिकम् ।।९९
गङ्गो नूतनयोग्यं तद् वेद्या उत्तरतो न्यसेत् ।
तेषां तु पश्चिमे स्वर्णरत्नौघखचिते वरे ।।१००
पर्यंके यज्ञदावोधनिर्मिते महदास्तरे ।
अर्धाच्छादनसयुक्तं चर्मावृतचतुष्टये ।।१०१
वृषभस्य तथोर्णायाः सिंहशार्दूलयोरपि ।
पादपीठे रत्नयुते पादावाप्य पार्थिवः ।।१०२
तस्मिन् पर्यंपीठस्थे चर्मखड्गचतुष्टये ।
नानालङ्कारभूषाणच नृपति रत्नशालिनम् ।।१०३
स्नापयेद् ब्राह्मणैः सार्धं राजानं सुखसङ्गतम् ।
संवीतकम्बलं कृष्णं बहुवस्त्रैश्च शोभितम् ।।१०४
कलसैर्वलिपुष्पाद्यैः शालिचर्णैश्चा स्नापयेत् ।
अष्टौ षोडश विंशाष्टशतमधिकं चा वा ।।१०५

केवल सोलह ही वर्ण और चित्र से युक्त करने चाहिये। यान-सिंहासन—पट्ट शय्या के उपकरण आदि राजा के नूतन योग्य हो वह वेदी के उत्तर की ओर न्यस्त करे। उनके पश्चिम में सब प्रकार के रत्नों के समुदाय से स्वतिक श्रेष्ठ पर्यङ्क पर जो यज्ञ के काष्ठ के समूह से निर्मित्त-महान् आस्तरण वाले—अर्धच्छादन से संयुत हो तथा चर्म से आवृत चतुष्टय वाले—वृषभ के तथा सिंह शार्दूलों ऊर्ण से आवृ—रत्नों से समन्वित पाद पीठ पर राजा अपने चरणों को समारोपित करके उप पर्यङ्क के पीठ पर स्थित खड्ग चतुष्टय में रत्नों से शोभित अनेक अलंकारों से युक्त नृपति का स्नपन करावे। ब्राह्मणों के साथ सुख से संमत राजा को जो सम्बीन काम्वल वाला कृष्ण और बहुत से वस्त्रों से शोभित हो उसको कलसों के द्वारा बलि पुष्पादि से और शालि च्यूणों मे स्नपन करावे। आठ—सोलह—बीस-एक सौ आठ अथवा अधिक कलशों को संख्या बतायी गयी हैं।६९-१०५।

कलसानां समाख्याता अधिकस्योत्तरोत्तरम्।
जयकल्याणदैर्भङ्गलोत्थैश्चा शाम्भवैः ॥१०६
वैष्णवैरथ दिक्पालग्रहमन्त्रैश्च मातृकैः।
आर्ज्य तेज समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ॥१०७
आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः।
भातान्तरिक्षं दिव्यं वा यत् ते कल्ममषमागतम् ॥१०८
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छति।
ततोऽपनीयगात्रात् तु कम्बलं वस्त्रमेव च ॥१०९
कलशैः स्नापयेद् भूपं पुष्पस्नानीयपूरितैः।
एभिर्मन्त्रैर्नरश्रेष्ठ तनुतत्वार्थसाधकः ॥११०
सुरास्त्वामभिविञ्चन्ति ये च सिद्धाः परं तनः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥१११
आदित्या वसवौ रुद्रा अश्चिनौ यौ भिषग्वरौ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा लक्ष्मीः सरस्वती ॥११२

उस संख्या से उत्तरोत्तर अधिक भी होती है। जय और कल्याण प्रद मन्त्रों के द्वारा-मङ्गलात्थों से-शाम्भवों से-वैष्णवों से-दिक्पालों-से ग्रह

मन्त्रों से और मातृकों से आज्य को तेज समुद्दिष्ट किया है। आज पापों के हरण करने वाला है। आज्य ही सुरगणों का आहार और आज्य में लोक प्रतिष्ठित है। भूमिगत—अन्तरिक्षस्थ-अथवा दिव्य अर्थात् दिव्रलोक गत जो भी आपको कल्मष आ गया है वह सब आज्य के संस्पर्श से विनाश का प्राप्त होवें। इसके अनन्तर शरीर से कम्बल और वस्त्र का अलग करके पुष्पों और स्नानीयों से पूरित कलसों के द्वारा भूप का स्नान करावे। हे नृप श्रेष्ठ ! शरीर के तत्वार्थ के साधक इन मन्त्रों से राजा का स्नान करावे जो निम्न स्थल में बताये जा रहे हैं—सुरगण आपका अभिषिञ्चन करें और जो सिद्ध एवं पुरातन हैं—ब्रह्मा, विष्णु-रुद्र—साध्य—मरुद्गण—आदित्य—बसुगण-रुद्र-भिषग्वर दोनों अश्विनी कुमार—देवमाता अदिति—स्वाहा—लक्ष्मी-सरस्वती ।१०६-११२।

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरमा चैव विनता कद्रूरेव च ।।११३

देवपत्न्यश्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामभीषिञ्चतु सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ।।११४

नक्षत्राणि मुहूर्ताश्चा पक्षाहोरात्रसन्ध्यः ।
सवत्सरा निमषाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ।।११५

सर्वे त्वामभिषिञ्चन्ति कालस्यावयवस्तथा ।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ।।११६

सरितश्च महानागा नागाः विम्पुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ।।११७

सप्तर्षयः सदारश्च ध्रुवस्थानानि यानि तु ।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ।।११८

भृगुः सनत्कुमारश्च सनकश्च सनन्दनः ।
सनातनश्च दक्षश्च जेगीषव्योऽभिनन्दनः ।।११९

कीर्ति—लक्ष्मी—धृति—श्री—सिनी वाली—कुहू—दिति—सुरमा—विनता—कद्रु—जो देव पत्नियाँ कही गयी हैं वे और देव मातायें सिद्ध और अप्सराओं के गण सब आपका अभिषिञ्चन करें ।११३-११४। नक्षत्र—मुहूर्त्त

—पक्ष—अहोरात्रा—सन्धि—सम्वत्सर—निमेष—कला—काष्ठा—क्षण—लव ये काल के सब अवयव आपका अभिषिञ्चन करें। पैमानिक—अर्थात् विमानों पर संस्थित रहने वाले सुरों के समुदाय—सागरों के सहित मनुगण—सरिताएं—महानाग—नाग—किम्पुरुष—वैखानस—महाभाग द्विज और जो वैहायस हैं—अपनी दाराओं के साथ सप्तर्षि गण—जो ध्रुव के स्थान वाले हैं—मारीचि—अत्रि—पुलह-पुलस्त्य क्रतु—अङ्गिरा—भृगु—सनत्कुमार-सनक-सनन्दन-दक्ष-जेगीषव्य अभिनन्दन ।११५-११६।

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकाश्यपौ ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यातयनस्तथा ॥१२०
माकण्डेयो दीर्घतमाः शुनः शेफो विदूरथः ।
और्वः सवर्तकश्चैव व्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥१२१
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहात्मजः ।
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणाः ॥१२२
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ।
पर्वतास्वरचो नद्यः पुण्यान्यायततवानि च ॥१२३
प्रजापतिः क्षितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वे लोकाश्चराचराः ॥१२४
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
एते चान्ये च वहवः पुण्यसंकीर्त्तनाः शुभाः ॥१२५
तीर्थैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिर्वहणैः ।
इत्येवं शुभदैरेतैर्दिव्यैर्मन्त्रैस्तथापरैः ॥१२६

एक-दो और तीन—जावालि—कश्यप—दुर्वासा—दुर्विनीत—कण्ड-कात्यायन—मार्कण्डेय दीर्घतमा—शुनःशेष—विदूरथ—और्व्व—सवर्त्तक—च्यवन—अत्रि पराशर—द्वैपायन यव क्रीत—देवरात—सहात्मज—ये और अन्य जो भी वेद व्रत में परायण हैं वे अपने शिष्यों के सहित और अपनो दाराओं के साथ तप के ही धन वाले आपका अभिषिञ्चन करें। पर्वत—वृक्ष—नदियाँ और परम-पुण्य आयतन। प्रजापति—क्षिति—गौयें—विश्व की मातायें—दिव्य वाहन—सब लोक दिशायें—जत—ये और अन्य बहुत से पुण्य संकीर्तन वाले तथा शुभ सब उत्पातों के नियर्हण करने वाले जलों

के द्वारा आपका अभिषिञ्चन करें। इस प्रकार से इन शुभ प्रदाता दिव्य मन्त्रों के द्वारा तथा दूसरों के द्वारा अभिषेक करे।१२०-१२६।

सौरैर्नारायणै रौद्रै ब्रह्मशक्रसमुभद्वैः।
अपोहिष्ठा हिरण्येति सम्भवेति सुरेति च ॥१२७
मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेत्यनेन च।
सर्वमंगलमांगल्ये श्रीश्चा ते ग्रहयोगिभिः ॥१२८
इत्येवं स्नानमासाद्य गात्रमावृत्य कम्वलैः।
सर्वमंगलमन्त्रेण वस्त्र कापसिकं ध्रियात् ॥१२९
आचम्य च ततो देवान् गुरुं विप्रांश्चा पूजयेत्।
ध्वजच्छत्रं चामर च घन्टां चाश्वान् गजांस्तथा ॥१३०
मन्त्रं जप्त्वा धारयेत् तु ततो गच्छेद्हुताशनम्।
तत्र गत्वा वह्निमध्ये वह्नेः श्रीर्वीक्ष्य पार्थिव ॥१३१
निमित्तान्यनिमित्तानि लक्षयेत् तत्र बिन्दुभिः।
दैवज्ञकञ्चुक्यमात्यवन्दिपौरजनैर्वृतः ॥१३२
वादित्रघोर्यस्तुमुलैस्तथा तौर्यत्रिकैः शुभैः।
कृत्वा शेषे पुनः शान्तिमाशीर्वाच्य च वै द्विजान् ॥१३३
पूर्णां विधाय विधिवद् दक्षिणां कनकन्विताम्।
धान्यानि चाथ वासांसि दत्वा कुर्याद् ॥१३४

और मन्त्रों से व नारायणों से—रौद्रों से—ब्रह्मा और इन्द्र से समुद्भवों से—'अपोहिष्ठा' इत्यादि से–'हिरण्य' इन से–'सम्भव'–इससे–'सुर'–सुर'–इससे–'मानस्तोके' इस मन्त्र से और 'गन्ध द्वारा'–इस मन्त्र के द्वारा–सर्व मङ्गल माङ्गल्य इससे–'श्री सादन करके कम्वलों से शरीर को आवृत करके 'सर्व मङ्गल' इत्यादि मन्त्र के द्वारा कपास से निर्मित वस्त्र को धारण करना चाहिए।१२७-१२९। इसके उपरान्त आचमन करके देवों का—गुरु का और विप्रगणों का अभ्यर्चन करना चाहिए। फिर ध्वज—छत्र—चाम—घण्टा—अश्व—गज को मन्त्र का जप करके धारण करे और इसके अनन्तर हुताशन के समीप गमन करना चाहिए। वहाँ पर जाकर राजा वह्नि के मध्य के वह्नि की श्री का निरीक्षण करें।१३०-१३१। वहाँ

पर बिन्दुओं के द्वारा निमित्तों की ओर अनिमित्तों को लक्षित करना चाहिए दैवज्ञ (ज्योतिर्विद्) कञ्चुकि—अमात्य—बन्दीजन—पुरबासीजन से आवृत्त होते हुए तुमुल वाद्यों की ध्वनियों से तथा शुभ तौर्यत्रिकों के साथ युक्त होकर शेष में पुनः शान्ति करके और आधी चित्त करके द्विजों को विधि-पूर्वक सुवर्ण से युक्तपूर्ण दक्षिणा देवे तथा धान्य और वस्त्र देकर उन सबको विदा करे ।१३२-१३४।

ततः शेषजलैः सर्वानमात्यादीन् पुरोहितः ।
सेचयेच्चतुरङ्गं च वलं चापि सराष्ट्रकम् ।।१३५
एवं कृत्वा नृपः पश्चात् विरात्रं संयतो भवेत् ।
मांस मैथुनहीनश्च कुर्यान्माङ्गल्यसेवनम् ।।१३६
पुष्यनक्षत्रयुक्ता तु तृतीया यदि लभ्यते ।
तस्यां पूज्या सदा देवी चण्डिका शंकरेण ह ।।१३७
पञ्चालिकाविहाराद्यैः शिशूनां कोतुकैस्तथा ।
वैवाहिकेन विधिना मोहयेच्चण्डिका शिवाम् ।।१३८
चतुष्पथेषु सर्वेषु देवदेवीगृहेषु च ।
पताकाभिरलं कुर्यादेवं कुर्वन्न सीदति ।।१३९
एवं कृत्वा शान्तित्यागं तथा पुष्याभिषेचनम् ।
चतुरङ्गैः समं राजा भार्याभिस्तु नरैः सह ।।१४०
राज्यमण्डलसंयुक्तः परत्रेह न सीदति ।
नातः परतरो यज्ञो नातः परतरोत्सवः ।।१४१

इसके अनन्तर पुरोहित शेष जल से समस्त अमात्यादिक का सेचन करे। तथा तुरङ्ग का—वल का—राष्ट्र का सेचन करना चाहिये। इस प्रकार से करके पीछे राजा तीन रात्रि पर्य्यन्त पूर्ण तय संयम से युक्त होकर रहे। माँस का अशन—मैथुन से रहित रहे और मांगल्यों का सेवन करे। ।१३५-१३६। यदि पुष्प नक्षत्र से युक्त-तृतीया तिथि का लाभ होता है उसमें सदा शङ्कर के साथ चण्डिका देवी का अर्चन करना चाहिए ।१३७। पाञ्चा-यिकी बिहार आदि के द्वारा तथा शिशुओं के कौतुकों के—वैवाहिक विधि से शिवा चण्डिका का मोहन करना चाहिए ।१३८। समस्त चतुष्पथों

(चौराहों) में और देवों तथा देवियों के मन्दिरों में पाताकाओं को लगाकर उन्हें भूषित करे और ऐसा करता हुआ कभी भी दुःख नहीं पाया करता है ।१३६। इस रीति से शान्ति यज्ञ को सुसम्पन्न करके तथा पुष्प का अभिषेचन करके चतुरंगों के साथ—भार्याओं और नरों के साथ राज्य मण्डल से समन्वित यहाँ पर और परलोक में कभी भी दुःखित नहीं हुआ करता है और न इससे बड़ा और श्रेष्ठ कोई भी यज्ञ होता है ओर न इससे उत्तम कोई उत्सव ही हुआ करता है ।१४०-१४१।

नातः परातरा शान्तिर्नातः परतरं शिवम् ।
अनेनैव विधानेन नृपतेरभिरेचनम् ।।१४२
पुवराज्याभिषेक च कुर्याद्राजपुरोहितः ।
नृपाभिषेककरणमादौ यदि समाचरेत् ।।१४३
अनेनैव विधानेन स्थिरः स्यान्नृपतिस्तदा ।
ययं यज्ञः समुद्दिष्टःशक्रार्थं ब्रह्मणा पुरा ।
एवं यज्ञं नृपः कृत्वा परत्रह न सीदति ।।१४४

इससे बढ़कर कोई भी शान्ति नहीं है और इससे अधिक कोई कल्याण एवं मंगल नहीं होता है । इस ही विधान से नृप का अभिषेचन होता है । और राजपुरोहित को चाहिए कि इसी विधान से युवराज का अभिषेक करे । यदि आदि नृप का अभिषेक का समाचरण करना हो तो इसी विधान से नृप सदा स्थिर होता है । प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने इन्द्र देव से यही यज्ञ इन्द्र के लिए ही कहा था । इसी भाँति राजा इस यज्ञ को करके यहाँ पर और परलोक में कभी भी दुःख नहीं पाया करता है ।१४१-१४४।

—×—

## ।। शक्र ध्वजोत्सव वर्णन ।।

अथातः श्रृणु राजेन्द्र शक्रोत्थानं ध्वजोत्सवम् ।
यत् कृत्वा नृपतिर्याति न कदाचित पराभवम् ।।१
रवौ हरिस्थे द्वादश्यां श्रवणेन विडौजसग् ।
आराधयेन्नृपः सम्यक् सर्वविघ्नोपशान्तये ।।२

राजौपरिचरो नाम बसुनामापरस्तु यः ।
नृपस्तेनायमतुलो यज्ञः प्रार्वतितः पुरा ।
प्रावृट्काले च नभसि द्वादश्यामसितेतरे ।
पुरोहिता वहुविधैर्वाद्यैस्तूर्यैः समन्वितः ।।४
प्रथम शक्रकत्वर्थं वृक्षामामन्त्र्य वर्धयेत् ।
संवत्सरो वार्धकिश्च कृतमंगलकौतुकः ।।५
उद्याने देवतागारे श्मशाने मार्गमध्यताः ।
ये जातास्तरवस्तांस्तु वर्जयेद् वासवध्वजे ।।६
बववल्लीयुतं शुष्कं बहुकण्टकसंयुतम् ।
कुब्जं वृक्षादनीयुक्तं लताच्छन्नतरुं त्यजेत् ।।७

और्व्व ने कहा इससे अनन्तर हे राजेन्द्र ! अतएव आप शक्रोत्थान ध्वजोत्सव का श्रवण कीजिए जिसको सम्पादित करके राजा किसी समय में भी पराभव की प्राप्ति नहीं किया करता है।१। हरिस्थ रविवार के दिन श्रवण से युक्त द्वादशी तिथि में राजा को इन्द्रदेव का समाराधन करना चाहिए। इसको भली भाँति करने से सब प्रकार के विघ्नों की उपशान्ति हुआ करती है।२। राज परिवार नाम वाला जिसका वासुनाम दूसरा है नृप इसे करे। यह पिछले समय से अतुल यज्ञ प्रवृत्त हुआ था।३। नभ मास में वर्षा ऋतु में द्वादशी तिथि में शुक्ल पक्ष में पुरोहित बहुत प्रकार के वाद्यों और तूर्यों से समन्वित होवे।४। सबसे प्रथम इन्द्र के केतु के लिए वृक्ष को आमन्त्रित करके उसको वधित करना चाहिये। सम्वत्सर और वार्धकि मंगल कौतुक किया हुआ होवे। उद्यान में—देवता के आगार में—श्मशान में और मार्ग के मध्य में जो भी तरुवर समुत्पन्न होवे उनका वासव ध्वज में वर्जन कर देना चाहिए।५-६। जो वहुत बल्लियों से संयुत होवे शुष्क हो-बहुत से काँटों से समन्वित हो—कुब्ज अर्थात् टेढ़ा हो वृक्ष। दनीय युक्त हो तथा लताओं से छन्न तरु हो उसका परित्याग कर देना चाहिए।७।

पक्षिवाससमाकीण कोटरैर्बहुभिर्युतम् ।
पवनानलविध्वस्तं तरुं यत्नेन वर्जयेत् ।।८
नारीसंज्ञाश्च ये वृक्षा अतिह्रस्वा अतिकशाः ।
तान् सदा वर्जयेद् धीरः सर्वदा शक्रपूजने ।।९

अर्जु नोऽप्यश्चकर्णश्च प्रियकोषक एव च ।
औदुम्बरश्च पंचैते केत्वर्थं ह्युत्तमाः स्मृताः ।।१०
अन्ये च देवदार्वाद्याः शालाद्यास्तत्स्वस्तथा ।
प्रशस्तास्तु परिग्राह्या नाप्रशस्ताः कदाचन ।।११
धृत्वा वृक्षं ततो रात्रौ स्पृष्टा मन्त्रमिमं पठेत् ।
यानि वृक्षेषु भूतानि तेभ्यः स्वस्तिं नमोऽस्तु वः ।।१२
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासवध्वजम् ।
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ।।१३
ध्वाजार्थं देवराजस्व पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।
ततोऽपरेह्नि तं छित्वा मूलमष्टांगुलं पुनः ।।१४

जो वृक्ष पक्षियों के निवास से समाकीर्ण हो अर्थात् जिस पर बहुत से पक्षियों के घोंसले होवें—जो बहुत कोटरों से समन्वित होवें—जो वायु और अग्नि से विध्वस्त हो गया हो ऐसे तरु का यत्नपूर्वक वर्जित कर देवे ।८। जिन वृक्षों का नाम नारी वाला हो—जो अत्यन्त छोटा हो—जो बहुत ही कृश होवें—ऐसे इन सभी वृक्षों का धीर पुरुष इन्द्र के पूजन में सदा ही वर्णन कर देवे ।९। अर्जुन–अश्वकर्ण–प्रिय कोषक—औदुम्वर—ये पाँच वृक्ष केतु के लिए उत्तम-उत्तम बताये गये हैं ।१०। और अन्य देवदारु आदि तथा शाल आदि वृक्ष जो भी प्रशस्त हैं उनका परिग्रहण करना चाहिये और जो अप्रशस्त हैं उनका कभी भी ग्रहण न करे ।११। वृक्ष को पकड़ करके रात्रि में स्पर्श करके इस निम्न कथित मन्त्र का पाठ कहना चाहिए—जो प्राणी वृक्षों पर हैं उनके लिए कल्याण होवे और आपको नमस्कार है । यह उपहार ग्रहण करके इन्द्र की ध्वजा को करे । राजा आपका वरण करता है । हे नगोत्तम ! आपका कल्याण होवे ।१२-१३। देवराज इन्द्र की ध्वजा के लिए इस पूजा का परिग्रहण करिए । इसके अनन्तर दूसरे दिन में उसका छेदन करके फिर आठ अंगुल मूल का ग्रहण करे ।१४।

जले क्षिपेत् तथाग्रस्य च्छित्वैव चतुरंगुलम् ।
ततो नीत्वा पुरद्वारं केतुं निर्माय तत्र वै ।।१५
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे केतुं वेदी प्रवेशयेत् ।

द्वाविंशद्धस्तमानस्तु अधमः केतुरुच्यते ।।१६
द्वात्रिंशत् तु ततो ज्यायान् द्वाचत्वारिशदेव च ।
ततोऽधिकः समाख्यातो द्वापञ्चाशत् तथोत्तमः ।।१७
कुमार्यः पञ्च कर्तव्याः शक्रस्य नृपसत्तम् ।
शालमय्यस्तुः ताः सर्वा अपराः शक्रमातृकाः ।।१८
केतोः पादप्रमाणेन कार्याः शक्रकुमारिकाः ।
मातृकार्धप्रमाणां तु मन्त्रिहस्तद्वयं तथा ।।१६
एवं कृत्वा कुमारीश्च मातृकाः केतुमेव च ।
एकादश्यां सिते पक्षे यष्टि तामर्धिवासयेत् ।।२०
अधिवाश्य ततो यष्टि गन्धद्वारादिमन्त्रकैः ।
द्वादश्यां मण्डलं कृत्वा वासयं विस्तृतात्मकम् ।।२१

तथा आगे की ओर से चार अंगुल का छेदन करके उसे जल प्रक्षिप्त कर देवे। फिर पुर के द्वार पर ले जाकर वहाँ पर केतु का निर्माण करके भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में केतुका वेदी प्रवेश करना चाहिए। बाईस हाथ के मन वाला केतु अधम कहा जाता है।१५-१६। बत्तीस हाथ के मन वाला उससे ज्येष्ठ होता है। बयालीस हाथ के मन वाला भी होता है। इससे भी अधिक पावन हाथ के मान वाला उत्तम कहा गया है।१७। हे नृपश्रेष्ठ! इन्द्र की पाँच कुमारियाँ करनी चाहिये। वे सब शालमयी होवें और दूसरी शक्रमातृकाएँ होनी चाहिये।१८। केतु सेतु के पाद के प्रमाण से ही शक्र कुमारिकाऐं करनी चाहिए। मातृका के अर्ध प्रमाण वाला तथा मन्त्री के दो हाथ करे। इस रीति से कुमारियों की रचना करके और मातृका तथा केतु को करके तिथि में शुक्लपक्ष में उस यष्टि 'गन्ध द्वारा' आदि मन्त्रों के द्वारा किया जाना चाहिए। द्वादशी तिथि में विस्तृतात्मक वासव मण्डल करे।२१।

अच्युतं पूजयित्वा तु शक्रं पश्चात् प्रपूजयेत् ।
शक्रस्य प्रतिमां कुर्यात् काञ्चनीं दारवीं च वा ।।२२
अन्यतैजससम्भूतां सर्वाभावे तु मृण्मयीम् ।
तां मण्डलस्य मध्ये तु पूजयित्वा विशेषतः ।।२३

ततः शुभे मुहूर्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृपः ।।
वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।
क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।२४
एह्येहि सर्वामरसिद्धसंघैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।
समुत्थितस्त्वं श्रवणाद्यपादे गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।२५
एवमुत्तरतन्त्रोक्तौर्दहनप्लवनादिभिः ।
इति मन्त्रेण तन्त्रेण नाना नैवेद्यवेदनः ।।२६
अपूपैः पायसैः पानैर्गुडैर्धानाभिरेव च ।
अक्ष्यैश्च विविधैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ।।२७

भगवान् अच्युत का अर्चन करके पीछे शक्रदेव का पूजन करना चाहिए। इन्द्रदेव की प्रतिमा का निर्माण सुवर्ण के द्वारा अथवा काष्ठ के द्वारा करनी चाहिए ।२२। अन्य किसी उत्तम धातु के द्वारा निर्माण करावे अथवा सबके अभाव में मृत्तिका से परिपूर्ण करे। उस प्रतिमा को मण्डल के मध्य से स्थापित करके विशेष रूप से अर्चन करे ।२३। इसके अनन्तर किसी परम शुभ मुहूर्त में राजा केतु को उत्थापित करे। हे पुरन्दर ! आपके हाथ में वज्र धारण किए हुए आप असुरों के हनन करने वाले हैं—आपके बहुत नेत्र हैं। समस्त लोकों के कल्याण करने के लिये यह पूजा ग्रहण कीजिये। ।२४। हे अमरों के स्वामिन् ! आप वज्र के धारण करने वाले हैं और सभी देवगणों द्वारा अभिष्टुत हैं आप यहाँ पर आगमन कीजिए—यहाँ पदार्पण करिए। आप श्रवण के आद्य पाद से समुत्थित हुए हैं—आप इस पूजा का ग्रहण कीजिये। हे राजन् ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित हैं ।२५। इस रीति से उत्तर तन्त्रों में वर्णित दहन और पावन आदि के द्वारा इस मन्त्र से तथा अनेक नैवेद्यों के निवेदनों से—अयूपों से—पायस से—पान—गुड़ और अनेक तरह के भक्ष्यों से—भोज्यों से श्री की विशेष वृद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए ।२५-२७।

घटे तु दशदिक्पालान् ग्रहांश्च परिपूजयेत् ।
साध्यादीन् सकलान् देवान् मातृ सर्वा अनुक्रमात् ।।२८
ततः शुभेः मुहूर्ते तु ज्ञानी वर्धकिसंयुतः ।
केतूत्थापनभूमिं तु यज्ञवेद्यास्तु पश्चिमे ।।२९

विप्रैः पुरोहितैः सार्धं गच्छेद्राजा सुमंगलैः ।
रज्जुभिः पंचभिर्बद्धं यन्त्रश्लिष्टं समातृकम् ॥३०
कुमारीभिस्तु संयुक्तं दिक्पालानां च पट्टकैः ।
वृहद्‌भिरतिकान्तैश्च नानाद्रव्यैः सुपूरितैः ॥३१
यथावर्णैर्यथादेशे योजितैर्वस्त्रवेष्टितैः ।
युक्तं तं किङ्किणीजालैर्वृहद्‌घण्टोघचामरैः ॥३२
भूषितं मकुरैरुच्चैर्माल्यैर्बहुविधैस्तथा ।
बहुपुष्पैः सुगन्धैश्च भूषितं रत्नमालया ॥३३
चित्रमाल्याम्बरैश्चैव चतुर्भिरपि तोरणैः ।
उत्थापयेन्महाकेतुं राजाकीयैः शनैः शनैः ॥३४
तमुत्थाय महाकेतुं पूजित मण्डलान्तरे ।
प्रतिमा तां नयेन्मूलं केतोः शक्रं विचिन्तयन् ॥३५

घट में दिक्पालों और ग्रहों का अर्चन करे । अनुक्रम से साध्य आदि समस्त देवों का और सब मातृकाओं का पूजन करना चाहिए । इसके अनन्तर किसी शुभ मुहूर्त में वर्धकि से समन्वित ज्ञानी यज्ञ वेदी के पश्चिम में केतूत्थापन की भूमि में विप्रों और पुरोहितों के साथ राजा गमन करे । सुमंगल पाँच रज्जुओं से सुबुद्ध—मन्त्र से श्लिष्ट—मातृकाओं के सहित—कुमारियों से संयुक्त और दिक्पालों के पदकों से युतवृहन् अतिकान्त सुपूरित अनेक द्रव्यों से यथा वर्ण और यथा देश में वस्त्र से वेष्टित किये हुए योजितों से युक्त उसको जो किंगिणी के जलों से तथा बड़े घण्टाओं से और चामरों से भूषित है—मुकुरों से उच्चमाल्यो से बहुत प्रकार के सुगन्धित बहुत से पुष्पों से भूषित तथा रत्नों की मादा से अलंकृत अद्‌भुत माल्यों और अम्बरों से तथा चारों तोरणों से राजकीयों के द्वारा धीरे-धीरे महाकेतु को उत्थापित करे । मण्डतर में पूजित उस महाकेतु को उठाकर इन्द्रदेव का चिन्तन करते हुए उस प्रतिमा को केतु के मुख में ले जावे ।२८-३५।

यजेत् तं पूर्ववत् तत्र शचीं मातलिमेव ।
जवन्त तनयं तस्य वज्रमैरावतं तथा ॥३६
ग्रहांश्चाप्यथ दिक्पालान् सर्वांश्च गणदेवताः ।

अपपाद्यैः पूजयेत् तु वलिभिः पायसादिभिः ॥३७
पूजितानां च देवानां अश्वद्धोमं समाचरेत् ।
होमान्ते तु बलि दद्याद् वासवाय महात्मने ॥३८
तिलं घृतं चाक्षतं च पुष्प दूर्वा तथैव च ।
एतैस्त जहुयाद् देवान् स्वै स्वैतर्मन्त्रैर्नरोत्तम् ॥३९
ततो होमावसाने त भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
एवं सम्पूज्येन्नित्थं सप्तरात्रं दिने दिने ॥४०
ब्राह्मणैः सहितो राजा वेदवेदांगपारगैः ।
सर्वत्र शक्रपूजासु यज्ञेषु परिकीर्तितः ॥४१
त्रातारमिति मन्त्रोऽयं वासवस्य प्रियः परः ॥
एवं कृत्वा दिवा जगे शक्रोत्यापनमदितः ॥४२

वहाँ पर पूर्व की ही भाँति उसका यजन करे तथा शची—मातलि—उसके पुत्र जयन्त और ऐरावत का भी अर्चन करना चाहिये ।३७। ग्रहों—दिक्पालों—सर्पों—गणदेवी अश्वों—बलियों के द्वारा और पायस आदि से पूजन करना चाहिये ।३७। अर्चन किये हुए देवों का निरन्तर होम का समाचरण करे । होम के अन्त में वलि देवे जो महात्मा बासव के लिये देनी चाहिये ।३८। हे नरोत्तम ! तिल—घृत-अक्षत—पुष्प-पूर्वा—इनके द्वारा अपने-अपने मन्त्रों से देवों का हवन करना चाहिए ।३९। इसके उपरान्त होम के अन्त में ब्राह्मणों को भोजन करावे । इस रीति से सात रात्रि पर्यन्त दिन-दिन में नित्य भली भाँति अर्चन करना चाहिए ।४०। वेदों और वेदांग शास्त्रों के परागामी विद्वान् ब्राह्मणों के सहित राजा सर्वत्र इन्द्र की पूजा में कीर्तित किया गया है ।४। 'त्रातारम्'-यह मन्त्र इन्द्र का परम प्रिय है । इस प्रकार से करके दिवा के भाग में शक्र का उत्थान करे ।४२।

श्रवणार्धयुतायां त द्वादश्यां पार्थिवः स्वयम् ।
अन्त्यपादे भरण्यां त निशि शक्रं विसर्जयेत् ॥४३
सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यन्ति ।
षणमासान्मृत्युमाप्वोति राजा दृष्ट्वा वा विसर्जनम् ॥४४
शक्रस्य नृपशार्दूल तस्मान्नेक्षेत तन्नृपः ।

विसर्जनस्य मन्त्रोऽयं पुराविद्भिरुदीरितः ।।४५

सार्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरः शतक्रतोः ।
उपहारं गृहीत्वेम महेन्द्रध्वज गम्यताम् ।।४६

सूतके तु समुत्पन्ने वारे भौमस्य वा शनैः ।
भूमिकम्पादिकोत्पाते वासवं न विसर्जयेत् ।।३७

उत्पाते सप्तरात्रं तु तथोपप्लदर्शने ।
व्यतीत्य शनिभौमौ च ह्यन्यश्चेऽपि विसर्जयेत् ।।४८

सूतके त्वथ संप्राप्ते व्यतीते सूतके पुनः ।
यस्मिन् तस्मिन् दिने चैव सूतकान्ते विसर्जयेत् ।।४९

श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि में राजा को स्वयं भरणी के अन्तिम चरण में रात्रि में शक्र का विसर्जन करना चाहिये ।४३। समस्त लोकों के सुप्त हो जाने पर जैसे राजा देखता है । राजा विसर्जन को देखकर छह मास में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । हे नृप शार्दूल ! इस कारण से नृप शक्र का विसर्जन नहीं देखे । पुरावेत्ताओं के द्वारा विसर्जन का यह मन्त्र कहा गया ।४४-४५। सुर—असुर गणों के साथ पुरन्दर शत क्रतुका इस उपहार का ग्रहण कर हे महेन्द्रध्वज ! गमन कीजिए । सूतक के उत्पन्न होते पर भौम अथवा शनिवार में—भूकम्प आदि उत्पात के हो जाने पर वासव का विसर्जन नहीं करना चाहिए ।४७। उत्पात होने पर तथा उपलब्ध के दर्शन होने पर सात रात्रि को व्यतीत करके तथा शनिवार को छोड़कर अन्य नक्षत्र में भी विसर्जन कर देना चाहिए ।४८। सूतक के सम्प्राप्त हो जाने पर सूतक के अन्त में जिस किसी भी दिन में विसर्जन कर देवे ।४९।

तथा केतुं नृपो रक्षेत् पतन्ति शकुना यथा ।
न केतौ नृपशार्दूल यावन्नहि विसर्जनम् ।।५०

शनैः शनैः पातयेत् यथोत्थापनमादितः ।
कृत तथा यथा भग्ने केतौ मृत्युमवाप्नुयात् ।।५१

विसृष्टं शक्रकेतु तु सालङ्कारं तथा निशि ।
क्षिपेदेतेन मन्त्रेण त्वगाधे सलिले नृप ।।५२

तिष्ठ केतो महाभाग यावत् सवत्सर जले ।

भवाय सर्वलोकानामत्तराय विनाशक ।।५३
उत्थापयेत् पुर्यरवौः सर्वलोकस्य वै पुरः ।
रहो विसर्जयेत् केतुं विशेषो यः प्रपूजने ।।५४
एवः यः कुरुते पूजां वासवस्य महात्मनः ।
स चिरं पृथिवी भुक्त्वा वासवं लोकमाप्नुयात् ।।५५
न तस्य राज्य दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयः क्वचित् ।
स्थास्यन्ति मृत्युर्नाकाले जनानां तत्र जायते ।।५६
तत्तुल्यः कोऽपि नान्योऽस्तिः प्रियः शक्रस्य पार्थिव ।
तस्य पूजा सर्वपूजा केशवाद्याश्च तत्रगाः ।।५७
सकलकलुषहारि व्याधिदुर्भिक्षनाश
सकलभवनिवेश सर्वसौभाग्यकारि ।
सुरपतिगृहगाभिर्वार्चनं शक्रकेतोः ।
प्रतिशरदमनेकैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धय ।।५८

राजा के द्वारा उसी भाँति केतु की रक्षा करनी चाहिए जिससे हे नृप शार्दूल ! केतु पर शकुन पतन न करें जब तक उसका विसर्जन न होवे ।५०। जिस प्रकार से आदि से उत्थापन होवे धीरे-धीरे पातन करना चाहिए । केतु के मग्न होने पर मृत्यु की प्राप्ति होती है ।५१। हे नृप ! अलङ्कारों के सहित विसर्जन किये हुये शक्र केतु को रात्रि में अगाध जल में निम्न वर्णित मन्त्र के द्वारा प्रक्षिप्त कर देवे ।५२। हे महाभाग केतु ! आप विघ्नों के विनाश करने वाले हैं । समस्त लोकों के भव के लिए आप जब तक सम्वत्सर होवे जल में स्थित रहें ।५३। समस्त लोकों के आगे सूर्य की ध्वनि के साथ उत्पादन करे और एकान्त में केतु का विसर्जन करना चाहिए । यही पूजन में विशेषता है ।५४। इस रीति से महात्मा वासव की जो पूजा किया करता है वह बहुत समय तक पृथ्वी का उपभोग करके अन्त में वासव (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति किया करता है ।५५। उसके राज्य में कभी दुर्क्षित नहीं हुआ करता है और कहीं पर भी व्याधियाँ तथा आधियाँ नहीं होती हैं तथा मनुष्यों की अकाल में कभी मृत्यु भी नहीं हुआ करती है ।५६। हे पार्थिव ! उसके समान अन्य कोई भी इन्द्रदेव का प्रिय नहीं होता

है। उसकी पूजा सबकी पूजा है। भगवान् केशव आदि वहाँ पर ही सब विराजमान रहा करते हैं।५७। समस्त कलुषों का अपहरण करने वाला व्याधि और दुर्भिक्ष का नाशक—सकल भवों का विशेष—सब प्रकार के सौभाग्य का सम्पादन करने वाला—शक्र केतु का सुरपति के गृह की वाणियों से वाचन प्रिय शरत्काल में अनेकोपचारों के द्वारा श्री वृद्धि के लिये पूजन करना चाहिए।५८।

—×—

## ।। राजा के पालनीय नियमादि ।।

ज्येष्ठं दशहरायां तु विष्णोरिष्टिं नृप शृणु ।
येन वा विधिना कुर्यादिष्टिं विष्णोर्नृपः सदाः ।।१
प्रत्यब्दं पार्थिवः कुर्यात् प्रतिमां काञ्चनीं हरेः ।
अन्यतेजीयीं वापि दारवीं वा शिलामयीम् ।।२
तां प्रतिष्ठाप्य विधिना मानोन्मानैस्तु शिल्पिभिः ।
प्रतिष्ठां विधिवत् तस्याः कुर्याद् विप्रैः पुरोहितैः ।।३
तां संस्थाप्य सुरागारे स्वयं वा यत्नतः कृत ु ।
वासुदेवस्य बीजेन पूर्वोक्तविधिना तथा ।।४
सर्वोपचारैर्भक्त्या त ु वासुदेवं प्रपूजयेत् ।
पूजान्ते संस्कृते वह्नौ कुण्डमध्ये स्थितो द्विजः ।।५
आज्यैः सहस्रं जुहुयादाहुतीनां प्रियम् हरेः ।
संपूज्य वासुदेवं त ु होमं कृत्वा ततो द्विजः ।।६
नृपस्यानुमते तां त ु प्रतिमां नयेत् ।
प्रतिमायाः कपोलौः द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ।।७

और्व ने कहा—हे नृप ! ज्येष्ठ मास के दशहरा में भगवान् विष्णु की इष्टि के विषय में अब आप श्रवण कीजिए जिस विधि से नृप को सदा भगवान् विष्णु की इष्टि करनी चाहिए।१। प्रतिवर्ष राजा को भगवान् हरि की सुवर्ण की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए अथवा किसी अन्य उत्तम धातु के द्वारा गतवाने या काष्ठ की अथवा शिलामयी प्रतिमा की रचना करानी चाहिए।२। शिल्पियों के द्वारा उसका निर्माण करावे और मानो-

मानो से उसकी विधि के साथ प्रतिष्ठा करे। विप्रों और पुरोहितों के द्वारा विधि-विधान के साथ उसकी प्रतिष्ठा करना चाहिए।३। उसको संस्थापना किसी देवालय में करावे या स्वयं द्वारा निर्मित देवालय में करे। पूर्व में वर्णित विधि से वासुदेव के बीच से सभी उपचारों के द्वारा भक्ति के साथ वासुदेव भगवान का अभ्यर्चन करे। पूजा के अन्त में संस्कार किये हुये अग्नि में जो कि कुण्ड के मध्य में स्थित होवे फिर द्विज घृत से हरि भगवान् की प्रिय एक सहस्र आहुतियों से हवन करे। द्विज भली भाँति वासुदेव का पूजन करके फिर होम करे।४-५-६। नृप की अनुमति से उस प्रतिमा को मण्डल में ले जावे। प्रतिमा के दोनों कपोलों का दाहिने हाथ से स्पर्श करना चाहिए।७।

प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वै हरेः।
कृतायां प्रतिष्टायां प्राणानां नृपसत्तम् ॥८
विष्णुप्राणांस्तां प्रतिमामायान्ति नियतं स्वयम्।
प्राणेष्वथागतेष्वस्यां देवत्व नियत भवेत् ॥९
अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च।
यथापूर्वं तथाभावः स्वर्णदीनां न विष्णुता ॥१०
अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या यस्या देवत्वसिद्धये ॥११
सुवर्णं तु सुवर्णं स्याच्छिला दारु तथा शिला।
अन्यच्च स्वस्वरूपं स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥१२
वासुदेवस्या वीजेन तद् विष्णोरित्यनेन च।
तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्यां प्रतिष्ठामाचरेद्धरेः ॥१३
तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठ दत्वा शश्वच्च मन्त्रदित्।
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठाय हृदयेऽपि समाचरेत् ॥१४

उस प्रतिमा में हरिदेव की प्राण प्रतिष्ठा करे। हे नृपश्रेष्ठ! प्राणों की प्रतिष्ठा के करने पर भगवान विष्णु के प्राण नियत रूप से उस प्रतिमा में आ जाया करते हैं। प्राणों के समागत हो जाने पर इस प्रतिमा में नियत रूप से देवत्व हो जाया करता है।८-९। प्राणों की प्रतिष्ठा न करने पर

प्रतिमाओं में जैसा पहिले भाव होता है वैसे ही स्वर्ण आदि भाव बना रहता है और उनमें विष्णु का भाव नहीं होता है ।१०। हे पार्थिव ! अन्य देवों की भी प्रतिमाओं में भी प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए तभी उसमें देवत्व की सिद्धि हुआ करती है ।११। प्राण स्थान के बिना सदा सुवर्ण-सुवर्ण ही रहता है—शिला-शिला है काष्ठ ही रहा करता है । सभी अपने ही स्वरूप में हैं ।१२। वासुदेव के बीज से—"तद्विष्णोः" इत्यादि से तथा अङ्ग—अङ्गी मन्त्रों के द्वारा भगवान् हरि की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए ।१३। उसी भाँति मन्त्रों के ज्ञान रखने वाला हृदय में निरन्तर अँगुष्ठ को देकर इन मन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठा करके हृदय में भी समाचरण करे ।१४।

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु यत् ।
असौ देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन् ॥१५
अङ्गमन्त्रै रङ्गिमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ।
प्राणप्रतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत् ॥१६
प्रतिमापूजने कुर्यादात्मन्यपि च मन्त्रवित् ।
प्राणप्रतिष्ठा प्रथमं पूजाभागविशुद्धये ॥१७
अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठां तु प्रतिमापूजनादृते ।
न कश्चित् तु बुधः कुर्यात् कुर्वन् मृत्युमवाप्नुयात् ॥१८
विष्णोरिष्टिमिमां कृत्वा दशम्यां पार्थिवोत्तमः ।
तस्यामेव तु पर्णायां प्रतिमां स्थापयेत् ततः ॥१९
तवं दशहरायां तु कृत्वेष्टि पार्थिवो हरेः ।
सर्वान् कामानवा नोति निर्विघ्नोऽपि स जायते ॥२०
श्रीपंचम्यां श्रियं देवीं कुन्दैः संपूजयेत्सदा ।
वासव गजराजस्यमुपहारैस्तथोत्तमैः ॥२१

इसके लिए प्राण प्रतिष्ठित होवें—इनके लिए प्राण क्षरण करें—यह देवत्व की संख्या के लिए स्वाहा—यह यजु का उच्चारण करें-।१५। वैदिक अङ्ग मन्त्रों से और अङ्गी मन्त्रों से और इनके द्वारा सर्व प्रतिमाओं में प्राणों की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए ।१६। मन्त्रों के ज्ञान रखने वाले पुरुष की प्रतिमा के पूजन में आत्मा में भी करना चाहिए । पूजा के

भाग की विशुद्धि के लिये प्रथम प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।१७। इसमें प्राण प्रतिष्ठा का प्रतिमा के पूजन के बिना किसी भी बुध पुरुष को नहीं करना चाहिए। ऐसा करके मृत्यु को प्राप्त किया करता है ।१८। नृपश्रेष्ठ दशमी में इस भगवान् विष्णु की दृष्टि को करके उसके पूर्ण हो जाने पर ही फिर उस प्रतिमा को स्थापित करे ।१६। इस प्रकार से राजा दशहरा में हरि भगवान् की दृष्टि को करके सभी मनोरथों की प्राप्ति कर लिया करता है और वह विघ्नों से भी रहित होता है ।२०। श्री पञ्चमी में भी देवी का कुन्द के पुष्पों के द्वारा उस समय में प्रकृष्ट रूप से पूजन करना चाहिए। गजराज पर संस्थित वासव का उत्तम उपहारों के द्वारा अर्चन करे ।२१।

लक्ष्म्यास्तन्त्रं महामन्त्रां वासवस्य पुरोदितम् ।
अत्रापि पूजने ग्राह्य मण्डलादि यथाक्रमम् ।।२२
एवं कृते पूजने तु श्रीपंचम्यां विशेषतः ।
श्रीयुतो नृपतिर्भूयान्न श्रीहानिमवाप्नुयात् ।।२३
सदाचारविशेषोऽयं कथितस्तव पार्थिव ।
विषेधे तु विशेषांश्च शृणु येन श्रियेष्यते ।।२४
असंपूज्य तथा विष्णु शिवमग्नि पुरन्दरम् ।
अदत्त्वा च तथा दानं न भुञ्जीत नृपः क्वचित ।।३५
हावयेदग्निहोत्र तु नित्यमेव पुरोहितैः ।
आकृत्वा चाग्निहोत्रं तु भुञ्जन्नरकमाप्नुयात् ।।२६
नारक्षिते गृहे राजा रत्नदीपविवर्जिते ।
स्वपेत तथा स्त्रिया सार्धं व कदाचन संविशेत ।।२७
भुक्त्वान्नं श्रीफलं नाद्यात नथा धात्रीफलं नृपः ।
बुद्धिक्षयकरा ह्येता माष आसवमृत्तिकाः ।।२८

यहाँ पर पूजन में भी वासव का पहिले कहे हुए लक्ष्मी के तन्त्र महातन्त्र का ग्रहण करना चाहिए और क्रम के अनुसार मण्डल आदि का भी ग्रहण करे ।२२। इस प्रकार से पूजन करने पर और श्री पञ्चमी में विशेष रूप से किये जाने पर नृप श्री से समन्वित होता है और कभी भी श्री की हानि को नहीं प्राप्त किया करता है ।२३। हे पार्थिव ! यह सदाचार

विशेष मैंने आपके सामने वर्णित कर दिया है और निषेध में विशेषों का श्रवण कीजिये जिससे श्री के द्वारा इष्ट किया जाता है ।२४। भगवान् विष्णु को भली-भाँति पूजन न करके तथा शिव—अग्नि तथा पुरन्दर का पूजन न करके तथा दान न देकर राजा को कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए ।२५। पुरोहितों के द्वारा नित्य अग्नि होत्र का हवन कराना चाहिए। अग्नि होत्र न करके भोजन करने वाला नरक की प्राप्ति किया करता है ।२६। रत्नदीप से रहित अरक्षित गृह में राजा को स्त्री के साथ शयन करना चाहिए और कभी वहाँ बैठना भी नहीं चाहिए ।२७। अन्न खाकर श्री फल का अशन न करे तथा नृप धात्री फल को भी न खावे। माष–आसन और मृत्तिका ये सब बुद्धि का क्षय करने वाले होते हैं ।२८।

निम्बाटरूषच्युताश्च बुद्धिवृद्धिकरा कृताः ।
वृद्धिक्षयकराँ नित्यं त्यजेद्राजा च भोजने ॥२९
भक्षयेदन्वहं बुद्धिवृद्धिहेतुं नृपोत्तमः ।
न पर्यायविहीनं तु प्रारोहेदासनं नृपः ॥३०
न यानं न गजं नाश्वमारोहेद्धीनमासनः ।
नैकस्तु विचरेद्राजा कदाचिदपि निर्जने ॥३१
मदहेतुं न भुञ्जीयात् कदाचिदपि भोजने ।
कदाचिन्नापि सेवेत ह्यष्टम्यां मांसमैथुने ॥३२
दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च ।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात् ॥३३
न क्षेत्रजादीस्तनयाम् राज्ये राजाभिषेचयेत् ।
पितृणां शुद्धये नित्यमौरसे तनये तनये सति ॥३४
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढ़ोत्पन्नोऽपविद्धश्च भागार्हास्तनया इमे ॥३५

निम्ब—अररूषच्युत बुद्धि की वृद्धि के करने वाले हैं—ऐसा माना गया है। जो बुद्धि के करने वाले हैं। राजा को उनका भेदन में त्याग कर देना चाहिए ।२९। नृपों में उत्तम को प्रतिदिन बुद्धि के जो हेतु हों उन्हीं का भक्षण करना चाहिए। राजा को पर्याय पर विहीन आसन पर प्रारोहण

नहीं करना चाहिए ।३०। जो आसनों से हीन होवे ऐसे यान पर—खश्व और हाथी पर भी आरोहण नृप न करे। किसी भी समय में राजा एक अकेला निर्जन वन में विचरण न करे ।३१। राजा को चाहिए किसी भी समय भोजन में मद के कारण पदार्थ का अशन न करे। अष्टमी तिथि में कभी भी माँस और मैथुन का सेवन न करे ।३२। दर्शश्राद्ध—गया श्राद्ध—तिलों से तर्पण वह राजा न करे जिसका पिता जीवित होवे। ऐसा करके पाप को प्राप्त किया करता है ।३३। राजा को राज्य पर क्षेत्रज्ञ तनयों का अभिषेक नहीं करना चाहिए जबकि और सुपुत्र होवे तो उसके होते हुए पितृगणों की शुद्धि के लिए और सुपुत्र का ही अभिषेक करे ।३४। और स—क्षेत्र अ—दत्तक—कृत्रिम—गूढ़ोत्पन्न अपबिद्ध—ये पुत्र भाग के योग्य हुआ करते हैं ।३५।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्था ।
स्वयंदत्तश्च दासश्च षडते पुत्रपांसुलाः ।।३६
अभावे पूर्वपूर्वेषां परान् समभिषेचयेत् ।
पौनर्भवं स्वयं दत्तं दास राज्ये न योजयेत् ।।३७
दत्ताद्याश्चापि तनया निजगोत्रेण संस्कृतः ।
आयान्ति पुत्रतां सम्यगन्यवीजसमुद्भवाः ।।३८
पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपतेः ।
आचूड़ान्तं पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ।।३९
चूडान्ता यदि संस्कारा निजगोत्रेण संस्थिताः ।
दत्ताद्यास्तवयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ।।४०
ऊर्ध्वं तु पचमाद् वर्षाद् दत्ताद्यांश्च सुतान्नृप ।
गृहीत्वा पंचवर्षीयं पुत्रेष्टि प्रथमं चरेत् ।।४१
पौनर्भवं तु तनयां जातमात्रं सभानयेत् ।
कृत्त्रा पौनर्भवष्टोमं जातमात्रस्य तस्य वै ।।४२

कानीन् (कन्या से उत्पन्न)—सहोढ़—क्रीत (धन देकर खरीदा हुआ)—पौनर्भव—स्वयं दत्त—और दास—ये छः पुत्र पाँसुल होते हैं ।३६। पूर्व पूर्वों के अभाव है दूसरों का अभिषेक करे। जो पौनर्भवस्वयं दत्त और

दास हो उसका कभी भी राज्य में भोजन नहीं करे।३७। दत्तक आदि पुत्र भी जो निज गोत्र के द्वारा संस्कार किये गये होवें ने अन्य के वीर्य से समुत्पन्न हुए पुत्रता को प्राप्त हुआ करते हैं।३८। पिता के गोत्र से राजा का जो पुत्र संस्कार किया हुआ है वह चूड़ा कर्म पर्यन्त पुत्र नहीं होता है अन्य से ही पुत्रता को प्राप्त होता है।३९। यदि चूड़ान्त संस्कार निज गोत्र से संस्थित होवें वे दत्तक आदि पुत्र होते हैं अन्यथा दास कहा जाया करता है।४०। हे नृप ! पाँचवें वर्ष से ऊपर दत्तक आदि पुत्रों को ग्रहण करके प्रथम पाँच वर्षीय पुत्रेष्टि का समाचरण करना चाहिए।४१। पौनर्भव पुत्र को जैसे ही समुत्पन्न होवे उस समानीत करे पौनर्भवष्टोम को जातमात्र उसका करे।४२।

सर्वांस्तु कुर्यात् संस्कारान् जातकर्मादिकान्नरः ।
कृते पौनर्भवष्टोमे सुतः पौनर्भवः स्मृतः ।।४३
एकोद्दिदष्टं पितुः कुर्यान्न श्राद्धं पार्वणादिकम् ।
क्रीता या वनिता मूल्यै सा दासीति निगद्यते ।।४४
तस्यां यो जायते पुत्रो दासः पुत्रस्तु स स्मृतः ।
न राज्ञो राज्यभाक् स स्याद् विप्राणां नामि श्राद्धकृत् ।।४५

मनुष्य को चाहिये कि जात कर्म आदि समस्त संस्कारों को करे। पौनर्भवष्टोम के करने पर पौनर्भव कहा गया है।४३। पिता के एकोद्दिदष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिए। जो मूल्य के द्वारा वनिता खरीदी गयी है वह वनिता दासी कही जाया करती है।४४। उसमें जो भी पुत्र समुत्पन्न होता है वह पुत्र दास कहा गया है। वह राजा के राज्य का भागीदार हुआ करता है किन्तु विप्रों के श्राद्ध करने वाला नहीं होता है।४५।

नियोज्य तत्र तां भूपस्तामिस्रे तेन पच्यते ।
हीनायुश्च भवेल्लोको राजा वापि सहायजः ।।५१
काणं व्यङ्गमपुत्रं वा नाभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।
न हृनस्व व्याधित वापि नृपः कुर्यात् पुरोहितम् ।।५२
कृपणस्य धनं राजा न गृह्णीयात कदाचन ।
न द्विजानां तथा दद्याद् धनानि विपुलान्यपि ।।५३

नारोहेत कामुकोन्मत्तगजं राजा कदाचन ।
आरुह्य कामुकस्तं तु परत्र ह विषीदन्ति ।।५४

अनायुष्यं न कुर्यात तु कर्म भूपः कदाचन ।
सततं चायुषो वृद्धयै यतेत सकलैर्धनैः ।।५५

न क्रूरवारे नाष्टम्या न षष्ठ्यां च नृपोत्तमः ।
अञ्जनाभ्यञ्जने कुर्यात ताम्बूलस्यापि भोजनम् ।।५६

राजा उसका नियोजन करके उससे तामिस्र नामक नरक में पीड़ा पाया करता है। लोक और सहायज राजा भी दीनायु हो जाता है ।५१। राजा को चाहिए कि वह काणाव्यङ्ग अर्थात् विशेष अङ्ग वाला अथवा अङ्गहीन—पुत्र—रहित अनभिज्ञ—अजितेन्द्रिय—बहुत छोटे कद वाला—रोगी को कभी अपना पुरोहित न बनावे ।५२। राजा को चाहिये कि वह कभी कृपण के धन को ग्रहण न करे। द्विजों को बहुत अधिक धन भी नहीं देवे ।५३। राजा कभी कामुक और उन्मत्त हाथी पर आरोहण न करे। उस कामुक पर समारोहण करके इस लोक और परलोक में विषाद को प्राप्त किया करता है ।४५। राजा कि किसी भी समय ऐसा कोई भी कर्म नहीं करना चाहिए जो आयु क्षय करने वाला होवे। सम्पूर्ण धन के द्वारा राजा को अपनी आयु की वृद्धि के लिये यत्न करना चाहिए ।५५। किसी भी क्रूर बार के दिन अष्टमी और षष्ठी तिथि में उत्तम नृप को अञ्जन—अभ्यज्जन और ताम्बूल का भी भोजन नहीं करना चाहिए ।५६।

अतिसूक्ष्मं तथापूर्णं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
नालोकयेत स्वयं राजा रक्तां सूर्यं तथैव च ।।५७

उत्पातं जायते यत्तु दिव्यं भौमं च नाभसम् ।
नेक्षेत यत्नान्नृपतिर्दृष्टवा नाद्यात्र त्र्यहं पुनः ।।५८

सर्वदा मङ्गलं रत्नं धारयेत् सह दूर्वया ।
अवस्त्राच्छादितं गात्रं न विप्रेभ्यः प्रदर्शयेत् ।।५९

व तोयेषु मुखं पश्येन्नाद्यान्मांसानि पर्वसु ।
नारोहयेत् खरं चोष्ट्रं न वामीमपि गुर्विणाम् ।।६०

एवं नययुतो राजा चतुरंग विवर्धयन् ।

आत्मानं सततं रक्षन् सदा वीर्यं विवर्धयेत् ।।६१
बीजक्षयकरन्नित्यं भक्ष्यं भोज्यं च पानकम् ।
वर्जयेत् क्षारशाकाद्यान् बह्वम्लं बहुतिक्तकम् ।।६२
कांस्य-राजतपात्रस्थं तोयं नाद्याश्च वर्धनम् ।
मूत्रवृद्धिकरं वीर्यक्षयकारि विवर्जयेत् ।।६३

चन्द्रमा और सूर्य्य का ग्रहण अतीव सूक्ष्म होवे या पूर्ण हो राजा को रक्त सूर्य का स्वयं अवलोकन नहीं करना चाहिये ।५७। जो उत्पात उत्पन्न होता है चाहे वह दिव्य हो भूमिगत हो या आकाशगत हो यत्न पूर्वक उसे राजा को नहीं देखना चाहिये और यदि देख भी लेवे तो तीन दिन भोजन नहीं करे ।५८। राजा सर्वदा मंगल रत्न को धारण करे और दूर्वा के सहित ही पहिने । राजा कभी भी वस्त्र से न ढके हुए शरीर को विप्रों के लिए न दिखावे ।५९। पानी में अपने मुख को न देखे—पर्वों में माँस न खावे । खर उष्ट्र—वासी और गुर्व्विणी पर आरोहण न करे ।६०। इस प्रकार से नये शास्त्र से संयुत राजा चतुरंग को वर्धित करता हुआ अपने आप की निरन्तर रक्षा करके सदा वीर्य का वर्द्धन करे ।६१। जो भक्ष्य बीज के क्षय करने वाला होवे उसकी—भोज्य को—पानक—क्षार शाक आदि—बहुत खट्टे और बहुत तिक्त (चरपरा) का वर्जन कर देना चाहिए ।६२। कांसे के पात्र में और चाँदी के पात्र में स्थित तथा नदी का जल मूत्र की वृद्धि करने वाला है तथा वीर्य के क्षय करने वाला है इसको वर्जित कर देवे ।६३।

ताम्राय: स्वर्णशीसानां पात्रस्थ फलचर्मणा: ।
शुक्रवृद्धिकरं तोय तदुपासात यत्नत: ।।६४
सर्वमूलेषु कृत्येषु सदाचारेषु तिष्ठत: ।
भुक्त्वेह विविधान् भागानैन्द्रं स्थानं व्रजेत् परम् ।।६–
एवमौर्वस्तु सगर शशास मुनिपुंगव: ।
शास्त्राणि चैव सर्वाणि सदाचारांश्च गृह्यकान् ।।६६
वहुश: कथयामास सगराय महात्मने ।
तन्नास्ति यत् पुरौर्वेण कथितं सगराय न ।।६७
राजनीति: सतां नीतिर्यच्चान्यच्छास्त्रसम्भवम् ।

संहितासु पुराणषु यच्चागमयो स्थितम् ॥६८
सर्वं शुश्राव सगरो मुखादौर्वस्य धीमतः ।
तेषाँ तु कथितं किंचिदुद्धृत्य द्विजसत्तमाः ॥६९
विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ।
राजनीति सदाचारं वेदवेदांगसंगतम् ॥७०
रहस्यं सतत विष्णोर्वीक्षध्वं द्विजसत्तमाः ।
यच्चानुदितमन्यत्र गदितं वा ससंशयम् ॥७१
संशयच्छेदन तेषु युष्मभ्यं कथितं द्विजाः ।
अनुक्तसंशयच्छेदि पुराणं कालिकाह्वयम् ।
योऽभ्यसेत् सततं विप्रः स वेदानां फलं लभेत् ॥७२

ताम्र—लोहा—सुवर्ण—शीशा के पात्र में स्थित तथा फल और चर्म में स्थित जल वीर्य की वृद्धि करने वाला होता है ऐसे ही जल का यत्न पूर्वक सेवन करना चाहिए ।६४। सम्पूर्णं मूल कृत्यों में और सदा चारों में स्थित रहने वाला इस लोक में अनेक भोगों का उपभोग करके परम इन्द्र के स्थान को प्राप्त किया करता है ।६५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–मुनियों में परम श्रेष्ठ और्व्य ने इस रीति से राजा सगर को शासित किया था। और उन्होंने सग शास्त्रों को—गुह्यकों को और सदाचारों को बहुत बार महात्मा सगर से कहा था। ऐसा कुछ भी नहीं था जो पहिले और और्व्व से सगर राजा को कह कर न सुना दिया होवे ।६६-६७। राजनीति—सत्पुरुषों की नीति और जो भी कुछ शास्त्रों में सम्भव है संहिताओं में—पुराधों में और जो आगमों के समुदाय में है राजा सगर ने सभी कुछ धीमान् और्व्व के मुख से श्रवण किया था। हे द्विजश्रेष्ठ! उनका कुछ उद्धृत करके कहा था ।६८-६९। मैंने पूर्व में विष्णु धर्मोत्तर में रहा स्थल में कहा था। राजनीति–सदाचार—वेदों और वेदों के अंगशास्त्रों से संगत विष्णु का रहस्य है। हे द्विज श्रेष्ठो उसकी वीक्षण कर लो। अन्य स्थल में जो नहीं कहा है अथवा संशय के सहित कहा है, हे द्विजो! उनमें आप लोगों के सम्पूर्ण संशयों का छेदन करके कह दिया है। जो नहीं कहा है उस संशय का छेदन करने वाला कालिका पुराण है। जो विप्र इसका निरन्तर अभ्यास किया करता है वह वेदों के पठन का फल प्राप्त किया करता है ।७१-७२।

—❀—

## ।। सदाचार वर्णनम् ।।

संक्षेपतः सदाचारो विशेषो राजनीतिषु ।
श्रुतस्त्वद्वचनादौर्वः सगराय यथोक्तवान् ।।१
विष्णुधर्मोत्तरे तन्त्रे बाहुल्यं सर्वतः पुनः ।
द्रष्टव्यस्तु सदाचारो द्रष्टव्यास्ते प्रसादतः ।।२
भयो नः संशयो योऽस्ति तदनुक्तं त्वया पुरा ।
छिन्धि विप्रेन्द्र पृच्छामः परं कौतूहल हि नः ।।३
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति श्रूयते वेदलोकयोः ।
वेतालभैरवौ यातौ पुरा वैं तपसे गिरिम् ।।४
पूर्वस्त्वकृतदारौ तौ तयोः पुत्रा न च श्रुताः ।
न जाता अथवा जाता यदि नाना द्विजोत्तम ।
तेषां तु सम्यगिच्छसि श्रोतुं स स्थानमुत्तमम् ।।५
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति निश्चित चेति सत्तमाः ।
स्तपूर्भ्रातृपुत्रर्वा पुत्रवन्तो हि स्वर्गताः ।।६
जातापत्यौ च तौ विप्रा धीरौ वेतालभैरवी ।
तयोर्वंशान् प्रवक्ष्यामि श्रृण्वन्तु च महर्षयः ।।७

ऋषियों ने कहा—संक्षेप से सदाचार और राजनीतियों में विशेष जो और्व ने राजा सगर से जिस तरह से कहा था वह आपके वचन से श्रवण किया है। फिर सबसे बाहुल्य विष्णु धर्मोत्तर मन्त्र में सदाचार देखना चाहिये वह आपके ही प्रसाद से देखने के योग्य हैं।१-२। फिर जो हमको संशय है जो पहिले आपके द्वारा नहीं कहा गया है। हे विप्रेन्द्र ! उसका छेदन कीजिये। हम आपसे पूछते हैं। हमारे हृदयमें बहुत ही अधिक कौतूहल है।३। वेदों और लोक में भी यह सुना जाता है कि जो पुत्र रहित है उसकी गति नहीं होती है। प्राचीन समय में वेताल और भैरव तप के लिए पर्वत पर गये थे।४। पूर्व में वे दोनों ही दाराओं के ग्रहण करने वाले थे। उन दोनों के पुत्र नहीं सुने गये हैं। हे द्विजोत्तम ! वे ही उत्पन्न नहीं हुए थे अथवा अनेक उत्पन्न हुए थे। उनका उत्तम स्थान में भली भाँति से

श्रवण करने की इच्छा करता हूँ ।४-५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे सत्तमो ! बिना पुत्र वाले की गति नहीं होती है यह निश्चित ही है । अपने पुत्रों के द्वारा अथवा भाई के पुत्रों द्वारा पुत्रों वाले स्वर्ग में गये हैं ।६। हे विप्रो ! के दोनों उत्पन्न सन्तानों वाले थे धीर बेताल भैरव थे । अब मैं उन दोनों के वंशों को बतलाऊँगा । हे महर्षि गणो ! आप श्रवण कीजिए ।७।

सम्यक् सिद्धिमवाप्यैव यदा वेताल भैरवी ।
हरस्य मन्दिरं प्राप्तौ कैलासं प्रतिहर्षितौ ।।८
तदा हरस्य वचनान्नन्दी तौ रहसि द्विजाः ।
प्राहेद वचनं तथ्यं सान्त्वयन्निव बोधकृत् ।।६
अपुत्रौ पुत्रजनने भवन्तौ शंकरात्मजौ ।
यततां जातत्रस्य सर्वत्र सुलभा गतिः ।।१०
पुन्नाम नरक पुत्रविहीनः परिपश्यति ।
न तपोभिर्न धर्मेण तन्मोचयितुमोश्वरः ।।११
केवलात् पुत्रजननात् तस्मान्मोक्षः प्रजायते ।
तदुत्पादयतां पुत्रं भवन्तौ देवयोनिषु ।।१२
अमर्त्यता तु युवयोः क्षीरपादानजायत ।
कात्यायन्यास्ततः पुत्रारमर्त्याः स्वसमा यतः ।।१३
तस्माद् यथा तथा पुत्रानुमत्पाद्य सुरयोनिषु ।
प्रियो भवन्तौ शिवयोर्भवनं न चिरादिति ।।१४

जिस समय में बेताल और भैरव दोनों भली-भाँति सिद्धि प्राप्त करके कैलास के प्रति हर्षित होते हुए भगवान् हर के मन्दिर में प्राप्त हुए थे ।८। हे द्विजो ! उस समय भगवान् हर के भजन से नन्दी ने एकान्त में उन दोनों से सान्त्वना देते हुए बोध करने वाला यह तथ्य वचन कहा था ।६। नन्दी ने कहा—आप दोनों पुत्र सहित भगवान् शंकर के आत्मज हैं । पुत्र के जन्म लेने में यत्न कीजिए । समुत्पन्न पुत्र वाले की सर्वत्र सुलभ गति हुआ करती है ।१०। जो पुत्र से हीन पुरुष होता है वह पुन्नाम वाले नरक को देखा करता है । उसका मोचन करने के लिए तपों द्वारा तथा धर्म के द्वारा भी समर्थ नहीं हुआ करता है ।११। केवल पुत्र के जन्म होने ही से उस नरक

से से छुटकारा होता है। इस कारण से आप दोनों ही देवयोनियों में पुत्र का उत्पादन करिए ।१२। आप दोनों की अमर्त्यता (मनुष्यता) से रहित होना कात्यायनी के क्षीर के पान करने से ही उत्पन्न हुई है। क्योंकि अपने ही समान पुत्र अमर्त्य हैं।११३। इस कारण से जैसे-तैसे भी सुरयोनियों में पुत्रों का उत्पादन करके आप दोनों ही शिवा और शिव के प्रिय होंगे और अविलम्ब ही उनके भवन को प्राप्त होंगे ।१४।

तस्येति सतत श्रुत्वा नन्दिनः प्रीतमानसौ ।
एवमेव करिष्यावो नन्दिनं चेत्यभाषताम् ।।१५
संतस्तौ सततं कृत्वा नन्दिनौ वचन हृदि ।
अचेष्टतां स्वपुत्रार्थे व्रजन्तौ तावितस्ततः ।।१६
अथैकदा भैरवोऽसौ उर्वशीमप्सरावराम् ।
हिमवत् पर्वतप्रस्थे ददर्श सुमनोहराम् ।।१७
अथ तां कामुको भूत्वा ययाचे सुरतोत्सवम् ।
वेश्याभावाच्च सुप्रीतां सा यथेच्छमुवाच तम् ।।१८
ततस्तयां भैरवस्तु चकार सुरतोत्सवम् ।
प्रीतायामुर्वशीदेव्यां सुप्रीतोऽभूच्च केचिभिः ।।१९
सुप्रीतायामथोवश्यां तेजोभिर्भैरवस्य तु ।
सकीजातोऽभवन् पुत्रो बालसूर्यसमप्रभः ।।२०
तं तु पुत्रं परित्यज्य ययौ स्वस्थानमुर्वशी ।
आदाय तनयं पश्चाद् भैरवः स्वपदं ययौ ।।२१

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—नन्दी के वचन का श्रवण करके वे दोनों ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे। और उसने हम ऐसा ही करेंगे—यह नन्दी को उत्तर दिया था ।१५। इसके अनन्तर निरन्तर अपने हृदय में नन्दी के वचन को स्थिर को स्थिर करके वे दोनों ही इधर-उधर गमन करते हुए अपने पुत्रों के समुत्पादन के लिए चेष्टा करने लगे थे ।१६। इसके अनन्तर एक समय में इस भैरव ने हिमवान् पर्वत के प्रस्थ में परम सुन्दरी और श्रेष्ठ उर्वशी अप्सरा को देखा था ।१७। इसके उपरान्त परम कामुक होकर इसने उर्वशी से सुरतोत्सव को याचना की थी। वेश्या के भाव से परम

प्रसन्न होती हुई उसने उससे यथेच्छा कहा था ।१८। इसके अनन्तर भैरव ने उसके साथ सुरतोत्सव की क्रीड़ा की थी। और वह प्रसन्न हुई उर्वशी में सुरत कोलियों के द्वारा परम प्रसन्न हुआ था ।१६। सुप्रसन्न हुई उर्वशी में भैरव के तेज से बाल सूर्य के समान प्रभा वाले लद्योजात पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ।२०। उस पुत्र का परित्याग करके उर्वशी अपने स्थान को चली गयी थी भैरव पुत्र को लेकर पीछे अपने स्थान को चला गया था ।२१।

संस्कृत्य तनयं तं तु भैरवो मोदसंयुतः ।
सुवेमिति तन्नाम चकार सगणाधिपः ॥२२
अथ तं जातवयसं शक्रसूर्यसमप्रभम् ।
विद्याधराधिपत्ये तु सुवेशमभ्यषेचयत् ॥२३
स तु विद्याधराध्यक्षस्तनयामतिसुन्दरीम् ।
यमे गन्धर्वराजस्य धृतराष्ट्राह्वयस्य च ॥२४
तस्यां तस्य सुतो जज्ञे रुरुर्नाम मनोहरः ।
रुरोस्तु तनयो बाहुर्मेनाक्यामभ्यजायत ॥२५
बाहोस्तु पुत्राश्चत्वारस्तपनोऽङ्गद ईश्वरः ।
कुमुदोऽभूत् कनीयांस्तु चार्वत्यां तु मनोहरः ॥२६
कुमदस्य सुतो जज्ञे देवसेनो महाबलः ।
स देवसेनः पृथिवीमवतीर्य मनोहरः ॥२७
मान्धातुर्यौ वानश्वस्य तनयां केशिनीं मुहुः ।
वस्यामास भायार्थे मृदङ्गीमप्सरः समाम् ॥२८

भैरव ने बहुत ही आनन्द से युक्त हो उस पुत्र का संस्कार कर गणधियों सहित उसका नाम उसने सुवेश—रक्खा था ।२२। इसके अनन्तर उचित अवस्था के प्राप्त करने वाले और इन्द्र तथा सूर्य के तुल्य कान्ति से संयुत उस सुवंश की विद्याधरों के अधिपतय में अभिषेक कर दिया था ।२३। उसने विद्याधरों के अध्यक्ष की अत्यन्त सुन्दरी पुत्री के साथ विवाह कर लिया था जो कि गन्धर्वों का राजा और धृतराष्ट्र नाम वाला था ।२४। उसमें उसके परम सुन्दर रुरु नाम वाले पुत्र बाहु ने मैनाकी में जन्म लिया था ।२५। बाहु के चार पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम तपन—अङ्गद—

ईश्वर और कुमुद थे। कुमुद सबसे छोटा था। कुमुद का पुत्र परम सुन्दर पार्वती में उत्पन्न हुआ था जो महान् बलवान् देवसेना नाम वाला था। वह परम मनोहर देवसेना पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ था। उसने मान्धाता यौवनाश्च की केशिनी नाम वाली पु त्री का जो बहुत ही कोमल अङ्गों वाली अप्सरा के समान थी अपनी भार्या बनाने के लिए वरण किया था।२६-२७-२८।

यौवनाश्वौऽपि मान्धाता शक्रस्य वनचाद् ददौ ।
केशिनीं तवया स्वीयां देवसेनाय वाञ्छया ॥२९
केशिनीमुपयम्याथ देवसेनस्तया सह ।
वाराणस्यां शम्भुपु र्यां हरमाराधयच्छिवम् ॥३०
आराधितो परः प्रीतस्तस्येष्टं प्रददौ वरम् ।
सोऽप्याददे हरात् तस्मादिष्टमेव वरत्रयम् ॥३१
यावच्च सूर्यो भविता तावत् स्थास्यति संततिः ।
अस्यामेव नगर्य्यां ये मद्वशस्यापि राजता ॥३२
प्रसन्नो मम वशे त्वं नित्यमेव भविष्यसि ।
इत्यादाय वरं सोऽपि देवसेनो महाकृता ॥३३
शङ्करस्य प्रसादेन चिरं तां बुभुजे पु रीम् ।
देवसेनोऽथ केशिन्यां जनयामास पत्रकान् ॥३४
यूयं शृणुत सप्तैतान्नामतः कीतितांस्था ।
सुमना वसुदानश्च ऋतुधृग् यवनः कृतो ॥३५

यौवनाश्च मान्धाता ने भी इन्द्र के वचन से अपनी पुत्री केशिनी को इच्छा से ही देव सेन के लिये प्रदान कर दिया था।२९। देवसेन ने केशिनी के साथ विवाह करके उसी को साथ में लेकर उसने शम्भु की पु री वाराणसी में भगवान् शिव की आराधना की भगवान् शिव परम प्रसन्न हो गये थे और अभीष्ट वरदान उसे दे दिया था। उसने भी उन भगवान् शम्भु से अपने अभीष्ट तीन वरदान प्राप्त किये थे।३१। जब तक भगवान् भास्कर रहें तभी तक मेरी सन्तति स्थित रहेगी—इसी नगरी में मेरे ही वंश की राजता रहे।३२। मेरे वंश पर आप नित्य ही परम प्रसन्न रहेंगे। इन वरों

को प्राप्त करके महान् कृतो देवसेन ने भी भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता से उस पुरी का चिरकाल तक उपभोग किया। देवसेन ने केशिनी के उदर से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया।३३-३४। अब आप लोग उन सातों के नामों का श्रवण कीजिए जो कि कीर्त्तित किये जा रहे हैं। सुमना—वसुदान—ऋतुधृक्—यवन—कृती—नील—विवेकी—ये सात पुत्र थे जो समस्त शास्त्रों के विशारद थे।३५-३६।

नीलो विवेकी ह्येते वै सर्वशास्त्रविशारदाः।
सर्वे वंशकराः पुत्रा देवेसेनस्य सत्तमाः॥३६
अथ काले तु संप्राप्ते देवसेनोऽपि भार्यया।
पुत्रेषु राज्य निःक्षिप्य यातो विद्याधरक्षयम्॥३७
ततस्ते तस्य तनयाः कृत्वा सुमनसं नृपम्।
बसुदानादयः सर्वे बुभुजुश्चोत्तमाँ श्रियम्॥३८
जाताः सुनमसः पुत्रास्त्रयः शूरा महाबलाः।
सुमतिश्च विरूपश्च सत्यः शास्त्रार्थपारगाः॥३९
सुमतेरभवत् कन्या सुतः सत्यस्य डिण्डिमः।
विरूपस्याभवद् गाधिग धे मत्रोऽभवत सतः॥४०
तेषां कल्योऽभवद्राजा कल्पातु तु विजयोऽभवत्।
यो विजित्य क्षिति सर्वां पार्थिवान् भूरितेजसः॥४१
शक्रस्यानुमते चक्रे खाण्डवं शतयोजनम्।
यत् सव्यसाची ह्यदहत पाण्डुपुत्रः प्रतापवान्।
आवहत् परमां प्रीतिं ज्वलनस्य महात्मनः॥४२

इसके अनन्तर समय पर देवसन भी भार्या के सहित अपने पुत्रों पर राज्य का भार डाल कर विद्याधर क्षय को चला गया था।३७। इसके उपरान्त उसके पुत्रों ने सुमनसं को राजा बनाकर बसुदाम आदि सबने उत्तम श्री का उपयोग किया था।३८। सुमनस के तीन शूर और महा बलवान् पुत्र समुत्पन्न हुए थे। ये सभी शास्त्रों के अर्थ के पारगामी विद्वान् थे उनके नाम सुमति—विरूप और सत्य थे।३९। सुमति की कन्या हुई और सत्य का पुत्र डिण्डिभ हुआ था। विरूप का गाधि हुआ और गाधि का सुत मित्र नामक

हुआ था ।४०। उनका राजा कल्प से विजय हुआ था जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर बहुत तेज वाले राजाओं का शक्र की अनुमति से सौ योजना का खण्डन किया था । जिसको सव्य साची अर्जुन ने जो पाण्डु का प्रतापी पुत्र था दग्धा कर दिया था और महान् आत्मा वाले जलन की परमाधिक प्रीति का वहन किया था ।४१-४२।

कथं स खाण्डवं चक्रे विजयः शतयोजनम् ।
तद् वयं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व तपोधर ।।४३
सोमवंशेऽभवद्राजा महाबलपराक्रमः ।
धीरः सुदर्शनो नाम चारुरूपः प्रतापवान् ।।४४
स वै हिमवतो नातिदूरे भुङ्क्त्वा महानम् ।
सिंहान् व्याघ्रान् समुत्सार्यं क्वचिच्चापि तपोधनान् ।।४५
खाण्डवीं नाम नगरीमकरोत् तत्र शोभानाम् ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायतां शतयोजनाम् ।।४६
उच्चप्राकारसंयुक्तां साट्टालाम्बुतोरणाम् ।
निम्नाभिरतिदीर्घाभिः परिखाभि समावृताम् ।।४७
अधृष्यामपरैर्वीरैर्नानाजनसमावृताम् ।
दीधिकाभिश्चोपपन्नैर्बहुभिश्चाप्सरोगणैः ।।४८
आकीर्णा च तथारामैरुत्तमैरपि मानवैः ।
सोत्सवाः सततं यन्त्र जना देवान् विवि स्थितान् ।।४९
स्पर्धन्ते स्म मुदा युक्ता आसा-भोगसमन्विताः ।
स वै सुदर्शना राजा खात्वा भूमि विदार्य च ।।५०

ऋषियों ने कहा—उसने सौ योजन वाले खाण्डव वन का विजय किस तरह से किया था । इसको हम श्रवण करना चाहते हैं । हे तप के हो धन वाले ! इसका आप वर्णन कीजिये ।४३। महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—चन्द्र वंश से एक महान् बल और पराक्रम वाला—धीरे—देखने में सुन्दर नाम वाला चारु रूप से संयुत और प्रताप वाला राजा हुआ था ।४४। उसने हिमवान् पर्वत के समीप में ही महान् वन को भङ्ग करके सिंहों और व्याघ्रों को

निकाल कर और कहीं पर तपस्वियों को भी हराकर एक साण्डवी नाम वाली परम शोभन नगरी का निर्माण किया था। वह तीस योजन विस्तार वाली थी और सौ योजन आयत की थी ।४५-४६। उसकी चाहर दीवारी उच्च थी और वह अट्टाल एवं अम्बुंद तोरणों वाली थी। निम्न और अतीव दीर्घ परिखाओं खाई से समावृत्त थी ।४७। उसमें अनेक मनुष्य रहते थे और वह शत्रु वीरों से घृष्यमाण नहीं थी। उसमें बड़े-बड़े उपवन थे तथा बहुत-सी अप्सराओं से समाकीर्ण थी। उसमें बहुत से आराम (उद्यान) थे तथा उत्तम श्रेणी के मनुष्य निवास किया करते थे। जहाँ पर निरन्तर मनुष्य उत्सवों से समन्वित रहा करते थे जो दिवलों में स्थित देवगणों के साथ स्पर्धा किया करते थे। वहाँ के मनुष्य आनन्द से युक्त आद्य और भोगों से संयुत थे। उस सुदर्शन नाम वाले राजा ने भूमि का खनन और विदारण किया था ।४८-५०।

गङ्गा कनखलां देवीं वाहयामास खाण्डवीम ।
सम्प्लाव्याखाण्डवीमध्यं तेन खातैश्च वर्त्मभिः ।।५१
वक्रानुवक्रगा भूत्वा याति सीतां नदी प्रति ।
स जित्वा सकलान भूपान् वित्तानाहृत्य भूरिशः ।।५२
वशीचकार खाण्डयाँ मध्ये रत्नैरनेकशः ।
अन्येषां नगरेभ्यस्तु जनानानीय भूपतिः ।।५३
खाण्डव्यां वासयामास हठादपि सुदर्शनः ।
देवदानवगन्धर्वान्ि जित्वा जित्वा युधा कृता ।।५४
देववृक्षं देवरत्नं देवीं चापि तथौषधिम् ।
खाण्डव्यां रापयामास स भूपालः सुदर्शनः ।।५५
विष्णुस्ततऽपि वै जिष्णुर्नृपतिस्तु सुदर्शनम् ।
उपचारं च बहुधा देवानां च तथा नृणाम् ।।५६
वाराणसीपतिं वीरं विजयं जयशालिनम् ।
युद्धाय कृतसाचिव्यं तद्वैरे समायोजयत् ।।५७

उसने कनखल गङ्गादेवी खाण्डवी का वहन कराया था। उसके द्वारा खोदे हुए मार्गों से खाण्डवी के मध्य को संप्लावित करके वक्रा और अनुवक्रा

होकर सीता नदी की ओर वह जाया करती है। उसने समस्त युद्धों को जीतकर और बहुत-सा धन का आहरण किया था। उसने खाण्डवी में मध्य में अनेक प्रकार के रत्नों के द्वारा वश में कर लिया था। उस सुदर्शन नृप ने अन्यों के नगरों से मनुष्यों को वहाँ लाकर खाण्डवी में हठ से भी निवासी बना दिया था।५१-५३। उस कृती ने देव—दानव और गन्धर्वों को युद्ध से जीतकर देव वृक्ष—देवरत्न—देवी और औषधियों को उस भूपाल सुदर्शन ने खाण्डवी में रोपित किया था।५४-५५। भगवान् विष्णु ने उस नृप सुदर्शन को उपचार किया था और प्रायः देवों का तथा मनुष्यों का जयशाली वाराणसी के स्वामी विजय को कृत साचिव्य को युद्ध के लिये उसके बैर में योजित किया था।५६-५७।

विजयो विवरं प्राप्य महाबलपराक्रमः।
सुदर्शनस्य नृपतेरवस्कन्दमथाकरोत् ॥५८
असहत् स ह्यवस्कन्ध विजयस्व सुदर्शनः।
चतुरङ्गवलेनाशु युद्धायाभिमुखोऽभवत् ॥५९
विजयो रथयारुह्य नियोज्य चतुरङ्गिणीम्।
ततः सुदर्शन योद्धं सम्मुखौऽभवदञ्जसा ॥६०
तदा महायुद्धमासीद्विजयेनं महात्मना।
सुदर्शनस्य नृपतेर्वृत्रवासयोर्यथा ॥६१
सुदर्शनस्य सेनानी रुमण्वान्नाम वीर्यवान्।
कांचनं रथमारुह्य विजय सम्मुखोऽभ्ययाद् ॥६२
अक्षाहिण्यस्तु सप्त स्य परिवार्य समन्ततः।
व्यधमत्तों शत्रुसेनां यावतीमुद्यतायुधः ॥६३

महान् बल और पराक्रम वाले विजय ने विवर को प्राप्ति करके नृप सुदर्शन का अब स्कन्दन किया था।५८। उस सुदर्शन ने विजय के अब स्कन्द को सहन किया था और चतुरंगिणी सेना से शीघ्र ही युद्ध करने के लिए समुद्यत हो गया था।५९। विजय अपने रथ पर समारूढ़ होकर चतुरंगिणी को नियोजित करके फिर सुदर्शन के साथ युद्ध करने के लिए शीघ्र ही सम्मुख हुआ था।६०। फिर महात्मा विजय के साथ महान् युद्ध हुआ था।

सुदर्शन राजा का युद्ध ऐसा ही था जैसे वृत्रासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था ।६१। सुदर्शन का सेनानी जिसका नाम रूमण्यान् था बहुत अधिक वीर्यवान् था। वह सोने के रथ पर सवार होकर विजय के सम्मुख हुआ था ।६२। उद्यत आयुधों वाला होकर इसने उसकी सप्त अक्षौहिणी सेना को चारों ओर से घेर कर जितनी भी शत्रु की सेना थी उसको आक्रान्त कर दिया था ।६३।

विजयस्य च सेनानीः सञ्जयः स रिपुञ्जयः ।
नागानाकेन जग्राह रुमण्वन्तं ससनिकम् ।।६४
तयोमहदभूद् युद्धं सनान्योर्वीरयोर्महत् ।
ववय शूरवर्षण रुमण्वानथ संजयम् ।।६५
कुवश्चादि महानाद गज दृष्ट्वैव केशरा ।
रुपण्वनाथ विंशत्या वार्णैविद्ध्वाथ सञ्जयम् ।।६६
क्षुरप्रण धनुः तस्यः विच्छद कृतहस्तवत् ।
सोऽपि कामुकमाद् य तदाऽन्यत् संजयास्त्रभिः ।।६७
वाणैर्विव्याध भल्लेन धनुश्चिच्छदः तत्क्षणात् ।
शतान्यष्टौ च नाग नां सहस्राणि च पंचषट् ।।६८
पत्तोनां वाजिनां त्रीणि सहस्राणि समन्ततः ।
संजयो निर्जघानाशु वाणवर्ष मुदारुणैः ।।६९
अस्थान्यद् धनुरादाय रुमण्वान् कुपातो भृशम् ।
भल्लेन सारथेरस्य शिरः कायादपाहरत् ।।७०

विजय का जो सेनानी था उसका नाम संजय था और वह रिपुओं का जीतने वाला था। नागों की सेना के द्वारा उसने सैनिकों के सहित रुमण्वान को ग्रहण किया ।६४। उन दोनों वीर सेनानियों का बहुत भारी युद्ध हुआ था। इसके अनन्तर रुमण्वान् ने शूरों की वर्षा से सञ्जय को घेर लिया ।६५। गज को देखकर केशरी की ही भाँति बड़ी भारी गर्जना करते हुए ही रुमण्वान् ने बीस वाणों के द्वारा सञ्जय को वेध दिया था ।६६। कृत हस्त की तरह क्षुरप्र के द्वारा उसके धनुष को छिन्न कर दिया था। उस सञ्जय ने भी उसी समय में धनुष लेकर तीन वाणों के द्वारा प्रहार किया

था ।६७। वाणों से वेधन किया था और भाले से उसी क्षण में धनुष को काट दिया। आठ सौ हाथियों पाँच छह हजार पत्तियों को और तीन सहस्र अश्वों को सञ्जय ने अपने चारों ओर सुदारुण वाणों की वर्षा से शीघ्र ही मार गिराया था।६८-६९। इसके अनन्तर दूसरी ओर से धनुष ग्रहण करके बहुत ही अधिक कुपित हो गया था और भाले के द्वारा इसके सारथि का शिर शरीर से काटकर अलग गिरा दिया है ।७०।

हयांश्चास्य चतुर्भिस्तु बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
चतुरः पचमिर्वांणैरविध्यच्चापि सञ्जयम् ।।७१
संजयोऽप्यतिवेगेन गदामादाय तत् क्षणात् ।
अवतीर्य रथोपस्थाद्रुमण्वन्तमधावत ।।७२
स धावन्तं सञ्जयं तं रुमण्वान् द्रुतहस्तवत् ।
शरवर्षेण सञ्छाद्य वारयामास संचयम् ।।७३
गदाया भ्रामणेनासौ निर्वार्य शरवर्षणम् ।
आससाद रुमण्वन्त केसरीव महागजम् ।।७४
आसाद्य तां गुर्वीमाविध्यातीव सञ्जयः ।
एकेनैव प्रहारेण सरथं तं व्यपोथयत् ।।७५
स पपात महावीरः पृथिव्यां गदया हतः ।
वज्रहतो यथा शालः प्रफुल्लो वनमध्यगः ।।७६
रुमण्वतं निपतितं दृष्ट्वा राजा सुदर्शनः ।
शाक-कोपसमाविष्टः सधूम इव तावकः ।७७

इसके अश्वों का चार वाणों के द्वारा विहनन कर दिया था। चतुर ने पाँच वाणों से सञ्जय को भी वेध दिया था ।७१। उसी क्षण में सञ्जय ने गदा लेकर अत्यन्त वेग से रथ से उतरकर रुमण्वान पर धावा बोल दिया था ।७२। उस आक्रमण करने वाले सञ्जय को द्रुत हतस्वत् रुमण्वान ने शरी की वर्षा के द्वारा संच्छादित करके सञ्जय को वारित कर दिया था ।७३। इसने गदा के फिराने से सिंह जैसे महान् गज हटा दिया करता है उसी भाँति शरों की वर्षा करने वाले रुमण्वान् को हटाकर उसके समीप से प्राप्त हो गया था ।७४। सञ्जय ने उसके पास पहुँच कर उस बड़ी भारी गदा को

अविद्ध करके अपने एक ही प्रहार के द्वारा रथ के सहित उसको व्यायोथित कर दिया था ।७५। गदा से हत होकर वह महान् वीर पृथ्वी में गिर गया था। जैसे वन के मध्य में स्थित शाल का प्रफुल्ल वृक्ष वज्र से हत होकर गिर जाया करता है ।७६। राजा सुदर्शन ने रुमण्वान को गिरा हुआ देखकर वह धूम के सहित पावक की ही भाँति और कोप से समाविष्ट हो गया था ।७७।

जज्वालाकुलदेहोऽपि क्रोधेनातीव संयुतः ।
आरुह्य जवनैरश्वैयुक्तं त्रैयाध्रकृत्तना ।।७८
रथं कांचन-चित्रांग सिंहध्वज-विभूषितम् ।
आमुक्तो धनुरादाय विस्फार्य च पुनः पुनः ।।७६
ससैन्यः सञ्जयं राजा समाद्रवत वेगवान् ।
अथास्य निशितैः शस्त्रैः सेनापग्रगतां भृशम् ।।८६
न्यहनत् सकलां राजा मृगानिव मृगाधिपः ।
एकामक्षौहिणीमग्रगामिनीं विपुलौजसामम् ।।८१
क्रोशद्धयेन न्यहनत् तमांसाव दिवाकरः ।
हत्वा चाक्षौहिणीमेकामासाद्य संजयं नृपः ।।८२
वाणैः षष्ट्या तु विव्वाध ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।
संजयोऽप्यथ विंशत्या हृदि विद्ध्वा सुदर्शनम् ।।८३
ललाटे त्वेकबाणेन प्राविध्यत् कृतहस्तवत् ।
क्षुरप्रेणास्य कोंदण्डं छित्त्वा राज्ञः प्रतापवान् ।।८४

अत्यधिक क्रोध से युक्त होकर समाकुल देह वाला भी वह ज्वलित हो गया था। वेगवान् अश्वों से युक्त से और व्याघ्र के चर्म धयुत सुवर्ण के चित्रित अंगों वाले—सिंह की ध्वजा से भूषित रथ पर आरूढ़ होकर आमुक्त धनुष ग्रहण कर बारम्बार विस्फारित करते हुए वेगवान् राजा ने सैनिकों के सहित सञ्जय को सेमाद्रवित किया था। इसके अनन्तर अपने पैने अस्त्रों के द्वारा सेना के आगे बहुत ही अधिक सम्पूर्ण सेना का सिंह हिरनों को जैसे निहत करता है ठीक उसी भाँति हनन कर दिया था। बहुत ओज वाले वीरों की अग्र गामिनी एक अक्षौहिणी सेना हनन कर दिया था

।७८-८१। जैसे सूर्य अन्धकारों को नष्ट कर दिया करता है उसी भाँति दो कोण तक निहनन किया था । राजा एक अक्षौहिणी सेना का हनन करके सञ्जय के समीप प्राप्त हो गया ।८२। राजा ने आठ बाणों से वर्धन किया था और एक बाण के द्वारा ध्वजा को छिन्न कर दिया था । इसके उपरान्त सञ्जय ने भी बीस बाणों से सुदर्शन के हृदय में वेधन किया था ।८३। कृत हस्त की भाँति एक बाण से ललाट में वेध किया था । क्षुरप्र के द्वारा प्रताप वाले ने राजा ने राजा के दण्ड को छिन्न कर दिया था ।८४।

सारथिं दशभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सञ्जयः ।
कोदण्डमन्यमादाय तदा राजा सुदर्शनः ॥८५
शरवर्षण तीव्रेण ववर्षातीव सञ्जयम् ।
तयोर्महदभूदु युद्ध मुनिविस्मयकारम् ॥८६
शस्त्रैरस्त्रैभृशं तीक्ष्णैर्बलिवासवयोरिव ।
ततः सुदर्शनो राजा भल्लेनास्य दृढ़ धनुः ॥८७
चिच्छद सारथिं चास्य जघान निशितैः शरैः ।
स्वयं सयम्य वाहान् स सञ्जयः परवारहा ॥८८
धनुरन्यत् समादाय परिवार्य सुदर्शनम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैर्धनुरप्यच्छिनद् दृढम् ॥८९
शरासनान्तरं राजा समादाय सुदर्शनः ।
सञ्जयस्य चतुर्वाहाञ्छरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥९०
मुष्टौ धनुश्च चिच्छद तं च विव्याध पंचभिः ।
विरथश्छिन्नवाहश्व सञ्जयः खड्गचर्मणी ॥९१

सञ्जय ने फिर दश बाणों से सारथि का वेधन उसी समय कर दिया था। फिर राजा सुदर्शन ने अपना धनुष लेकर ।८५। अत्यधिक शरो की तीव्र वर्षा से संजय को निमग्न-सा कर दिया था । उन दोनों को मुनियों के विस्मय उत्पन्न करने वाला महान् युद्ध हुआ था ।८६। बलि और वासव इन्द्र की तरह से वह युद्ध बहुत ही तीक्ष्ण शस्त्रों से तथा अस्त्रों से हुआ था । फिर राजा सुदर्शन ने अपने भाले के द्वारा इसके दृढ़ धनुष को काट गिराया था ।८७। उसने अपने पैने बाणों के द्वारा इसके सारथी का हनन

कर दिया था। उस सञ्जय ने जो शत्रु के वीरों का हनन करने वाला था स्वयं ही अपने वाहनों को संयमित करके अन्य धनुष का आदान करके को घेर कर दश बाणों से वेधन किया था और इसके सुदृढ़ धनुष का छेदन कर दिया था।८८-८६। सुदर्शन ने अन्य धनुष का ग्रहण करके सञ्जय के चार बाहों को यमपुरी भेज दिया था।६०। मुट्ठी में रहने वाले धनुष को छिन्न कर दिया था और पाँच बाणोंसे उसको विद्ध कर दिया था। सञ्जय रथ से हीन होकर जिसके वाह छिन्न हो गये थे उसने खड्ग और ढाल को ग्रहण किया था।६१।

आदाय सम्मुखं राज्ञंऽभ्यद्रवत् कुपितो भृशम्।
तस्य चापं ततः खड्गं क्षुरप्रेण सुदर्शनः ॥६२
द्विधा विच्छेद भल्लेन चर्म चाप्यच्छिनत्तदा।
अथ द्रुतं तदोपेत्य सञ्जयः स्यन्दोत्तमम् ॥६३
सुदर्शनस्य सूतं तु कराभ्यां पातयत् क्षितौ।
रथभ्याशे गतस्यास्य सञ्जयस्य सुदर्शनः ॥६४
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसौ न्यपतद् भुवि।
स पपात तदा तस्य रथाभ्याशे महाबलः ॥६५
कृत्तः परशुनाऽरण्ये पुष्पितः शालवृक्षवत्।
सञ्जयं पतितं दृष्ट्वा विजयः क्रोधमूर्च्छितः ॥६६
महता शंखनादेन नादयस्तु नभःस्थलम्।
रथेन स्वर्णचित्रेण व्याघ्रचर्मविचाजिना ॥६७
केतुना वृषभेणाथ योजनार्धोच्छ्रितेन च।
नादयन् ककुभः सर्वा रथौघपरिवेष्टितः ॥६८
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि ससाद च सुदर्शनम्।
आसाद्य तं नृप भूपो विजयः परवीरहा ॥६६

खड्ग और ढाल को लेकर अत्यधिक कुपित होते हुए राजा के सम्मुख धावा किया था। फिर सुदर्शन ने क्षुरप्र के द्वारा उसके चाप और खड्ग के टुकड़े कर दिये थे।६२। उस अवसर में भाले से ढाल के दो टुकड़े कर दिये थे। इसके उपरान्त शीघ्र ही समीप में जाकर सञ्जय उसके

उत्तम रथ पहुँच गया था और सुदर्शन के सारथि को उसने अपने हाथों से भूमि पर दिया था। रथ के समीप में गये हुये इस सञ्जय का शिर खंग से काट डाला था और फिर यह भूमि पर गया था। वह महान् बलवान् उसके रथ के ही समीप में उस समय में गिर गया था।९३-९५। वन में पुष्पों वाले शाल के वृक्ष की भाँति कटा हुआ और गिरे हुये संजय का अवलोकन करके विजय क्रोध में मूच्छित हो गया था।८६। बड़े भारी शंख की ध्वनि से नाद करते हुए जिससे आकाश में गूंज हो उठी थी। व्याघ्र के चर्म से विराजित-स्वर्ण से चित्रित-रथ के द्वारा जो वृषभ केतु से युक्त था जो कि केतु आधे योजित ऊँचा था—सभी दिशाओं में गूंज करता हुआ रथों के समुदाय से परिवेष्टित होकर शरों की वर्षा करते हुये सुदर्शन के समीप में प्राप्त हुआ था। शत्रु के वीरों के हनन करने वाला राजा विजय उस राजा के पास पहुँच गया था।९७-९९।

हृदि विद्ध्वा त्रिभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीद ।
सुदर्शनोऽपि विजय नदन्त कुंजरोपमम् ॥१००
दशभिर्निशितैर्वाणैर्विद्ध्वा चिच्छद तद्-धनुः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं जत्रु देशे त्रिभिः शरैः ॥१०१
निर्भिद्याथ महानादं ननाद स सुदर्शनः ।
सोऽन्यद्धनुः समादाय कंक्पत्रै स्त्रिभिः शरैः ॥१०२
विव्याध हृदये वीरौ विजयोऽपि सुदर्शनम् ।
ततस्तन्नृपमुद्दिश्य महाशक्ति सुदीपिताम् ॥१०३
नागकन्यां कोपयुक्तां लेलिहानाभिवातुलाम् ।
स्वंणदण्डां सूतीक्ष्णाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ॥१०४
समुद्यभ्याथचिक्षेप विजयः शात्रवं प्रति ।
सुदर्शनस्य हृदयं सा शक्तिः प्रविवेश ह ॥१०५

तीन बाणों के द्वारा हृदयमें वेधन करने खड़ा रह-खड़ा रह-यह बोला था। सुदर्शन ने भी हाथी के समान गर्जन करते हुए विजय को अपने दश वाणों के द्वारा वेधन करके उसके धनुष को काट गिराया था। इसके अन्तर कटे हुए धनुष वाले इसको तीन वाणों से शत्रु को विद्ध कर दिया था। और फिर सुदर्शन ने महान नाद किया था उसने भी दूसरे धनुष का आदान

किया था कंक पत्र वाले तीन शरों के द्वारा वीर विजय ने सुदर्शन के हृदय में वेधन किया था। इसके उपरान्त नृप का उद्देश्य करने उसने सुदीपित महाशक्ति का ग्रहण किया था।१००-१०३। वह महा शक्ति कोप से युक्त जीभ को लपलपाती हुई अनुपम नाग कन्या के ही तुल्य थी। उसमें सुवर्ण दण्ड लगा हुआ था—उसका अग्रभाग बहुत ही तीक्ष्ण था—वह तैल से धुली हुई सुनिर्मल थी। ऐसी महा शक्ति को लेकर विजय ने शत्रु की ओर उसका प्रक्षेपण किया था। और वह शक्ति सुदर्शन के हृदय में प्रवेश कर गयी थी।१०४-१०५।

स विह्वलो रथोपस्थे ह्यधोवक्त्र उपाविशत्।
तस्मिन् मोह-समापन्ने नृपतौ च सुदर्शने ॥१०६
तस्याग्रतस्तथा पार्श्वे ये स्थितास्तत्र सैनिकाः।
तान् सर्वानहनद्राजा क्षणमात्राद् द्विजोत्तमाः ॥१०७
रथानां दशसहस्राणि तावन्त्येव च दन्तिनाम्।
पञ्चाविंशसहस्राणि वाजिनां च तरस्विनाम् ॥१०८
लक्षद्वयं तु पत्तीनां क्षणमात्रादपोथयत्।
स तु लब्ध्वा ततः संज्ञां धनुरादाय वै दृढम् ॥१०९
शरवर्षेण विजयं ववर्ष स सुदर्शनः।
निवार्य शरवर्षेण विजयं तु सुदर्शनः ॥११०
भल्लेन कार्मुकं सज्यं तस्य चिच्छेद तत्क्षणात्।
सारथेस्तु शिरः कायाद् भल्लेनापाहरत् ततः ॥१११
हयाश्च चतुरश्चास्य [illegible]षयामास मृत्यवे।
अथैवं विरथं भूपं दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥११२

वह विह्वल होकर नीचे को ओर मुख वाला रथ के ही समीप में बैठ गया था। उस नृप सुदर्शन के मोह को प्राप्त हो जाने पन उसके आगे की ओर तथा पार्श्व में वहाँ पर जो सैनिक स्थित थे हे द्विजोत्तमो! राजा ने एक ही क्षण भर में उन सबको मार गिराया था।१०६-१०७। दश हजार रथों को—और उसने ही हाथियों को—बड़े वेग वाले अश्वों की बीस हजार संख्या और दो लाख पदातियों को क्षण भर में मार गिराया था।

इसके उपरान्त होश में आकर तथा सुदृढ़ धनुष लेकर सुदर्शन ने विजय के ऊपर शरों की वर्षा की थी ।१०८-११०। उसके राज्य कार्मुक को भाले के द्वारा उसी क्षण में छिन्न कर दिया था । और सारथि का शिर काया से दूर कर दिया था ।१११। और इसके चार अश्वों को मृत्यु के मुँह में मेज दिया था । इसके अनन्तर बिना रथ वाले राजा को दश कङ्कपत्रों के द्वारा–विद्ध कर दिया था ।११२।

विव्याध हृदये भूयो ननाद च सुदर्शनः ।
साच्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वेगदान् ।।११३
विजयो विजयाकाङ्क्षो सुदर्शनमधावत ।
आपतन्तं महावीरं वाणवर्षैः सुदर्शनः ।।११४
ववर्ष वर्षासु यथा वारिदः पृथिवीधरम् ।
विजयः शरवृष्टिं तां प्राच्छाद्य स्वशरेण वैः ।।११५
गदया त रथारूढ़मासमाद तु तत्क्षणात् ।
आसाद्य तं महावीर्यं विजयोऽथ सुदर्शनम् ।।११६
शीर्षे प्रहृत्य गदया पातयमास भूतले ।
गिरेः शृङ्ग यथा तुंग वज्राशनिविदारितम् ।।११७
तथा सुदर्शनो राजा दारितो गदयोऽपतत् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सेनाभिस्तस्य सैनिका ।।११८
भयात् संप्राप्रवस्तस्माद् दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
नष्टेषु तस्य सैन्येषु विजयः खाण्डवीं पुरीम् ।।११९

सुदर्शन ने हृदय में वेधन कर फिर गर्जना की थी । वह कटे हुए धनुष वाले और बिना रथ वाले होकर वेग से युक्त ने गदा का आदान किया था ।११३। विजय की इच्छा वाले विजय ने सुदर्शन पर धावा किया था । सुदर्शन ने ऊपर से पतन करने वाले महान् वीर पर वाणों की वर्षा की थी जैसे वर्षा ऋतु में बादल पर्वत पर वर्षा किया करता है । विजय ने उस वाणों की अपने शरों से प्रच्छादित करके गदा से उसी क्षण में रथ पर समारूढ़ हुए उसके समीप में समासादान किया था । उस महान् वीर्य वाले के पास पहुँच कर सुदर्शन के शिर में प्रहार करके उसको भूमि पर गिरा

था। जिस प्रकारसे वज्र के द्वारा विदीर्ण किया गया पर्वत का ऊँचा शिखर गिरा करता है ।११४-११७। सुदर्शन गदा के प्रहार से विदारित होकर गिर गया था। उस वीर के गिर जाने पर उसकी सेना के सैनिक उस युद्ध स्थल ने डर से भीत हुये दिशा—दिशाओं में भाग गये थे। उसकी सेना के सैनिकों के नष्ट हो जाने पर विजय ने खाण्डवी नाम वाली नगरी में प्रवेश किया था ।११८-११९।

प्रविश्य ददृशे तत्र राशीभूतान् गिरीनिव ।
सुवर्णानां च रत्नानां संचयान् बहुशः पुनः ।।१२०
दृष्ट्वा सरांसि तत्रैष प्रफुल्लकमलानि च ।
हंसकारण्डवानादैर्नादितानि समन्ततः ।।१२१
राशीन् स्वर्णरत्नानाँ पर्वतानिव विस्ततान् ।
पुष्पितान् देववृक्षाँश्च भ्रमद्भ्रमरभूषितान् ।।१२२
प्रासादान् विपुलाञ्छुभ्रान् कैलास सदृशान् गजान् ।
प्रस्फुटाँश्च सुगन्धाढ्यान् प्रतिगेहे व्यवस्थितान् ।।१२३
उत्फुल्लनयनो राजा विजयः परवीरहा ।
मेनेऽमरावतीं तां तु पुरीम् क्षितिगतामिव ।।१२४
त वीक्षन्तं नरपति नगरो तां सुरेश्वरः ।
समेत्यविजयं प्राह सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ।।१२५

उसने नगरी में प्रवेश करके वहाँ पर एकत्रित पर्वतों की ही राशिभूत सुवर्णों की तथा रत्नों के ढेरों को बहुत तादाद में देखा था ।१२०। वहाँ पर खिले हुए कमलों वाले सरोवरों को देखा था जो हंसों और कारन्डवों के नाद से सभी ओर से निनादि थे ।१२१। पर्वतों के ही समान सुवर्ण और रत्नों के ढेरों को देखा था—घूमते हुये भौंरों से विभूषित और पुष्पित देव वृक्षों को देखा था ।१२२। बहुत से शुभ्र प्रानादों को तथा कैलाश के सदृश हाथियों को देखा था जो प्रस्फुट और सुन्दर गन्ध से युक्त प्रत्येक घर में व्यवस्थित थे ।१२३। शत्रुओं का हनन करने वाली विजय राजा के नेत्र प्रफुल्लित हो गये थे। उसने उस नगरी को भूमि पर समागत अमरावती ही माना था ।१२४। उस परम सुन्दर नगरी को देखते हुए राजा के पास

सुरेश्वर ने आकर परम तीक्ष्ण वाणी से उसको सान्त्वना देते हुये विजय से कहा था ।१२५।

राजन् महावनमिदनासीद् देवगणावृतम् ।
न च गन्धर्वयक्षाणां मुनीनां च मनोहरम् ।।१२६
सर्वानुत्सार्य देधादीन् मम चाप्यप्रिये रतः ।
भङ्क्त्वा वनमिदं गुह्यमुत्साद्य च तपोधनम् ।।१२७
खाण्डवीं नगरीं चक्र हठाद्राजा सुदर्शनः ।
तदिदं पुनरेव त्वं वन कुरु नरोत्तमाः ।।१२८
तत्राहं विहरिष्यामि तक्षकेण समः रहः ।
मुनिनां च तपः स्थानमतुलं ते प्रसादतः ।
भविष्यति च यक्षाणां किन्नराणां च पार्थिव ।।१२९
एतच्छ्रु वचयस्तदा शक्रस्य विजयस्तदा ।
वनमेवाकरोत् तान्तं खाण्डवीं शक्रगौरवात् ।।१३०
गच्छन्तु भो यथास्थानं प्रजाः सर्वा यथेच्छया ।
येषां वाञ्छास्ति लोकानां मद्राज्यगमने पुनः ।।१३१
वाराणसी ते गच्छन्तु मयैव प्रतिपालिताम् ।
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा जनाः केचिन्निजास्पदम् ।।१३२
जग्मुर्वाराणसीं केचिद् विजयेनाभिपालिताम् ।
ततो धनानां तान् राशीन् रत्नानां च पृथक् पृथक् ।।१३३
मणीनां कनकानां च कुप्यानां विजयस्तथा ।
विविधैर्वारयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ।।१३४

इन्द्रदेव ने कहा—हे राजन् ! यह महावन देवगणों से समावृत था । यह गन्धर्व—यक्ष और युनियों से समावृत और परम मनोहर था । राजा सुदर्शन ने देव आदि सबको यहाँ से उत्साहित करके मेरे अप्रिय कार्य करने में रत होता हुआ उसने इन वन का भङ्ग करके गुह्य तपोधन को उत्साहित करके राजा ने हठ से खाण्डवी नगरी की रचना की थी । हे नरोत्तम ! आप पुनः इसको उत्तम वन बना दीजिए ।१२६-१२८। वहाँ पर मैं तक्षक के

साथ एकान्त में बिहार करूँगा। यह आपके ही प्रसाद से मुनिगणों के तपश्चर्या करने का अनुपम स्थान होगा हे पार्थिव ! यह यक्षों का और किन्नरों का भी उत्तम स्थान हो जायगा।१२६। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा— उस समय इन्द्रदेव के इस वचन विजय ने श्रवण करके इन्द्रदेव के गौरव से उस खाण्डवी नगरी को विस्तृत वन ही बना दिया था।१३०। समस्त प्रजाजन की इच्छा के अनुसार यथा स्थान पर गमन कर जायें। जिन लोगों की पुनः मेरे राज्य में गमन करने की इच्छा होवे वे वाराणसी में गमन कर जावें जो कि मेरे द्वारा ही प्रतिपादित पुरी है। उसके उपरान्त मनुष्यों ने उसके वचन का श्रवण किया और कुछ लोग अपने ही स्थान को गमन कर गये।१३१-१३२। और कुछ लोग विजय नृप के द्वारा अभिपातिता में चले गये थे इसके अन्तर धनों की तथा रत्नों की तथा राशियों को अलग-अलग मणियों-कनकों और पुरुषों की राशियों को विजय ने अंक साधनों के द्वारा वाराणसी नगरी की ही ओर वारित करा दिया था।१३३-१३४।

गन्धर्वाणां च देवानां यदानीत हठात् पुरा।
रत्नदार्वादिक यत् विजयं तत् प्रसाद्य च ॥१३५
तैस्तैर्नीतं च खाण्डव्याः स्वस्थान मतिहर्षितैः।
त्रिशद्योजनविस्तीर्णां शतयोजनमायताम् ॥१३६
तां पुरीं विजयश्चक्रेनाचिरादेवे वै वनम्।
तास्मिञ्छक्रस्य सम्मत्या तक्षकः सहितो गणैः ॥१३७
उवास सुचिर तत्र ततोऽभून्निर्जनं वनम्।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः क्रीडन्तेऽप्सरसां गणाः ॥१३८
आशन्तश्च विजयं रणेषु विजयावहम्।
प्राप्तेऽष्टाविशतितमे युगे द्वापरशेषतः ॥१३९
वह्निर्ब्राह्मणरूपेण भिक्षाँ विष्णुमयाचत।
दातुमङ्गीकृते भिक्षां तदा पाण्डुसुतेन वै ॥१४०

गन्धर्वों की ओर देवों की जो पहिले हठ से रत्न दारु आदि की राशिमा लाई गयी थी और विजय के समीप में थीं—विजय को प्रसन्न करके उन—उन्होंने प्रतिहर्षित होकर खाण्डवी से अपने स्थान को नीत

किया था । विजय ने तुरन्त ही तीस योजनों विस्तीर्ण सौ योजन आयत उस पुरी को बना दिया था । उस वन में इन्द्रदेव की सम्मति से अपने गणों के साथ तक्षक ने निवास किया था ।१३५-१३७। वहाँ पर तक्षक बहुत समय तक रहा था और फिर वह निर्जन वन बन गया था । वहाँ पर गन्धर्वों के साथ देवगण और अप्सराओं के समुदाय आनन्द की क्रीड़ा किया करते हैं ।१३८। वे सब युद्धों में विजय प्रदान करने वाले विजय की चर्चा किया करते थे । अट्ठाइसवें युग के प्राप्त होने पर द्वापर के शेष में वह्नि ने विष्णु से ब्राह्मण के रूप से भिक्षा की याचना की थी । पाण्डु के सुत द्वारा भिक्षा देने की स्वीकृति दे दी गई थी ।१४०।

वह्नि स्वरूपमास्थाय विष्णु वचनमब्रवीत् ।
अहमग्निः पाण्डपुत्र यज्ञभागाभिभोजनात् ।।१४१
व्याधितोऽहं ततो व्याधि ताम् त्व नाशयाघृना ।
खाण्डवं नाम विपिनं सपत्रिमृगराक्षसम् ।।१४२
यदि त्वं मां भोजयितु शक्नोषि श्वेतवाहन ।
तदा मम ह्यसौ व्याधिरपयास्यति नो चिरात् ।।१४३
पुरा तु विजयो राजा खाण्डवीं नाम तां पुरीम् ।
भुङ्क्त्वा वनं यतश्चक्रे तेन खाण्डवं वनम् ।।१४४
मदर्थं देवविहितं वनं तु श्वेतवाहन ।
विरोधात् तत् तु शक्रस्य न स्वयं भोक्तुमुत्सहे ।।१४५
तस्मात् त्राहि महाभागा वने तस्मिन्नियोजय ।
यथाहं संकलं भोक्तु शक्नोमि तत्प्रसादतः ।।१४६
तस्य तद्वचन श्रुत्वा सव्यसाची महाबलः ।
दाहयामास विपिन तत्सर्वं प्राणिसंयुतम् ।।१४७

वह्नि ने अपने स्वरूप में स्थित होकर विष्णु से यह वचन कहा था— हे पाण्डु पुत्र ! में अग्नि हूँ—यज्ञ भागों के अभिभाजन में मैं व्यघित हो रहा हूँ । अब आप ही मेरी इस व्याधि का विनाश कीजिए । खण्डव नाम वाला विपिन है जो पक्षी—मृग और राक्षसों से समन्वित है ।१४१-१४२। हे श्वेत वाहन ! यदि आप मुझको भोजन कराने में समर्थ हैं तभी मेरी यह

व्याधि शीघ्र ही नष्ट हो जायगी ।१४३। पहिले समय में विजय नाम वाले वे खाण्डवी नाम की उस पुरी को भंग करके इसको वन बना दिया था इसी कारण से यह खाण्डव वन है । हे श्वेत वाहन ! वह देवों के द्वारा विहित वन मेरे ही लिए था । इन्द्रदेव के विरोध से मैं स्वयं इसका भोग का उत्साह नहीं करता हूँ ।१४४-१४५। हे महाभाग ! इसी कारण से आप परित्राण करिए और उस वन में नियोजन कीजिये । जिस रीति से मैं सम्पूर्ण का भोग करने के लिए आपके प्रसाद से मैं समर्थ हो सकता हूँ ।१४६। महान् बलवान् सव्यसाची ने उसके इस वचन का श्रवण करके उस सम्पूर्ण वन को जो कि प्राणियों से समन्वित था दग्ध कर दिया था ।१४७।

देवकीतनयेनासौ बासुदेवेन पालितः ।
खाण्डवं दाहयामास ज्वलनस्य हिते रतः ॥१४८
सुप्रीतः प्रददौ तस्मादर्जुनाय महात्मने ।
वह्निर्धणुश्च गाण्डीव वारुणं देवनिर्मितम् ॥१४९
अक्षय्ये चेषुधी दिव्ये रूपांवांश्चतुरो हयान् ।
हनूमताधिष्ठित तु महान्त बानरध्वजम् ॥१५०
खडगं च त्रिशिखं तीक्ष्णं दहनः सव्यसाचिने ।
नीरोगश्वाभवद् वह्निस्तथा विष्णुप्रसादतः ॥१५१
तैबाणैस्तेन धनुषा तेन खड्गेन केतुना ।
तदश्वस्यन्दनेनापि विजिग्ये फाल्गुनो रिपून् ॥१५२
एवं भैरववंशेषु सञ्जातो विजयो नृपः ।
खाण्डव नाम विपिनं चकार सुमहाकृती ॥१५३
विजयस्य सुता जातस्त्रयोदश महाबलाः ।
द्युतिमान् सौम्यदर्शी च भूरिः प्रद्युम्न एव च ॥१५४
क्रतुस्तुण्डो विरूपाक्षो विक्रान्तोऽथ धनंजयः ।
प्रहर्षः प्रवलः केतुस्तथोपरुचिरोऽपरः ॥१५५

वह देवकी के आत्मज भगवान् वासुदेव के द्वारा पालित है । अग्नि के हित करने से रति रखने वाले ने उस खाण्डव वन को जला दिया था ।

।१४८। परम प्रसन्न होकर वह्नि ने इसी कारण से महात्मा अर्जुन को धनुष जो देवों द्वारा निर्मित और वारुण था प्रदान किया था ।१४६। और अक्षय—दिव्य औषधियाँ दी थीं और सुरूप से संयुत चाप अश्व—हनुमान जी से अधिष्ठित वानर ध्वजा वाला महान् रण-खड्ग—वीक्षण त्रिशिख अग्नि ने सव्य साची (अर्जुन) को दिये थे। तथा विष्णु के प्रसाद से वह्नि रोग से रहित हो गया था ।१५०-१५१। फाल्गुन (अर्जुन) ने उन वाणों से-उस धनुषसे —खड्ग से—केतु से उन अश्वों वाले रथ से शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी ।१५२। इस प्रकार से भैरव के वंशों में विजय नृप जो महा आकृति वाला था उसने खाण्डव को विपिन कर दिया था ।१५३। विजय राजा के महान् बल वाले तेरह पुत्र हुए थे। उनके नाम द्युतिमान-सौम्य-दर्शी-भूरि—प्रद्युम्न—क्रतु—पुण्य—विरूपाक्ष—विक्रान्त—धनञ्जय—प्रहर्ष-प्रवल-केतु और उपरिधर थे ।१५४-१५५।

एषां राजाऽभवद् वीरः शेषोपरिचरस्तु यः ।
वाराणस्यां नगर्यां यो यज्ञलक्षं पुराऽकरोत् ।।१५६

लक्षयज्ञकरः कोऽपि नासीन्नापि भविष्यति ।
राजा क्षितौ महाभागो यथोपरिचरस्तथा ।।१५७

एषां सूतिप्रसूतैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
चिरेण तान् का सख्यातुं शक्नोति भुवि मानुषः ।।१५८

क्रमाद् भैरववंशन व्याप्तं लोकत्रय त्विदम् ।
एतद् वः कथितं विप्राः सन्तान भैरवस्य तु ।।१५९

येषां श्रुत्वा कथामात्रं नापुत्रो जायते नरः ।
इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं चरित विजयस्य तु ।।१६०

सततं विजयस्तस्य जायते न पराभवः ।
एकाग्रमनसा यस्तु श्रृणुयादिदमुत्तमम् ।
तस्य वंशस्य विच्छेदो न कदाचिद् भविष्यति ।।१६१

इन सबका राजा वीर हुआ था जो शेषोपरिचर था जिससे वाराणसी नगरी में पहिले एक लाख यज्ञ किये थे ।१५६। एक लाख यज्ञों के करने वाला कोई भी नहीं हुआ था और न भविष्य में भी होगा। । पृथ्वी में महा-भाग राजा था वह जैसा उपरिचर था वैसा ही था ।१५७। इनके पुत्र-पौत्र

–प्रपोत्रों से ही यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। भूमण्डल में ऐसा कौन-सा मनुष्य है जो बहुत लम्बे समय में भी उनकी गिनती कर सकता हो। अर्थात् ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है।१५८। क्रम से भैरव के वश से यह तीनों ही लोक व्याप्त हो रहे हैं। हे विप्रो! यह मैंने आपके समक्ष में भैरव की सन्तति का वर्णन कर दिया है। इनकी केवल कथा ही का श्रवण करके जो पुत्र रहित होवे। ऐसा वह कभी भी हो नहीं सकता है। वितय के इस परम पवित्र चरित्र का कीर्त्तन किया करता है उसकी सदा ही विजय ही होता है और पराभव कभी भी नहीं हुआ करता है। जो एकाग्र मन से इस उत्तम चरित्र का श्रवण करता है उसके वंश का विच्छेद कभी भी नहीं हुआ करता है और न होगा ही।१५९-१६१।

---

## षोडशोपचार वर्णन

उपचारान् प्रयक्ष्यामि शृणु षोडश भैरव।
यैः सम्यक् तुष्यते देवीं देवोऽप्यन्यो हि भक्तितः॥१
आसन प्रथमं दद्यात् पौष्ण्यं दारवमेव वा।
वास्मं वा चार्मणं कौशं मण्डलस्योत्तरे सृजेत्॥२
यदैव दीयते पद्मे मंडलस्य तदुत्सृजेत्।
वाक्पुष्पतौयैः कुसुमं बिना यच्छादकं भवेत्॥३
पद्मस्य तद्बहिर्देशे द्वारादौ विनिवेदयेत्।
अर्घ्यं पाद्यं आचमनं स्नानीयं नेत्ररञ्जनम्॥४१
मधुपर्क च गन्धं च पुष्पं पद्मे निवेदयेत्।
प्रतिमासु च यद्योग्यं च गात्रे दातुं च तत तनौ॥५
दद्याद् योग्यं तु पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम्।
पौष्पासत्रं यद् विहितं यस्य तद् यदि गर्भकम्॥६
निवेदयेत् तदा पद्मे विपुलं द्वारि चोत्सृजेत्।
पौष्पं पुष्पौघरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम्॥७
अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव।
यज्ञकाष्ठसमुद्भूतमासनं मसृणं शुभम्॥८

श्री भगवान् ने कहा—हे भैरव ! मैं अब सोलह उपचारों का वर्णन करता हूँ। उनका आप श्रवण कीजिए। भक्ति भाव से किये जिनसे देवी भली-भाँति से सन्तुष्ट हुआ करती है और अन्यदेव भी परम प्रसन्न होते हैं। ।१। सबसे प्रथम आसन देना चाहिए। यह आसन पौष्ण्य हो अथवा काष्ठ का होवे। चाहे का वस्त्र का हो—चर्म का हो या कौश होवे। उसे खण्डल के उत्तर की ओर ही सृजन करना चाहिए ।२। जिस समय में यह पद्म में पिया जाता है उसे मण्डल के उत्तर में ही देवे। कुसुम के बिना वाक् पुष्प और जल से जो छादक होवे ।३। उसे पद्म के वाहिर के धाग में द्वार आदि पर विशेष रूप से निवेदिन करना चाहिये। अर्घ्य—पाद्य—आचमन-स्थानीय-नेत्र रञ्जन-मधुपर्क-गन्ध और पुष्प पद्म में निवेदित करे। और प्रतिमाओं में और गात्र में देने के लिये जो भी योग्य होवे वह तनु में देना चाहिए। और नैवेद्य भोजन आदि जो होवें वह आगे देना चाहिये। पौष्पा सव जो जिसको विहित किया गया है वह यदि गर्भक हो तो उस समय में पद्म में निवेदन करना चाहिये और विपुल को द्वार उत्सृजन करे। पौष्प जो होता है वह पुष्पों के सामुदाय से रचित हुआ करता है और कुश तथा सूत्र आदि से संयुत होता है। हे भैरव ? यह देवी का-मेरा और अन्य का भी अत्यधिक प्रिय करने वाला होता है। यज्ञ के काष्ठ से समुद्भूत आसन मसृण और शुभ हुआ करता है ।४-८।

नीच्छ्रायं नातिविस्तीर्णमासनं विनियोगयेत् ।
अन्याद् दारुभवं चापि दद्यादासनमुत्तमम् ।।९
सकंटकं धीरयुतं दारुसारविवर्जितम् ।
चैत्यश्मशानसम्भूतं वर्जयित्वा विभीतकम् ।।१०
वल्कलं कोषजं शाणं वस्त्रमेतम् त्रयं मतम् ।
रोमजं कम्वलं चैतदनेन तु चतुष्टयम् ।।११
अनेन रचितं दद्यादासनं चेष्टभूतये ।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां छागस्या महिषस्या वा ।।१२
गजानां तुरगाणां च कृष्णसारस्त चर्मणः ।
समरस्याथ रामस्य मृगाणां नवभेदिनाम् ।।१३
चर्मभिः सर्वदेवानामासनं प्रीतिदं श्रुतम् ।

वस्त्रेषु कम्बलं शस्तमासनं देवतुष्टने ॥१४

राङ्कवं चार्मणं श्रेष्ठं दारवं चन्दनोद्भवम् ।

यच्चासनं कुशमयं तदासनमनुत्तमम् ॥१५

सर्वेषामपि देवानामृषीणां च यतात्मनाम् ।

योगपाठस्य सदृशमासनं स्थानमुच्यते ॥१६

आसन ऐसा होना चाहिये जो बहुत ऊँचा न होवे और न बहुत विस्तृत होना चाहिए । ऐसे ही आसन को विनियोजित करे । अन्य लकड़ी से बनाया हुआ भी उत्तम देवे ।९। वह आसन दारु (काष्ठ) के सार से रहित तथा काँटों से युक्त एवं क्षीर से संयुत—चैत्य श्मशान से समुत्पन्न और विभी तक को छोड़कर ही काष्ठ का आसन बनाना चाहिये ।१०। वस्त्र के आसन के लिये वल्कल (वृक्ष की छाल)—कोषज और शाण अर्थात् सनका-ये ही तीन आसन माने गये हैं । रोमज अर्थात् रोमों से बनाया हुआ कम्बल —ये चार होते हैं ।११। अपने इष्टदेव की मूर्ति के लिये इसके द्वारा बिरचित आसन ही देना चाहिये । सिंह—व्याघ्र-तरक्ष—छाग महिष-गज—तुरग-कृष्ण स्तर चर्मण—राग ने मृगों के नौ भेद हैं ।१३। इनके चर्मों के द्वारा आसन बनाया जाया करता है जो सभी देवों के लिए प्रीति का देने वाला होता है-ऐसा सुना गया है । वस्त्रों के आसनों में कम्बल का आसन प्रशस्त होता है और देवों की तुष्टि के लिये हुआ करता है ।११४। चर्म के आसन में रङ्कु के चर्म का आसन श्रेष्ठ होता है तथा काष्ठ के आसनों में चन्दन का श्रेष्ठ माना गया है ।१५। सभी देवों का संयत आत्म वाले ऋषियों का योग पीठ के सदृश आसन तथा स्थान कहा जाता है ।१६।

आसनस्य प्रदानेन सौभाग्यं मुक्तिमाप्नुयात् ।

शम्बरो रोहितो रामो न्यङ्कुशशा रुरुः ॥१७

एणश्च हरिणश्चेति मृगा नवविधा मता ।

हरिणश्चापि विज्ञेयो पञ्चभेदोऽत्र भैरव ॥१८

ऋष्यः खड्यो रुरुश्चैव पृषतश्च मृगस्तथा ।

एते वलिप्रदानेषु चर्मदानेषु कीर्तिताः ॥१९

सर्वेषां तैजसानां च आसन श्रेष्ठमुच्यते ।

आयसं वज्रयित्वा तु कांस्यं सीसकमेव वा ॥२०

शिलामयं मणिमयं तथा रत्नमयं सतम् ।
आसनं देवताभ्यस्तु मुक्त्यै भुक्त्यै समुत्सजेत् ।।२१
अत्रैव साधकानां च आसनं शृणु भैरव ।
यत्रासीनः पूजयैस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।।२२
ऐन्धनं चार्मणं वास्त्र तैजसं च चतुष्टयम् ।
आसनं भासकानां च सस्तं परिकीर्तितम् ।।२३
तत् सर्वमासनं शस्तं पूजाकर्मणि साधकेः ।
न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्मणि साधकः ।।२४

देवों के लिये आसन के समर्पण से परम सौभाग्य और मुक्ति की प्राप्ति की जाया करती है मृग नौ प्रकार के माने गये हैं अर्थात् निम्नांकित इनके नौ भेद होते हैं–शम्बर–रोहित–राम–न्यङ्कु अंकुशसा–गुरु–एण और हरिण–ये नौ भेद हैं। हे भैरव ! हरिण भी यहाँ पर पाँच भेदों वाला समझना चाहिए ।१७-१८। कृष्ण शृङ्ग–रुरु–पृषत–तथा मृग–ये बलि के प्रदान करने में तथा चर्म दान में कीर्तित किये गये हैं ।१९। और सभी तैजसों के आसन परम श्रेष्ठ कहे जाया करते हैं। धातु के आसनों में केवल लौह को छोड़कर कांसा–सोमा–शिखामय–मणिमय–ये रत्नमय माने गये हैं। देवताओं के लिये आसन मुक्ति अर्थात् सांसारिक मूलों के उपभोग और मुक्ति अर्थात् सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने के लिये समुत्सृजित करना चाहिए ।२०-२१। हे भैरव ! और यहाँ पर ही साधना करने वालों के आसनों के विषय में भी श्रवण कर लीजिये। जिन पर बैठकर अभ्यर्चन करता हुआ सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लिया करता है ।२२। साधकों के लिये चार प्रकार के आसन निरन्तर बताये गये हैं–ऐन्धन (काष्ठका–चार्मण (चमक)–वास्त्र (वस्त्र का)–और तेजस अर्थात् धातु निर्मित ये चार हैं। ।२३। साधक को पूजा के कर्म में ये सभी आसन प्रशस्त होते हैं ।२४।

काष्ठादिकासनं कुर्यात् सितमेव सदा बुधः ।
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासनं मतम् ।।२५
षोपशांगुलविस्तीर्णमुच्छ्रायं चतुरंगुलम् ।
षडङ्गुलं वा कुर्यात् तु नोच्छ्रितञ्जातु आचरेत् ।।२६
पूर्वोक्तं वर्जयेद् वर्ज्यमासनं पूजनेष्वपि ।

वस्त्रं द्विहस्मानो दीर्घहस्तान्न विस्तृतम् ॥२७
न त्र्यङ्गुलात् तथोच्छ्रयं पूजाकर्मणि संश्रयेत् ।
यथेष्टं चार्मणं कुर्यात पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम् ॥२८
षडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रितं च कदाचन ।
काम्बलं चार्मणं शैलं महामायाप्रपूजवे ॥२६
प्रशस्तमासनं प्रोक्तं कामाख्यास्तथैव च ।
त्रिपुरातश्च सततं विष्णोऽन्चापि कुशासनम् ॥३०
बहुदीर्घ बहुच्छ्राय तथैव बहुविस्तृतम् ।
दारुभूमिसमं प्रोक्तागश्मापि सर्वकर्मणि ॥३१
पृथक्-पृथक् कल्पयेत् तु बहिर्द्वारि तथासनम् ।
न पत्रमासनं कुर्याद् कदाचिदपि पूजने ॥३२

बुध पुरुष को चाहिए कि सर्वदा काष्ठ आदि का आसन सित ही रक्खे । काष्ठ का आसन चौबीस अंगुल प्रमाण वाला दीर्घ होना चाहिये—यही शास्त्र-समतब होता है ।२५। सौलह अंगुल के विस्तार से युक्त और चार अगुल ऊँचाई वाला होना चाहिए । अथवा छै अंगुल ऊँचा करे । इससे ऊँचा कभी नहीं कर ।२६। पूर्व में कहे हुए को वर्जित कर देवे । जो आसन वर्जित हैं वह पूजन में वर्जन के योग्य होता है । वस्त्र का आसन दो हाथ से बड़ा नहीं होना चाहिए । और डेढ़ हाथ से अधिक विस्तृत नहीं होवे ।२६। तीन अगुल से ऊँचा आसन कभी भी पूजा कर्म में संश्रित नहीं करना चाहिये । चर्म का आसन जितना भी अभीष्ट हो करे । पूर्व में वर्णित आसन सिद्धि का प्रदान करने वाला हुआ करता है ।२८। छै अंगुल से ऊँचा कभी भी नहीं करना चाहिये । कम्बल का आसन तथा चर्म का आसन तथा चर्म का आसन और शैल अर्थात् शिला का आसन महामाया के प्रकृष्ट पूजन में परम प्रशस्त आसन कहा गया है तथा कामख्या देवी के यजन में इसी को श्रेष्ठ बताया गया है । सदा त्रिपुरा देवी के पूजन में और भगवान् विष्णु के अर्चन में भी कुशा का आसन प्रशस्त माना गया है ।२५-३०। बहुत दीघ—बहुत ऊँचा—और बहुत विस्तार वाला काष्ठ और भूमि के समान ही कहा गया है और पाषाण का भो आसन सभी कर्मों में प्रशस्त होता है ।३१। द्वार में बाहिर आसन पृथक्-पृथक् ही कल्पित करे पत्रों का आसन कभी पूजन में नहीं करना चाहिये ।३१-३२।

न प्राप्यङ्ग समुद्भूतमस्थिजं द्विरदादृते ।
मातङ्गदन्तसञ्जातं कामिकेष्वासनं चरेत् ।।३३
चार्मं पूर्वोदितं ग्राह्य तथा गन्धमृगस्य च ।
सलिले यदि कुर्वीत देवतानां प्रपूजनम् ।।३४
तत्राप्यासन आसीनो नोत्थितस्तु कदाचन ।
तोये शिलामयं कुर्यादासनं कोशमेव वा ।।३५
दारवं तैजसं वापि नान्यदासनमाचरेत् ।
आसनारोपसंस्थानं स्थानाभावे तु पूजकः ।।३६
आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेत्जले ।
यद्यासितं न संस्थानं विद्यते तोयमध्यतः ।।३७
अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजां समाचरेत् ।
इत्येतत् कथितं पुत्र पूज्यपूजकसंगतम् ।।३८
आसनं पाद्ममुना श्रृणु वेताल भैरव ।
पदार्थमुदकं माद्यं केवलं तोयमेव तत् ।।३९
तत् तैजसेन पात्रेण शंखेनोपि प्रदीपयेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थान पाद्यमिष्यते ।।४०

गज को छोड़कर किसी भी प्राणी के अंग से निर्मित आसन तथा अस्थियों से रचित आसन ग्रहण नहीं करे । मातंग के दाँतों से निर्मित आसन कामिक कुर्मों में सदाचरित करना चाहिये ।३३। चर्म का आसन नहीं ग्रहण करना चाहिये जो पूर्व में कहा गया है । तथा गन्ध मृग के चर्म का आसन लेवे । यदि जल में देवताओं का पूजन करे वहाँ पर भी आसन पर बैठे हुए साधक को कभी भी उठना नहीं चाहिये । जल में शिलामय अथवा कुशा का ही आसन करे ।३४-३५। काष्ठ का अथवा तैजस धातु निर्मित आसन को ग्रहण करे तथा अन्य आसन को नहीं समाचरित करे । स्थान के अभाव में तो पूजक आसन के आरोप के संस्थान को ही आसन कल्पित करके मन से जल में पूजन करें । यदि जल के मध्य में बैठने का संस्थान नहीं होवे तो अन्य स्थान में ही बैठकर उस समय में देव की पूजा का समाचरण करना चाहिए हे पुत्र ! यही आपको मैंने पूज्य और पूजक का जो सङ्गत विषय है

वह कहकर बता दिया है ।३६-३८। हे वेताल भैरव ! आसन और इससे पाद्य का श्रवण कीजिये । चरणों के प्रक्षालन के लिये जो जल है वही पाद्य होता है अथवा केवल वह जल ही होता है ।३९। वह पाद्य किसी उत्तम धातु से निर्मित पात्र के द्वारा और शंख द्वारा भी देना चाहिये । पाद्य-अर्थ काम और मोक्ष का संस्थान होता है ।४०।

तदासमोत्तर दक्षान्मूलमन्त्रेण सर्वतः ।
कुशपुष्पाक्षतैश्चैव सिद्धार्थैश्चन्दनैस्तथा ।।४१
तोयैर्गन्धैर्यथालब्धैरर्घ्यं दद्यात् तु सिद्धये ।
अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ।।४२
पुत्रायुः सुखमोक्षाणि दानादर्घ्यस्य वै लभेत् ।
न दद्याद् भास्करायर्घ्यं शंखतोयैर्वि लक्षणः ।।४२
तथा न शुक्तिपात्रेण विष्णवेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।
दद्यादाचमनीयं तु सुगन्धिसलिलैः शुभैः ।।४४
कर्पूरवासितैर्वापि कृष्णागुरुविधूपितैः ।
यथा तथा सुगन्धैर्वा प्रसन्नैः फेनवर्जितैः ।।४५
तत् तेजसेन पात्रेण शंखेनापि प्रदापयेत् ।
उदक दीयते वत् तु प्रसन्नं फेनवर्जितम् ।।४६
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते ।
केवल तोयमात्रेण तद् वा दद्यान्न मिश्रितम् ।।४७
वासितं तु सुगन्धाद्यैः कर्त्तव्यं यदि लभ्यते ।
आयुर्बलं यशोबृद्धि प्रदायाचमनीयकम् ।।४८

उस समय में आसन के उत्तर में सभी ओर मूल मन्त्र के द्वारा कुश-पुष्प अक्षत-सिद्धार्थ-चन्दन तथा यथा लब्ध अर्थात् जो भी प्राप्त हो सकें जलों से सिद्धि के लिये अर्घ्य देना चाहिये । अर्घ्य से कामनाओं का लाभ होता है और अर्घ्य देने से धन की प्राप्ति हुआ करती है ।४१-४२। अर्घ्य से पुत्र-आयु-सुख-मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है । विचक्षण पुरुष को कभी शंख के द्वारा जल का अर्घ्य भास्कर के लिए नहीं देना चाहिये ।४३। सीप के पात्र से भगवान् विष्णु के लिए अर्घ्य निवेदित नहीं करे सुगन्ध से युक्त जल से ही

जो परम शुभ होवे आचमनीय समर्पित करे ।४४। कर्पूर के वासित और कृष्णा गुरु से धूपित जिस प्रकार से सुगन्धित होवें वैसे ही प्रसङ्गों से और फेनों से रहित जल से तैजस (धातु निर्मित) पात्र के द्वारा और शंख के द्वारा भी निवेदित करे। जो भी जल दिया जाता है वह स्वच्छ और फेनों रहित ही होना चाहिए ।४५-४६। देवों के लिये जो आचमन करने को जल दिया जाता है वह ही आचमनीय कहा जाया करता है अथवा केवल जल ही देवे और मिश्रित नहीं देवे ।४७। सुगन्धित पदार्थों से उस जल को वासित करे। यदि इस प्रकार से प्राप्त होता है। आचमनीय का समर्पण करके साधक आयु—जल और यश की वृद्धि प्राप्त किया करता है ।४८।

लभते साधको नित्य कामाश्चैव यथास्थितान् ।
दधिसंर्पिजल क्षौद्रं सिता ताभिश्च पञ्चभिः ॥४९

प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौधतुष्टये ।
जल तु सर्वत स्वल्पं सितादाधिघृतं समम् ॥५०

सर्वेभ्य श्चाधिक क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत् ।
तद् दद्यात् कांस्यपात्रेण रौक्मश्वेतमयेन वा ॥५१

ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ पूर्वे चेष्टे च पूजते ।
मधुपर्कः प्रविष्टोऽयंसर्वदेवौघतुष्टिदः ॥५२

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधकः परिकीर्तितः ।
मधुपर्कः सौख्यभोग्य-तुष्टि-पुष्टि-प्रदायकः ॥५३

पिष्टातकोऽथ कस्तूरीं रोचनं कुङ्कुमं तथा ।
गुडः क्षौद्रं पञ्चगव्यं सर्वोषधिगणस्तथा ॥५४

सिता निर्णजन तैलं स्निग्धस्नेहेन तत् तिलाः ।
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं कल्पकोविदैः ॥५५

स्वर्णरत्नोदकं चैव कपूराद्यधिवासितम् ।
तैजसैः कांस्यपात्रैर्वा शंखर्वा तन्निवेदयेत् ॥५६

साधक अपने हृदय में उठे हुए मनोरथों की भी प्राप्ति किया करता है। सभी देवों की तुष्टि के लिए मधुपर्क दिया करता है। दधिघृत—जल—मधु—मिश्री—इन्हीं पाँचों में मिश्रित करके मधुपर्क बनाया जाता है। इसमें जल तो बहुत ही थोड़ा होना चाहिये और मिश्री—घृत और दधि समान

परिमाण होने चाहिये। इन सबसे अधिस मधु मधुपर्क में प्रयुक्त करे। यह मधुपर्क काँसे के पात्र के द्वारा—सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र से ही समर्पित करे। ज्योतिष्टोम और अश्वमेध आदि में—पूर्व में और इष्ट में पूजन में यह मधुपर्क प्रविष्ट होता है जो सभी देवों के समुदाय की तुष्टि के लिये हुआ करता है।४६-५२। यह मधुपर्क धर्म-अर्थ—काम और मोक्ष का साधन कीर्तित किया गया है। मधुपर्क सौख्य—भोग्य—तुष्टि—पुष्टि का प्रदान करने वाला हुआ करता है।५३। पिष्टातक—कस्तूरी—रोचन कुऽकुम गुड़—मधु—पञ्चगव्य—सर्वौषधियों का समुडाय—सिता (मिश्री)—निर्णजन—तैल—स्निग्ध स्नेह से तिल-प्रान्त में जल--ये सभी पदार्थों को कव्य कोविदो के द्वारा स्नानीय अर्थात् स्नान का जल कहा गया है।५४-५५। इस स्नानीय जल को स्वर्ण और रत्नों का जल जो कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों से अधिवासित करे और उसको तैजस अर्थात् उत्तम धातु पात्रों के द्वारा—काँसे के पात्रों से अथवा शंखों के द्वारा निवेदित करना चाहिये।५६।

मण्डले केशरे देयमादित्यप्रतिमासु च।
शिवलिंगे तथा भोगे पीठे देवतनौ तथा ।।५७

सद्यः स्निग्धैःमृण्मये वा सर्पिः सिन्दूरजे तथा।
श्रीचन्दन प्रतिष्ठे वा लेपयेत् प्रतिमातनौ ।।५८

स्वस्तिस्थापिते खड्गे स्नापयेद् दर्पणेऽथ वा।
एवं दद्यात् तु स्नानीयं महादेव्यै विशेषतः ।।५९

रवि विष्णुशिवेभ्यो वा यत तत्र प्रपूजने।
पूजकः स्नानप्रदानात् तु चिरायुरुपजायते ।।६०

सम्यक् स्नानप्रदानात् कल्पान्तं स्वर्गभाग्भवेत्।
यदेव दीयते पाद्यं गन्धपुष्पादिकं तथा ।।६१

उपचारांस्तथा सर्वानर्घ्यपात्राहितैः।
अमृतीकरणाद्यैस्तु संस्कृतैस्त्वभिषिच्य तैः ।।६२

प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णाति च ततः स्वयम्।
अर्घ्यपात्राणि तैस्तोयैर्विना यद्विनिवेदनम् ।।६३

दीयते चेष्टदेवेभ्यःसर्वं तन्निष्फलं भवेत्।
रागाल्लोभात् प्रमादाद् वा ह्यार्घ्यं पात्रतीकृतम् ।।६४

आदित्य की प्रतिमाओं में मण्डल में और केशर में देना चाहिये। शिवजी के लिंग में तथा भोग में—पीठ में तथा देवता के तनु में देना चाहिये। सद्य स्निग्ध में—मृत्तिका से निर्मित में—घृत और सिन्दूर से निर्मित में अथवा श्री चन्दन प्रतिष्ठ में प्रतिमा के तनु में लेपन करना चाहिये।५८। स्वास्तिक में स्थापित में—खंग अथवा दर्पण में स्नपन कराना चाहिए। इसी प्रकार से और विशेष रूप से महादेवी के लिये स्नानीय को समर्पित करना चाहिये।५६। सूर्य—विष्णु—शिव के लिये जहाँ—तहाँ पर पूजन स्नानीय के समर्पण करने से चिराय को प्राप्त किया करता है।६०। भली-भाँति स्नानीय के समर्पण करने से पूजक कल्प के अन्त तक स्वर्ग के निवास का अधिकारी हो जाया करता है। जिस समय में ही पाद्य तथा गन्ध और पुष्प प्रभृति दिये जाया करते हैं। तथा सभी उपचार समर्पित किये जाते हैं। इन सबको अर्घ्य पात्र में अवदित जलों में अमृतीकरण आदि करे तथा सुसंस्कृत करे और फिर उसके द्वारा अभिषिञ्चन करना चाहिए। इसके उपरान्त ही इष्ट देवों की सेवा में समर्पित करना चाहिए। उस समर्पित को व स्वयं ही ग्रहण किया करते हैं। नर्च्य पात्रों को उस प्रकार के जलों के बिना जो निवेदन किया जाता है। ऐसा जो समर्पण है जो अपने इष्ट देवों के लिये किया जाता है वह सभी समर्पण निष्फल ही हुआ करता है जो राग से—प्रसाद से अथवा लोभ से किया जाया करता है वह फल ही नहीं होता है। अर्घ्य पात्र में अमती कृत होना चाहिये।६१-६४।

यो स्रुतं स्यात् पात्रात् पुनः कुर्यात् तदामृत्तम्।
स्वल्पावशेषतोये तु पात्रस्थे ह्यमृतीकृते ॥६५
तत्रान्यदुदकं दद्यात् तत् तौनैवामृतं भवेत्।
वहूनि यवि पुष्पाध्णि माला वा प्रचुरा यदि ॥
दीयन्ते चाघ्यौर्यदुत्सृष्टमर्यपात्रस्थितेतघ्रैः ॥६७
तन्न मृह्णातोष्टदेवो दत्तं विधिशतौरपि।
संस्कृते त्वर्घ्यपात्रे तु नवभिः प्रतिपत्तिभिः ॥६८
तिष्ठन्ति सवतीर्थानि पीयूषाणि च सर्वतः।
तस्मात् तत्र स्थितैस्तोयैरभ्युक्ष्योपचारानुत्सृजेत् ॥६९
न योग्यमर्घ्यपात्रेषु निधाय वनिवदयेद्।

इदं ते भैरव प्रोक्तं षट्कं चैवासनादिकम् ।
वस्त्रादि दश वक्ष्यामि शृणु विज्ञानवृद्धये ।।७०

पात्र से जल स्रुत होता है फिर उसको अमृत करना चाहिए। अमृतीकृत जल जब पात्र में स्वल्प अवशेष रहे तो उस समय में उसमें अन्य जल दे देवे वह उससे ही अमृत हो जाया करता है । यदि बहुत से पुष्प होवें और यदि प्रचुर मालायें होगें तो अर्घ्य पात्र में स्थित जलों से संसिञ्चन करके दी जाया करती हैं और उक्त जल करना चाहिए दूसरे जलों से जो अर्घ्य पात्र में स्थित से भिन्न होगें जो उत्सृजन किया जाये तो सैकड़ों विधियों से भी समर्पित किये गये को इष्टदेव ग्रहण नहीं किया करते हैं। नवीन प्रति पत्तियों के द्वारा संस्कृत अर्थात् संस्कार किये हुये अर्घ्यपात्र में जो स्थित रहते हैं ।६५-६८। वहाँ पर तो सभी तीर्थ और सभी ओर से पीयूष स्वरूप स्थित रहा करते हैं । इस कारण से उसमें स्थित रहने वाले जल ही अभ्युक्षण करके ही उपचारों का उत्सृजन करना चाहिये ।६९। अर्घ्य पात्रों में योग्य को निधान न करके जो निवेदन करे वह निवेदन करना उचित नहीं होता है । हे भैरव ! आपके सामने यह आसन आदि का वर्णन करके बता दिया गया है । अब वस्त्रादि दश को बतलाऊँगा । उसका आप श्रवण विज्ञान की वृद्धि के लिए करिये ।७०।

—×—

## देवाराधन के अन्य उपचार

कार्पासं कम्बलं वाल्कं कोशजं वस्त्रमिष्यते ।
तत् पूर्वं पूजयित्वैव मन्त्रर्देवाय चोत्सत्जेत् ।।१
निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्राबलिगितम् ।
मरकीयं ह्याकुदष्टं सूचाविद्धं तथाषितम् ।।२
उप्तलेशं विधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।
प्रदाने देवता यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।।३
वर्जयेत् स्वोपयोगेन यज्ञादावुपयोजने ।
उत्तरीयोत्तरासंगेर्निचोलो मोदचेलकः ।।४
परिधानं च पञ्चान्यस्ययूतानि प्रयोजयेत् ।
शाण वस्त्रं निशारं च तथैवातवारणम् ।।५

चाण्डातकं तथा द्दश्यं पञ्च स्यूतान्यदुष्टये ।
पताकाध्वजकुण्डादौ स्यूतं वस्त्रं प्रयोजयेत् ॥६
अन्यत्रावरणादौ च तद्विनाशस्य तेन तत् ।
रक्तं कौशेयवस्त्रं च महादेव्यै प्रशस्यते ॥७
पीतं तथैव कौशेयं वासुदेवाय चोत् सृजेत् ।
रक्तं तु कम्बलं दद्याच्छिवाय परमात्मने ॥८

श्री भगवान् ने कहा—कपास का अर्थात् सूतो निर्तिम—कम्बल-वाल्क अर्थात् छाल से रचित और कोशज वस्त्र ही अभीष्ट हुआ करता है। उसको ही पूर्व में मन्त्रों के द्वारा पूजन करके देवों के लिए उत्सृजित करना चाहिए ।१। निर्देश अर्थात् कीड़ों के द्वारा कटा तथा कुतरा हुआ—मैला—जीर्ण—छिन्न और गात्र से अवलिङ्गित अर्थात् अङ्ग पर धारण किया हुआ-पराया और चूहों के द्वारा काटा हुआ—सुई से विद्ध तथा उषित गुप्त केश और विधौत एवं श्लेष्मा मूत्र आदि से दूषित देवताओं के लिए प्रदान में और दैव तथा पित्र्य कर्म में वर्जित कर देना चाहिए। अपने उपयोग से यज्ञादिक में उपयोजन में उत्तरीय-उत्तरासङ्ग-निचोल-मोद चालक और परिधान-इन पौधों को बिना सिले हुए ही प्रयुक्त करने चाहिए सब की वध्व-निशार तथा आतय-वारण-चण्डा तक और द्दश्य-इन पाँचों को सिले हुए ही उत्सृजित करे। पताका और ध्वजा तथा कुण्डादि के सिले हुए वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए ।५। और अन्यत्र आवरणादि में उससे उसके विनाश के होने से रक्त वस्त्र और कौशेय वस्त्र महादेवी के लिए प्रशस्त होता है ।६। पीत और कौशेय (रेशमी) वस्त्र भगवान् वासुदेव के लिए उत्सृजन करना चाहिए। परमात्मा शिव के लिए रक्त वर्ण का कम्बल समर्पित करे ।७-८।

विचित्रं सर्वदेवेभ्यो देवाभ्योऽशु निवेदयेत् ।
कार्पासं सर्वतोभद्रं दद्यात् सर्वेभ्य एव च ॥९
नैकान्तरक्तं दत्यान् तु वासुदेवाय चौलकम् ।
तथा नकान्तनीलं तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥१०
नीलीरक्तं तु यद्वस्त्रं तत् सर्वत्र विवर्जितम् ।
दैवे पित्र्ये तूपयोगे वर्जयेत् तु विचक्षणः ॥११

नीलीरक्तं प्रमादात्तु यो दद्यात् विष्णवे बुधः ।
निष्फला तस्य तत् पूजा तदा भवति भैरव ॥१२

विचित्रे वाससि पुनर्लग्नं नीलीविरञ्जितम् ।
वस्त्र ददयान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ॥१३

द्विपदां ब्राह्मणो यद्वद्देवानां वासवो यथा ।
तथा भूषणवर्गेषुव स्तमुत्तममुच्यते ॥१४

वस्त्रेण जीर्यते लज्जा वस्त्रेण हीयते त्वघस् ।
वस्त्रात् स्यात् सर्वतः सिद्धिश्चतुर्वर्गप्रदं च तत् ॥१५

वस्त्रं ते कथितं पुत्र सर्वप्रीतिप्रदयाकम् ।
भोग्यं भूषोत्तमं नित्यं भूषणानि शृणुष्व मे ॥१६

समस्त देवों के लिए और देवियों के लिए विचित्र वस्त्र का निवेदन करना चाहिए। कपास का सर्वतो भद्र सभी के लिए निवेदित करे।६। एकान्यर रक्त अर्थात् बहुत ही लाल चेतक भगवान् वासुदेव के लिए नहीं निवेदित करना चाहिए। उसी भाँति एक दम नीला वस्त्र शिव के लिए समर्पित नहीं करना चाहिए।१२। नील और रक्त जो भी वस्त्र है वह सभी जगह परविशेष रूप से वर्जित होता है। विचक्षण पुरुष को दैव और पित्र्य के उपयोग में उसका वर्जन कर देना चाहिए। जो बुध पुरुष प्रसाद से नील रक्त वस्त्र को भगवान् विष्णु के लिए निवेदित करता है हे भैरव ! उसकी वह पूजा निष्फल ही हुआ करती है।१२। विचित्र वस्त्र में जो कोई नीले वर्ण की विराञ्चित हुई होवे तो ऐसे वस्त्र को महादेवी के लिए ही निवेदित करना चाहिए अन्य किसी देवता को कभी भी निवेदित न करे।१३। जिस रीति से दो पदों वालों में ब्राह्मण और देवों में इन्द्रदेव होते हैं उसी भाँति भूषण वर्गों में उत्तम कहा जाया करता है।१४। वस्त्र से लज्जा जीर्ण होती है और वस्त्र के द्वारा पाप हीन अर्थात् नष्ट हो जाता है—वस्त्र से सभी प्रकार की सिद्धि होती हैं अतः वस्त्र चारों वर्णों के फल का प्रदान करने वाला होता है।१५। हे पुत्र ! आपके सामने यह वस्त्र सब प्रीति का देने वाला कह दिया गया है। यह भोगने के योग्य उत्तम भूषा है जो नित्य हो जाता है। अब भूषणों के विषय में मुझ से श्रवण करो।१६।

किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च ललाटिका ।
तालपत्रं च हरश्च ग्रैवेयकमथोमिका ॥१७

प्रालम्बिकासतनरूत्रयुत्तङ्गोतक्षं मालिका ।
पार्श्वद्योतो नखद्योतो ह्यङ्गुलीच्छादकस्तथा ॥१८

जूटलकं मानवको मूर्धताराखलन्तिका ।
अंगदो वाहुवलयः शिखाभूषण इंगिका ॥१६

प्राग्दण्डवन्धमुद्भासना भिपरोऽथ मालिका ।
सप्तका शृंखलं चैव दन्तपत्रं च कर्णकः ॥२०

ऊरुसूत्रं च नीवीं च मुष्टिबन्धं प्रकीर्णकम् ।
पादंगदं हंसकश्च नूपुरं क्षुद्रघण्टिका ॥२१

सुखपट्टामिति प्रोक्ता अङ्कारा: सुशोधभाः ।
चत्वारिंशदमी प्रोक्ता लोके वेदे तु सौख्यदा ॥२२

अलङ्कारप्रदानेन चतुवर्गप्रसाधनम् ।
एतेषां पूजनं कृत्वा प्रद्द्यादिष्टसिद्धये ॥२३

तेषां दैवतमुच्चार्य पूजयेत् तु विचक्षणः ।
शिरोगतानि वा दद्यात् सौवर्णानि तु सर्वदा ॥२४

भूषण बताये—जाते—हैं—किरीठ—शिरोरत्न—कुण्डल—ललाटिताल पत्र—हार—ग्रैवैषक—ऊर्मिका—प्रालम्बिका—रत्न सूत्रउत्तुंग—तक्ष—मालिका पार्श्वद्योत—नख द्योत—अंगुलीच्छादक—अंगद—बाहुवलय—शिखा भूषण - इंगिका—प्राग्दण्ढवन्ध-उद्भासना भिपूर-मालिका-सप्तमी-शृंगार-दन्तमत्र-कर्णक-ऊरुमूत्र-नीची-मुष्टि बन्ध-प्रकीर्णक-पादांगद-हंसक भूपुर क्षुद्रगण्टिका-मुख पट्ट—ये परम सुशोभन अलङ्कार कहे गये हैं। ये कुल चालीस होते हैं जो लोक वेद में सौख्य के प्रदान करने वाले हैं। ।१७-२२। अलङ्कारों के प्रदान करने से चारों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) वर्गों का प्रसाधन होता है। इनका पूजन करके ही इष्ट की सिद्धि के लिए समर्पण करना चाहिए ।२३। विचक्षण पुरुष को उनके दैवत का उच्चारण करके ही पूजन करना चाहिए। अथवा शिरोगत सौवर्णों को सर्वदा समर्पित करना चाहिए ।२४।

चूडारत्नादिकानीह भूषणानि तु भैरव ।
ग्रैवेयकादिहसान्त सौवर्णं राजतं च वा ॥२५

निवेदयेत् तु देवेंभ्यो नान्यत् तैजससम्भवम् ।
रीतिरंगादि संजातं पात्रोपकरणादिकम् ॥२६

दद्यादायुसमर्ज तु भूषण कदाचन ।
घटा चामरकुम्भादिपात्रोपकरणादिकम् ॥२७

तद्भूषणान्तरे दद्यादस्मात् तद्रूपभूषणम् ।
सर्वेत्र ताम्रमयं दद्याद् यत् किंचिद् भूषण दिकम् ॥२८

सर्वेत्र स्वर्णवत् ताम्रर्घ्येपात्र ततोऽधिकम् ।
पूजार्घ्यपात्रनैवेद्याधारपात्र च पानकम् ॥२९

औदुम्बरं सदा विष्णोः प्रीयिदं तोषदं तथा ।
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा ॥३०

सर्वप्रोतिकरं ताम्रं तस्मात् ताम्रं प्रयोजयेत् ।
स्वोपयोगे नरः कुर्याद् देवानामपि भैरव ॥३१

ग्रीवोर्ध्वदेशे रौप्य तु न कदाचिच्च भूषणम ।
प्रावारः पानपात्रं चा गण्डको गृहमेव च ॥३२

हे भैरव ! चूड़ा रत्न आदि भूषण ग्रैवेयक से आदि लेकर हंस के अन्त तक सब सुवर्ण से निर्मित होवे अथवा रजत (चाँदी) से रचित होने चाहिए ।२५। इन्हीं को देवताओं के लिए समर्पित करना चाहिए और अन्य तेजस अर्थात् धातुओं से विरचितों को निवेदित नहीं करना चाहिए । रीति रंग आदि से निर्मित पात्र और उपकरण आदि ही होने चाहिए ।२६। आम-समर्ज भूषण कभी भी निवेदित नहीं करे । घटा चामर कुम्भ आदि पात्र तया उपकरण आदि होते हैं ।२७। इन भूषणों की बीच में इससे उपभूषण देवे । सब ताम्रमय जो कुछ भी भूषण आदि है निवेदित करे ।२८। सर्वत्र ताम्र स्वर्ण की ही तरह से देवे और अर्घ्य पात्र में अधिक देना चाहिए । पूजा का अर्घ्य पात्रनैवेद्य का आधार पात्र—पालक है ।२९। भगवान् विष्णु के लिए सदा उदुम्बर (गूलर वृक्ष) से निर्मित प्रीति तथा सन्तोष देने वाले होते हैं । ताम्र पात्र में देवगण प्रसन्न हुआ करते हैं क्योंकि ताम्र में देव सदा स्थित रहा करते हैं ।३०। ताम्र सबके लिए प्रीति का करने वाला हुआ करता है अतएव ताम्र का प्रयोग करना चाहिए भैरव ! अपने उपयोग में

भी ताम्र का ही प्रयोग करे और देवगणों के भी उपयोग में इसका प्रयोग करना चाहिए ।३१। ग्रीवा के ऊपर के भाग में कभी भी रौप्य (चाँदी का) भूषण का प्रयोग न करे । अब उपभूषण बताये जाते हैं—प्रावार-दान पात्र-गण्डक और गृह है ।३२।

पर्यङ्कादि यदन्तच्च सर्व तदुपभूषणम् ।
अयोमयमृते कांस्यमृते यद्भूषणं भवेत् ।।३३
स्वर्णरोप्यस्य चाभावे त्वधः काये नियोजयेत् ।
एतेषां भूषणादीनां तत् दातुं शक्यते नरैः ।।३४
तत् तद् दद्यात् सम्भवे तु सर्वनेव प्रदापयेत् ।
चतुर्वर्गप्रदं त्वित्थं भूपणं सर्वसौख्यदम् ।।३५
तुष्टिपुष्टिप्रीतिकरं यथाशक्तीष्टये सृजेत् ।
इदं वा भूषणं प्रोक्तं सर्वदेवस्य तुष्टिदम् ।।३६
गन्यं च सम्यक् शृणुतं पुत्रौ वेतालबैरवौ ।
चूर्णीकृतो वा घृष्टौ वा दाहाकर्षित एव वा ।।३७
रस सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोदभव एव वा ।
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायकः ।।३८
गन्धचूर्णं गन्धपत्रं चूर्णं सुमनसस्तथा ।
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि तु ।।३९
तानि गन्धवहानिः स्युः सगन्धः प्रथम स्मृतः ।
घृष्टो मलयजो गन्धः सचूर्णीकृतमेरुणा ।।४०

पर्य्यङ्क आदि जो और दूसरे हैं वे सब उपभूषण हैं। जो सौम्य परिपूर्ण के बिना और काँसे के बिना भूषण होता है वह सुवर्ण और रौप्य के अभाव में शरीर में नीचे नियोजित करना चाहिए। इन भूषण आदि में जो नरों के द्वारा दिया जा सकता है, वही सम्भव होने पर सब ही देना चाहिए। इस प्रकार से भूषण चतुरवर्ग का दाता और सब सौख्य का प्रदान करने वाला हुआ करता है ।३४-३५। अपनी शक्ति के ही अनुसार तुष्टि और पुष्टि के करने वाला यह इष्ट के लिए सृजन करे। अथवा यह सभी देवों की तुष्टि का देने वाला भूषण कहा गया है ।३६। हे पुत्रों ! हे वेताल और

भैरव ! अब भली-भाँति गन्ध का श्रवण कीजिये । यह गन्ध पाँच प्रकार का होता है जो देवों की प्रीति को प्रदान करने वाला है ।चूर्णी कृत—घृष्ट अर्थात् घिसा हुआ–दाह को आकर्षित करने वाला–सम्मर्दन से समुत्पन्न रस अथवा प्राणी के अंग से उद्‌गमन ये ही पाँच भेद हैं ।३७-३८। गन्ध का चूर्ण–गन्ध पत्र–पुष्पों का चूर्ण–प्रशस्त गन्ध से युक्तों के पत्रों का चूर्ण जो हैं वे सब गन्ध बह होते हैं । वह प्रथम गन्ध कहा गया है । घृष्ट मलय से समुत्पन्न गन्ध है जो मेरु के द्वारा चूर्णीकृत है ।३९-४०।

अगुरुप्रभृतिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते ।
गन्धो घुष्ट्वामघृष्टोऽय द्वितीयः परिकीर्तितः ।।४१
देवदेवागुरुपद्‌गन्धराशान्त चन्दनाः ।
प्रियादीनां च यो दग्ध्वा गृह्यते दाहजो रसः ।।४२
सदाहारकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः ।
सुगन्धकरवीबिल्वगन्धानि तिलकं तथा ।।४३
प्रभृतीनां रसो योऽसो निष्पीड्य परिगृह्यते ।
समम्मर्दोद्‌भवो गन्धः सम्मर्दज इतीष्यते ।।४४
मृगनाभिसमुद्‌भूतस्तत्कोषोद्‌भव एव वा ।
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तो मोददः स्वर्गवासिनाम् ।।४५
कर्पूरगन्धसाराद्यः क्षोदे घृष्टे च संस्थिताः ।
चन्द्रभागादयश्चापि रसे पङ्के च संगताः ।।४६
गन्धसारं सवंरसं गन्धादौ च प्रयुज्यते ।
मृगनाभिभवेद् घृष्टचूर्णोऽप्यन्यस्य योगतः ।।४७
एवं सर्व तु सर्वत्र गन्धो भवति पञ्चधा ।
घृष्टादिभावादन्योन्यं गन्धः प्रीतिकर परः ।।४८

अगुरु प्रभृति भी गन्ध है जिसका पंक प्रदान किया जाया करता है । घिस कर भी अघृष्ट गन्धं द्वितीय कहा गया है ।४१। देव दारु—अगुरु-पदम-ब्रह्मा साल शारान्त चन्दन प्रियादि का जो दग्ध करके ग्रहण किया जाता है वह दाह से समुत्पन्न रस है ।४२। दाह के साथ आकर्षित गन्ध तीसरा

कहा जाता है। सुगन्ध—करवी—विल्व गन्धी—तिलक प्रभृति का जो रस है वह निपीड़न करके ही परिग्रहीत किया जाया करता है। वही सम्मर्द से उत्पन्न गन्ध सम्मर्द से—इस काम से अभीष्ट हुआ करता है।४३-४४। मृग की नाभि से समुत्पन्न—उसके कोष उद्भुत गन्ध प्राणी के अंग से जायमान कहा गया है जो स्वर्ण के निवासियों का भी मोह देने वाला है।४५। कर्पूर गन्ध साराद्य क्षोद के धृष्टि होने पर सस्थित होते हैं। चन्द्र भाग आदि भी रस में और पंक में संगत हैं।४६। गन्ध सार सर्व रस और गन्धादि में प्रयुक्त किया जाता है। मृग नाभि और धृष्ट, चूर्ण भी अन्य के योग से होता है।४७। इस रीति से सभी जगह पर गन्ध पाँच प्रकार का होता है धृष्ट आदि भाव से परस्पर में पर गन्ध प्रीति के करने वाला होता है।४८।

गन्धस्य विस्तरो भेदः प्रोक्तः कालीयकादयः।
सर्वः पञ्चविधेष्वेव प्रविष्टो भवति क्षणात् ॥४९
गन्धो मलयजो यस्तु दैवे पित्र्ये च सम्मतः।
तस्य पंको रसो वापि चूर्णो वा विष्णुतुष्टिदः ॥५०
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ददयान्मलयजं सदा ॥५१
कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोदवैः।
वैष्णवीप्रीतितो गन्धः कामाख्वायाश्च भैरव ॥५२
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः।
त्रिपुराप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्याश्चा शक्यते ॥५३
दैवतोददेशपूर्वेण गन्धं सम्पूज्य साधकः।
दैवायेष्टाय वितरेत् सर्वसिद्धिप्रदं सदा ॥५४
गन्धेन लभते कामान् गन्धो धर्मप्रदः सदा।
अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः ॥५५
अय वां कथितो गन्धः पुत्रौ वेतालभैरवी।
पुष्पाणि देव्या वैष्णव्याः प्रियाणि शृण सम्प्रति ॥५६

गन्ध का विस्तार और भेद कह दिया गया है कालीयकादि सब पाँच भेदों में ही क्षण भर में प्रविष्ट होता है।४९। जो मलयज गन्ध है वह दैव

कार्य और पितृगण के कार्य में समस्त होता है । उसका पङ्करस अथवा चूर्ण भी भगवान् विष्णु को तुष्टि प्रदान करने वाला होता है ।५०। समस्त गन्धों में मलय से समुत्पन्न गन्ध परम प्रशस्त होता है । इस कारण सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए ।५१। हे भैरव ! कर्पूर के सहित कृष्ण अगुरु मलयोद्भूत के साथ वैष्णवी प्रीति का देने वाला है और यह कामाख्या को भी प्रीति प्रदान होता है ।५२। कुंकुम अगुरु—कस्तूरी—चन्द्रभाग सब समान रूप में होवे । इनका गन्ध त्रिपुरा देवी की प्रीति का देने वाला होता है तथा यह गन्ध चण्डी देवी के लिए भी प्रशस्त माना जाता है ।५३। साधक को चाहिए कि देवता के उद्देश्य के पूर्व में गन्ध का सम्पूजन करे फिर अपने इष्टदेव के लिए उसका वितरण करे तो यह सदा समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाला हुआ करता है ।५४। गन्ध के द्वारा मनुष्य अपनी कामनाओं का लाभ किया करता है और गन्ध सदा ही धर्म के देने वाला होता है । गन्ध अर्थों का भी साधन हुआ करता है और गन्ध में मोक्ष भी प्रतिष्ठित है ।५५। हे पुत्रों वेताल औह भैरव ! यह गन्ध आप दोनों को बता दिया गया है । अब वैष्णवीदेवी के परम प्रिय जो पुष्प है उनका विषय में श्रवण कीजिये ।५६।

बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्टकैः ।
करवीरार्कपुष्पैश्चा शाल्मलैश्चापराजितैः ।।५७
दमनैः सिन्धुवारैश्च सुरभी कुरुवकैस्तथा ।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः ।।५८
मञ्जरीभिः कुशानां च विल्वपत्रैः सुशोभनैः ।
पूजयेद वैष्णवीं देवीं कामाख्यां त्रिपुरां तथा ।।५९
अन्याश्च या शिवप्रीत्यै जायन्ते पुष्पजातयः ।
ता इमाः शृणु कथ्यते मया वेतालभैरव ।।६०
मालती मल्लिका जाती यूथिता माधवी तथा ।
पाटला करवीरश्च जवा तर्कारिको तथा ।।६१
कुब्जकस्तगदूरचैव कर्णिकारोऽथ रोचना ।
चम्पकाम्रातको बाणो वर्वरा मल्लिका तथा ।।६२
अशोको लोध्रतिलकौ-अटरूषशिरीषकौ ।

शमीपुष्पं च द्रोणश्च पद्मोत्पलवकारुणा: ।।६३

श्वेतारुणस्त्रिसध्ये च पलाश: खदिरस्तथा ।

बनमालाऽथ सेवन्ती कुमुदोऽथ कदम्बक: ।।६४

वैष्णवी देवी—कामाख्यादेवी तथा त्रिपुरा देवी का अर्चन निम्नाङ्कित पुष्पों द्वारा करना चाहिए । बकुल, मन्दार, कुन्द, कुरुण्टक, करवीर, अर्क शालमल, अहराजिरू, दमन, सिन्धुवार, सुरभी कुरुवक, ब्रह्मावृक्ष की लता कोमल दूर्वा के अंकुर, कुशाओं की मञ्जरी—सुशोभब विल्व पत्र—इनसे पूजन करे ।५७-५९। और अन्य जो भगवान शिव की प्रीति के लिए पुष्पों की जातियाँ होती हैं । वैताल भैरव उनका भी अब आप श्रवण कीजिए जो मेरे द्वारा अभी कहीं जा रही है ।६०। मल्लिका, मालती, जाती यूथिका माधवी पाटला, करवीर, जवा, तार्परिका, कुब्जक, नगर, कर्णिकार, रोचना, चम्पक, आम्रतक, वाण, वर्बरामल्लिका—अशोक लोध्र, तिलक, अष्टरूप, शिरीष, शमी द्रोण, पद्म, उत्पल, बकारुण, श्वेतारुण, बिसन्ध्य, पलाश, खदिर बनमाला सेवन्ती, कुमुद, कदम्ब ।६१-६५।

चक्रं कोकनदं चैव तण्डिलो गिरिकर्णिका ।

नागकेशरपुन्नागौ केतक्यञ्जलिवा तथा ।।६५

दौहृदा बीजपूरश्च नमेरु शाल एव च ।

त्र पषी चण्डविल्वश्च झिण्टी पंचविधास्तथा ।।६६

एवमाद्युक्तकुसुमै: पूजयेद् वरदां शिवाम् ।

अपामार्गस्य पत्रं तु ततो भृङ्गारपत्रकम् ।।६७

ततोऽपि गन्धिनीपत्रं बलाहकमत: परम् ।

तस्मात् खदिरपत्रं तु वञ्जुलस्तवक स्तथा ।।६८

आम्रं तुं बकगुच्छ तु जम्बुपत्रं मत: परम् ।

वीजपूरस्यं पत्रं तु ततोऽपि कुशपवम् ।।६९

दूर्वाकुरं तत: प्रोक्तं शमीपत्रमत: परम् ।

पत्रमामलकं तस्मादामलं पत्रमन्तत: ।।७०

सर्वतो विल्वपत्रं तु देव्या: प्रीतिकरं मतम् ।

येष्पं कोकनन्द पदम् जवा बन्धुक एक च ।।७१

पत्रं विल्वस्य सर्वेभ्यो वैष्णवोतुष्टिदं मतम् ।
सर्वेषां पुष्पज तीन रक्त पद्मिहोत्तमम् ।।७२

चक्र, कोकनद, तण्डिल, गिरिकर्णिका, नाग केशर, पुन्नाग, केतकी, अञ्जलिका, दोहदा, बोजपूर—नमेरु, शाल, त्रपुषी, चण्डविल, झिठरी पाँचों प्रकार की एवमादि कथित पुष्पों के द्वारा वरदा शिवा का अर्चन करना चाहिए । अपामार्ग के पत्र भृङ्गार के पत्र, गन्धिनी के पत्र, वलाहक इससे भी पर है । खदिर का पत्र, वंजुलान्त वक, आम्र, कत्रगच्छ इससे, भी पर जम्बु का पत्र, बीजपुर का पत्र, इससे भी पर कुश पुत्र हैं ।६५-६९। इससे भी परदूर्वा का अंकुर कहा गया है । इससे पर शमी का पत्र इससे पर शमी का पत्र इससे पर आमलक पत्र और उससे अन्त में आमल पत्र है । सबसे अधिक प्रीति करने वाला देवी को विल्व पत्र होता है । कोकनद पुष्प, पद्म, जवा बन्धुक-इन सबसे विल्व पत्र वैष्णवी देवी की तुष्टि ने वाला माना गया है सब पुष्पों को जातियों में रक्त पद्म अतीव उत्तम होता है ।७०-७२।

रक्तपद्मंसहस्रेण यो मालां सम्प्रच्छति ।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफलं शृणु ।।७३
सहकल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमांस्ततो राजा क्षितौ भवेत् ।।७४
पुत्रेषु विल्वपत्रं तु देवीप्रीतिकरं मतम् ।
तत्सहस्रकृता माला पूर्ववद् फलदा भवेद् ।।७५
किंचात्र वहुनोक्तेत सामान्येनदमुच्यते ।
उक्तानुक्तैस्तथापुष्पैर्जलजैः स्थलसम्भवैः ।।७६
पत्रैः सर्वैयथालाभं सर्वौषधिचणरपि ।
वनजैः सर्वपुष्पैश्च पत्ररपि शिवां यजेत् ।।७७
पूजयेत् परमेशानीं पुष्पाभावेऽपि पत्रकैः ।
पत्राणामप्यभाव तु तृणगुल्मौपधादिभिः ।।७८
औषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत् ।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि तदभावे तु सर्षपैः ।।७९

सितैस्तस्याप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाचरेत् ।

वाजिदन्तकपत्रैश्च पुष्पौघैरपि पूजयेत् ।।८०

एक सहस्र पदमें से माला की रचना करके जो महादेवी को समर्पित किया करता है और भक्ति की भावना से युक्त रहा करता है उसको जो पुण्य फल हुआ करता है उसका है उसको सुनिये ।७३। एक सहस्र करोड़ और सौ करोड़ कल्पों तक वह मानव मेरे पुत्र में स्थिति रहकर फिर वह श्रीमान् भूमण्डल में राजा हुआ करता है ।७४। सभी पत्रों में विल्व पत्र देवी की परमाधिक प्रीति करने वाला माना गया है । उस बिल्व पत्रों की एक सहस्र की वनाई हुई माला पूर्व की ही भाँति फल देने वाली हुआ करती है ।७५। इस विषय में बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है । साधारण रूप से मही कहा जाता है कि कहे हुए तथा न कहे हुए पुष्पों से स्थल में समुत्पन्न जल तथा सब पत्रों से जो भी जैसा लाभ होता है वह सर्वौषधियों के समुदाय से भी होता है । सभी वन में समुत्पन्न पुष्पों से और पत्रों के द्वारा भी शिवा का यजन करना चाहिए ।७६-७७। परमेशानी का पूजन पुष्पों के अभाव में पत्रों के द्वारा भी करना चाहिए । यदि पत्रों का भी अभाव हो तो अवसर में तृण गुल्म और औषध आदि के द्वारा यजन करे ।७८। औषधियों के भी अभाव में उनके फलों के द्वारा ही यजन करना चाहिए। अक्षतों से या जलों के द्वारा यजन करे । इनके भी अभाव में सरसों से जो सित हों उनमें पूजन करे । सित्त के भी न प्राप्त होने पर मानसी भक्ति का समाचरण करना चाहिए वाजि दन्तक पत्रों से और पुष्पों की राशि के द्वारा पूजन करे ।७९-८०।

तुलसीकुसुमः पत्रैरर्चयेच्छ्छाविवृद्धये ।

पुरश्चरणकार्येषु विल्वपत्रयुतस्तिलैः ।।८१

साक्षतैः सघृतैर्वापि भिवामुद्दिश्य यत्नतः ।

जुहुयादनल वृद्धं संस्कृत कामवृद्धये ।।८२

संकल्पितः कामसिद्ध्यै संख्यया यः कृतो जपः ।

तदन्ते पूजन यत्तु विहितं क्रियते द्विजैः ।।८३

पुरश्चरणसज्ञं तु कीर्तितं द्विजसत्तमैः ।

तस्मिन् पुराणके पूर्वं पूर्वोक्तैर्विस्तरोदितैः ।।८४

विधानैः पूजयेद् देवीं कामाख्यां वैष्णवीमपि ।
यथासम्भवमेवात्र दद्यात् षोडश साधकः ॥८५
उपाचारांस्तथैवोक्तान् विधिकृत्यान लंघयेत् ।
सम्पूर्ण पूजनं कृत्वा कल्पोक्तं शतधा जपेत् ॥८६
जपान्ते जुहुयादग्नि होमान्ते तु कलित्रयम् ।
विजातीय तु वितरेत्तौयं त्रिककमतः परम् ॥८७
पत्नी स्वयं वा भ्राता वा गुरुर्वा विनियोजयेत् ।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि स्वपुत्रः शिष्य एव वा ॥८८

तुलसी के कुसुमों अर्थात् मञ्जरियों से और तुलसी दलों से श्री की वृद्धि के लिए अर्चन करे । पुरश्चरण के कार्यों में विल्व पत्रों से युक्त तिल-अक्षत अथवा घृत से शिवा का उद्देश्य लेकर यत्नपूर्वक काम की वृद्धि के लिए संस्कार की हुई वृद्ध अग्नि में हवन करना चाहिए ।८१-८२। कामना की वृद्धि के लिए संखया से जो जप सङ्कल्प किया गया है । उसके अन्त में पूजन किया है वह द्विजों के द्वारा करना चाहिए ।८३। श्रेष्ठ द्विजों के नाम से कीर्तित किया है उसमें पूर्व में पुराण पूर्वोक्त और विस्तार से वर्णित विधानों के द्वारा कामाख्या और वैष्णवी देवी का पूजन करे । यहाँ तक भी सम्भव हो साधक को यहाँ पर सोलह उपचार समहित करने ही चाहिए ।८४-८५। उसी भाँति षोडश पूर्वोक्त उपचारों का और विधान के कृत्यों का लँघन नहीं करना चाहिए । सम्पूर्ण पूजन करके कल्पोक्त का सौ बार जप करे ।८६। जाप के अन्त में अग्नि में होम करे और होम के अन्त में तीन जाति की बलियों का वितरण करे तथा इसके उपरान्त नृत्य गीत करना चाहिए ।८७। पानी स्वयं अथवा भाई या गुरु-अपना पुत्र अथवा शिष्य नैवेद्य आदि का विनियोजन करना चाहिए ।८८।

यज्ञावसाने दद्यात् गुरुवे दक्षिणा शुभाम् ।
चामीकरं तिलान् नाञ्च तदशक्तौ तु चेलकम् ॥९८
अष्टम्यां शुक्लपक्षस्य ब्रह्माचारी जितेन्द्रियः ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां महादेव्याः पुरश्चरेत् ॥९०
आदद्याद् गुरुवक्त्रात् तु विधिना विस्तारेण तु ।

कल्पोदितेन सम्पज्य तिथिष्वेतासु भैरव ।।६१

सम्पूर्णपूजां नो कृत्वा न दद्यान्मन्त्रमीप्सितम् ।
न पुरश्चरणं वापि कुर्यात् कृत्वाऽवसीदति ।।६२

नित्यपूजा सा तु पुनः सम्पूर्णा यदि शक्यते ।
कलपोदितं पूजयितुं तथा कुर्यादतन्द्रितः ।।६३

न चेद् विस्तरशः कर्तुं देव्यां तु भैरव ।
कतपोक्तां वाऽन्यदेवस्य तत्रायं विधिरुच्यते ।।६४

मार्जनाद्यैस्तु संस्कृत्य स्थण्डिले मण्डलं लिखेत् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिं तु कत्वा दाहं प्लवं तथा ।।६५

ध्यायदात्मानतथ च संस्कृताङ्गस्वरूपतः ।
अंगुष्टाद्यस्त्रपर्यन्तं द्वादशांगस्य शुद्धये ।।६६

यज्ञ की समाप्ति होने पर श्री गुरुदेव को शुभ दक्षिणा देनी चाहिए। सुवर्ण—तिल—गौऐं दक्षिणा में देवे। और इनके देने की शक्ति न होवे तो केवल चेलक ही निवेदित करे।८६। मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तथि में ब्रह्मचर्य रखने वाला तथा इन्द्रियों को जीत लेने वाला रहे और नवमी में अथवा चतुर्दशी में महादेवी का पुरश्चरण करे।६०। हे भैरव ! श्री गुरुदेव के मुख से आदान करना चाहिए। जो भी विधि और विस्तार कल्प में कहा गया गया हो उससे इन उक्त तिथियों में भली-भाँति पूजन करे। सम्पूर्ण पूजा को न करके ईप्सित मन्त्र को नहीं देना चाहिए। अथवा पुरश्चरण भी नहीं करे। यदि ऐसा करता है तो अवसाद प्राप्त किया करता है तो अवसाद प्राप्त किया करता है।६१-६२। वह नित्य पूजा है यदि की जा सकती है तो सम्पूर्ण पूजा करे उस समय में अतन्द्रित होकर ही कल्प में वर्थित पूजन करना चाहिए।६३। हे भैरव ! यदि विस्तार से देवी की पूजा करना न होवे तो कल्प में कथित अन्य देव की पूजा करे। वहाँ पर यह ही विधि कही जाती है।६४। मार्जन आदि के द्वारा भूमिका संस्कार करके स्थण्डिल में मण्डल लिखना चाहिए। पात्र की प्रतिपत्ति करके तथा दाह सब करे।६५। और इसके अन्तर आतमा का ध्यान करे। अङ्गों की शुद्धि के लिए करे।६६।

अर्घ्यपात्रेऽष्टा जप्त्वा उपचारान् प्रसेचयेत् ।
आधारशक्तिप्रमुख मूलवर्णान् प्रयुज्य च ॥९७
हृदिस्थां देवतां ध्यात्वाबर्हिःकृत्य च वायुना ।
आरोप्य मण्डले दद्यातुपचारान् यथाविधि ॥९८
पूजयित्वा षडङ्गानि तथाष्टौ दलदेवताः ।
पुष्पाञ्जलित्रय दत्त्वा जप्त्वा प्रणम्य च ॥९९
मुद्रामग्रे प्रदर्श्याथ ततः पश्चाद् विसर्जयेत् ।
सर्वेषामेव देवानामेष एव विधिः स्मृतः ॥१००
सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।
उपचारांस्तथा दातुं पञ्चचैतान वितरेत् तदा ॥१०१
गन्ध पुष्पं च दीप च दीपं नैवेद्यमेव च ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥१०२
संक्षेपपजा कथिता तथा वस्त्रादिक पुनः ।
पुरश्चरणकृत्ये च प्रदीप शृणु भैरव ॥१०३
दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः ।
चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद् दीपं यजेच्छ्रियम् ॥१०४

अर्घ्य पात्र में आठ बार जप कर उपचारों का प्रसेचन करना चाहिए। आधार शक्ति के प्रमुख मूल वर्गों का प्रयोग करे और हृदय में संस्थित देवता का ध्यान करके और वायु के द्वारा बाहिर करके मण्डल में आरोण करके विधि के अनुसार उपचारों को देना चाहिए।९७-९८। छः अङ्गों का पूजन करके उसी भाँति दल देवताओं का यजन करे। फिर तीन पुष्पाञ्जलियों को देकर—जप करके—स्तवन करके ओर प्रणाम करे।९९। देवता के सामने मुद्रा को प्रदर्शित करके पीछे विसर्जन करना चाहिए। सभी देवताओं की यह ही विधि कही गयी है।१००। यदि कल्प में कही हुई पूजा यदि भली-भाँति नहीं की जा सकती है तो उपचारों को उस भाँति देने के लिये उस समय में इन पाँचों को सदा वितरित करे।१०१। गन्ध—पुष्प—धूप—दीप और नैवेद्य—ये पाँच हैं। अभाव में पुष्प और दीप के द्वारा करे इनके भी अभाव में भक्ति की भावना से ही करना चाहिए। यह संक्षेप-पूजा

कह दी गयो है तथा फिर वस्त्रादिक भी बता दिये गये हे। भैरव ! पुरश्चरण के कृत्य में प्रदोप के विषय में आप श्रवण कीजिए।१०२-१०३। दीप के द्वारा लोकों के ऊपर जब प्राप्त कर लेता है और यह द्वीप तेज मय बताया गया है। यह द्वीप चरणों वर्णों के प्रदान करने वाला हुआ करता है इस कारण से दीपों के द्वारा श्री के ऊपर जय प्राप्त करना चाहिये।१०४।

सततं पुष्पदीपाभ्यां पूजयेद् यस्तु देवताम् ।
ताभ्यामेव चतुर्वर्गः कथितो नात्र संशयः ॥१०५
पुष्पैर्देवाः प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च संस्थिताः ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्परसाः स्मृताः ॥१०६
किंचाति वहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिर्मतल्लिका ।
परं ज्योतिः पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति ॥१०७
त्रिवर्गसाधन पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम् ।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये केशवः ॥१०८
पुष्पाग्रैः तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले ।
तस्माद् पुष्पैर्यजेत् देवोन्नित्यं भक्तियुतो नरः ॥१०९
उच्चारितं नाममात्रं जायते सर्वभूतये ।
घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ॥११०
सार्षपफलनिर्यासजातो वा राजिकोद्भवः ।
दधिजश्चान्नजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्तिता ॥१११
पद्मसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवाऽथवा ।
णणजा वादरी वापि भलकोषोद्थवा तथा ॥११२

जो पुरुष निरन्तर ही पुष्पों और दीपों के द्वारा देवता का अर्चन किया करता है। इन दोनों ही से चारों वर्गों की प्राप्ति कही गयी है—इससे लेश मात्र भी संशय नहीं है।१०५। पुष्पों से देवगण परम प्रसन्न हुआ करते हैं और पुष्पों का ही रस कहे गये हैं।१०६। अत्यधिक कहने से क्या लाभ है। पुष्पों के विषय में कथन मतल्लिका है। पुष्पों में रहने वाली परम ज्योति है अतएव पुष्प से ही प्रसन्न होती है।१०७। तीन वर्गों का अर्थात्

धर्म—अर्थ और काम का सा धन है। यह पुष्प तुष्टि—पुष्टि—श्री और मोक्ष के प्रदान करने वाला है। पुष्प के मूल में ब्रह्माजी रहा करते हैं और पुष्प के मध्य में केशव का निवास है।१०८। पुष्प के अग्रभाग में महादेवजी विराजमान रहा करते हैं और सभी देवगण दल में संस्थित रहते हैं। इस कारण से पुष्पों के द्वारा देवों का यजन करना चाहिये और भक्ति की भावना से संयुत होकर नित्य ही अर्चन करे।१०९। नाम मात्र का उच्चारण करना सब विभूति लिये होता है। अब दीपक के भेदों के विषय में बतलाया जाता है—घृत का दीप, जो सर्व प्रथम होता है—तिलों के तैल से बनाया हुआ—सरसों के तेल का दीपक—पत्तों के निर्यात से बनाया हुआ दीप—रानिक अर्थात् राई के तेल से तैयार किया हुआ दीपक—दधि से बनाया हुआ और अन्न से किया दीपक—ये सात प्रकार के दीप कहे गये हैं।११०-१११। दीप में वर्त्तिकारी पाँच प्रकार की होती है—पद्म के सूत्र से बनी हुई—दर्भ ने मध्यस्थ सूत्र से निर्माण की गयी—गण से निर्मित वदरी-फल कोप से उद्भूत हुई वर्त्तिका।११२।

वर्तिका दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधाः स्मृताः।
तैजस दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम्॥११३
तृणध्वजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते।
दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्यैस्तु भैरव॥११४
वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन।
सर्वसहा बसुमती सहते न त्विद द्वयम्॥११५
अकार्यपादघात च दीपतापं तथैव च।
तस्माद् यथा तु पृथिवी तापं नाप्नोति वै तथा॥११६
दीपं दद्यान्महादेव्यै अन्येभ्योऽपि च भैरव।
कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः॥११७
स ताम्रतापं नरकं प्राप्नोत्येव शत समाः।
सुवृत्तवर्तिः सुस्नेहः पात्रभग्लः सुदर्शनः॥११८
सुच्छ्राये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात् प्रयत्नतः।
लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरंगुलात्॥११९

न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु से श्रुतः ।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्जितः ॥१२०

दीपक के कृत्यों में वर्त्तिका सदा ही पाँच तरह की बतायी गई है। किसी धातु से निर्मित जो भी उत्तम धातु होवे—काष्ठ से बना हुआ—लोहे का—मृत्तिका से निर्मित—नारियल से बनाया हुआ अथवा तृण ध्वज से उद्भूत दीपक का पात्र प्रशस्त होता है। हे भैरव ! दीप वृक्ष अर्थात् दीवट तैजस अर्थात् उत्तम धातुओं का ही बनानी चाहिये ।११३-११४। दीवट पर है दीप रखना चाहिए और भूमि पर दीपक कभी भी नहीं रखना चाहिये। यह भूमि सभी को सहन करने वाली होती है किन्तु दो कामों को यह सहन नहीं किया करती है–एक तो बिना ही किसी कार्य के पादों का घात करना और दूसरा दीपक का ताप यह नहीं सहा करता है। इस कारण जिस तरह से भी यह पृथ्वी ताप प्राप्त न करे वैसे ही करना चाहिए अर्थात् दीपक को भूमि पर कभी नहीं रखना चाहिए।११५-११६। हे भैरव ! महादेवों के लिये तथा अन्य देवों के लिए भी दीप समर्पित करे जो मानव पृथ्वी को ताप देता हुआ दीपक का उत्सृजन किया करता है वह मनुष्य ताम्र ताप नामक नरक को सौ वर्ष तक निश्चित रूप से प्राप्त किया करता ही है—इसमें कुछ संशय नहीं है। सुवृत्त वत्ती वाला—सुन्दर स्नेह से युक्त अर्थात् घृतादि से संयुत—पात्र भग्न—देखने में भी इच्छा दीपक होना चाहिए ।११७-११८। सुन्दर ऊँचाई से उक्त वृक्ष की कोटि पर ही प्रयत्न पूर्वक दीपक रखना उचित है और उसका ही देवता के लिए उत्सृजन करे। चार अंगुल से जिस दीप का ताप प्राप्त किया जाया करता है वह दीपक—इस नाम से ख्यात नहीं होता है। वह तो वह्नि का एक समूह ही है—ऐसा सुना गया है। दीपक नेत्रों को आह्लाद करने वाला—सुन्दर लौ वाला और दूरी से नाम से रहित ही होनी चाहिए ।११९-१२०।

सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।
दक्षिणावर्तवर्तिस्तु प्रदीपः श्रीविवृद्धये ॥१२१
दीपवृक्षस्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्रपूरिते ।
दक्षिणावर्तवयर्त्यां तु चारुदीप्तः प्रतीपकः ॥१२२
उत्तमः प्रोच्यते पुत्र सर्वतुष्टिप्रदायकः ।
वृक्षेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ॥१२३

विहीनः पात्रतैलाभ्यामधर्मः परिकीर्तितः ।
शाणं वा दारव वस्त्र जीर्णं मलिनमेव वा ।।१२४
उपयुक्तं च नादद्याद् वर्तिकार्थं तु साधकः ।
उपादद्यान्नूत्नमेव सततं श्रीविवृद्धये ।।१२५
कोषजं रोमजं वतिकार्थं न चाददेत् ।
न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपे स्नेहघृतादिकान् ।।१२६
कृत्वा मिश्रीकृत्य स्नेह तामिस्रं नरकं व्रजेत् ।
वसामज्जास्थिनिर्यासैः स्नेहैः प्राण्यसङ्गसम्भवैः ।।१२७
प्रदीपं नैव कुर्यात् त कृत्वा पङ्केऽवसीदति ।
अस्थिपात्रेऽथ वा पच्येद् दुर्गन्धास्थिपवासिनी ।।१२८

सुन्दर शिखा से युक्त—शब्द से रहित—बिना धूँआ वाला—अत्यधिक छोटा भी न होवे और जिसमें वत्ती दक्षिणावर्त्त वाली हो ऐसा प्रदीप ही श्री की वृद्धि के किये हुआ करता है ।१२१। दीपक का पात्र दीवट पर स्थित होवे ओर शुद्ध घृतादि से भरा हुआ हो तथा जिनकी वर्त्तिका दक्षिण की ओर रहने वाली हो और सुन्दर दीप्ति से समन्वित हो ऐसा ही दीप होना चाहिये ।११२। हे पुत्र ! ऐसा ही दीपक उत्तम कहा जाया करता है जो सबकी तुष्टि के देने वाला होवे । जो दीपक दीवट से रहित होता है वह मध्यम कहा जाता है ।१२३। जो पात्र और तेल से होता है वह दीपक अधम ही कहा गया है । शण अथवा काष्ठ निर्मित—जीर्ण तथा मलिन वस्त्र का साधक उपयुक्त ही देवे और अनुपम युक्त वत्ती के कभी भी ग्रहण न करे । निरन्तर नूतन ही वत्ती के लिए ग्रहण करे। इसी से श्रीवृद्धि होती है ।१२४-१२५। कोष से उत्पन्न रोम से उद्‌भुत वस्त्र को वत्ती के लिए कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए और दीपक में स्नेह घृतादि का मिश्रण करके कभी भी न देवे ।१२६। जो घृतादिक का दीपक में मिश्रण करके रखता है वह तामिस नरक में जाता है । वसा—मज्जा—अस्थियों का निर्यास के स्नेहों (चिकनाई) से तथा किसी भी प्राणी के अङ्ग से समुत्पन्न स्नेह से दीपक की रचना कभी भी नहीं करनी चाहिये । यदि ऐसा कोई भी मनुष्य करता है तो वह पङ्कमें अवसाद प्राप्त किया करता है । दुर्गन्ध अस्थि पवासी अस्थियों के पात्र में कभी पचन नहीं करे ।१२७-१२८।

नैव दीपः प्रदातव्यो विवुधैः श्रीविवृद्धये ।
नैव निर्वापयेद्दोपं कदाचिदपि यत्नतः ॥१२९
सततं लक्षणोपेतं देवार्थमुपकल्पितम् ।
न हरेज्ज्ञानता दीपं तथा लोभादिनां नरः ॥१३०
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
उद्दीप्तदाप्तप्रतिमः काष्ठकाण्डसमुद्भवः ॥१३१
विवेलध्मोद्भवमेवाथ दीपालाभे निवेदयेत् ।
उल्मुकं नैव दीपार्थे कदाचिदपि चोत्सृजेत् ॥१३२
प्रसन्नार्थं तु तं दद्यादुपचाराद् बहिष्कृतम् ।
एवं वां कथितो दीपो धूपं च श्रृणुतं सुतौ ॥१३३
नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धाऽतिमनोहरः ।
दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य च ॥१३४
परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते ।
स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिदायकः ॥१३५
राशाकृतैर्न चैकत्र तैर्द्रव्यैः परिधूपयेत् ।
तुषाग्निवत् लां कृत्वा न तत् फलमवाप्नुयात् ॥१३६

ऐसा दीपक विवुध पुरुषों के द्वारा श्री की विशेष वृद्धि के लिए कभी भी नहीं देना चाहिये । दीपक को यत्नपूर्वक कदाचित् भी निर्वापित नहीं करे ।१२९। निरन्तर ही देवों के लिए सुन्दर लक्षणों से युक्त ही दीपक उपकल्पित करना चाहिए । ज्ञान पूर्वक तथा लोभ आदि से मनुष्य को दीपक का हरण नहीं करना चाहिए ।१३०। जो दीपक का हरण किया करता है वह अन्धा होता है और जो दीपक को बुझा दिया करता हैं वह काना हुआ करता है उदीप्त दीप्ति की प्रतिमा के युक्त काष्ठ के काण्ड से समुद्भव अथवा विल्व के मध्य से उत्पन्न का ही दीपक के अभाव में विवेदित करना चाहिए । दीपक के लिए उल्मुक का कभी भी उत्सृजन न ।१३१-१३२। प्रसन्नता के ही लिए उपचार से बहिष्कृत उसको देवे । हे पुत्री ! इस प्रकार से दीपक के विषय में सब कुछ कह दिया गया है । अब आप लोग धूप के विषय में श्रवण करिए ।१३३। धूप भी ऐसी हो होनी चाहिए जो नासिका

के रन्ध्रों (छिद्रों) के लिए सुख प्रदान करने वाली होवे और मन का हरण करने वाला सुन्दर गन्ध से युक्त होवे दाह किये गये काष्ठ अथवा पराग का जिसका धूप ताप रहित होवे वह धूप देवगणों की तुष्टि के देने वाला होता है—ऐसा जान लेना चाहिए ।१३४-१३५। उन द्रव्यों को सबको एक समूह में एकत्रित करके परिधूपित नहीं करे । तुषाग्नि से वर्त्तुल करके धूप न देवे । ऐसा करने से धूप देने का जो भी कुछ फल प्राप्त हुआ करता है वह कभी भी प्राप्त नहीं होता है । जब उसका कोई भी फल ही नहीं है तो वैसा करें ।१३६।

श्री चन्दनः च सरलः शालः कृष्णागुरुस्तथा ।
उदयः सुरथस्कन्दो रक्तविद्रुम एव च ॥१३७
पीतशालः परिमलोः विर्भदी काशलस्तणा ।
नमरुर्देवदारुश्च विल्वसारोऽथ खादिरः ॥१३८
सन्तानः परिजातश्च हरिचन्दनवल्लभौः ।
वृक्षेषु धूपाः सर्वेतां प्रीतिदाः परिकीर्तिताः ॥१३९
अरालः सह सूत्रेण श्रीवासः पट्टवासकः ।
कर्पूरः श्रीकरश्चैव परागः श्रीहरामलौ ॥१४०
सर्वौषधीव जातीव वराहश्चूर्ण उत्कलः ।
जातीयकोषस्य चूर्णं च गन्धः कस्तूरिका तथा ॥१४१
क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृताः ।
यक्षोधूपो वृक्षधूपः श्रीपिष्टोऽगुरु झर्झरः ॥१४२
पत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलः कण्ठ एव च ।
अन्योन्ययोगा निर्यासा धूपा एते प्रकीर्तितः ॥१४३
एतैर्विधूयेद् देवान् धूमिभिः कृष्णवर्त्मना ।
येषां धूपोद्भवैर्घ्राणैस्तुष्टिं गच्छन्ति जन्तवः ॥१४४

अब यह बताया जाता है किन-किन वृक्षों को धूप के लिए ग्रहण करना चाहिए । श्री चन्दन—सरल शाल तथा कृष्णा गुरु—उदय—सुरथ-स्कन्द—काशल—नमेरु-नेदेव दारु-विल्वसार-खादिर—सन्तान-पारिजात-

हरिचन्दन-वल्लभ-इन वृक्षों की धूप सभी देवों के लिए प्रीति देने वाली पारिकीर्तित की गयी है ।१३७-१३८। सूत्र के साथ अराल—श्री वास—पट्ट वासक—कर्पूर—श्रीकर—पराग—श्रीहर—आमल—सर्वौषधीव—जातीय वराह—चूर्ण—उत्कल—जाती कोष का चूर्ण—गन्ध—कस्तूरिका—क्षोद वृत्त में कही हुई ये धूप उदाहृत हैं । यक्ष धूप—वृक्ष धूप—श्री पिष्ट-अगुरु-झर्झर—हवि वाहा—पिण्ड धूप—रुगोल—दण्ड—अन्योन्य योग—निर्यास—ये धूप कीर्तित किये गये हैं ।१४०-१४३। इन धूपों के द्वारा देवों को धूपित करना चाहिए । जो धूप वाली होवें और कृष्ण वर्त्म से धूपित करे । जिनकी धूपों से उद्भूत घ्राणों के द्वारा जन्तुगण तुष्टि को प्राप्त हुआ करते हैं ।१४४।

निर्यासश्च परागश्च काष्ठं गन्धं तथैव च ।
कृत्रिमश्चेति पञ्चैते धूपाः प्रीतिकराः पराः ।।१४५
न यक्षधूपं वितरेन्माधवाय कदाचन ।
न रक्तं विद्रमं मह्यं सुरथं कद्रिलं तथा ।।१४६
यज्ञधूपः पुत्रिबाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।
कृष्णागुरुः सकर्पूरो महामायाप्रियः स्मृतः ।।१४७
वृकधूपेन वा देवीं महामायां प्रपूजयेत् ।
मदोमज्जासमायुक्तान् न धूपान् विनियोजयेत् ।।१४८
परकीयांस्तथाघ्रातांस्तेऽपि कृत्याशिमर्दितान् ।
पुष्पं धूपं च गन्धं च उपचारांस्तथापरान् ।।१४९
घ्रात्वा निवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् ।
न भूमौ वितरेद् धूपं नासने न घटे तथा ।।१५०
यथातथाधार तं कृत्वा तद् विनिर्वेदयेत् ।
रक्तविद्रुमशालौ च सुरथः सुरलस्तथा ।।१५१
सन्तान को नमरुश्च कालागुरुसमन्वितः ।
जातीकोषाक्षसयुक्तो धूपः कामेश्वरीप्रिय ।।१५२

निर्यास—पराग—काष्ठ—गन्ध और कृत्रिम—ये पाँच धूप परम प्रीति के करने वाले हुआ करते हैं ।१४५। भगवान् माधव प्रभु के लिए किसी

भी समय में यक्ष धूप का वितरण नहीं करना चाहिए। मेरे लिये रक्त विद्रुम तथा सुरथ—कद्रिल का भी वितरण न करे।१४६। यक्ष धूप—पुत्र बाद—पिण्ड धूप—सुगोलक—कृष्णा गुरु—कर्पूर से युक्त-यह महामाया का प्रिय धूप कहा गया है।१४७। अथवा वृक धूप द्वारा महामाया देवी का प्रकृष्ट पूजन करना चाहिए जो धूप मेद और मज्जा से समायुक्त होवें उनका विनियोग कभी भी नहीं करना चाहिए।१४८। परकीय अर्थात् दूसरों के—आघ्रात अर्थात् जिनका घ्राण कर दिया गया होवे—कृत्या से अभिनंदित पुष्प—धूप और गन्ध को तथा दूसरे भी उपचारों को घ्राण करके जो देव-गणों के लिए समर्पित किया करता है वह मनुष्य घोर नरक में प्राप्त हुआ करता। धूप को कभी—आसन पर तथा घट पर वितरण नहीं करना चाहिए।१५०। जैसा-तैसा भी कोई आधार बनाकर ही उसको विनिवेदित करना चाहिए। रक्त विद्रुम—शाल—सुरथ—सुरल—सन्तानक—नमेरु—काला गुरु से समन्वित-जाती से संयुक्त धूप कामेश्वरी को प्रिय हुआ करता है।१५१ १५२।

त्रिपुरायायास्तथैवायं मातृणामपि नित्यशः।
सर्वेषां पीठदेवानां रुद्रादीनां च पुत्रक ।।१५३
एष वां कथितो धूपः शृणु तन्नेत्ररञ्जनम्।
येन तुष्यति कामाख्या त्रिपुरा वैष्णवी तथा ।।१५४
सौवीरं यामुनं तुत्थं तयूरयामुनं तथा।
दुर्विका मेघनीलश्च अञ्जनानि भवन्ति षट् ।।१५५
स्रवद्द्रुमं च सौवीरं यामुनं प्रस्तरं तथा।
मयूरग्रीवकं रत्नं मेघनीलस्तु तौजसम् ।।१५६
घृष्टानि ग्राह्य चैतानि शिलायां तौजसेऽथ वा।
प्रदद्यात् सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ।।१५७
घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना।
यदञ्जनं जायते तु दर्विका परिकीर्तिता ।।१५८
सर्वाभावे तु तद दद्याद देवेभ्यो दाहजाञ्जनम्।
महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ।।१५९

आप्नुवन्ति महातोषं षड्भिरेभिः सदाञ्जनैः।

विधवा नाञ्जनं कुर्यान्महायार्थमुत्तमम् ॥१६०

हे पुत्र ! उसी भाँति यह त्रिपुण्या को तथा नित्य ही मातृकाओं को और समस्त पीठ देवों को और रुद्र आदि को भी प्रिय हुआ करता है ।१५३। धूप हमने आप दोनों को बतला दिया है । अब नेत्रों के रञ्जन के विषय में आप दोनों श्रवण करिये जिसके द्वारा कामाख्या देवी त्रिपुरा देवी तथा वैष्णवी देवी परम प्रसन्न हुआ करती हैं ।१५४। अञ्जन छः प्रकार के हुआ करते हैं उनके नाम ये हैं—सौ वीर, यामुन, तुल्य, मयूरयामुन, द्र्विका, मेघनील, ये छै होते हैं ।१५५। स्रवद्, द्रुम, सौ वीर, यामुन, प्रस्तर, मयूर, ग्रीवक, रत्न, मेघ नील, तैजस ।१५६। ये घिसे हुए ग्राहक करने के योग्य होते हैं । चाहे शिला पर घिसे हुए होवे या किसी उत्तम धातु पर घृष्ट किये गये हों । हे पुत्र ! यह सभी देवों के लिये समर्पित करे और सभी देवियों की भी सेवा में निवेदित करना चाहिए ।१५७। घृत और तैल आदि के योग से ताम्र आदि पर दीपक की अग्नि के द्वारा जो अञ्जन बनाया जाता है वही दर्विका, कहा गया है ।१५८। सबका यदि अभाव हो तो देवियों की सेवा में इस दाह से समुत्पन्न अञ्जन को ही समर्पित करना चाहिए। महामाया देवी—जगत् की धात्री कामाख्या देवी तथा त्रिपुरा देवी इन उपर्युक्त छै प्रकार के अञ्जनों से जब ये निवेदित किये गये हों तो सदा ही महान तोष को प्राप्त हुआ करती है अर्थात् उनको परमाधिक प्रसन्नता इनको हुआ करती है । महामाया के लिये प्रस्तुत इस उत्तम अञ्जन को विधवा नारी को कभी अपने उपयोग में नहीं लेना चाहिए । इसका तात्पर्य यही है कि विधवा नारी के द्वारा यह अञ्जन नहीं बनाना चाहिए ।१६०।

नादत्ते त्वञ्जन देवी वैष्णवी विधवाकृतम् ।

न मृतपात्रे योजयेत् तु साधका नेत्ररञ्जनम् ॥१६१

न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनैः ।

चतुर्वर्गप्रदौ धूपः कामदं नेत्ररञ्जनम् ॥१६२

तस्माद् द्वयमिदं दद्याद् देवेभ्यो भक्तितो नरः ।

नैवेद्यं तु महादेव्याः श्रृण्वैकाग्रमनाः पुनः ॥१६३

वैष्णवी देवी कभी भी विधवा नारी के द्वारा तैयार किया अञ्जन स्वीकार नहीं करती है । साधना करने वाले को चाहिए की मिट्टी के पात्र

में नेत्र अञ्जन यो योजित न करे ।१६१। मिट्टी के पात्र में विहित अंजन को निवेदित करने से पूजा के फल की भी प्राप्ति कभी नहीं हुआ करती है। ऐसा अंजन नहीं देना चाहिए क्योंकि जब इस अंजन की देवी स्वीकार ही नहीं किया करती है तो वह पूजा अधूरी होकर निष्फल हो जाया करती है। धूप चारों वर्गों का प्रदान करने वाला होता है और नेत्र रञ्जन कामनाओं के देने वाला हुआ करता है ।१६२। इस कारण से धूप और नेत्र रंजन इन दोनों का ही देवगणों के लिए भक्ति की भावना मनुष्य को समर्पण करना चाहिये। इस प्रकार से हमने आप दोनों के समक्ष धूप और नेत्र रंजन इन दोनों को बतला दिया है। अब एकाग्र मन वाले होकर महादेवी के लिए जो भी नैवेद्य समर्पित करना चाहिए उसके विषय में श्रवण करिए ।१६३।

—×—

## ।। षोडशोपचार निर्णय ।।

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः ।
दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं मनसापि च दक्षिण ।।१
सकृत् त्रिर्वा वेष्टयेयुर्देव्याः प्रीतिः प्रजायते ।
स च प्रदक्षिणी ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः ।।२
अष्टोत्तरशत यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
स सर्वकाममासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।।३
मनसापि च यो दद्यात् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणाद् यमगृहे नरकाणि न पश्यति ।।४
कायिको वाग्भवश्चैवं मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
नमस्कारः श्रुतस्तज्ज्ञैरुत्तमाधमः मध्यमः ।।५
प्रसार्य पादौ हस्तौ च पतित्वा दण्डवत् क्षितौ ।
जानुभ्यामवनिं गत्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।।६
क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकस्तु सः ।
जानुभ्यां न क्षितिं स्पृष्ट्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।।७

श्री भगवान् ने कहा—दक्षिण हाथ को प्रसारित करके फिर स्वयं नग्न शिर वाला होवे और दाहिने पार्श्व को दर्शित करता हुआ मन से भी दक्षिण होवे ।१। एक बार अथवा तीन बार वेष्टित करें। इसके करने से देवी को प्रीति हुआ करती है। और उसको पदक्षिण। जानना चाहिए। यह सभी देवों की समष्टि के लिए तुष्टि देने वाला होता है।२। और एक सौ आठ बार देवी की प्रदक्षिणा किया करता है वह पुरुष अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करके पीछे अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति का लाभ किया करता है।३। जो मन से भी भक्ति की भावना से देवी के लिए प्रदक्षिण (परिक्रमा) दिया करता है वह इस प्रदक्षिणा के ही पुण्य-प्रभाव से ही यमराज के गृह में अर्थात् समग्र पुरी में जाकर नरकों को कभी नहीं देखा करता है।४। नमस्कार भी काया से होने वाला—वाणी के द्वारा समुत्पन्न हुआ और मन से किया हुआ तीन प्रकार का हुआ करता है जो उसके ज्ञान रखने वालों के द्वारा उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार का सुना गया है।५। इस नमस्कार करने का भी उक्त तीनों श्रेणियों में करने का क्रम है। जो अपने दोनों हाथों को और पैरों को फैलाकर भूमि में एक दण्ड की भाँति गिरकर अपने घुटनों से भूमि में जाकर शिर से फिर भूमि गमन करके अर्थात् शिर से भूमि का स्पर्श करके नमस्कार अपने आठों अङ्गों के सहित किया जाता है वही उत्तम नमस्कार होता है जो काया के ही द्वारा किया जाया करता है। इसी को कायिक कहा गया है। जो अपने घुटनों से भूमि का स्पर्श करके और शिर से पृथ्वी का स्पर्श करके किया जाता है वह नमस्कार मध्यम श्रेणी कायिक कहा गया है।६-७।

क्रियते तो नमस्कारो मध्यमः कायिकः स्मृतः ।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते यद् यथा तथा ।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षिति सोऽधम उच्यते ।।८
या स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताध्या नमस्कृतिः ।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमस्तु सः ।।९
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नतिः ।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद् वाचनिकः सदा ।।१०
यत् तु मानुष्यवाक्येन नमनं क्रियते सदा ।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पुत्रकौ ।।११

इष्टमध्वानिष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविध पुनः ।
नमनं मानस प्राक्तमुत्तमाधमध्यमम् ॥१२
त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः ।
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति नित्यशः ॥१३
अयमव नमस्कारो दन्डादिप्रति नामभिः ।
प्रणाम इति विज्ञेयः स पूर्व प्रतिपादितः ॥१४

जो अपने दोनों करों को जोड़कर जिस किसी प्रकार से अपने शिर में ही लगाकर नमस्कार किया जाता है और जिसमें घुटनों और मस्तक को को भूमिमें स्पर्श नहीं करके ही किया जाता है वह नमस्कार अधम कोटिका कहा जाया करता ।८। ये तीन तरह के नमस्कार काया से किये जाने वाले होते हैं। तथा जो नमस्कार गद्य तथा पद्य के द्वारा घटित करके किया जाता है और भक्ति की भावना से होता है वह वाचिक अर्थात् वाणी के किये जाने वाले उत्तम श्रेणी का नमस्कार होता है ।९। जो पुराणों अथवा वेदों में कहे हुए मन्त्रों के द्वारा नमस्कार किया जाया करता है वह सदा ही वाणी द्वारा किया हुआ मध्यम कोटि का नमस्कार होता है ।१०। और जो मनुष्य के वाक्य के ही द्वारा सदा नमस्कार किया जाता है हे पुत्रो ! वह वाणी से ही किया हुआ अधम श्रेणी वाला नमस्कार समझना चाहिये ।११। मन के द्वारा भी किया हुआ नमस्कार उत्तम-मध्यम और अधम ये तीन प्रकार का कहा गया है। जो मन की पूर्णतया संलग्न करके किया जावे तथा आधे मन से केवल खाना पूरी ही की जावे अथवा मन को इष्टगत न करके हो किया जाया करता है ये तीन प्रकारों वाला अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम मानस नमस्कार होता है ।१२। इन तीनों प्रकार के नमस्कारों में कायिक अर्थात् शरीर के द्वारा किये जाने वाला नमस्कार ही उत्तम होता। कायिक नमस्कारों से ही देवगण नित्य परम प्रसन्न हुआ करते हैं ।१३। यह ही नमस्कार जो दण्ड आदि के द्वारा प्रति नामों से पूर्व में प्रतिपादित किया गया है उसी को प्रणाम जान लेना चाहिए ।१४।

नैवेद्येन भवेत् सर्वं नैवेद्येनामृतं भवेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः ॥१५
सर्वयज्ञमयं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम् ।

ज्ञानदं कामदं पुण्यं सर्वभोग्यमयं तथा ॥१६
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दातुमिच्छति ।
यो नरो भक्तियुक्तः सन् स दीर्घायुः सुखी भवेत् ॥१७
महामायां सदा देवीमर्चयिष्यामि भक्तितः ।
नानाविधस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्त यः ।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य मम लोके महीयते ॥१८
मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
स दक्षिणे यतगृहे नरकाणि न पश्यति ॥१९
देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः ॥२०
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महामतिः ।
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते ॥२१

नैवेद्य के द्वारा सभी कुछ होता है और नैवेद्य से अमृत होता है। धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष ये चारों परम पुरुषार्थ नैवेद्यों में ही प्रतिष्ठित रहा करते हैं।१५। नैवेद्य नित्य ही समस्त यज्ञों से परिपूर्ण होता है और यह नैवेद्य सब देवों की तुष्टि के प्रदान करने वाला है । यह नैवेद्य ज्ञान का देने वाला—मन की कामनाओं का प्रदान करने वाला—तथा पुण्य को देने वाला एवं सभी भोग्यों से परिपूर्ण हुआ करता है ।१६। जो मनुष्य महादेवी के लिए मन के द्वारा भी नैवेद्य के समर्पित करने की इच्छा किया करता है वह मामव भक्ति से युक्त होता हुआ दीर्घ आयु वाला और सुखी हुआ करता है ।१७। जो मनुष्य सदा ही महामाया देवी की भक्ति से अनेक प्रकार के नैवेद्यों के द्वारा अर्चना करूँगा—ऐसी चिन्ता से आकुलित रहा करता है वह सभी मन की कामनाओं की प्राप्ति करके अन्त में मेरे ही लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।१८। जो पुरुष मन से भी देवी के लिए भक्ति-भाव से प्रदक्षिणा देता है वह फिर दक्षिण यमराज की पुरी में कभी भी नरकों को देखा करता है ।१९। नमस्कार का बड़ा भारी महत्व होता है। देव मनुष्य-गन्धर्व, यह राक्षस पन्नग और महान् आत्माओं वाले चारों ही ओर से नमस्कार करने से तुष्ट अर्थात् प्रसन्न हुआ करते हैं ।२०। महती मति वाला पुरुष नमस्कार द्वारा चारों वर्गों का लाभ प्राप्त किया करता है। सभी जगह

सबकी सिद्धि के लिए नमस्कार ही प्रशस्त माना जाया करता है। अर्थात् नमस्कार सबकी प्राप्ति के लिए परम उत्तम साधन माना है।२२।

नत्या विजयते लोकान्नत्य युरपि वर्धते ।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिना लभते प्रजाः ॥२२
नमस्कुरु महादेव्यै प्रदक्षिणमथो कुरु ।
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः ।
सोऽपि कामानवाप्येह मम लोके प्रमोदते ॥२३
विदधाति च नैवेद्यं महादेव्यै सुभक्तिमान् ।
दातु प्रति नरः सोऽपि देवोलोकमवाप्नुयात् ॥२४
इति वां कथिताः सम्यगुपचारास्तु षोडश ।
किमन्यद्रुचितं वा तत् सथयिष्यामि पृच्छतोः ॥२५

नमस्कार से लोकों पर मानव विजय प्राप्त किया करता है और नमस्कार से आयु की भी वृद्धि होती है—नमन करने से मानव दीर्घ आयु वाला होता है और नमस्कार से अविच्छिन्न सन्तति का लाभ प्राप्त किया करता है जो कि सन्ततियों का क्रम कभी भी टूटता नहीं है।२२। अतएव महादेवी के लिए नमस्कार करो और प्रदक्षिण होकर ही नमस्कार करो। तात्पर्य यह है कि देवों को दक्षिण भाग में स्थित करके ही नमस्कार करना चाहिए। जो निरन्तर नैवेद्य दीजिए—यह कहा करता है और बार-बार बोलता वह मानव भी अपने समस्त मनोरथों की प्राप्ति करके मेरे ही लोक में आनन्द प्राप्त करता है।२३। जो सुन्दर भक्ति वाला पुरुष महादेवी के प्रति समर्पित करने के लिए नैवेद्य को किया करता है वह मनुष्य भी देवी के लोक की अन्त में प्राप्ति किया करता है।२४। इस तरह से आप दोनों को मैंने षोडश (सोलह) उपचार जो अभ्यर्चन के हुआ करते हैं बतला दिए हैं। जो कि भली भाँति के होते हैं। अब आप दोनों को क्या रुचिकर है अर्थात् अन्त आप दोनों क्या पूछना पसन्द करते हैं उसी को बतला दूँगा।१।

—❀—

## ॥ कामाख्या कवच माहात्म्य वर्णन ॥

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं शृणुतं च वदामि वाम् ।
सांग तद्व सरहस्यं च शृणु वेताल भैरव ॥१

एकदा गरुडेनाशु विष्णुर्विष्णु परायणौ ।
गच्छन् देवीं तु कामाख्या नीलस्थामाससाद ह ।।२
आसाद्य त गिरिश्रेष्ठमवज्ञाय स केशवः ।
गच्छ गच्छेति गरुडं चोदयामास त गतौ ।।३
तं च देवी महामाया कामाख्या जगतां प्रसूः ।
गरुडेन समं कृष्णं स्तम्भयामास रोदसी ।।४
स तु गन्तु महामाया मायया परिमोहितः ।
न गन्तुमथ वागन्तुमशकद् बद्धवत् स्थितः ।।५
अशक्तं गरुडं दृष्ट्वा गमने गरुडध्वजः ।
क्रुद्धस्तां पर्वतश्रेष्ठमुत्सारयितुमुद्यतः ।।६
ततः कराभ्यां तां शैलं क्रोडीकृत्य जगत्पतिः ।
अभूत् क्षमश्चालयितु मनागपि न केशवः ।।७

आप दोनों श्रवण कीजिए मैं कामाख्या देवी के माहात्म्य का वर्णन करूँगा। हे वेताल ! हे भैरव ! अङ्गों के सहित उस रहस्य से युक्त को आप दोनों सुनिये ।१। एक समय भगवान् विष्णु शीघ्र ही अपने वाहन गरुड़ के द्वारा गमन करते हुए नील पर्वत पर विराजमान कामाख्या देवी के समीप में प्राप्त हुए थे ।२। उस परम श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँच कर उनका ज्ञान प्राप्त करके उन भगवान् शव ने गरुड़ को गमन करने की गति में 'चलो-चलो' इस प्रकार से प्रेरित किया था ।३। समस्त जगतों को समुत्पन्न करने वाली महामाया कामाख्या देवी ने उन भगवान् श्रीकृष्ण को गरुड़ के साथ आते हुए जानकर आकाश में ही स्तम्भित कर दिया था ।४। वे गमन करने के लिए समुद्यत थे किन्तु महामाया की भी माया से ऐसे मोहित हो गये थे कि न तो आगे गमन करने में और न वापिस आगमन करने में समर्थ हुए और वृद्ध की ही भाँति वहीं पर स्थित रह गये थे ।५। भगवान् गरुड़ध्वज गरुड़ को गमन करने में असमर्थ देखकर–बहुत क्रुद्ध हुए थे और उस श्रेष्ठ पर्वत को उत्साहित करने के लिए समुद्यत हुए थे ।६। इसके अन्तर जगतों के स्वामी श्रीकृष्ण ने अपने करों के द्वारा उस पर्वत को गोद में समर्थ नहीं हुए थे अर्थात् तनिक भी न हिला सके थे ।७।

तं चिचालयिषुं शैलं कामाख्यान क्रोधतत् परा ।

सिद्धसूत्रेण वैकुण्ठं बबन्ध गरुडे हि ॥८
तं बद्ध्वा सिद्धसूत्रेण ग्राहाग्रे लवणार्णवे ।
चिक्षेप हेलया देवी संक्षेपात् प्रापतत् तलम ॥९
तं सागरतलं प्राप्तं पुनरेव स्वमायया ।
यन्त्रयित्वा समाक्रम्य अग्राहाब्धितल स्थितम् ॥१०
स प्रयत्नेन महता नोत्प्लुतिं कर्तुमिष्टवान् ।
महायत्नं प्रकुर्वाणः पुनरुन्मज्जने हरिः ॥११
तस्यासारं प्रसारं च कामाख्या प्रतिषेधयेत् ।
ज्ञानोद्गमप्यस्य सा देवी प्रतिषेधयेत् ॥१२
तत प्रज्ञानरहितः प्रसारासारवर्जितः ।
गरुडेन समं तोयतले शीर्णमभूच्चिरम् ॥१३
मार्गमाणस्तु तं स्रष्टा सागरान्तरसंस्थितम् ।
हरिमासादयामास विशीर्णं प्राकृतं तथा ॥१४

जिस समय में उस पर्वत को चालित करने की इच्छा और प्रयत्न करते हुए केशव भगवान् को देखा था तो महादेवी कामाख्या बहुत ही क्रोधित हुई थीं और उस देवी ने सिद्ध सूत्र के द्वारा भगवान् वैकुण्ठ नाथ को गरुड़ के साथ बाँध दिया था।८। उनका सिद्ध सूत्र से बाँध कर ग्राहाग्र क्षार समुद्र में देवी ने हेला ही से उनको प्रक्षिप्त कर दिया था और वे संक्षेपण करने से तल में प्रपतित हो गये थे।९। सागर के तले में प्राप्त हुए उन भगवान् केशव को फिर भी अपनी माया से मन्त्रित करके फिर वहाँ पर समाक्रान्त होकर सागर के तले में स्थित हुए उनको ग्रहण कर लिया था।१०। उन केशव प्रभु ने बड़ा भारी प्रयत्न किया था। सागर के तले से ऊपर और महान् प्रयत्न करते हुए भी रहें कि पुनः उन्मज्जित हो जावेंगे हरि ने सब कुछ यत्न किया था उनके असार और प्रसार को उस देव ने रोक दिया था।११-१२। इसके अनन्तर वे प्रज्ञान से रहित हो गये थे तथा असार-प्रसार से अर्थात् हिलने डुलने से भी शून्य हो गये थे और गरुड़ के ही साथ वे चिरकाल तक सागर के जल के तले में ही शीर्ण रहे थे।३। सृजन करने वाले ने उनकी जब बहुत खोज की तो उनको सागर के तले में

समवस्थित हुए हरि को पाया था और वे ऐसे विशीर्ण हो रहे थे जैसे कोई साधारण प्राणी होता है ।१४।

समासाद्य सतार्क्ष्यं तु स्रष्टा लोकपितामहः ।
हस्ताभ्यां त समादाय वोत्प्लावयितुमिष्टवान् ।।१५
तमुत्प्लावयितुं शक्तो नाभूल्लोकपितामहः ।
स्वयं च देवीमायाभिर्बद्धः सन् विस्मयन् स्थितः ।।१६
मार्गमाणास्तु ते सर्व देवाः शक्रपुरोगमाः ।
चिरेण चाथ कालेन समासे दुर्जलान्तरे ।।१७
ताबासाद्य ततः सर्वे सुराः शक्रपुरोगमाः ।
समुत्प्लावयितुं यत्नं चक्रुर्नाशक्नुवंश्च ते ।।१८
विधिविष्णुस्थितौ यद्वत् तद्वत् ते तत्र संस्थिताः ।।१६
मार्गमाणोऽथ तान् सर्वान् देवान् देवगुरुस्तदा ।
वृहस्पतिर्महादेवं हिमवत् सानुसंस्थितम् ।।२०
समासाद्य स देवानां वृत्तान्तं देवपूजितः ।
पृथान् सादरं सम्यक् स्तुत्वा नत्वा यथाविधि ।।२१

सृजन करने वाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने गरुड़ के सहित उनको प्राप्त करके उन्होंने अपने दोनों करो के द्वारा ऊपर लाने की भी इच्छा की थी ।१५। किन्तु लोकों के पितामह भी उनको उत्प्लावित करने के समर्थ नहीं हुए थे । और स्वयं भी देवी की माया से बद्ध होकर विस्मय करते हुए ही स्थित रह गए थे ।१६। फिर समस्त देवगण जिसमें इन्द्र सबके सब खोज करते हुए बहुत अधिक समय में उन्होंने सागर के दूषित जल के मध्य में उन दोनों को प्राप्त किया था और सब इन्द्र आदि देवों ने उनको जल से ऊपर लाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया था किन्तु वे भी ऐसा न कर सके थे अर्थात् ऊपर उनके ले आने में समर्थ नहीं हुए थे ।१७-१८। इसके अनन्तर वे सब देवगण भी देवी की माया से अत्यधिक मोहित हो गये थे । जिस रीति से जल के तले में भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी स्थित थे उसी प्रकार से वे सब भी वहीं पर संस्थित रह गये थे ।१९। उस समय में देव गुरु वृहस्पति ने उन सबकी खोज करते हुए चले थे और हिमाचल की शिखर पर विराजमान महादेवीजी के समीप पहुँचे । देवों के द्वारा पूजित

महादेवीजी ने देवों का सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे पूछा था तब बड़े आदर के साथ देव गुरु ने उनको प्रणाम करके तथा स्वप्न यथा विधि करके निवेदन किया था ।२०-२१।

महादेव जगवद्धाम जगत्प्रशमकारण ।
शक्रादीन्मार्गमाणोऽहं देवांस्त्वा समुपस्थितः ।।२२
ब्रह्मा विष्णुश्च न ब्रह्मसदने नापि नाकतः ।
संस्थितौ नापि कुत्रापि ज्ञायेते ह्यन्यदा यथा ।।२३
तमिमं संशयं देवाच्छिन्धि त्वं देवदेवताः ।
कुत्र तिष्ठन्ति कस्माद् वा तथा भूत्वा ह्यवस्थिताः ।।२४
अनुयास्यामि तान् तर्वानुपदेशात् तव प्रभो ।
तेषा स्थिति त्वं कथय यदि ते वर्तते दया ।।२५
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तदुद्देशमहं पुनः ।
तत् सर्वमुक्तवान् कर्म यथा बद्धाश्च मायया ।।२६
अवज्ञाता महादेवी महामाया जगन्मयी ।
तेन तन्मायया बद्धो विष्णुस्तिष्ठति सागरे ।।२७
तां मार्गमाणास्त्रिदशा ब्रह्माद्या मायया पुनः ।
निबद्धा निकटे तस्य स्थिताश्चात्यर्थसंयताः ।।२८

देवगुरु ने कहा—हे महादेव ! आप तो समस्त जगतों के धाम है तथा जगत् के प्रशमन के कारण स्वरूप हैं । मैं इन्द्र आदि देवी की खोज करता हुआ ही इस समय आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ।२२। इस समय ब्रह्मा जी और विष्णु भगवान् न तो ब्रह्मा सदन में हैं और न स्वर्ग में ही है । वे कहीं पर भी समवस्थित नहीं जाने जाते हैं । जैसे अन्य समय या स्थान में होवें ऐसा भी नहीं जाना जा रहा है । हे देव ! आप तो देवों के भी देव हैं । मेरे इस महान् संशय का छेदन कीजिए । इस समय में कहाँ पर स्थित हैं, किस कारण से स्थित हो रहे हैं और ऐसे किस प्रकार से वे अवस्थित हो रहे हैं ।२४। हे प्रभो ! में सव आपके ही उपदेश से उन सबके पीछे अनुगमन करूँगा । यदि आपके हृदय में दया हो तो अब उन सबकी स्थित के विषय में मुझे बतलाइए ।२५। महादेवजी ने देवगुरु के उन वचनों का श्रवण किया

था और उनके उपदेश का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। फिर महादेव ने कहा था जो कि कर्म हुआ था और जिस प्रकार से वे सब माया में बद्ध हुये थे यह सभी कुछ बतला दिया था ।२६। महामाया महादेवी को भी अब ज्ञात करा दिया था इसी कारण से उस देवी की माया से बद्ध हुए भगवान् विष्णु सागर के जल में स्थित है ।२७। उसकी खोज करते हुए देवगण ब्रह्मा आदि सब फिर माया से बद्ध हुए उनके ही समीप में अत्यन्त संयत होते हुए स्थित रहते हैं ।२८।

तांस्तु मायितु यासि यदिह त्वं मया विना ।
बद्धस्तथैव त्वं चापि नायातु भविता प्रभुः ॥२६
तस्माद् गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते गरुड़ध्वजः ।
ब्रह्मेन्द्राद्यास्तथा गुप्तान्मोचयिष्ये च तान् कमात् ॥३०
इत्युक्त्वा गुरुणा सार्धं सम्भूय स वृषभध्वजः ।
देवौघा यत्र तिष्ठन्ति गतस्तत्र महेश्वरः ॥३१
तत्र गत्वा महादेवो विष्णुमाभाष्य वेधसम ।
सर्वास्तान् परिपप्रच्छ किमर्थं संस्थितास्त्विह ॥३२
गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥३३
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशव ।
शर्नैर्भर्गसुवाचेदं ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ॥३४

यदि आप भी उनकी खोज करते हुए वहाँ पर जाते हैं और मेरे बिना अकेले ही वहाँ पर गमन करते हैं तो आप भी वहाँ पर उसी भाँति बद्ध हो जाँयगे और फिर वहाँ से आने में समर्थ नहीं हो सकेंगे ।२६। इस कारण से मैं ही वहाँ पर जाता हूँ जहाँ पर गरुड़ध्वज प्रभु स्थित हैं। मैं ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि उन सबका क्रम से मोचन करा दूँगा ।३०। इस प्रकार से देवगुरु के साथ मिलकर वृषभध्वज ने कहा था और फिर जहाँ पर देवों के समुदाय स्थित थे वहीं पर वे महेश्वर गये थे ।३१। वहाँ पर जाकर महादेवजी ने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से तथा अन्य सब देवगणों से बातचीत करके पूछा था कि आप सब वहाँ पर किसलिये स्थित हो रहे हैं ।३२। आप सब तो गमन और आगमन से रहित हो रहे हैं तथा एक जड़ की भाँति

ज्ञान से वर्जित हो रहे हैं आप सब ऐसे किसलिये हो गये हैं ? हे देवगणो ! यह अब मुझे बतलाइए ।३३। उन महादेवजी के इस वचन का श्रवण करके केशव भगवान् ने धीरे से ब्रह्मा आदि देवों के आगे उस समय में महादेवजी से यह कहा था ।३४।

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।
वियता गरुडस्थेन मया नीलो महागिरिः ।।३५
धृतः करेण चोद्धर्तुं गरुडागतिवारणे ।
तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ।।३६
योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्बुधिपुष्करे ।
ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ।।३७
पतितो नियसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।
निवसामि चिरं चाहमत्र सागरतोयके ।।३८
नाद्यापि सा महामाया नुदते मां महेश्वर ।
मदर्थमागता देवा ब्रह्मेन्द्राद्याः समन्ततः ।।३९
तेऽपि बद्धा महादेव्या मायापशेन वै हठात् ।
तस्मान्नो ह्यनुगृह्णीष्व नयेदानीं शिवालये ।।४०
तां च प्रसादयिष्यामः सम्यग्बन्धविहिंसया ।
हरेस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहं च करुणायुतः ।।४१
उवाच परमप्रीत्या विधिविष्णु प्रति स्वयम् ।
ईश्वर्याः काममूर्वायाः कवच सुमनोहरम् ।।४२

श्री भगवान् ने कहा—नील कूट के शिखर पर से ऊपर की ओर आकाश में गरुड़ के द्वारा गमन करते हुए मैंने महान् गिरि नील को हाथ से पकड़ लिया था। और मैं उसको ऊपर उठाना चाहता था क्योंकि वह गरुड़ की गति का कारण करने वाला था। वहाँ पर कामरूपों वाली उस कामाख्या योग निद्रा ने मुझको पकड़ कर महासागर के जल में फेंक दिया था। फिर मैं तल में पहुँच कर जो समुद्र का था अपने वाहन के सहित गिर गया था। हे अन्धक के सूदन करने वाले ! मैं बहुत अधिक समय से निवास कर रहा हूँ। मैं यहाँ पर ही इस महासागर के जल में ही रहता हूँ ।३५-३८।

हे महेश्वर ! वह महामाया मेरे ऊपर दया नहीं कर रही है और अभी तक भी मैं वैसा ही हो रहा हूँ। मेरे ही लिये सभी ओर से ब्रह्मा आदिक अब समागत हुए थे ।३६। महादेवी ने हठ से उन सबको भी माया के पाश से बद्ध कर दिया था। इस कारण से आप हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिए और अब मुझको शिवालय में ही ले चलिए ।४०। और हम लोग इस बन्धन की विशेष हिंसा ये उस महादेवी को प्रसन्न करेंगे। भगवान् हरि के उस वचन को सुनकर मैं करुणा से युक्त हो गया था अर्थात् मुझे दया आ गयी थी ।४१। फिर मैं परम प्रीति से स्वयं ही ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु से बोला था। कामपूर्वा ईश्वर का एक सुमनोहर कवच है ।४२।

बद्ध्वा शरीरे चाप्लाव्य पश्चाद् गच्छन्तु तां प्रति ।
अहं निवद्धकवचस्तेनाहं च मायया त्विह ॥४३
न बद्धो मम ससर्गात् तथा चेह बृहस्पतिः ।
तस्माद् यूयं तु कवचं शृणुध्वं वचनान्मम ॥४४
येन सौख्यात् समुत्प्लुत्य द्रक्ष्यामः परमेश्वरीम् ।
ॐ कामाख्याकवचस्य ऋषिर्बृहस्पतिः स्मृतः ॥४५
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप्छन्द इष्यते ।
विनियोगः सर्वसिद्धौ तं च शृण्वन्तु देवताः ॥४६
शिरः कामश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ।
सारदा कर्णयुगलं त्रिपुरावदनं तथा ॥४७
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ।
कामाख्या जठरे पातु शारदा मां तु नाभितः ॥४८
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ।
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ॥४९

उस कवच को शरीर में बाँधकर और आप्लावित होकर पीछे मेरी और गमन करें। मैं भी कवच बाँधे हुए हूँ इसी कारण से माया के द्वारा यहाँ पर मेरे संसर्ग से ही वृहस्पति को निबद्ध नहीं किया गया है। इस कारण से तुम लोग मेरे वचन से उस कवच का श्रवण कर लीजिए ।४३-४४। जिसके द्वारा सुख के साथ भली-भाँति उपप्लुत होकर परमेश्वरी का दर्शन

करेगा। ॐकामाख्य कवच के ऋषि वृहस्पति कहे गये हैं।४५। उसकी देवी कामेश्वरी देवी है तथा छन्द अनुष्टुप् होता है। उसका विनियोग सबकी सिद्धि में होता है। हे देवताओ! उसका आप श्रवण कीजिए।४६। शिर तो कामेश्वरी देवी हैं और कामाख्या मेरे नेत्र हैं। शारदा दोनों कान हैं तथा त्रिपुरीदेवी मुख है।४७। कण्ठ में महामाया रक्षा करें फिर हृदय में कामेश्वरी रक्षा करें। कामाख्या जठर में रक्षा करें और शारदा मुझको नाभि में रक्षा करें।४८। त्रिपुरी दोनों पार्श्वों में रक्षा करे। मेदन में महामाया रक्षा करे। गुद में कामेश्वरी रक्षा करे और कामाख्या मुझको दोनों ऊरुओं में रक्षित करे।४९।

जानुनोः शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः।
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा ॥५०

केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घका।
भैरवी दन्तसंघाते मातंग्यवतु चाङ्गयोः ॥५१

वाह्वोर्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनसासिनी।
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलिषु श्रीकामा नखकोटिषु ॥५२

रोमकूपेषु सर्वेषु गुप्तकामा सदावतु।
पादांगुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ॥५३

जिह्वायां पातु मां सेतुः कण्डाभ्यन्तरेऽवतु।
लः पातु चान्तरे वक्ष इः पातु जठरान्तरे ॥५४

सामीन्दुः पातु मां वस्ताविन्द्रन्तरेऽवतु।
तकारस्त्वचि मां पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ॥५५

लकारः सर्वनाडीषुः ईकारः सर्वसन्धिषु।
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु विन्दुमज्जासु सन्तलम् ॥५६

दोनों घुटनों में शारदा देवी रक्षा करे और त्रिपुरा देवी दोनों जाँघों से रक्षा करे। दोनों पादों में महामाया रक्षा करे और कामदा नित्य ही रक्षा करें।५०। केश में कामेश्वरी रक्षा करे और नासिका में दीर्घिका रक्षा करे। दाँतों के समुदाय में भैरवी रक्षा करे तथा दोनों अङ्गों में मातङ्गी रक्षा करे।५१। ललिता मेरी बाहुओं में रक्षा करे और दोनों प्राणियों में वनवासिनी रक्षा करे। अँगुलियों में विन्ध्वासिनी देवी रक्षा करे और नखों की कोटियों में श्री कामा कक्षा करे।५२। समस्त रोम कूपों में सदा गुप्त कामा परित्राण करें। पैरों की अँगुलियों में तथा पार्ष्णिभाग में मेरी

भुवनेश्वरी रक्षा करे ।६३। जिह्वा में मेरी सेतु रक्षा करे तथा कण्ठ के भीतर की रक्षा करे। वक्षस्थल के अन्दर में लः रक्षा करे और जठर के अन्दर में इः रक्षा करे ।५४। वस्ती में मेरी सामीन्द्र रक्षा करे। विन्दु के अन्दर में इन्दु रक्षा करे। तकार मेरी त्वचा में रक्षा करे। रकार सर्वदा अस्थियाँ में रक्षा करे ।५५। समस्त नाड़ियों में रक्षा करे और ईकार सभी सन्धियों में मेरी रक्षा करे। स्नायुओं में मेरा परित्राण चन्द्र करे तथा निरन्तर बिन्दु मज्जाओं में मरी रक्षा करे ।५६।

पूर्वस्यां दिशि चाग्नेय्यां दक्षिणे नैर्ऋते तथा ।
वारुणे चैव वायव्यां कौबेरे हरमन्दिरे ।।५७
तानि प्रत्येकतो देवा आरुह्यारुह्य तत्क्षणात् ।
पपुः सस्नुः पूर्ववत् ते प्रीतिमापुस्तथातुलाम् ।।५८
निरामयास्तथा जग्मुर्विस्मयाक्लिष्टचेतनाः ।
स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च कामाख्यायोनिमण्डलम् ।।५९
ततो देवगुरुं नत्वा मां स्तुत्वा च मया पुनः ।
विसृष्टास्त्रिदिवं याता हर्षोत्फुल्लविलोचनाः ।।६०
माहात्म्यमीदृशं दैव्याः कामाख्यायास्तु भैरव ।
कवचं चेदृशं प्रोक्त तत्त्वमासाद्य पुत्रक ।।६१
यथेष्टविनियोगेन तमासाद्य सुखी भव ।
कामाक्यायाश्च माहात्म्यं किमन्यत् कथयामि ते ।।६२
यस्या योनिशिलायोगाल्लोहाद्या यान्ति स्वर्णताम् ।
यद्योनिमण्डले स्नात्वा सकृत् पीत्वा च मानवः ।
नेहोत्पत्तिमवाप्नोति परं निर्वाणमाप्नुयात् ।।६३

पूर्व दिशा में—आग्नेयी में—दक्षिण में तथा नैर्ऋत में—वारुण में—वामन में—कौबेर में—हर मन्दिर में उनको देवों वे तत्क्षण में आरोहण कर-करक पान किया था—स्नान किया था और पूर्व की ही भाँति उन्होंने अतुल प्रीति को प्राप्त किया था ।५७-५८। वे सब नीरोग होकर अर्थात् परम स्वस्थ होते हुए वहाँ से गमन कर गये थे और परम विस्मय से आक्रुष्ट चेतना वाले हो गये थे। वे सभी स्तवन करते हुए तथा प्रस्तवन करते हुए गये थे जो कि कामाख्या देवी के योनि मण्डल की स्तुति करते हुए ही वहाँ से गये ।५९। इसके अनन्तर देव गुरु को उन्होंने प्रणाम किया था और मुझ को भी अभिवादन किया था और मेरी स्तुति की थी। फिर मैंने उनको

विदा किया था और वे सब देवगण हर्ष से विकसित लोचन वाले होते हुए स्वर्ग को चले गये थे ।६०। हे भैरव ! कामाख्या देवी का ऐसा ही माहात्म्य है और देवी का कवच भी इसी तरह का है जो कहा गया है । अब हे पुत्र ! तत्व को प्राप्त करके अभीष्ट के अनुसार विनियोग करके उसके द्वारा उसकी प्राप्ति करके सुखी होओ । यह कामाख्या का माहात्म्य है । अब अन्य मैं क्या तुमको बतलाऊँ ।६१-६२। जिसकी योनि के शिला बल से आयोग से लौह आदि धातुयें सुवर्ण हो जाया करती हैं । जो मानव इसके योनि मण्डल में स्नान करके और एक बार करता है और परम निर्वाण को प्राप्त किया करता है ।६३।

## ।। मातृका न्यास वर्णन ।।

मातृकान्यासमधुना शृणु वेताल भैरव ।
तेन देवत्वमायाति नरोऽपि विहितेन वै ।।१
वाग् ब्रह्माणीमुखा देव्यो मातृकाः परिकीर्तिताः ।
तासां मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा ।।२
चन्द्रबिन्दुप्रयुक्तानि सर्वकाम प्रदानि च ।
ऋषिस्तु मातृमन्त्राणां ब्रह्मैव परिकीर्तितः ।।३
प्रोक्तश्छन्दश्च गायत्री देवता च सरस्वती ।
शरीरशुद्धि मुख्ये तु सर्वकामार्थसाधने ।।४
विनियोगः समुद्दिष्टो मन्त्राणां न्यूनपूरण ।
अकारेण समः कादिर्वर्गो यः प्रथमः स्मृतः ।।५
तैश्चन्द्रविन्दुसंयुक्तैस्तत्रस्थैरक्षरैर्बहिः ।
आकारं च तथोच्चार्य अंगुष्ठाभ्यां नमस्तथा ।।६
प्रथम मातृकामन्त्रमंगुष्ठद्वयतो न्यसेत् ।
परे वर्गाः स्वरैः सार्धं ते वान्ये न्यासकर्मणि ।।७

श्री भगवान् ने कहा—हे वेताल भैरव ! अब तुम मातृका न्यास का श्रवण करो जिसके द्वारा मनुष्य भी किये जाने से देवत्व को प्राप्त कर लिया करता है ।१। वाग् और ब्रह्माजी प्रमुख जिनमें हैं ऐसी देवियाँ मातृका की गयी हैं उनके प्रयोग किये हुए मन्त्र और सब व्यञ्जन तथा स्वरों को जो चन्द्र बिन्दु से समन्वित हैं सभी कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं । मातृका मन्त्रों का ऋषि ब्रह्मा हो कहे गये हैं ।२-३। इनका छन्द गायत्री कहा गया है और इनका देवता सरस्वती देवी है । शरोर बुद्धि मुख्य में और सब कामार्थ साधन में विनियोग समुद्दिष्ट किया गया है जो मन्त्रों की न्यूनता के पूरण करने में होता है अकार के समकादि वेग है जो प्रथम कहा गया है

।४-५। वहाँ पर स्थित चन्द्र बिन्दु से संयुक्त उन अक्षरों से बाहिर आकार का उसी भाँति उच्चारण करके तथा अँगुष्ठों से नमः—इसको कह करके सबसे प्रथम ही अँगुष्ठों से मातृका मन्त्र का न्यास करना चाहिए। पर में स्वरों के साथ वर्ग अथवा जो अन्य न्यास कर्म में होवें ।६-७।

ते सर्वे चन्द्रबिन्दुभ्यां युक्ताः कार्यास्तु सर्वतः ।
ह्रस्वेकारश्च वर्गेण दीर्घेकारान्तकेन तु ।।८
तर्जन्योर्विन्यसेत् सम्यक् स्वाहान्तेन तु पूर्ववत् ।
ह्रस्वोकारश्चवर्गेण दीर्घोरान्तकेन तु ।।६
मध्यमायुगले सम्यग्वषडन्तेन विन्यसेत् ।
एकारादिटवर्गन्तु ऐकारान्तेन चैव हुम् ।।१०
न्यसेदनाभिकायुग्मे नियतं तत्र भैरव ।
ओकारादिपवर्गं तु औकारान्तमशेषतः ।।११
वौषडन्तं कनिष्ठायां विन्यसेत् कार्यसिद्धये ।
अकारादियकारादिवर्गेण क्षान्तकेन तु ।।१२
अइत्यन्तेन वलयोर्विन्यसेत् पाणिपृष्ठयोः ।
वषट्कारः शेषभागे अस्त्रन्यासे निजयेत् ।।१३
हृदयादिषडङ्गेषु पूर्ववत् क्रमतो न्यसेत् ।
अंगुष्ठाद्युक्तवर्गैस्तु क्रमात् षड्मितथाविधैः ।।१४

वे सब चन्द्र बिन्दुओं से युक्त सब ओर से ही करने चाहिए। ह्रस्व इकार से और दीर्घ ईकारान्त क वर्ग से पूर्व की ही भाँति जिसमें स्वाहा अन्त में होवे भली भाँति तर्जनियों में निवास करना चाहिए। एकार जिसके आदि में होवे ऐसा वर्ग को और ऐकारान्त से हुम् को अनामिकाओं के जोड़े में हे भैरव ! नियत रूप से वहाँ पर न्याय करे। औकार जिसके आदि में होवे ऐसे पवर्ग को और अशेष को औकार अन्त वाला तथा वौषट् अन्त में लगाकर कार्य की सिद्धि के लिये कनिष्ठका में न्यास करना चाहिए। अकार जिसके आदि में होवे ऐसे यकारादि वर्ग से और क्ष के अन्त वाले से तथा अ इ अन्त वाले बल को प्राणियों के पृष्ठों में न्यास करे। शेष भाग में वषट्-कार अस्त्र न्यास करना चाहिए। हृदय आदि छः अङ्गों में पूर्व की ही भाँति क्रम से न्याय करे। अँगुष्ठ जिनके आदि में होवे ऐसे उक्त वर्गों से क्रम से उसी प्रकार छहों से करे ।८-१४।

पुनस्तथा पादजानुसक्थिहृत्येषु पार्श्वयोः ।
वस्तौ च विन्यसेन्मन्त्रान् क्रमात् पूर्ववेदक्षरैः ।।१५

बाह्वोः पाण्योस्तथा कट्यां नाभौ च जठरे तथा ।
स्तनयोरपि विन्यासं तथा षड्भिः समाचरेत् ॥१६
वक्त्रे च चिबुके गण्डे कर्णयोश्च ललाटके ।
अंसे कक्षे च षड्वर्गः पूर्ववन्न्ययासमाचरेत् ॥१७
रोमकूपे ब्रह्मरन्ध्रे गुदे जघायुगे तथा ।
नखेषु पादपाष्र्ण्योश्च तथा पूर्ववदाचरेत् ॥१८
एवं तु मातृकान्यासं यः कुर्यान्नरसत्तमः ।
स सर्वयज्ञहूजासु पूतो योग्यस्तु जायते ॥१६
नातः वरतरं मन्त्रं विद्यत क्वचिदेव हि ।
यत् सर्वकामद पुण्य चतुर्वर्गप्रदं परम् ॥२०
वाग्देवतां हृदि ध्यात्वा मूर्तिसर्वाक्षराणि च ।
त्रिधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमैश्च पिवेज्जलम् ॥२१

फिर उसी प्रकार से पाद—जानु—सक्थि—गुह्य—और दोनों पाश्वों तथा वस्ती में पूर्व की ही भाँति अक्षरों के द्वारा क्रम से मन्त्रों का न्यास करना चाहिये ।१५। दोनों बाहुओं में—दोनों हाथों में—करि में—नाभि में-जठर में दोनों स्तनों में उसी प्रकार छहों के द्वारा विन्यास का समाचरण करे ।१६। मुख में—चिबुक से गण्ड में दोनों कानों में—ललाट में—दोनों अंसों में—कध में षड् वर्गों में पूर्व की ही भाँति न्यास करना चाहिए ।१७। रोम के कूप में—ब्रह्म रन्ध्र में—गुद में—दोनों जंघाओं में—नखों में—दोनों हाथों में और पादों में उसी क्रम से पूर्व की ही भाँति समाचरण करना चाहिए ।१८। इस रीति से जो श्रेष्ठ मनुष्य मातृकाओं का न्यास किया करता है वह समस्त यज्ञ पूजाओं में पूत (पवित्र) और योग्य हो जाया करता है । ।१६। इससे परम श्रेष्ठ मन्त्र कहीं पर भी विद्यमान नहीं है । जो सब कामनाओं का देने वाला—पुण्यमय—और परम चारों वर्गों का प्रदान करने वाला है ।२०। वाग्देवता का हृदय में ध्यान करके और सब अक्षरों की मूर्तियों का ध्यान करके तीन बार क्रम युक्त मातृका मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर जल का पान करे ।२१।

स वाग्मी पण्डितो धीमान् जायते च वरः कविः ।
चन्द्राबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद् बुधः ॥२२
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् ततः ।
अकारादिक्षकारान्तान्येवं श्वासंश्च पूरकैः ॥२३
जलं करतले गृह्य पठित्वाक्षरसंख्यकम् ।

अभिमन्त्र्य तु तत् तोयं प्रथमं पूरकैः पिवेत् ।।२४
कुम्भकेन द्वितीयं त तृतीयन्त्वथ रेचकैः ।
एवं सकृत् त्रिवारं तं पीत्वा तोयं विचक्षणः ।।२५
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यमथ पीत्वैव मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ।।२६
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामांस्तथैव च ।
सततं कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ।।२७
तोयपान महाभाग पूपकुम्भकरेचकैः ।
स सर्वकामान् सप्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिवान् ।।२८

वह वाग्मी—पण्डित—श्रीमान् और श्रेष्ठ कवि हो जाता है। बुध को चाहिए कि पूर्व में चन्द्र बिन्दु से युक्त स्वरों को पढ़े ।२२। इसके पीछे केवल समस्त व्यजनों को पढ़ना चाहिए। अकार से आदि लेकर क्षकार के अन्त तकों को पूरक श्वासों से पढ़े ।२३। जल करतल में लेकर अक्षरों की संख्या को पढ़कर उस जल को अभिमन्त्रित करके प्रथम पूरकों के द्वारा पान करे ।२४। द्वितीय को कुम्भकों से तथा तृतीय को रेचकों से करे। इस प्रकार से एक बार तीन बार विचक्षण पुरुष जल को पीकर ।२५। वह दृढ़ अङ्गों वाला—पण्डित और पुत्र-पौत्रों से समन्वित हो जाता है। मातृका मन्त्रों से मन्त्रित करके तीनों सन्ध्याओं में पीना चाहिए ।२६। वह कवित्व को प्राप्त हो जाता है तथा जो सभी कामों को मातृका मन्त्रों से मन्त्रित करके निरन्तर करता है ।२७। हे महाभाग ! पूरक-कुम्भक—रेचक से जल का पान करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके पुत्र पौत्र—समृद्धि वाला हो जाता है।२८।

भूत्वा महाकविर्लोके वलवान् सत्यविक्रमः ।
सर्वत्र वल्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।।२९
राजानमथवा राजपुत्रं भार्यामथापि वा ।
वशीकरोति नचिरान्मातृकामन्त्रपानतः ।।३०
न्यासक्रमे क्रमः प्रोक्तो वर्गक्रम इहैव तु ।
अक्षराणां क्रमेणाथ तोयपान समाचरेत् ।।३१
ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।
ते मन्त्रा मातृकामन्त्र नित्यमेव प्रतिष्ठिताः ।।३२
सर्वमन्त्रमयश्चाय सर्ववेदमयस्तथा ।
चतुर्वर्गप्रदश्चायं मातृकामन्त्र उच्यते ।।३३
इति ते कथितं पुत्र मातृकान्यासमद्भुवम् ।।३४

वह लोक में महा कवि बलवान् और सत्य विक्रम वाला तथा सर्वत्र बल्लभ होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया करता है ।२९। वह राजा—राजपुत्र और भार्या को मातृका मन्त्र के पान से वश में कर लेता है ।३०। न्यास क्रम में क्रम कहा गया है । यहाँ पर ही वर्ग क्रम कहा गया है । अक्षरों के जल का पान करे ।३१। जो-जो मन्त्र देवों के ऋषियों के—राक्षसों के हैं वे सब मन्त्र मातृका मन्त्रों से नित्य ही प्रतिष्ठित है ।३२। यह मातृका मन्त्र सब मन्त्रों से तथा देवों परिपूर्ण है । यह चतुर्वर्गप्रद मातृका मन्त्र कहा जाता है ।३३। हे पुत्र ! यह अद्भुत मातृका न्यास तुमको बता दिया है ।

**॥ मार्कण्डेय कथन ॥**

दक्षस्य तनया चाभूत सुरभिर्नाम नामतः ।
गवां माता महाभागा सर्वलोकोपकारिणी ॥१
तस्यां तु तनया यज्ञे कश्यपात् तु प्रजापतेः ।
नाम्नां सा रौहिणी शुभ्रा सर्वकामदुधा नृणाम् ॥२
तस्यां जज्ञ शुनः शेफान्मुनेरतितपोधनात् ।
कामनेनुरिति ख्याता सर्वलक्षसंयुता ॥३
सा सिताभ्रप्रतीकाशा चतुर्वेदचतुष्पदा ।
स्तनैश्चतुर्भिर्धर्मार्थकामप्रसवकारिणी ॥४
सा सुवर्ण शरीरा तु कालेन महता सती ।
निर्मलं यौवनं प्राप कामधेनुर्मनोहरम् ॥५
तां चरन्ती मेरुपृष्ठे चारुरूपां सुलक्षणाम् ॥६
ददर्श स तु वेतालः कामुकश्चाभ्यपद्यत ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—प्रजापति दक्ष की पुत्री नाम से सुरभि हुई थी । वह गोओं की माता थी और वह महाभागा सभी के उपकार करने वाली थी ।१। प्रजापति कश्यप से उसके उदर से एक तनया ने जन्म ग्रहण किया था । नाम से वह रोहिणी थी । वह शुभ्रा और मनुष्यों के सम्पूर्ण कामनाओं का दोहन करने वाली थी । उसमें अतीव तपोधन शुनः शेफ मुनि से जिसने जन्म प्राप्त किया था वह समस्त सुल क्षणों से युक्त कामधेनु—इस नाम से प्रख्यात हुई थी ।३। वह सित मेघ के सदृश थी और चारों वेदों के चरणों वाली थी । वह अपने चारों स्तनों के द्वारा धर्म-अर्थ और कामों के प्रसव करने वाली थी ।४। सुवर्ण के समान शरीर वाली उस कामधेनु ने जो सती थी—बहुत काल के होने पर निर्मल और परम मनोहर यौवन को प्राप्त किया था ।५। मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर सञ्चरण करती हुई—चारु

स्वरूप वाली—सुन्दर लक्षणों से समन्वित उसको वेताल ने देखा था और उसका सौन्दर्य देखकर वेताल के हृदय में काम वासना समुत्पन्न हो गयी थी ।६-७।

त कामुकं च वेतालं विदित्वा कामधेनुका ।
पशुधर्मात् स्वयं भेजे तं पुत्रं शशभृद्भृतः ।।८
सोऽवाप तस्यां परममामोदं शङ्करात्मजा ।
सा चापि परमां तस्मिन् मुदमापातिहर्षिता: ।।६
तयोः प्रवृत्ते सुरते तस्यां गर्भोऽभवत् तदा ।
काले प्राप्ते तु सुषवे कामधेनुर्महावृषम् ।।१०
सोऽचिरेणैव कालेन सुमहान् वृषभोऽभवत् ।
महाककुत्संयुक्तश्चारुश्रृङ्गसमन्वितः ।।११
उत्क्षिप्य विचलत्:कर्णयुगलो दीर्घवालधिः ।
ककुदेन च श्रृंगाभ्यां कर्णाभ्यां ससिताभ्रवत् ।।१२
विचलन् ददृशे देवैः श्रृंगैरिव सिताचलः ।
वेतालस्त्वकरोत् तस्य नाम श्रृंग इति द्विजाः ।।१३
स तु श्रृंगों ज्ञानशाली समाराधयदीश्वरम् ।
सोऽपि तुष्टो वरं तस्मै ददाविष्टं हरः प्रभुः ।।१४

उस कामधेनु ने उस वेताल को कामुक जानकर पशु धर्म से स्वयं ही उस चन्द्रशेखर के पुत्र का सेवन किया था ।८। उस भगवान् शङ्कर के पुत्र ने उस कामधेनु में परम आनन्द की प्राप्ति की थी और उसने भी उससे आनन्द को प्राप्त करके बहुत ही हर्षित हुई थी ।६। उन दोनों में सुरत क्रीड़ा के प्रवृत्त हो जाने पर गर्भ स्थित हो गया था । जब प्रसव काल प्राप्त हुआ तो उस समय में उसने महावृष को प्रसूत किया था ।१०। वह थोड़े ही समय में सुमहान् वृषभ हो गया था । उसके बहुत बड़ा ककुद था और सुन्दर सींगों से वह युक्त था ।११। उत्क्षेपण करके विचलित दोनों कानों वाला था और बहुत लम्बी उसकी पूँछ थी । वह ककुद से-सींगों से और कानों से सित अभ्र के ही समान था ।१२। विचलन करते हुए उसे श्रृङ्गों से सिताचल की ही भाँति देवों के द्वारा वह देखा गया था । वेताल ने उसका नाम हे द्विजो ! श्रृङ्ग—यही रक्खा था ।१३। यह श्रृङ्ग बहुत ज्ञानवान् था और उसने ईश्वर की समाराधना की थी । वह भगवान् शम्भु भी उस पर परम तुष्ट हो गये थे और उसने अभीष्ट वरदान दिया था ।१४।

तमेह वाहनं चक्रे कृत्वा देवतनुं वृषम् ।
सुचिरायुश्च बलवान् पृथिवीधारणे क्षमः ।।१५
शृंगो नाम महातेजाः केतुः सोऽप्यभवत् प्रभोः ।
शृङ्गो भूत्वा मतो यस्माच्छङ्करस्य महात्मनः ।।१६
अतः शृङ्ग इति ख्यातिमथ प्राह महेश्वरः ।
स तु शृङ्गो महादेवे ध्यानासक्ते क्वचित् क्वचित ।।१७
वरुणस्य गृहं गत्वा सुरभेस्तनयास्तु याः ।
रूपयौवनसम्पन्ना भेजेऽलं सुरतेन याः ।।१८

वरुणस्य गृहे वावः सर्वलक्षणसंयुताः ।
तिष्ठन्ति सततं विप्रास्तासु तासु सुताः पुनः ।।१९
बह्वयस्तु च समुत्पन्नास्तेषां सूतिप्रसूतिभिः ।
सर्वं जगदिदं व्याप्तं तेभ्यो यज्ञ प्रवर्तते ।।२०
आज्येन देवास्तुष्यन्ति यज्ञा आज्ये प्रतिष्ठिताः ।
यज्ञाधानमिदं सर्वजगत् स्थावरजङ्गमम् ।।२१

भगवान् हर ने उस वृष को देव शरीर वाला बनाकर अपना वाहन बना लिया था । वह बल वाला और चिरायु था तथा पृथ्वी के धारण करने में समर्थ था ।१५। शृङ्ग महान् तेज वाला था और वह प्रभू का केतु भी हो गया था क्योंकि शृङ्ग होकर वह महान् आत्मा वाले भगवान् शङ्कर का प्यारा हो गया था । अतएव शृंग—इस ख्याति को प्राप्त हो गया था । इसके उपरान्त महेश्वर ने शृंग से कहा था । वह शृंग महादेव के ध्यान में समासक्त हो जाने पर कभी-कभी वरुण के गृह में गमन किया करता था । वहाँ पर सुरभि की जो पुत्रियाँ थीं वे रूप और यौवन से सम्पन्न थीं । इसने उनके साथ खूबसूरत के लिये करके उनका सेवन किया करता था ।१६-१८। वरुण के गृह में सभी लक्षणों से युक्त गौएँ थीं । जो हे विप्रो ! वहाँ पर स्थित रहा करती थीं और उन-उनमें फिर सुता उत्पन्न हुई थी । जो बहुत थीं इनकी सूति-प्रसूतियों से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है और उनसे यज्ञ प्रवृत्त हुआ करता है ।१९-२०। आज्य से देव सन्तुष्ट हुआ करते हैं और आज्य में ही यज्ञ प्रतिष्ठित होते हैं । यह सम्पूर्ण स्थावर और जंगम अर्थात् चर अचर जगत् यज्ञा धान होता है ।२१।

तदाज्यं तु गवाधीनं ततः सर्वं गवि स्थितम् ।
तदिदं सकलं विश्वं गवाधीनं द्विजोत्तमाः ।।२२

वेतालस्य च ता गावो वंश्याः सर्वप्रियाः सदा ।
य इदं शृणुयान्नित्यं वैतालस्य महात्मनः ॥२३
वंशानां जन्म विप्रेन्द्राः स सुखी बलवान् भवेत् ।
न गावो नापि विभवास्तस्य नश्यन्ति वै क्वचित् ॥२४
न चा भूतपिशाचाद्यास्तं पश्यन्ति कदाचन ।
वेतालः सततं तस्य रक्षामाचरति स्वयम् ॥२५

इति वः कथितं विप्रा यथा वेतालभैरवी ।
जनयामासतु पुत्रान् विच्छिन्नाः संशयाश्चा वः ॥२६
यथा चा कालिका देवी मोहयामास शंकरम् ।
यथोत्पन्ना शरीरार्धं कृतं शम्भोर्यथा तथा ॥२७
कालिकायै नमस्तुभ्यमिति यो भाषयेत् स्वयम् ।
तस्य हस्ते स्थिता मुक्तिस्त्रिवर्गस्तु वंशानुगः ॥२८

वह आज्य गौओं के अधीन है इससे सभी कुछ गौ में ही स्थित रहा करता है । द्विजोत्तमो ! यह सम्पूर्ण विश्व गौओं के ही अधीन रहा करता है ।२२। वे सब गौऐं वेताल के वंश में ही होने वाली हैं और सदा सबकी प्रिय होती हैं । जो महात्मा वेताल के इस चरित्र का नित्य श्रवण किया करता है और इनके वंशों से जन्म को सुनता है वह सब सुखी और बलवान् हुआ करता है । उस पुरुष की न तो गौयें नष्ट होती हैं और न कभी वैभव ही विनष्ट हुआ करते हैं ।२३-२४। उस पुरुष को भूत पिशाच आदि भी कभी नहीं देखा करते हैं । वेताल स्वयं ही उनकी निरन्तर रक्षा किया करता है ।२५। हे विप्रो ! यह मैंने आपको बतला दिया है जिस तरह से वेताल और भैरव दोनों ने जन्म लिया था और पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । अब तो आपके सभी संशय विच्छन्न हो गये होंगे ।२६। जिस तरह से कालिका देवी ने शंकर को मोहित किया था और जैसे शरीर के अर्ध में उत्पन्न हुई थी और भगवान्, शम्भु जैसे-तैसे किया था—यह सब कह दिया है ।२७। जो मनुष्य कालिका के लिये आपको नमस्कार है—ऐसा स्वयं कहता है उस पुरुष के हाथ में ही मुक्ति तो स्थित रहा करती है और तीनों का अर्थात् धर्म-अर्थ-काम का वर्ग मुक्ति के ही वश में रहने वाला इनका अनुगामी हुआ करता है ।२८।

इति व कथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम् ।

मन्त्रयन्त्रमयं शुद्धं ज्ञानदं कामदं परम् ॥२९

इति गुह्यतमं लोके वेदेषु च तथा द्विजाः ।
देवगन्धर्वसिद्धाद्यैः स्पृहणीयमिदं सदा ।।३०
अधीत च श्रुतं मत्तो वसिष्ठेन महात्मना ।
इदं पुराणमृतं कालिकाह्वयमुत्तमम् ।।३१
तेन गुप्तमिदं सर्वं नामरूपे सुरालये ।
तमिदानीं समाख्यातं व्यक्तीकृत्य महर्षय ।।३२
युष्माभिरपि नो देयं गोप्यं लोकेषु सर्वदा ।
शठाय चलचित्ताय नास्तिकायाजितात्मने ।।३३
भक्तिश्रद्धाविहीनाय न दातव्यं कदाचन ।
इदं सकृत् पठेत् यस्तु पुराणं कालिकाह्वम् ।।३४
स कामानखिलान् प्राप्य शेवेऽमृतमवाप्नुयात् ।
मन्दिरे लिखितं यस्य पुराणदियमुत्तमम् ।।३५
सदा तिष्ठति नो तस्य विघ्नः सुंजायते द्विजाः ।
योऽधीतेऽह्न्येतद् गुह्यं तन्त्रमिद परम् ।।३६
अधीताः सकला वेदास्तेनेह द्विजसत्तमाः ।
तस्मान्नैवाधिकोऽन्योऽस्ति कृतकृत्यो विचक्षणः ।।३७

इस रीति से परम पुण्यमय कालिका नाम वाला पुराण आपको वर्णित करके सुना दिया है । जो मन्त्रों और यन्त्रों से परिपूर्ण है-शुद्धज्ञान ज्ञान का देने वाला-कामनाओं का दाता परम श्रेष्ठ है ।२९। हे द्विजगणो ! यह लोक में और वेदों में भी परम गोपनीय है । इसके लिये देवगन्धर्व और सिद्ध आदि सभी सदा स्पृहा किया करते हैं ।३०। इस परमोत्तम कालिका नामक पुराणामृत को महात्मा वसिष्ठ ने मुझसे ही सुना था और अध्ययन किया था ।३१। यह काम रूप सुरालय में भी इसी कारण से गुप्त है । हे महर्षिगणो ! उसको इस समय में प्रकट करके ही भली-भाँति आख्यात किया है ।३२। आप लोग भी इसको नहीं देवें यह सर्वदा लोकों में गोपन करने योग्य है । जो शठ हो-चञ्चल चित्त वाला हो-नास्तिक है—अविजित आत्मा वाला हो—भक्ति और श्रद्धा से रहित होवे उसको इसे कभी भी नहीं देना चाहिए । जो एकबार भी इस कालिका पुराण का पाठ करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके अमृतत्व अर्थात् देवत्व को प्राप्त किया करता है । जिसके मन्दिर में यह लिखा हुआ उत्तम पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो ! उसको कभी विघ्न नहीं होता जो प्रतिदिन

इसका गोपनीय अध्ययन करता है जो कि यह मरम ... है। हे द्विज श्रेष्ठो ! उसने यहाँ पर ही सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर लिया है। ... कारण से इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है। विलक्षण पुरुष इसके अध्ययन से कृतकृत्य हो जाता है।३३-३७।

स सुखी बलवांलोके दीर्घायुरपि जायत ।।३८

यो लोकमीशं सततं विभर्ति यः पालयत्यन्तकरस्तथान्ते ।

इदं समस्तं भ्रमभ्रमं वा मदीयरूपं च नमोऽस्तु तस्मै ।।३९

प्रधानपुरुषो यस्य प्रपञ्चो योगिनां हृदि ।

यः पुराणाधिपो विष्णुः प्रसीदतु स वः शिवः ।।४०

यो हेतुरुग्रः पुरुषः पुराणः सनातनः शाश्वत ईश्वरः परः ।

पुराणकृद् वेदपुराणवेद्यः प्रस्तौमि तन्नोमि पुराणशेवे ।।४१

इति सकलजगद् विभर्ति यासां मधुरिमोहकरी रमास्वरूपा ।

स्मयति च हर शिवास्वरूपा वितरतु वो विभवं शुभानि माया ।।४२

इसके अध्ययन तथा श्रवण करने वाला पुरुष परम सुखी तथा लोक में बलवान् और दीर्घ आयु वाला भी हो जाता है।३८। जो निरन्तर लोक का विवरण किया करता है जो पालन करता है और अन्त में विनाश करने वाला है। यह सम्पूर्ण भ्रम या अभ्रम से युक्त है मेरा ही स्वरूप है अतएव उसके लिये नमस्कार है।३९। योगियों के हृदय में जिसका प्रपञ्च प्रधान पुरुष है—जो पुराणों का अधिक भगवान् विष्णु और वह भगवान् शिव आप सबके ऊपर प्रसन्न होवें।४०। जो उग्र हेतु है—पुराण पुरुष है—जो शाश्वत तथा सनातन रूप ईश्वर है—जो पुराणों का करने वाला और वेदों तथा पुराणों के द्वारा जानने के योग्य है उस पुराण शेष के लिए में प्रस्तवन करता हूँ और अभिवादन करता है।४१। जो इस प्रकार से समस्त जगत् का विशेष रूप से मरण किया करती है—जो मधु रिपु को भी मोह कर देने वाली है—जिसका स्वरूप रमा है और शिवा स्वरूप से जो भगवान् शंकर का रमण कराया करती है वह माया आपके विभव को और शुभों को वितरित करे।४२।

।। कालिका पुराण (द्वितीय खण्ड) समाप्त ।।


संस्कृति संस्थान
बरेली